॥ श्री ॥

विद्याभवन राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला

१०८

॥ श्री ॥

महाकवि शूद्रक

(शूद्रक और मृच्छकटिक)

लेखक

डॉ० रमाशंकर तिवारी

एम० ए०, पी-एच० डी०,

देवपुरस्कार-विजेता

प्राचार्य, जवाहरलाल नेहरू डिग्री कालेज, बाराबंकी (उ० प्र०)

चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

१९६७

THE
VIDYABHAWAN RASHTRABHASHA GRANTHAMALA
108

MAHĀKAVI S'ŪDRAKA

(Śūdrak and Mrchchhakatika)

By
Dr. RAMĀS'ANKARA TIWARY,
M A, Ph. D
(Deva Prize Winner)
Principal, Jawaharlal Nehru Degree College,
Barabanki (U P)
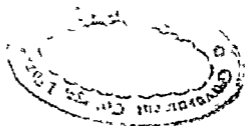
THE
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
VARANASI-1
1967

First Edition
1967
Price Rs 12-50

Also can be had of
THE CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
Publishers & Antiquarian Book-Sellers
P. O Chowkhamba, Post Box 8, Varanasi-1 (India)
Phone : 3145

समर्पण

—भारतीय संस्कृति एवं साहित्य

के अनन्य उपासक,

विद्वद्वरेण्य डॉ० सम्पूर्णानन्द जी,

राज्यपाल, राजस्थान,

को सादर, सविनय—

"यथैव पुष्पं प्रथमे विकाशे समेत्य पातुं मधुपाः पतन्ति।
एवं मनुष्यस्य विपत्तिकाले छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति॥"

(मृच्छ०, ९।२६)

प्राक्कथन

(क)

संस्कृत के नाट्यकारों में शूद्रक का विशिष्ट महत्त्व स्वीकार किया जाता रहा है। गीर्वाणगिरा के दृश्यकाव्य की रचना मूलतः सुसंस्कृत विद्वत्-परिषद् के परितोष के निमित्त[1] ही की गई है जिसका रमणीय परिणाम रहा है, आभिजात्यनिष्ठ रोमांटिक परम्परा की अभिराम रचना तथा प्रतिष्ठा। इस गौरवशालिनी परम्परा के देदीप्यमान स्थपति एवं चित्रकार कालिदास तथा भवभूति हैं। ये दोनों हमारे प्राचीन साहित्य-संसार के दो अनुपम शिखर हैं जो विश्व के विपुल कल्पना-रमणीय वाङ्मय में भारतीय सर्जनक्षमता के अपने निराले मापदंड का सगर्व उद्घोष कर रहे हैं। लेकिन, संस्कृत दृश्यकाव्य में एक ऐसी लोकनिष्ठ परम्परा भी रही है जो प्रतिष्ठित श्रेण्य परिपाटी के विपरीत, अभिजात 'आर्यमिश्रों' की शायद अवहेलना कर, साधारण जनसमुदाय के मनोरंजन एवं चित्तप्रसादन के लिए "प्रयोगविज्ञान" का सफल उपयोग करती रही है। ऐसी परम्परा में भारतीय संस्कृति के मौलिक मूल्यों का तिरस्कार किया गया हो, ऐसा समझना उचित नहीं होगा। शूद्रक इसी परम्परा के श्रेष्ठ प्रतिमान हैं और 'मृच्छकटिक' मिट्टी के जीवन की श्यामलिमाओं को समेटने-स्वीकारने वाली, किन्तु हमारी मूलवर्तिनी जीवन दृष्टि से सतत लिपटी रहने वाली, मूल्यवान् नाट्य-रचना है। अस्तु।

शूद्रक की सही पहचान निरन्तर विवाद का आस्पद रही है। शूद्रक राजा था अथवा नहीं, ब्राह्मण था, क्षत्रिय था या शूद्र था, वही मृच्छकटिक का प्रणेता था अथवा नहीं, सबसे बढ़ कर, शूद्रक का व्यक्तित्व ऐतिहासिक के बदले निरा काल्पनिक तो नहीं है, इत्यादि प्रश्न प्राक्तन साहित्य के सुधी विवेचकों द्वारा बारम्बार उठाये गये हैं और परस्पर-विसंवादी उत्तर या समाधान प्रस्तुत किये गये हैं। वर्तमान शती के आरम्भ में गणपति शास्त्री द्वारा भास के नाटक-चक्र की जो खोज की गई, उससे शूद्रक तथा 'मृच्छकटिक' की समस्या और

---

[1] "आ परितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः॥"
(अभिज्ञान०, १।२)

भी जटिल बन गई। क्या भास-कृत 'चारुदत्त' 'मृच्छकटिक' का संक्षिप्त रंगमंचीय रूपान्तर है अथवा क्या 'मृच्छकटिक' ही 'चारुदत्त' का परिवर्धित संस्करण है—यह प्रश्न, बड़े सजीव रूप में विद्वानों तथा आलोचकों की वैपश्चिती प्रज्ञा के व्यायाम का भाजन बन गया और दोनों पक्षों में परम मेधावी तथा उद्भट पंडितों की प्राणवान् पंक्तियाँ प्रकाश में आ गई। तब, शूद्रक के व्यक्तित्व और 'चारुदत्त' एवं 'मृच्छकटिक' के पारस्परिक संबंध की समस्या, परस्पर गुँथमगुँथ होकर, संस्कृत साहित्य एवं भारतीय संस्कृति के अध्येताओं के लिए दुर्लङ्घ्य-जैसी कठिनाई बन गई है। प्रस्तुत ग्रन्थ में मैंने इस द्विविध समस्या से संतुलन पूर्वक आँखें मिलाने का प्रयत्न किया है, बिना किसी पूर्वाग्रह, बिना किसी पूर्वासक्ति के।

(ग)

शूद्रक की पहचान के लिए, साहित्य तथा इतिहास के आधार पर, नानाविध पांडित्यपूर्ण प्रयास किये गये हैं। 'मृच्छकटिक' में स्वयं शूद्रक-विषयक जो प्ररोचना वाले श्लोक उपलब्ध हैं, उनकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में संदेह प्रकट किया गया है। इन श्लोकों में रचयिता की प्रशस्ति अतिरंजनापूर्ण ढंग से की गई हो, ऐसा तो तत्काल माना जा सकता है, लेकिन ये केवल कपोलकल्पित हैं—ऐसा सोच लेना गवेषणा के वैज्ञानिक अनुरोधों का अनावश्यक एवं अनुपादेय विस्मरण अथवा अतिक्रमण ही समझा जाना चाहिए। शूद्रक की पहचान के लिए पौरस्त्य एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा जो प्रयत्न किये गये हैं तथा जो स्थापनाएं की गई हैं, उन सबकी मैंने स्वतन्त्र बुद्धि से छानबीन की है, और साथ-ही, प्ररोचना वाले छन्दों में तथ्य की एक ठोस भूमि की वर्तमानता में भी विश्वास किया है। परम्परा विशुद्ध कल्पना का क्रीड़ा-विलास है, ऐसा मान लेना मेरे लिए संभव नहीं हो सका है। इन श्लोकों में "द्विजमुख्यतम", "समरव्यसनी" तथा "क्षितिपाल" के उल्लेख तथ्यपरक हैं जबकि "द्विरेन्द्रगतिश्चकोरनेत्र" इत्यादि वाले उल्लेख मुख्यतया प्रशस्त्यात्मक हैं—ऐसा मानने के विरुद्ध मुझे अद्यापि कोई विश्वास्य प्रमाण नहीं मिल पाये हैं। 'वैशिकी कला' में रचयिता की निपुणता को भी मैं साधारण-सामान्य से अधिक, व्यक्तिनिष्ठ अथवा वैयक्तिक समझता हूँ। अतएव, इन सम्पूर्ण विन्दुओं के आलोक में मैंने शूद्रक तथा 'मृच्छकटिक' के सम्बन्ध में निम्नांकित निष्कर्ष निकाले हैं —

(अ) 'मृच्छ०' का रचयिता शूद्रक ही है जो द्विजों में सर्वश्रेष्ठ वर्ण का, अर्थात्, ब्राह्मण है।

(आ) यह शूद्रक राजा था जो अल्पकाल तक राजसत्ता का उपभोग करता रहा तथा शायद बहुत प्रख्यात नही हो सका।

(इ) उसका व्यक्तित्व रोमांटिक था और समर-व्यसनी होने के साथ-साथ, प्रणय के ललित-श्यामल पटलों का उसने उन्मुक्त आस्वादन किया था।

(ई) भास-रचित 'चारुदत्त' पूर्ववर्ती रचना है और 'मृच्छकटिक' उसका परिवर्धित एव नवसस्कारित सस्करण है। 'चारु०' वर्तमान रूप मे अपूर्ण है।

(उ) भास के शताब्दियो बाद शूद्रक ने मृच्छकटिक का प्रणयन किया और अपने जीवन के बहुरगी अनुभवों को एक पुरानी तथा विस्मृतप्राय रचना मे समाविष्ट कर, 'मिट्टी की गाड़ी' रच दी जिसके पीछे उसकी कोई बडी महत्त्वाकाक्षा नही थी—यद्यपि उसकी नाटकीय सूझ निराली थी।

(ऊ) शूद्रक ने दक्षिण भारत मे राज-सत्ता का उपभोग उस अवधि मे किया होगा जो गुप्त साम्राज्य के पतन से आरम्भ होती है और हर्षवर्धन के उदय-काल से समाप्त होती है। अतएव, 'मृच्छकटिक' का प्रणयन काल ईसा की छठीं शताब्दी का पूरा अन्तराल रहा होगा।

उपर्युक्त निष्कर्ष अब तक की सम्पूर्ण प्रकाश मे आई सामग्री के सूक्ष्म एव तत्त्वाभिनिवेशी परीक्षण एव विश्लेषण के आधार पर निष्पादित किये गये हैं। इनकी प्रामाणिकता के विषय मे मेरा अवश्य कोई अचल आग्रह नही है क्योंकि प्राचीन साहित्यकारो के जीवन-वृत्त का निर्माण शायद सदैव अनुमानाश्रित रहेगा। तथापि, शूद्रक-विषयक वैदुष्य के वर्तमान सदर्भ मे मेरी निष्पत्तिया एकदम निस्सार नहीं होगी—ऐसा मेरा विश्वास है।

(ग)

'चारुदत्त' तथा 'मृच्छकटिक' की तुलनात्मक परीक्षा और इनके पारस्परिक सम्बन्ध की विवेचना तनिक विस्तार-पूर्वक प्रस्तुत ग्रन्थ में की गई है। वैसे-ही, 'मृच्छकटिक' के सदर्भ मे शूद्रक के व्यक्तित्व की पकड तथा पहचान के लिए भी सावधान एवं विस्तीर्ण प्रयास किया गया है। इस प्रकार, पुस्तक का एक तृतीयांश शूद्रक एव 'मृच्छकटिक' की उलझी हुई समस्या के सुलझाव मे नियोजित हुआ है, और हमारी समझ मे, पाठक को यह अश बुद्धि-गम्य बनाने मे यथेष्ट धैर्य एव सावधानी बरतनी पडेगी।

ग्रन्थ का दो तिहाई भाग 'मृच्छकटिक' के विस्तृत एव सर्वाङ्गपूर्ण अध्ययन से सम्बन्धित है जैसा अनुक्रमणिका के अवलोकन से ज्ञात हो जायगा। विवेचन की भंगिमा भारतीय तथा पश्चिमीय दोनो दृष्टिकोणों से प्रभावित रही है और

आलोच्य नाट्य-कृति एवं नाटककार को सभी सम्भव परिपार्श्वों से परखने तथा मूल्यांकित करने का उद्योग किया गया है। पूर्ववर्ती विद्वानों के निष्कर्षों को न तो "परप्रत्ययनेयबुद्धि" की सुगम शैली में स्वीकार ही किया गया है और न मूर्ति-भंजक के असंतुलित उत्साहातिरेक के साथ उनका खंडन ही किया गया है। मुझे विश्वास है कि सहृदय एवं पूर्वग्रह-मुक्त पाठक मेरी निस्संग विवेचन-सरणि में दूर तक मेरा साथ देंगे।

नाटक का 'समय-संकलन' वाला अंश पढ़ते समय पाठक यह ध्यान में रखें कि केरल-प्रदेश के पञ्चांग में महीना शुक्ल पक्ष से प्रारम्भ तथा कृष्ण-पक्ष की अमावस्या को समाप्त होता है। इससे शूद्रक की तिथि-योजना को समझने में सहायता मिलेगी। (पृष्ठ २५५–६४)

(घ)

'महाकवि कालिदास' की रचना के बाद से ही, 'महाकवि शूद्रक' के प्रणयन का मेरा आकर्षण बना हुआ था, कदाचित् शूद्रक के अध्ययन के अभाव में हमारी संस्कृत-साहित्य-विषयक मनोभंगिमा सन्तुलन-विहीन बन गई होती। प्रस्तुत ग्रन्थ को, अतएव, विद्वत्-समुदाय के करकमलों में प्रस्तुत कर, हमें एक प्रकार की सन्तृप्ति एवं संतोष का अनुभव हो रहा है। अंग्रेजी साहित्य के अध्यापन तथा प्राचार्यपद के दायित्व-सम्पादन की दुरूह सरणि में, कालिदास तथा शूद्रक अपने इन्द्रजाल में मेरी मनोवृत्तियाँ उलझाते रहे हैं, इसे मैं अपना चरम सौभाग्य मानता हूँ, और श्रेष्ठ पंडितों एवं विद्वानों की दीप्तिमयी परिषद् के सम्मुख, विनम्र भाव से, लेखनी-चालन के स्वकीय मोह का स्वीकरण करने में मुझे यत्किञ्चित् संकोच नहीं हो रहा है —

"तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्।" (रघुवंश)

भारतीय संस्कृति तथा साहित्य के परम अनुरागी एवं मूर्धन्य विद्वान् डॉ० सम्पूर्णानन्द जी को प्रस्तुत रचना समर्पित करने में मुझे असीम मानसिक संतोष का अनुभव हो रहा है मननशील गंभीर पांडित्य एवं उत्कट कर्मपरायण वर्चस्व का ऐसा अनुपम संगम हमारे वर्तमान राष्ट्रीय जीवन में अन्यत्र कहाँ उपलब्ध है?

अन्त में, चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी, के व्यवस्थापकों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना भी उचित एवं आवश्यक समझता हूँ जो संस्कृत साहित्य के प्रकाशन तथा प्रसारण में निरन्तर मनोयोगपूर्वक आगे बढ़ते जा रहे हैं।

रश्मि-निकेतन, बलिया (उ० प्र०)
३१ दिसम्बर, १९६६

रमाशंकर तिवारी

अनुक्रमणिका

(क)

(ख)

महाकवि शूद्रक

(शूद्रक और मृच्छकटिक)

(क)

(१) चारुदत्त और मृच्छकटिक का तुलनात्मक विवेचन

(१) 'चारुदत्त' में नान्दी-पाठ उपलब्ध नहीं है "नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः ।" (केवल 'नान्दी' शब्द का उल्लेख है।) ऐसे ही, प्ररोचना वाला अंश भी इसमें वर्तमान नहीं है।

'मृच्छकटिक' में नान्दी-पाठ दिया हुआ है जिसके दो श्लोकों में यह कामना व्यक्त की गई है कि भगवान् शंकर की प्रलयोन्मुख निर्विकल्पक समाधि तथा उनका गौरीभुजलता भ्राजित श्यामल कण्ठ सामाजिक-वृन्द की रक्षा करें। इसके बाद सूत्रधार सभ्यजनों ('आर्यमिश्रो') को प्रणाम कर विज्ञापित करता है कि हम लोग 'मृच्छकटिक' नामक प्रकरण का अभिनय करने जा रहे हैं। इसी सन्दर्भ में, पाँच श्लोकों में मृच्छकटिक के रचयिता शूद्रक की परिगणना की गई है तथा प्रकरण की प्रतिपाद्य वस्तु का उल्लेख किया गया है—

> "अवन्तिपुर्यां द्विजसार्थवाहो युवा दरिद्रः किल चारुदत्तः ।
> गुणानुरक्ता गणिका च यस्य वसन्तशोभेव वसन्तसेना ॥
> तयोरिदं सत्सुरतोत्सवाश्रयं नयप्रचारं व्यवहारदुष्टताम् ।
> खलस्वभावं भवितव्यतां तथा चकार सर्वं किल शूद्रको नृपः ॥"

प्ररोचनावाला सम्पूर्ण अंश मूल रचयिता की रचना नहीं है, अपितु यह बाद में किसी अन्य प्रणेता द्वारा मूल कृति में जोड़ा गया है—ऐसा विश्वास तत्काल किया जा सकता है।

(२) प्ररोचना विषयक श्लोकों के बाद 'मृच्छकटिक' में सूत्रधार ने संस्कृत गद्य में जो कथन किया है, उसी को वह तनिक देर बाद प्राकृत गद्य में दुहराता है और प्राकृत प्रयोग को प्रयोजन सापेक्ष बतलाता है—"कार्यवशात् प्रयोगवशाच्च प्राकृतभाषी संवृत्तः ।" 'चारुदत्त' में सूत्रधार सर्वत्र प्राकृत बोलता है, प्राकृत से आरम्भ ही हुआ है 'चारुदत्त' का नाटकीय

व्यापार। 'मृच्छकटिक' का यह संस्कृत गद्यांश भी प्ररोचनावाले श्लोकांश की भाँति प्रक्षिप्त हो सकता है, अन्यथा प्राकृत गद्य में किये गए कथन के आरम्भिक अंश को पहले संस्कृत गद्य में कथित करने के पीछे कोई संगत कारण नहीं दिखलाई पड़ता। "प्रयोगवशात्" से यह ध्वनि निकलती है कि कदाचित् नटी संस्कृत कथन का अर्थ नहीं समझ सकती थी, किन्तु तब, सूत्रधार को आरम्भ से ही प्राकृत का प्रयोग अपनाना चाहिए था जैसा 'चारुदत्त' में हुआ है।

(३) 'चारुदत्त' और 'मृच्छकटिक' दोनों की प्रस्तावना (अथवा स्थापना) में सूत्रधार भूख से व्याकुल दिखाई पड़ता है, किन्तु 'चारुदत्त' में इस भूख का कोई संगत कारण वर्णित नहीं है जबकि 'मृच्छकटिक' में कारण उल्लिखित है अधिक समय तक संगीत की उपासना—"इयच्च संगीतकं मया। अनेन चिरसंगीतोपासनेन ..."

'चारुदत्त' और 'मृच्छकटिक' दोनों में सूत्रधार के निर्धन होने के संकेत हैं, किन्तु ऐसा मानने का कोई कारण नहीं कि 'चारु०' का सूत्रधार गत रात्रि को भोजन नहीं पा सका है जिससे उसकी आँखें प्रत्यूष-वेला में ही भूख से चचल हो उठी हों—'किण्णु क्खु अज्ज पच्चूस एव्व गेहादो णिक्कन्तस्स बुभुक्खाए पुक्खरपत्तपडिदजलबिन्दू विअ चञ्चलाअन्ति विअ मे अक्खीणि।" मृच्छ०' में "चिरसंगीतोपासना" का कथन कर, सूत्रधार की प्रातःकालीन बुभुक्षा का कारण निर्दिष्ट कर दिया गया है।

(४) 'अभिरूपपति" (अनुरूप पति पाने में सहायक) उपवास का कथन 'चारु०' तथा 'मृच्छ०' दोनों रचनाओं में समान ढंग से हुआ है। किन्तु 'चारु०' में इस व्रत के उपदेष्टा चूर्णगोष्ठक (या चूर्णवृद्ध) के निर्देश पर सूत्रधार चूर्णगोष्ठक को साधुवाद देता है जबकि 'मृच्छ०' में सूत्रधार क्रोधाभिभूत होकर, बोखला उठता है—"अधम पुत्र चूर्णवृद्ध! वह दिन कब आएगा जब क्रुद्ध राजा पालक के द्वारा नववधू के सुगन्धित केश-पाश के समान विदीर्ण होता हुआ मैं तुम्हें देखूँगा?" इसके पूर्व, सूत्रधार के इस प्रश्न पर कि अनुरूप पति प्राप्त करने की बात इस जन्म के लिए है या दूसरे जन्म के लिए, जब नटी कहती है कि दूसरे जन्म या परलोक के लिए, तब भी 'मृच्छ०' का सूत्रधार क्रुद्ध हो गया है और आर्यमिश्रों से इस अनर्थ का साक्षी होने के लिए अनुरोध किया है कि 'हे सभ्यजनो! आप देखें, मेरे अन्न को खर्च कर, दूसरे लोक के लिए अनुकूल पति खोजा जा रहा है!" 'चारु०' में सूत्रधार यह जान कर कि अन्य जन्म में भी अनुरूप पति की एषणा की जा रही है, एक-दम शान्त हो जाता है और स्थिर भाव से कहता है—"अच्छा, यह सब रहने दो। इस समय भार्या के उपवास का उपदेशक कौन है?"

अतएव, यह स्पष्ट हो जाता है कि 'अभिरूपपति' नामक व्रत की व्यवस्था से 'मृच्छ०' मे सूत्रधार के अमर्ष का जो क्षणिक चित्र उपनिबद्ध हो गया है, उसके सन्दर्भ मे 'चारु०' का यह स्थल फीका एव नीरस बन गया है।

अतएव, 'मृच्छ०' की प्रस्तावना 'चारु०' की स्थापना की तुलना मे नाटकीयता की दृष्टि से श्रेष्ठ ठहरती है।

लेकिन, एक अनोखी बात द्रष्टव्य यह है कि 'चारु०' के कतिपय चित्र सौन्दर्य दृष्टि से 'मृच्छ०' के समान चित्रो की अपेक्षा श्रेष्ठतर सिद्ध होते हैं। उदाहरण निम्नाकित है —

(क) "किण्णु खु अज्ज पच्चूस एव्व गेहादो णिक्कन्तस्स बुभुक्खाए पुक्खरपत्तपडिदजलबिन्दू विअ चञ्चलाअन्ति विअ मे अक्खीणि।"

— क्यो आज उषाकाल में ही घर से बाहर होते ही मेरी आँखें भूख के कारण कमल के पत्ते पर पडे हुए जलबिन्दु की भाँति चंचल हो रही हैं।'

('चारुदत्त')

"अनेन चिरसंगीतोपासनेन ग्रीष्मसमये प्रचण्डदिनकरकिरणोच्छुष्कपुष्कर-बीजमिव प्रचलिततारके क्षुधा ममाक्षिणी खटखटायेते।"

— सगीत की चिर-साधना के कारण, गर्मी के दिन मे तीक्ष्ण सूर्य की किरणो से अत्यन्त सूखे हुए कमल के बीज के समान चचल पुतली वाली मेरी आँखें भूख से विचलित हो रही हैं।' ('मृच्छकटिक')

"चिरसंगीदोवासणेण सुक्खपोक्खरणालाइं विअ मे बुभुक्खाए मिलाणाइं अगाइं।"

— अधिक काल तक सगीत के अभ्यास से सूखे कमल दड के समान मेरे अंग भूख से विवर्ण हो गए हैं।' ('मृच्छ०'—प्राकृत अश)

भूख से आँखो के चचल होने का तथ्य लोक-व्यवहार मे प्रचलित है, 'भूख से आँखें नाच रही है,' ऐसा हम प्राय कहते और सुनते हैं। इस तथ्य की विज्ञप्ति के लिए 'चारु०' मे कमल-पत्र पर पडे चचल जल बिन्दु का उपमान लाया गया है जबकि 'मृच्छ०' के सस्कृताश मे सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से सूखे कमल-बीज की योजना है। सूखे कमल-बीज से आखो का निष्प्रभ होना द्योतित है, किन्तु नाटककार का अभीष्ट आँखो का चाचल्य ही है "प्रचलित-तारके क्षुधा ममाक्षिणी खटखटायेते?" तब, इस चाचल्य-द्योतन के लिए "उच्छुष्कपुष्करबीजमिव" की योजना शिथिल कही जाएगी और इसकी तुलना मे 'चारु०' का चित्र प्रत्यक्ष एव प्राजल समझा जाएगा।

यदि यह माना जाय, जैसा हमने ऊपर माना भी है, कि 'मृच्छ०' में संस्कृत का प्रस्तुत गद्यांश प्रक्षिप्त है, तो प्राकृत के चित्र पर ही विचार किया जा सकता है। मुझे कमल-दंड के समान अंगों के सूत से विदर्ण होने का चित्र स्वतः श्रेष्ठ कहा जा सकता है लेकिन आंखों के चंचल होने के प्रकार चित्र की तुलना में इसका प्रभाव क्षीण हो जाता है। अतएव, चाहे शूद्रक, चाहे शूद्रक का प्रशंसक प्रक्षेपकार, दोनों के चित्र 'चारु०' के चित्र की अपेक्षा कम समर्थ सिद्ध होते हैं।

(ग) 'अहं चण्डप्पवादल्लिदओ विअ वग्गडी पव्वदादो दूर आरोविअ पाडिदो म्हि'।"

—मैं प्रचंड वायु के द्वारा उत्क्षिप्त तृण समूह की भाँति पवन से भी दूर उठाया जा कर नीचे गिरा दिया गया हूँ।' ('चारुदत्त)

"दाणि अहं वरडल्लुओ विअ दूरं उक्खिविअ पाडिदो।'

—'इस समय मैं बाँस (वंश-धनुष) के ढेले के समान ऊपर उठाया जाकर नीचे गिरा दिया गया हूँ।' ('मृच्छकटिक')

सूत्रधार की यह उक्ति उस समय की गई है जब नटी ने परिहास में, उसके प्रश्न के उत्तर में, यह कहा था कि घी, दही गुड़ इत्यादि भोज्य पदार्थ घर में नहीं बाजार में हैं। सूत्रधार की उल्लसित मनोभावना—यह सुन कर उत्पन्न कि सम्पूर्ण भोज्य 'रसायन' उपलब्ध हैं—यह जान कर सहसा खंडित हो गई कि वे मधुर पदार्थ घर में नहीं हैं और नटी ने केवल उसे ललचाया है। इस मानसिक तथ्य की व्यंजना के निमित्त, प्रबल पवन-द्वारा उत्क्षिप्त तृण राशि के समान पर्वत से भी ऊँचे उठ कर गिरा दे जाने की कल्पना बाँस के ढेले के ऊपर उठ कर भूमि पर गिरने की कल्पना से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। अतएव, प्रस्तुत प्रसंग में 'मृच्छ०' का चित्र 'चारु०' के चित्र की तुलना में हीन कोटि का समझा जाएगा।

(५) अनुरूपपति-प्राप्ति विषयक उपवास के अवसर पर सूत्रधार की गृहिणी ने जो नवीन आयोजन किया है, उसका वर्णन 'मृच्छ०' में 'चारु०' की अपेक्षा विशद एवं प्रांजल है। किन्तु, 'मृच्छ०' में यह स्थल पुनरुक्तियों से प्रकीर्ण है जबकि 'चारु०' में ऐसी बात नहीं है।

(६) प्रस्तावना (स्थापना) की समाप्ति के अनन्तर, दोनों नाटकों में विदूषक (मैत्रेय) सूत्रधार के भोजन विषयक निमन्त्रण को अस्वीकृत करता हुआ तथा चारुदत्त के घर में सुमधुर पदार्थों के अभाव में सुख एवं स्वास्थ्य के दिन व्यतीत करने के तथ्य का कथन करता हुआ प्रदर्शित किया गया है। 'चारु०'

मे विदूषक का यह कथन 'मृच्छ०' की तुलना मे विपुल हुआ है। इसी सदर्भ मे 'चारु०' मे चारुदत्त आता दिखाई पडता है जबकि 'मृच्छ' मे चारुदत्त के साथ रदनिका भी आई है। 'चारु०' मे विदूषक का कथन है कि षष्ठी तिथि पर देव कार्य सम्पादित करने वाले मान्य चारुदत्त के निमित्त वह पुष्प एव परिधेय वस्तु लाया है जबकि 'मृच्छ०' मे मैत्रेय कहता है कि चारुदत्त के प्रिय वयस्य चूर्णवृद्ध ने चमेली के फूलो से सौरभित उत्तरीय को देव-कार्य सम्पादित करने वाले चारुदत्त के पास ले जाकर देने का निर्देश किया है।[1] इसके बाद, चारुदत्त और मैत्रेय (विदूषक) परस्पर वार्तालाप करते दोनो नाटको मे दिखाये गए है जिसमे चारुदत्त के सम्पद् विनाश तथा उससे परिणमित उसके मानसिक अवसाद का वर्णन हुआ है।

(७) किन्तु, इस स्थल पर दोनो रचनाओ मे एक उल्लेखनीय अन्तर परिलक्ष्य है। 'चारु०' का प्रस्तुत सवाद, कसावट लिये और सतुलित है जबकि 'मृच्छ०' मे यह सतुलन-पूर्ण एव सुनियोजित नही रह पाया है। इस प्रकार, 'चारु०' का यह प्रसग अधिक सुगठित एव कलात्मक कहा जाएगा। दूसरा महत्त्व मय अन्तर आ पडा है चारुदत्त के चरित्राकन मे। 'मृच्छ०' मे चारुदत्त अत्यन्त दीन, विपण्ण तथा निर्वेद ग्रस्त बन गया है। दरिद्रता के सम्भावित परिणामो का उसने तनिक विसाद एव कारुणिक वर्णन किया है। मित्रादि के आचार-परिवर्तन का उल्लेख तो मृच्छ०' मे भी 'चारु०' के समान ही है, लेकिन दरिद्रता-जन्य मानसिक अवसाद का चित्रण 'मृच्छ०' मे अत्यन्त गहरे रगो से परिपूर्ण बन गया है। पुन चारुदत्त को अपनी पत्नी द्वारा अपमानित होने की भावना भी ग्रस्त कर लेती है। 'चारु०' मे ऐसी स्थिति नही है। वहाँ नायक (चारुदत्त) मनसा इतना श्लथ-शिथिल तथा विपन्न विपण्ण नही है। देखिये, वह क्या कहता है—'न खल्वह नष्टा श्रियमनुशोचामि। गुणरसज्ञस्य तु पुरुषस्य व्यसन दारुणतर मा प्रतिभाति।" अर्थात्, विनष्ट होने वाली सम्पदा की चिन्ता उसे नही सताती, अपितु गुणज्ञ एव रसज्ञ सहृदय सु-पुरुष की विपत्ति उसे असह्य प्रतीत होती है। चारुदत्त स्वत गुणज्ञ तथा रस-मर्मज्ञ है और धन के अभाव मे वह अपनी इस निसर्ग सिद्ध विभूति का उपयुक्त अभ्यास नही कर सकता। उसकी सम्पत्ति प्रणयिजनो के इष्टार्थो की पूर्ति मे ही नष्ट हुई है, उसने

---

१ एम० आर० काले ने 'चारु०' और 'मृच्छ०' की तुलना करते हुए कहा है कि 'चारु०' मे नायक के पास विदूषक के आने के लिए कोई कारण नही दिया गया है जबकि मृच्छ०' मे विदूषक उसके मित्र द्वारा उत्तरीय चारुदत्त को देने आया है। काले का यह कथन सही नही है। (द्रष्टव्य 'मृच्छकटिकम्', काले द्वारा सम्पादित, नया सस्करण, १९६२, भूमिका, पृ० ३८)

कभी किसी याचक को अवमानित नहीं किया, 'दान देना उत्तम है', इस विश्वास से उसने सम्पूर्ण ऐश्वर्य लुटा दिया और उसका सत्त्वशाली मन कभी क्षय प्रस्त नहीं हुआ—

"क्षीणा ममार्था प्रणयिष्विति यासु विमानितं नैव परं स्मरामि ।
एतत्तु मे प्रत्ययदत्तमूल्य सत्त्वं सखे न क्षयमभ्युपैति ॥
('चारु०', १।४)

चारुदत्त यह अवश्य स्वीकार करता है कि दरिद्रता के कारण, पुरुष का बन्धु-वर्ग उसके वचन मे विश्वास नहीं करता, मनस्विता हास्य का आस्पद हो जाती है, शीलयुक्त पुरुष की कांति मलिन हो जाती है, मित्र-गण विमुख हो जाते हैं और साधारण जनों द्वारा सम्पन्न पाप कर्म भी दरिद्र व्यक्ति के ऊपर आरोपित कर दिया जाता है,[१] किन्तु तो भी, उसे अपनी गुण ग्राहिणी पत्नी, सुख-दुःख मे समान रहने वाले मित्र मैत्रेय तथा सत्त्वशाली मन पर अमोघ विश्वास है जिस कारण वह मनोवैज्ञानिक पराभव अथवा मानसिक विध्वंस (Psychological break down) का शिकार नहीं बन सका है—

"विभवानुवशा भार्या समदुःखसुखो भवान् ।
सत्त्व च न परिभ्रष्टं यद् दरिद्रेषु दुर्लभम् ॥ ('चारु०', १।७)

१. "दारिद्र्यात् पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न सन्तिष्ठते
सत्त्वं हास्यमुपैति शीलशशिनः कान्तिः परिम्लायते ।
निर्वैरा विमुखीभवन्ति सुहृदः स्फीता भवन्त्यापदः
पापं कर्म च यत् परैरपि कृतं तत्तस्य सम्भाव्यते ॥"
('चारु०', १।६)

२ 'मृच्छ०' मे यह श्लोक साधारण शब्दान्तर के साथ तीसरे अंक मे आया है। वहाँ एक सुंदर परिवर्तन लक्षणीय है "विभवानुवशा" की जगह "विभवानुगता" पद का प्रयोग हुआ है। 'विभवानुगता" का अर्थ है 'विभव के अनुसार चलने वाली' अर्थात् 'सम्पद् और विपद् मे समान भाव से पति के साथ रहने वाली।' ऐसा स्पष्ट अर्थ "विभवानुवशा" से निष्पन्न नहीं होता, उल्टे, इससे यह अर्थ (भी) निकलता है, 'विभव के कारण पति का साथ देनेवाली', जैसा चौखंबा विद्याभवन से प्रकाशित 'प्रकाश' नाम्नी 'चारुदत्त' की व्याख्या मे लक्षित होता है। स्पष्ट है कि नायक चारुदत्त का ऐसा अभिप्राय कथमपि नहीं होगा, वह अपनी पत्नी को लेकर अपने को सौभाग्यशाली समझ रहा है। अतएव, 'चारु०' का "विभवानुवशा" समीचीन प्रयोग नहीं है।

तथापि, हमारी यह टिप्पणी कि 'मृच्छ०' के चारुदत्त मे यह तत्त्व प्राय टूट गया है, बाधित नहीं होती।

'मृच्छ०' के चारुदत्त मे यह महत्व प्राय टूट गया है। वहाँ यह भी पता नही चलता कि उसकी सम्पत्ति विशेषरूपेण प्रणयिजनो के मधुर व्यापारो की परिपूर्ति मे ही व्यय हुई है। "शुरारमतस्य तु पुरुषस्य व्यसन दारुणतर मा प्रतिभाति" से निकलने वाली ध्वनि भी इस चारुदत्त के चरित्र को मण्डित नहीं कर रही है। देखिये, वह क्या कहता है—

'दरिद्रता के कारण लज्जा होने लगती है, लज्जित व्यक्ति तेजहीन हो जाता है तेजहीन व्यक्ति लोक से तिरस्कृत होता है, तिरस्कार के कारण मन विरक्त हो जाता है, वैराग्य होने पर शोक उत्पन्न होता है, शोक ग्रस्त होने से बुद्धि क्षीण हो जाती है, और तब बुद्धि-नाश होने पर सर्वनाश की अवस्था उत्पन्न होती है।"[१]

'दरिद्र को घर छोडकर वन म चले जाने की इच्छा होती है, यहाँ तक कि उसे अपनी स्त्री का भी अपमान सहना पड़ता है, गरीबी हृदय मे स्थित वह शोक की आग है जो एक ही बार जला कर नष्ट नहीं कर देती, अपितु घुला-घुला कर मारती है।"[२]

अतएव, यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत प्रसग 'चारु०' में 'मृच्छ०' की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित है और चारुदत्त के शील-निरूपण मे अधिक सुदर एव स्वस्थ है।

(८) गणिका वसन्तसेना के अनुगम्यमान होने का दृश्य दोनो नाटको मे समान है, इस अन्तर के साथ कि 'चारु०' मे वह विट तथा शकार से पीछा की जा रही है जबकि 'मृच्छ०' मे विट, चेट तथा शकार से (विट शकार का सहचर है और चेट शकार का दास)। 'मृच्छ०' मे शकार तथा विट के कथन, 'चारु०' की अपेक्षा, कुछ अधिक पल्लवित हैं तथा यह विस्तार कलात्मक दृष्टि से उत्तम ही समझा जाएगा। शकार के कथनो से उसकी कामान्धता, मूर्खता तथा क्रूरता दुष्टता, 'चारु०' की तुलना मे, अधिक उभार मे आ गई हैं। विट ने वेश्या की सर्व-जन-सुलभता का जिन तर्कनाओ से प्रतिपादन किया है, वे 'चारु०' की अपेक्षा अधिक पुष्ट एव विश्वसनीय हैं। 'चारु०' मे विट की तर्कना यो है—

"तरुणजनसहायश्चिन्त्यतना वेशवासो
विगणय गणिका त्व मार्गजाता लतेव।

---

१. मृच्छ०', १।१४
२ 'मृच्छ०', १।१५

वहसि हि धनहार्यं पण्यभूत शरीर
समसुपचर भद्रे सुप्रिय चाप्रियं च ॥" (१।१७)

—'वेश्यालय तरुणजनों के सहायक हैं, ऐसा तुम्हे सोचना चाहिए। तुम वेश्या हो और मार्ग में पड़ी हुई लता की भाँति सर्व साधारण के उपभोग की वस्तु हो। तुम पण्यभूत एव धन के द्वारा एक मात्र हरण करने योग्य शरीर धारण करती हो। अतएव, हे भद्रे ! प्रिय (रसिक) और अप्रिय (अरसिक) दोनों को समान भाव से स्वीकार करो।'

किन्तु, 'मृच्छ०' में विट की तर्कनाएँ यों पल्लवित हुई हैं—

"तरुणजनसहायश्चिन्त्यतां वेशवासो
विगणय गणिका त्व मार्गजाता लतेव।
वहसि हि धनहार्यं पण्यभूत शरीर
समसुपचर भद्रे सुप्रिय चाप्रियञ्च ॥ (१।३१)

अपि च—

वाप्यां स्नाति विचक्षणो द्विजवरो मूर्खोऽपि वर्णाधम
फुल्लां नाम्यति वायसोऽपि हि लतां या नामिता बर्हिणा।
ब्रह्मक्षत्रविशस्तरन्ति च यया नावा तयैवेतरे
त्व वापीव लतेव नौरिव जन वेश्यासि सर्व भज ॥" (१।३२)

—(पहला श्लोक 'चारु०' से अक्षरशः मिलता है।) बावड़ी में विद्वान् ब्राह्मण भी स्नान करता है और नीच वर्ण का मूर्ख भी। फूलों से लदी जिस लता को मोर झुकाता है, उसी को कौवा भी झुकाता है। जिस नाव से ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य नदी पार करते हैं, उसी नाव से शूद्र भी। तुम वेश्या हो और उसी बावड़ी, लता एव नौका के समान हो। अतएव, तुम्हें सबका एक-भाव से आदर करना चाहिए।'

(९) मातृ-देवियों को बलि चढ़ाने के लिए चारुदत्त द्वारा रात में मैत्रेय का भेजा जाना, मैत्रेय के साथ रदनिका का भी जाना, वसन्तसेना का दीपक बुझा देना और रदनिका का विट अथवा शकार द्वारा पकड़ा जाना—ये सभी बातें दोनों नाटकों में समान रूप से वर्णित हैं। किन्तु, 'चारु०' की तुलना में 'मृच्छ०' में जो थोड़ा विस्तार किया गया है, वह शिथिल एव बहुत कुछ अनावश्यक प्रतीत होता है। 'चारु०' में नायक की मरदसीलता एव मनस्विता की रक्षा करने का प्रयत्न सतत परिलक्षित है, किन्तु 'मृच्छ०' में चारुदत्त को प्राय दीन, दुर्बल एव दयनीय चित्रित किया गया है, और ऐसे स्थलों पर पुरानी, पूर्व प्रयुक्त अत्युक्तियाँ दुहराई गई हैं। मातृ देवियों को बलि चढ़ाने

के हेतु निर्दिष्ट किये जाने पर जब विदूषक (मैत्रेय) इनकार करता है, तब चारुदत्त उसे डाँटने फटकारने अथवा नियन्त्रित करने के बदले, अपनी दरिद्रता को ही धिक्कारता है और अपनी निस्सहायता का करुण निवेदन करता है। "धिक्कार है रे दुःख ! गरीबी के कारण मनुष्य के बन्धु-बान्धव भी बात नहीं सुनते। गहरे मित्र भी विमुख हो जाते हैं, मुसीबतें बढ़ जाती हैं। बल क्षीण हो जाता है और शील-रूपी चन्द्रमा की दीप्ति धुँधली पड़ जाती है। अरी दरिद्रते ! तूने मुझे अपना मित्र मानकर मेरे शरीर में अपना निवास-स्थान बनाया है। सच पूछो तो मुझे यही चिन्ता सता रही है कि मुझ अभागे के मर जाने पर तुम कहाँ बसोगी ?"—ये कथन हैं चारुदत्त के जो आरम्भ से ही भग्न मनोबल दिखाई पड़ता है।[१]

'चारु०' में स्थिति बिल्कुल भिन्न है। वहाँ चारुदत्त के यह आदेश देने पर कि चतुष्पथ पर मातृेश्वरी इत्यादि शक्तियों को बलि चढ़ा आओ, जब विदूषक आना-कानी करता है, तब चारुदत्त उसे यों डाँटता है—'मूर्ख ! अपनी आर्थिक स्थिति के अनुरूप पूजा करो। भक्ति से ही देवता सन्तुष्ट होते हैं। अतएव, जाओ।'[२] स्पष्ट है कि यहाँ चारुदत्त की मनस्विता अव्याहत रह गई है। वह विदूषक को 'मूर्ख' कहता है और अपनी सत्त्वशीलता के धरातल से उसे उपदेश, आदेश तथा निर्देश सभी कुछ एक-साथ देता है। जब विदूषक कहता है, मैं अकेले कैसे जाऊँ ?, तब चारुदत्त अपनी सहज भंगिमा में रदनिका को आदेश देता है रदनिके ! इनके साथ जाओ। और, रदनिका विनीत भाव से वह आदेश स्वीकार कर लेती है —

"विदूषक —एआई अहं कहं गमिस्सं।
(एकाक्यहं कथं गमिष्यामि।)
नायक —रदनिके ! अनुगच्छात्रभवन्तम।
रदनिका—जं भट्टा आणवेदि।
(यद् भर्त्ताज्ञापयति।)"

'मृच्छ०' में विदूषक खिन्न होकर, रदनिका को साथ लेकर जाने के लिए तैयार होता है—"मित्र ! यदि मुझे जाना ही पड़ेगा, तो मेरे साथ रदनिका भी चले।" यहाँ चारुदत्त की आज्ञा का उल्लंघन तो नहीं है, लेकिन वह निश्चिततया दीन एवं दयनीय बन गया है।

---

१ मृच्छकटिक, १।३६-३७

२ "मूर्ख ! यथाविभवेनार्च्चनाम्। भक्त्या तुष्यन्ति दैवतानि। तद् गम्यताम्।"

रदनिका के पहचाने जाने पर विट ने जहाँ विदूषक से अनुरोध किया है कि वह रदनिका के अपमानित होने की घटना के संबंध में चारुदत्त से कोई चर्चा न करे और शकार से चारुदत्त के गुणों का बखान किया है, उसी प्रसंग में शकार और विदूषक के बीच 'मृच्छ०' में जो बातचीत कराई गई है वह सर्वथैव अनावश्यक है। 'चारु०' का यह सम्पूर्ण संदर्भ सुगठित कसावट-भरा तथा व्यवस्थित है और उसमें से किसी एक भी वाक्य को, विवक्षितार्थ को विघ्नित नहीं किये बिना, हटाया नहीं जा सकता। 'मृच्छ०' में ऐसी स्थिति नहीं है। वहाँ से अनेक वाक्यों को हटाया जा सकता है और वैसा करने से कलात्मक सौष्ठव की रक्षा करने में सहायता ही मिलेगी।

चौराहे पर मातृ देवियों को बलि चढ़ाने जाने के चारुदत्त द्वारा किये गए अनुरोध अथवा निर्देश के संबंध में 'मृच्छ०' का प्रकरण पुनः व्यर्थ की पुनरुक्ति से भरा हुआ है। निर्धनता के मनोभंगकारी परिणामों का व्याख्यान करने के अनंतर, 'मृच्छ०' में चारुदत्त ने मातृ-देवियों को बलि चढ़ाने का अनुरोध पहली बार विदूषक से किया है और फिर विट–शकार से किसी प्रकार बच कर वसन्तसेना के चारुदत्त के घर के बन्द दरवाजे के पास आ जाने के बाद, वही अनुरोध दूसरी बार दुहराया गया है। यह पुनरावृत्ति सर्वथा अनावश्यक है तथा कला की शिथिलता का द्योतक है। निम्न अनूदित उद्धरण मेरे वक्तव्य की पुष्टि करेंगे —

'चारुदत्त— × × × इसलिए हे मित्र ! मैं गृह देवों की पूजा कर चुका, तुम भी चौराहे पर जा कर मातृ देवियों को बलि चढ़ा आओ।

विदूषक—नहीं जाऊँगा।

चारुदत्त—किस कारण ?

विदूषक—जब इस प्रकार पूजा करने पर भी देवता आप पर प्रसन्न नहीं होते, तब देवताओं की पूजा करने से क्या लाभ ?

चारुदत्त—मित्र ! ऐसा मत कहो, गृहवासियों का यह दैनिक नियम है। × × × ×

विदूषक—अजी, मैं नहीं जाऊँगा। × × × × इसलिए मेंढक के लोभी कालसर्प के मुख में चूहे के समान गिर कर मैं बँध जाऊँगा। तब तुम यहाँ बैठे बैठे क्या करोगे ?

चारुदत्त—अच्छा, तब तक ठहरिये, मैं सायंकालीन जपादि ('समाधि') से निवृत्त हो लूँ।

चारुदत्त—मित्र ! जपादि कर चुका। अतएव, अब जाओ और मातृ-देवियो को बलि चढा आओ।

विदूषक—जी, मैं नही जाऊँगा।

चारुदत्त—अहो ! बडा दुख है। × × × ×"

('मृच्छ०')

चारुदत्त ने इसके बाद पुन निर्धनता के परिणामो का कथन किया है जो उसके मनोबल की टूटती अवस्था की विज्ञप्ति करता है जिसका उल्लेख अभी ऊपर हो चुका है।

विदूषक द्वारा पहली बार के अनुरोध का उल्लघन किये जाने पर चारुदत्त का यह कथन कि 'अच्छा, तब तक ठहरिए, मैं समाधि से निवृत्त हो लूं', निरर्थक एव अनावश्यक प्रतीत होता है। गृह-देवो की पूजा के बाद सन्ध्याकालीन जपादि के लिए विदूषक को रोक लेना और जपादि की समाप्ति के बाद पुन वही अनुरोध दुहराना—यह सब अनाहूत, व्यर्थ की भरती का तथा नाटकीय प्रभाव किंवा व्यापार की दृष्टि से अतीव अलस एव लचर दिखाई पडता है। यदि इसमे कोई तथ्य उभार मे आता है, तो केवल यह कि विदूषक चारुदत्त का मुंह लगू है और चारुदत्त सर्वथा अशक्त तथा निस्तेज।

चारु०' मे ऐसी बात नही है। वहाँ गणिका के चारुदत्त के पक्ष द्वार के निकट जाकर स्थित हो जाने के बाद, पहली बार ही चारुदत्त ने मैत्रेय को 'आदेश' दिया है (स्मरण रखें, 'अनुरोध' नही किया है) कि वह चौराहे पर जाकर मानेश्वरी आदि शक्तियो को बलि चढा आए[1] और नायक की तनिक-सी डाँट पर ही, विदूषक (रदनिका के साथ) जाने के लिए तैयार हो गया है।

(१०) मातृदेवियो की पूजा करने के बाद जब रदनिका और मैत्रेय वापस लौटते हैं, उसके पहले ही, पार्श्व-द्वार खुलने के साथ, दीपक बुझा कर, वसन्तसेना चारुदत्त के भवन मे प्रविष्ट हो गई थी और उसी थोडे समय मे चारुदत्त ने, रदनिका के भ्रम मे, उससे कुछ बातें कही थी जबकि रदनिका तथा मैत्रेय घर के भीतर लौट आते हैं। इस प्रसग के वर्णन मे 'चारु०' और 'मृच्छ०' मे एक महत्त्व का अन्तर आ पडा है, चारुदत्त के छोटे पुत्र रोहसेन को लेकर प्रथम मे रोहसेन का उल्लेख नही है और द्वितीय म रोहसेन का उल्लेख है

---

१ 'वयस्य ! समाप्तजपोऽस्मि। तत् साम्प्रत गच्छ, मातृभ्या बलिमुपहर।" ('मृच्छ०')—यहाँ 'अनुरोध' है।

"मैत्रय ! गच्छ, चतुष्पथे बलिमुपहर मातृभ्य।" ('चारु०')—यहाँ आदेश है।

जबकि दोनो मे दासी रदनिका के भ्रम से गणिका वसन्तसेना को चारुदत्त-द्वारा अपना सुगन्धित उत्तरीय सौंपा जा रहा है और उसे अन्त पुर के भीतर प्रवेश करने के लिए कहा जा रहा है। दोनो नाटको के प्रस्तुतांश निकट के परीक्षण-हेतु नीचे उद्धृत किये गए हैं।

(क) "नायक —भद्रे ! वृत देवकार्यम्। [भद्रे ! क्या आपने देवकार्य पूरा किया ?]

गणिका—(आत्मगतम्) परिजणत्ति म सद्दावेदि। भोदु रक्खिदम्हि। [(स्वगत) मुझे परिचारिका समझ कर बुला रहे है। जो हो, मेरी रक्षा हुई है।]

नायक —मारुताभिलाषी प्रदोष । तद् गृह्यतां प्रावारकम्। [सध्यासमय ठडी हवा बह रही है, अत उत्तरीय पकडो।]

गणिका—(प्रावारक गृहीत्वा सहर्षमात्मगतम्) अणुदासीण जोव्वण से पडवासगधो सूएदि। [(सहर्ष उत्तरीय ग्रहण करके) इस वस्त्र की सुगध सूचित करती है कि इसका यौवन काल उदासीन नही है।]

नायक —रदनिके ! प्रवेश्यतामभ्यन्तरचतु शालम्। [रदनिके ! इस वस्त्र को अन्त पुर की चतु शाला मे रख आओ।]

गणिका—(आत्मगतम्) अभाइणी अह अब्भन्तरप्पवेसस्स। [(स्वगत) मैं अन्त पुर मे प्रवेश की अनधिकारिणी हूँ।]

नायक —किमिदानी न प्रविशसि ? [क्यो अब भी भीतर नही जा रही हो ?]

गणिका—(आत्मगतम्) इदाणि अह किं भणिस्स। [(स्वगत) मैं इस समय क्या कहूँगी ?]

नायक —रदनिके ! किं विलम्बसे ? [रदनिके ! क्यो विलब कर रही हो ?]

चेटी—भट्टिदारअ ! इअ म्हि [भर्तृदारक ! मैं यहाँ हूँ।]

—'चारुदत्त'।

(ख) 'चारु०—(वसन्तसेनामुद्दिश्य) रदनिके ! मारुताभिलाषी प्रदोषसमयशीतार्तो रोहसेन । तत प्रवेश्यतामभ्यन्तरमयम् । अनेन प्रावारकेण छादयैनम्। (इति प्रावारक प्रयच्छति।) [(वसन्तसेना के प्रति) रदनिके ! वायु सेवन का अभिलाषी रोहसेन सायकालीन शीत वायु से पीडित है।

अतएव, इसे भीतर ले जाओ और इस उत्तरीय से इसे ढक दो। (उत्तरीय देता है।)]

वसन्त०—(स्वगतम्) कथं परिजणो त्ति मं अवगच्छदि। (प्रावारकं गृहीत्वा समाघ्राय च स्वगतं सस्पृहम्।) अम्महे! जादीकुसुमवासिदो पावारओ। अणुदासीणं से जोव्वणं पडिभासेदि। [(स्वगत) क्या वे मुझे अपना परिजन समझते हैं? (उत्तरीय लेकर और सूँघ कर) अहो! मालती-कुसुम से सौरभित यह उत्तरीय है। इसका यौवन अभी उदासीन नहीं है।]

चारु०—ननु रदनिके! रोहसेनं गृहीत्वाऽभ्यन्तरं प्रविश। [ऐ रदनिके! रोहसेन को लेकर भीतर चली जाओ।]

वसन्त०—(स्वगतम्) अमादणी क्खु अहं तुम्हे अब्भन्तरस्स। [मैं अभागिनी तुम्हारे घर के भीतर प्रवेश करने की अधिकारिणी नहीं हूँ।]

चारु०—ननु रदनिके! प्रतिवचनमपि नास्ति। कष्टम्।

यदा तु भाग्यक्षयपीडितां दशां नरः कृतान्तोपहितां प्रपद्यते।
तदाऽस्य मित्राण्यपि यान्त्यमित्रतां चिरानुरक्तोऽपि विरज्यते जनः॥

[ऐ रदनिके! उत्तर भी नहीं देती हो। महान् कष्ट है! दैववशात् मनुष्य का भाग्य जब क्षयग्रस्त हो जाता है, तब उसके परम मित्र भी शत्रु बन जाते हैं और चिर-काल का अनुरागी व्यक्ति भी विरक्त हो जाता है।]

विदू०—(रदनिकामुपसृत्य) भो इअं सा रदणिआ [(रदनिका के समीप जाकर) आर्य! रदनिका तो यह है।]"—'मृच्छकटिक'।

प्रो० देवधर ने 'चारु०' के प्रस्तुत प्रसंग की तीव्र आलोचना की है। उनकी टिप्पणियों का सारांश यों दिया जा सकता है : "यहां कलात्मक दृष्टि से एक महान् प्रमाद हुआ है क्योंकि वसन्तसेना चारुदत्त के इस प्रश्न का उत्तर नहीं देती कि क्या तुमने देव-कार्य सम्पन्न किया? चारुदत्त भी उत्तर की चिन्ता नहीं करता, वह प्रश्न दुहराता नहीं है। वह अपना उत्तरीय रदनिका को प्रदान करता है क्योंकि सन्ध्या-काल अत्यन्त शीतल है। शायद रचयिता का उद्देश्य ऐसा करने में रहा हो, नायक की परिचारकों के ऊपर उदारता का प्रदर्शन। लेकिन, तब चारुदत्त उत्तरीय को घर के भीतर ले जाने के लिए क्यों कहता है? अथवा क्या वह उसे ही घर के भीतर चला जाने का आदेश देता है? किन्तु, वैसी अवस्था में तब 'प्रवेशय' जैसी प्रेरणार्थक क्रिया का प्रयोग कैसे उचित होगा? 'मृच्छ०' में इस प्रकार की असंगति नहीं है। वहाँ रोहसेन का उल्लेख है और उत्तरीय में ढक कर रोहसेन को भीतर ले जाने

के लिए कहा गया है। 'भावनाभिलाषी प्रदोषमय' पद में भी वही असंगति है। 'सन्ध्या पवन की अभिलाषी है', यह कैसी खींच तान से लगा वाक्य है।"१

देवधर की पहली तर्कना है कि वसन्तसेना का उत्तर नहीं देना और चारुदत्त का प्रश्न के उत्तर के विषय में चिन्ता नहीं करना कलात्मक प्रमाद है। इस तर्कना का प्रतिवाद अत्यन्त आसान है 'वसन्तसेना क्या उत्तर देती ? चारुदत्त तो उसे रदनिका समझ रहा है। पुन चारुदत्त उस प्रश्न के उत्तर के लिए इतना चिन्तित ही क्यों होवे ? साधारण व्यवहारमें हम अपने स्वजन परिजनों से छोटी-छोटी बातें पूछते-कहते हैं और उनके उत्तर की विशेष चिन्ता नहीं कर, अपने काम में लगे वढ़ जाते हैं। चारुदत्त को विश्वास है कि उसकी आज्ञा का पालन अवश्य हुआ होगा, हम देख ही चुके हैं (विदूषक के संबंध में) कि वह अपनी आज्ञा का उल्लंघन सहन नहीं कर सकता। वह 'मृच्छ०' के नायक के समान दीनदयनीय तो नहीं है।'

देवधर की दूसरी तर्कना यह है कि चारुदत्त के अपना उत्तरीय वसन्तसेना को प्रदान करने में उसकी उदारता अथवा कृपालुता प्रदर्शित हो सकती है, किन्तु उस उत्तरीय को अन्त पुर के भीतर ले जाने के लिए कहने में क्या संगति होगी ? इस तर्कना का समाधान यों किया जा सकता है 'चारुदत्त सचमुच अपने परिजनों के प्रति उदार एवं दयालु है यद्यपि वह उन्हें इतनी स्वाधीनता नहीं प्रदान करता कि वे उसकी आज्ञा की अवमानना कर सकें। सन्ध्या का पवन शीतल है और वह वसन्तसेना को, रदनिका की भ्रान्ति में, वह उत्तरीय इसी हेतु देता है कि वह पवन के संघात से अपने अङ्गों को बचा सके। 'प्रवेश्यता" प्रेरणार्थक क्रियापद का प्रयोग अवश्य चिन्त्य है और इसे रचयिता के भाषा विषयक स्खलनों में गृहीत किया जा सकता है।'

देवधर ने प्रस्तुत प्रसंग में रोहसेन के उल्लेख का अनुमोदन किया है और यह प्रतिपादित करते हुए कि 'चारु०' 'मृच्छ०' का संक्षिप्त रूपान्तर है, बताया है कि रोहसेन का उल्लेख करना असावधानी से रूपान्तरकार भूल गया है। इस संबंध में विचारणीय एक तथ्य है जिसकी ओर देवधर का ध्यान आकर्षित नहीं हो सका है। प्रस्तावना की समाप्ति के अनन्तर 'मृच्छ०' में जहाँ विदूषक कहता है कि चूर्णवृद्ध ने यह सौरभित उत्तरीय देव कार्य सम्पादित करने वाले चारुदत्त को देने के लिए उससे निर्देश किया है, वहाँ उसी समय चारुदत्त और रदनिका प्रवेश कर रहे हैं—"तत प्रविशति यथानिर्दिष्टश्चारुदत्तो

---

१ C R. Devadhar 'Plays Ascribed To Bhas, Their Authenticity And Merits' (1927) पृष्ठ २७–२८

रदनिका च"। यहाँ रोहसेन को लेकर चारुदत्त के प्रवेश करने का कथन नहीं है। फिर उसके बाद सम्पूर्ण अङ्क मे रोहसेन की कोई चर्चा नहीं आई है। चारुदत्त स्वय उस रात मे वसन्तसेना को उसके घर पहुँचाने चला गया है और इस बात का कहीं कोई उल्लेख नहीं है कि रोहसेन को अन्त पुर के भीतर किसीने पहुँचाया अथवा नहीं। दूसरी बात यह है कि 'मृच्छ०' मे चारुदत्त गृह देवों की पूजा करने के अनन्तर सायकालीन जपादि भी सम्पन्न करता है। अतएव, पूजा, जपादि सम्पादित करने के प्रकरण मे शिशु रोहसेन अवश्य ही बाधक सिद्ध होगा। ऐसी अवस्था मे रोहसेन का उल्लेख और उसे उत्तरीय मे ढक कर भीतर ले जाने का कथन, दोनो ही अवाछनीय एव अनावश्यक समझे जाएँगे।

देवधर की तीसरी शङ्का "मारुताभिलाषी प्रदोषसमय" के सम्बन्ध मे है। 'प्रदोष-वेला वायु की अभिलाषिणी है' इससे सीधी व्यजना यह निकलती है कि सध्या के समय हवा बह रही है और इस अर्थ की निष्पत्ति मे कोई खींच तान नहीं लक्षित होती। "गङ्गायां घोष." मे लक्ष्यार्थ का पाठ पढ़ने वाले साहित्य समीक्षकों अथवा साहित्यानुरागियो के लिए यहाँ दप्रस्तुत अर्थ को ग्रहण करने मे कोई कठिनाई नहीं होती। देवधर ने "मारुताभिलाषी प्रदोषसमय" से यह अर्थ ग्रहण किया है कि सन्ध्या को तेज हवा बहने की सम्भावना है जब कि नाटककार की विवक्षा है कि सन्ध्या को तेज हवा बह रही है।* 'मृच्छ०' की कतिपय प्रतिलिपियों मे भी 'मारुताभिलाषी प्रदोष-समय." पाठ मिलता है जिसे देवधर ने स्वय स्वीकार किया है।

देवधर की पहली टिप्पणी कि वसतसेना के "कृत देवकार्यम्" प्रश्न का उत्तर नहीं देने के साथ ही, चारुदत्त भी अपनी जिज्ञासा का उत्तर पाने की चिन्ता नहीं करता, एक अन्य उलटी दृष्टि से विचारणीय है। मैं समझता

---

* देवधर की तर्कना यह है—"The meaning of मारुताभिलाषी प्रदोषसमय will be literales the evening desires bre-zes—i e, the evening is likly to be breezy ' What unusual twisting is involved in such on interpretation ,"—वही, पृ० २८।

काले जैसे कतिपय मान्य पण्डितो ने भी ऐसा ही मन्त्र ग्रहण किया है। किन्तु मेरी समझ मे "मारुताभिलाषी" का सम्भावना मूलक अर्थ नहीं ग्रहण कर, यही अर्थ ग्राह्य होना चाहिए कि 'सन्ध्या समय हवा बह रही है।' सामान्य बोल चाल मे ऐसी प्रत्यक्ष व्यञ्जना देखी जाती है। किसी को ताबूल खाते देखकर, हम प्राय- कह देते हैं कि वह ताबूल का शौकीन अथवा अनुरागी है।

हैं, चारुदत्त यहाँ अपने प्रश्न का उत्तर पाने का आग्रह नहीं कर, अपनी सहृदय मनस्विता का ही परिचय दे रहा है। 'मृच्छ०' के चारुदत्त में यह सत्त्वशीलता है ही नहीं। प्रश्न करके उत्तर की प्रतीक्षा नहीं करने और बात में आगे बढ़ जाने की उम्मीद तो उनसे की ही नहीं जा सकती, उल्टे, उनके यह कहने पर कि रदनिके! रोहसेन को लेकर भीतर जाओ, जब वसंतसेना कुछ नहीं बोलती, तब वह उनसे उत्तर ('प्रतिवचन') की अपेक्षा करता है और उत्तर नहीं मिलने पर अपने 'भाग्यक्षय' का रोना रोता है—'यदा तु भाग्यक्षयपीडितां दशां नरः" इत्यादि। वास्तविकता यह है कि 'मृच्छ०' में नायक को अत्यन्त दीन, दुर्बल तथा विषण्ण बना दिया गया है जो अपने परिजनों के प्रत्येक वास्तविक अथवा काल्पनिक स्खलन (Lapse) को अपनी नवोत्पन्न दरिद्रता का ही परिणाम समझता है।

(११) वसंतसेना का परिचय चारुदत्त को प्राप्त होने के संबंध में भी 'चारु०' और 'मृच्छ०' में थोड़ा अंतर है। 'चारु०' में यह परिचय वसंतसेना ने स्वयं दिया है उस समय जब विदूषक राजश्याल संस्थानक की धमकियाँ चारुदत्त को सुना रहा है। 'मृच्छ० में विदूषक ने चारुदत्त के यह पूछने पर कि यह दूसरी स्त्री कौन है, वसंतसेना का परिचय उसे दिया है और उसके कुछ देर बाद शकार की धमकियाँ सुनाई हैं। देवधर ने इस बात को लेकर भी 'मृच्छ०' की श्रेष्ठता प्रमाणित की है। यहाँ भी उनकी यही टिप्पणी है कि 'चारु०' में चारुदत्त के "इयमिदानीं का" प्रश्न का उत्तर न तो रदनिका-द्वारा और न विदूषक द्वारा दिया गया है।[1] वस्तुतः प्रत्येक प्रश्न में उत्तर की माँग करने में न कला की रक्षा होगी और न नाटकीयता की। चारुदत्त कहता है—"अभी यह महिला यहाँ कौन है जिसे मैंने अज्ञानता-वश अपना वस्त्र दे दिया है? इसे ओढ़ कर यह शरत्कालीन मेघ से आच्छन्न चन्द्रमा की रेखा की नाईं शोभा दे रही है।"[2] इसके बाद ही, गणिका के स्वल्प स्वगत-भाषण के बाद, विदूषक ने चारुदत्त से निवेदन किया है—'हे चारुदत्त! राजश्याल संस्थानक वस्त्र से ढके सिर से वंदना करके आप से निवेदन करते हैं कि नटी स्त्री वेश्या-पुत्री वसंतसेना को हम लोग बलात्कार करके लाये थे। वह प्रचुर सुवर्णालंकार से युक्त होकर आपके महल में प्रवेश कर गई है। उसे कल प्रातःकाल ही अपने घर से निकाल दीजिये।" विदूषक की इस विज्ञापना के झटिति बाद, वसंतसेना ने दो छोटे वाक्यों के स्वगत के साथ कहा है,

---

१ वही, पृष्ठ २८ २९.

२ "अविज्ञातप्रयुक्तेन धर्षिता मम वाससा।
सवृता शरदभ्रेण चन्द्रलेखेव शोभते॥" ('चारु०', १।२७)

"आर्य ! शरणागत हूँ।" इस पर, चारुदत्त का कथन है—"न भेतव्य न भेतव्य । वसन्तसेनेयं ।" (डरो मत, डरो मत । क्या यह वसनसेना है ?)

मै समझता हूँ, वसन्तसेना का प्रस्तुत परिचय अधिक नाटकीय होने के कारण, अधिक कलात्मक कहा जाएगा । 'मृच्छ०' मे "इयमपरा का" प्रश्न के उत्तर मे विदूषक द्वारा जो तत्काल वसनसेना का प्रत्यक्ष परिचय बताया गया है वह नाटकीयता मे महिन नही है । पुन 'चारु०' मे नायक के प्रश्न का प्रत्यक्ष उत्तर न देकर, विदूषक ने जो यह कहा है कि युवती वेश्या-दारिका वसतसेना उसके भवन मे प्रविष्ट हो गई है, वह चारुदत्त की जिज्ञासा का परोक्ष उत्तर ही होगा । और, उसी समय वसतसेना का यह तत्काल कथन कि "अय्य ! सरणागदह्मि ।" (आर्य ! शरणागत हूँ ।) नितान्त नाटकीय हो गया है तथा उसके भयभीत मनोभाव की भी विज्ञप्ति करता है । उसके बाद नायक का आश्वासन, 'डरो मत, डरो मत । क्या यह वसतसेना है ?" उसके चरित्र के दाक्षिण्य पर मधुर उन्मीलक किरणें प्रक्षिप्त करता है । 'मृच्छ' मे न तो वसनसेना के भयभीत भाव का ही और न चारुदत्त की इस श्रेष्ट एव दाक्षिण्य पूर्ण प्रतिक्रिया का ही कोई विद्योतन हुआ है ।

(१२) अलकार चारुदत्त के पास रख छोडने के बाद, वसतसेना 'मृच्छ०' मे चारुदत्त के द्वारा स्वय अपने घर तक पहुँचाई गई है—"भवति वसन्तसेने ! इद भवत्या गृहम् , प्रविशतु भवती ।" 'चारु०' मे यह कार्य नायक के आदेश पर विदूषक-द्वारा सम्पन्न हुआ है—"भवति । राजमार्गे निष्क्रमण क्रियताम् । सुखम् , अनुगच्छाम भवतीम् ।" वसतसेना के घर तक पहुँचने का कोई पृथक् उल्लेख 'चारु०' मे उपलब्ध नही, सामाजिक समझ लेते हैं कि वह अपने घर उस चन्द्रिका धौत रजनी मे अवश्य पहुँच गई होगी ।[१] अतएव 'चारु०' मे अनेक छोटे छोटे विवरण जहाँ सकेतित कर दिये गए हैं, वहाँ 'मृच्छ०' मे उनके स्पष्ट उल्लेख से भावकों की कल्पना के अभ्यास के लिए कुछ भी अवकाश नही दिया गया है । नाट्य कला की आत्मा पूर्ण अनावरण नही चाहती, वह चाहती है रसिक प्रवर विहारी की ललितागना का "छिप्यो छबीलो मुहु लसै नीलें अचर-चीर" वाला शील । 'मृच्छ०' मे नाट्य कला का छबीला मुख-

---

१ काले ने भी, जो 'मृच्छ०' की श्रेष्ठता स्वीकार करते हैं, यह स्वीकार किया है—"In his anxiety to show off Charudutta as a gallant lover, attentive, to his mistress, our poet has exhibited on the stage a rather improbable journey between the residences of the two lovers, this cannot be said to a happy improvement." (मृच्छकटिकम्' Introduction, पृ० ३८) ।

सौन्दर्य एक दम उघार दिया गया है जब कि 'चारु०' में वह व्यंजना के नीले, पतले अंचल में इस प्रकार छिपाया गया है कि कल्पना शील भावक उसे तत्काल देख लेता और मुग्ध हो जाता है।

द्वितीय अङ्क

दूसरे अङ्क में वसंतसेना के चारुदत्त विषयक अनुराग की झलकें, जुआरी संवाहक को वसंतसेना द्वारा दी जाने वाली सहायता तथा उसका संन्यास-ग्रहण और वसंतसेना के भृत्य कर्णपूरक-द्वारा वसंतसेना के दुष्ट हाथी के घातक आक्रमण से उस बौद्ध संन्यासी की रक्षा—ये तथ्य दोनों नाटकों में समान भाव से सन्निविष्ट हुए हैं।

(१) लेकिन, जुआरियों के अध्यक्ष माथुर तथा दर्दुरक इत्यादि अन्य जुआरियों द्वारा जुआ खेले जाने, माथुर द्वारा संवाहक के पीछे तथा सताये जाने और दर्दुरक की सहायता से संवाहक के भाग निकलने का नितान्त सजीव एवं जीवन्त वर्णन 'मृच्छ०' की अपनी विशेषता है जिसका 'चारु०' में एकान्त अभाव है 'चारु०' में संवाहक केवल मौखिक निवेदन करता है कि वह जुए में दस स्वर्ण-मुद्राएँ हार गया है और विजेता द्यूत सेवी उससे ये मुद्राएँ माँग रहा है। संवाहक के निवेदन से हमें केवल आभास मिलता है कि वह जुआरियों के सरदार से सताया जा सकता है, लेकिन उस सताये जाने का प्रकृत चित्र 'चारु०' में अंकित नहीं है। पुनः वसंतसेना की चेटी वहाँ 'सूचना' देती है कि उसने आवश्यक द्रव्य विजयी जुआरी को संवाहक की ओर से दे दिया है, किन्तु 'मृच्छ०' में यह सूच्य नहीं, वस्तुतः प्रदर्शित हुआ है।

(२) वैसे ही, कर्णपूरक ने उस दुष्ट हाथी द्वारा आविर्भूत आतंक का सजीव वर्णन मृच्छ०' में किया है जब कि 'चारु०' में हाथी के उत्पात एवं आतंक का कोई संकेत नहीं है। 'मृच्छ०' का यह वर्णन, छोटा होने पर भी, स्तुत्य एवं स्पृहणीय है।

(३) 'चारु०' में कर्णपूरक को मिले सुरभित उत्तरीय से यह पता नहीं चलता कि वह वस्त्र उसे किसने दिया है और वसन्तसेना तथा चेटी प्रमाद से अनुमान कर ही चारुदत्त को पहचानती हैं। मृच्छ०' में उत्तरीय पर चारुदत्त का नाम अंकित है जिससे वसंतसेना तथा चेटी सद्य जान जाती है कि वह उत्तरीय चारुदत्त का, कर्णपूरक की वीरता के लिए, बौद्ध संन्यासी की प्राण-रक्षा के हेतु कृतज्ञता-ज्ञापन का प्रसाद है। 'मृच्छ०' में यह संन्यासी जुआरी संवाहक ही है जिसने अभी-अभी प्रव्रज्या ग्रहण कर ली है जबकि 'चारु०' से इस बात का स्पष्ट पता नहीं चलता।

सामायन मृच्छ०' का दूसरा अक 'चारु०' की तुलना मे श्रेष्ठ कहा जाएगा। यहाँ जो विस्तार दिखाई पडता है, वह अनावश्यक तथा कलात्मक सौष्ठव का अपघातक नहीं है। 'चारु०' मे कम-से कम जुआरियो वाले दृश्य का अभाव खटकता है।

तृतीय और चतुर्थ अक

तीसरे अक मे दोनो नाटको की समानता है। सधिच्छेद वाला प्रसग दोनो का एक ही है।

(१) चौथे अक के सम्बन्ध मे 'चारु०' और मृच्छ०' मे महत्त्व का भेद[१] है. 'मृच्छ०' मे वसन्तसेना के महल के वैभव एव ऐश्वर्य का वर्णन जिसका केवल एक क्षीण सकेत 'चारु०' मे उपलब्ध है। 'चारु०' का सज्जलक 'मृच्छ०' में शर्विलक है। सज्जलक ने प्रात काल गणिका के महल मे आकर उच्च स्वर मे मदनिका को बुलाया है— 'यावच्छब्दापयामि। मदनिके !'' और मदनिका उसकी आवाज पहचान कर बाहर उसके पास गई है। 'मृच्छ०' में शर्विलक वसतसेना के महल मे प्रवेश करता है और मदनिका की चिता करता है कि तत्काल मदनिका वहा उपस्थित हो जाती है। अतएव, 'चारु० का प्रस्तुत स्थल कला-दृष्टि से अनुचित प्रतीत होता है क्योंकि सज्जलक को उच्च स्वर से अपनी प्रेयसी का आह्वान करना पडा है। ऐसा जान पडता है जैसे 'चारु०' का रचयिता सज्जलक के प्रति पूर्ण शील का निर्वाह करना नही चाहता था। वसत-सेना के यह निर्देश करने पर कि वह उस अलकार को चारुदत्त को वापस दे दे

---

१ काले ने एक अतर यह उल्लिखित किया है कि 'चारुदत्त' मे विदूषक के चले जाने के बाद सज्जलक वसन्तसेना के सामने उपस्थित हुआ है जबकि 'मृच्छकटिक' मे वह विदूषक के आने से पहले ही वसन्तसेना से मिल चुका है। इस परिवर्तन को काले 'अत्यन्त बुद्धिमत्ता-पूर्ण मानते हैं, इस आधार पर कि इस बात मे अधिक 'काव्यात्मक आकर्षण' वर्तमान है कि सज्जलक से वसन-सेना को अपने धरोहर आभूषणो के सबन्ध मे वास्तविक स्थिति का परिज्ञान हो गया है (वस्तुत वे आभूषण उसे मिल चुके हैं। और जब विदूषक बाद को मुक्तावली उसे प्रदान करता है तब वह अपने प्रियतम की उदारता से इतनी प्रभावित होती है कि वह तत्काल उसके पास अभिसार करने का निश्चय करती है। (द्रष्टव्य काले द्वारा सम्पादित 'मृच्छकटिकम्' की भूमिका, पृ०३८)

मैं काले की प्रस्तुत तर्कना मे कोई बडा बल नही देखता हूँ। अगले परिच्छेद मे मैंने अपनी बात पल्लवित की है।

जब सज्जलक ने वहाँ जाने से इनकार कर दिया, तब वसंतसेना ने कहा १ : "मै जानती हूँ कि आपने उनके घर मे चौर्य का साहस कर इस आभूषण को प्राप्त किया है, आपको उनके गुणों के साथ सहानुभूति दिखलानी चाहिए।" 'मृच्छ०' मे शर्विलक के शील की रक्षा हुई है। वहाँ वसंतसेना ने वह अलंकार स्वीकार करने मे कोई ननु नच नहीं किया है और व्यंग्यपूर्ण विनोद की भंगिमा मे कहा है "आर्य ! मेरा भी प्रति संदेश उनके पास लेते जाइए। आप मदनिका को ग्रहण करें। आर्य चारुदत्त ने कहा है कि जो कोई इस अलंकार को लौटाएगा, उसको मदनिका समर्पण कर दी जाय।"[२]

(२) शर्विलक के चरित्र के एक अन्य संबद्ध पार्श्व को भी 'मृच्छ०' मे सुन्दरता-पूर्वक उभारा गया है। शर्विलक के यह आश्वासन देने पर कि अलंकार की चोरी करते समय मैंने न किसी को मारा है, न घायल किया है, जब मदनिका कहती है कि 'प्रिय' कार्य हुआ ('पिअं'), तब शर्विलक को सन्देह हो जाता है कि मदनिका केवल ऊपर से उसके लिए अनुराग प्रकट करती है, किन्तु भीतर से वह अन्य (अर्थात् चारुदत्त) पर अनुरक्त है, और तब, वह नारियों की वंचना-वृत्ति की आवेशपूर्णभर्त्सना करता है और इस तथ्य की विज्ञापना करता है कि कामदेव ने यद्यपि उसके गुणों को विनष्ट कर दिया है (क्योंकि उसने यह चौर्य कार्य मदनिका की मुक्ति के निमित्त ही किया है" तथापि वह अपने मान की रक्षा करता है, उसे यह सह्य नहीं हो सकता कि मदनिका सामने उसे अपना वल्लभ बताए और हृदय से अन्य की अभिलाषा करे—

> "स्वरुस्नेहबद्धहृदयो हि करोम्यकार्यं
> सद्वृत्तपूर्वपुरुषेऽपि कुले प्रसूतः।
> रक्षामि मन्मथविपन्नगुणोऽपि मानं
> मित्रञ्च मां व्यपदिशस्यपरञ्च यासि॥"

("मृच्छ०" ४।९)

'चारु०' मे सज्जलक के चरित्र की इस किरण की आभा कहीं प्रस्फुटित नहीं हुई है।

(३) 'मृच्छ०' मे वसंतसेना ने शर्विलक-द्वारा प्रदत्त अपने आभूषण

---

१ "अहं जाणामि वस्स गेहे साहसं करिअ आणीदो अअं अलङ्कारो। वस्स गुणापि अणुकम्पेदु अय्यो।" ('चारु०')

२ "अहं अज्जचारुदत्तेण भणिदा' जो इमं अलङ्कारअं समप्पइस्सदि, तस्स तुए मदनिआ दादव्वा।" ('मृच्छ०')

को भी तथा विदूषक-द्वारा दी गई मुक्तावली को भी ग्रहण कर लिया है। 'चारु०' में गणिका ने विदूषक-द्वारा आनीत मुक्तावली तो ले ली है, लेकिन सज्जलक द्वारा आनीत अपने अलंकार मदनिका को ही उपहार दे दिये हैं—

"गणिका—(स्वैराभरणैर्मदनिकामलङ्कृत्य) आहदु अय्यो अय्याए सह पवहणं !"

(४) 'चारु०' और 'मृच्छ०' का सबसे महत्त्वमय अन्तर यह है कि 'चारु०' में राजनीतिक विप्लव के संकेतों का प्रायेण अभाव है जब कि 'मृच्छ०' की प्रतिपाद्य वस्तु की पीठिका पूरी राजनीतिक उथल पुथल तथा जन-सामान्य में व्याप्त तात्कालिक शासनसत्ता से गहरा असन्तोष है। तथापि, राजश्यालक शकार की उपस्थिति तथा उसके स्वच्छन्दतापूर्ण कृत्यों का सन्निवेश ऐसे तथ्य हैं जो 'चारु० के पाठकों को यह सोचने की प्रेरणा प्रदान करते हैं कि उसके रचयिता के मानस में राजनीतिक विप्लव के विचार अवश्य वर्तमान थे। गणिका के प्रेम को अधिकृत करने के लिए दरिद्र सार्थवाह-पुत्र चारुदत्त की समान प्रतिस्पर्धी राजा का अभिन्न सम्बन्धी करे, इससे यह व्यञ्जना तो निकलती ही है कि शासन-सत्ता का नैतिक धरातल नितान्त पतित हो गया था। शकार ने विदूषक से यह अनुरोध किया है कि वह उसकी ओर से "दरिद्रसार्थवाहकपुत्र" चारुदत्त से निवेदन करे कि वह (चारुदत्त) वेश्यापुत्री को शीघ्र प्रात अपने घर से निकाल दे जिससे उन दोनों के बीच दारुण क्षोभ नहीं उत्पन्न हो *'मा ताव तव अ मम अ दालुणो खोहो होदि त्ति।'* वसन्त-सेना के चारुदत्त विषयक अनुराग तथा शकार के प्रति घृणा के भाव को देखते हुए यह अनुमान किया जा सकता है कि भविष्य में चारुदत्त शकार के द्वारा सताया जा सकता है।

अर्थात्, यदि यह मान लिया जाय कि 'चारु०' अपने वर्तमान उपलब्ध रूप में अपूर्ण है (जो हमें मान्य भी है), तो यह अनुमान आसानी से किया जा सकता है कि नाटक की समाप्ति केवल प्रेम की सुखद परिणति में ही नहीं हो सकती, अपितु संस्थानक (शकार) जैसा प्रबल एवं दुष्ट प्रतिनायक के प्रतिरोध में वह दुःखद तथा क्लेशकर अनुभवों से समन्वित भी हो सकती है। प्रश्न उठता है, क्या नाटक के भीतर ऐसे संकेतपूर्ण उल्लेख वर्तमान हैं जिनसे यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि नाटककार ने उसे पूरा किया होगा अथवा उसे पूरा करना चाहता था और उसका वर्तमान रूप अपूर्ण है ? इस प्रश्न का उत्तर स्वीकारात्मक होगा। नीचे कतिपय ऐसे उल्लेख दिये जा रहे हैं।

(क) चारुदत्त कहता है : "पाप कर्म च यत् परैरपि कृतं तत्तस्य

मन्मान्यते ।" (दूसरों के द्वारा किया गया पापकर्म भी दरिद्र व्यक्ति के ऊपर आरोपित कर दिया जाता है ।)—१।६

इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि यह कथन शकार द्वारा की गई वसन्तसेना की हत्या तथा वह हत्या निर्दोष चारुदत्त के ऊपर आरोपित कर देने की ओर संकेत करना है ।

(ख) चारुदत्त ने पुन कहा है—"भाग्यक्रमेण हि धनानि पुनर्भवन्ति ।" (भाग्यचक्र के परिवर्तन से धन पुन हो जाता है ।)—१।५

(ग) चारुदत्त की चेटी को पकड कर, वसन्तसेना के भ्रम से शकार कहता है—'दाशीए पुत्तीए शीश दाव छिन्दिअ पच्छा मालइश्शं ।" (पहले इस दासी-पुत्री का सिर काटूंगा और पीछे इसे मार डालूंगा ।)

यह कथन शकार-द्वारा की गई वसन्तसेना की भावी हत्या की ओर संकेत करना समझा जा सकता है ।

(घ) स्वर्ण-भाण्ड के चोरी चले जाने पर चारुदत्त कहता है—

"क श्रद्धास्यति भूतार्थं सर्वो मा तुलयिष्यति ।
शङ्कनीया हि लोकेषु निष्प्रभावा दरिद्रता ॥'

(३।२५)

(सही बात पर कौन विश्वास करेगा ? सभी मुझे ही चोर बनायेंगे । दोषी न होने पर भी, प्रभाव का विनाश करनेवाली दरिद्रता के कारण मैं अपराधी ठहराया जाऊंगा ।)

चारुदत्त का यह कथन उस भावी घटना की ओर संकेत करता समझा जाना चाहिए जिसमें न्यायालय में वसन्तसेना के आभूषणों के आकस्मिक ढंग से विदूषक-द्वारा लाये जाने पर, यह समझ लिया गया कि चारुदत्त ने गणिका की हत्या कर, उसके अलंकारों को स्वायत्त कर लिया है ।

(ङ) संवाहक के इस अनुरोध का कि यदि वसन्तसेना अनुमति दे, तो वह अपनी कुशल समर्दन कला उसके परिवार के व्यक्तियों को सिखा दे, जब गणिका ने शिष्टता-पूर्वक प्रत्याख्यान किया, तब संवाहक का कथन है—"को हि णाम अप्पणा किद पच्चुवआरेण विणासेदि ।" (कौन व्यक्ति अपने किये उपकार को प्रत्युपकार स्वीकार कर विनष्ट करना चाहेगा ?)

यहाँ अनुमान किया जा सकता है कि यह कथन सत्ता-परिवर्तन के भावी नियोजन में संवाहक द्वारा सम्पन्न भूमिका की ओर संकेत करता है ।

(च) स्वर्ण-भाण्ड का अपहरण कर लेने के बाद, सज्जलक आत्म निरीक्षण की मुद्रा में कहता है

'धिगस्तु खलु दारिद्र्यमनिर्वेद च यौवनम् ।
यदिद दारुण कर्म निन्दामि च करोमि च ॥"

(मेरी दरिद्रता और इस तृप्तिरहित यौवन को धिक्कार है क्योंकि मैं इस दारुण कर्म की निन्दा भी करता हूँ और सम्पादित भी करता हूँ।)–३।१४

इस कथन से यह ध्वनि निकलती है कि सज्जलक अपने यौवन का भविष्य में अधिक समय एवं समीचीन उपयोग करने की इस मानसिक छटपटाहट को पूरा करने का उद्योग करेगा।' मृच्छ०' में सज्जलक ही शर्विलक बना है और सत्ता विप्लव में उसका अवदान महत्त्वपूर्ण रहा है।

(छ) वसन्तसेना ने जब मदनिका को सौंप दिया है, तब कृतज्ञताभिभूत होकर, सज्जलक कहता है 'कदा खल्वस्या प्रतिकर्त्तव्य भविष्यति।'' (कब इसके उपकारों का बदला चुकाऊँगा ?) बालक के वध के बाद सत्तारूढ आर्यक द्वारा कुशावती नगरी का राज्य चारुदत्त को सौंपे जाने की सूचना शर्विलक ने ही चारुदत्त को दी है और और फिर उसने चारुदत्त से 'आर्या वसन्तसेना' को अपनी वधू बना लेने का अनुरोध किया है। 'मृच्छ० के इस प्रसंग में शर्विलक-द्वारा किये गए "प्रतिकर्त्तव्य" की ओर सज्जलक का प्रस्तुत कथन संकेत करता समझा जा सकता है।

(ज) चौथे अंक के अन्त में वसन्तसेना ने स्पष्टरूपेण चारुदत्त के पास अभिसार करने की योजना बनाई है' 'एहि इमं अलङ्कारं गणिहअ अय्यचारुदत्तं अभिसरिस्सामो।" (इस अलंकार को पहन कर, आर्य चारुदत्त के पास अभिसार करूँगी।)

वसन्तसेना का यह कथन स्पष्ट विनापित करता है कि उसने उस रात को सज धज कर चारुदत्त के पास अवश्य अभिसार किया होगा।

'चारु०' के इन उपर्युक्त उल्लेखों से यह मानने में कोई आपत्ति नहीं होगी कि यह रचना चौथे अङ्क से बड़ी होगी और आगे आनी कथा-वस्तु के मुख्य बिन्दु राज्य सत्ता के क्रान्तिकारी परिवर्तन तथा उसके साथ साथ, चारुदत्त के भाग्यचक्र के आरोहण के साथ सम्बन्धित होंगे, और इस फलागम की सम्प्राप्ति की मध्यवर्ती कड़ियाँ होंगी, चारुदत्त एवं वसन्तसेना के ऊपर अप्रत्याशित विपत्तियों का अवघटन तथा संवाहक एवं सज्जलक द्वारा वीररसपूर्ण साहस का सम्पादन एवं उनका नायक नायिका के प्रति अपने 'प्रति-कर्त्तव्य' का परिपालन।

(झ) 'चारु०' का एक अन्य उल्लेख भी महत्त्वपूर्ण है और वह है "प्रवहण" अर्थात् बैलगाड़ियों का। चेटी ने आकर वसन्तसेना से कहा है कि दरवाजे पर कमलध्वज से अङ्कित सम्प्रानक की गाड़ी आई हुई है तथा उसे अलङ्कृत होकर गजशाल के पास रमणार्थ जाना चाहिए। दूसरी बार वसन्त-सेना ने मदनिका को स्वयं सज्जलक के साथ जाने के लिए गाड़ी पर चढ़ने

का अनुरोध किया है। इससे प्रतीत होता है कि वसन्तसेना ने चारुदत्त के पास अभिसरण करने के हेतु स्वय भी प्रवहण का उपयोग किया होगा क्योंकि मध्यवर्गीय शिष्ट-सम्भ्रान्त समुदाय शायद उस काल मे सचार एव परिवहन के निमित्त बैलगाडियो का उपयोग करता था। 'मृच्छ०' मे आगे जो कथा वस्तु का विकास हुआ है, उसके जटिलीकरण मे शकटो का विशेष महत्त्व है। 'चारु०' मे भी जो घटनाक्रम आगे बढा होगा, उसमे इन प्रवहणो का महत्त्वपूर्ण अवदान अकित किया गया होगा, ऐसा अनुमान करने के विरुद्ध कोई तर्कना उपस्थित नही की जा सकती।

प्रो० देवधर ने यह स्वीकार करते हुए कि यदि 'चारु०' पूर्ण किया गया होता (पूर्ण करने का प्रश्न तब उत्पन्न होता है जब यह मान लेते हैं कि यह वर्तमान रूप मे खण्डित है) तो उसके भावी विकास की रेखाएँ बहुधा वही रहती जो 'मृच्छ०' मे उपलब्ध हैं, 'चारु०' के कतिपय बिन्दुओ एव तथ्यो के 'परित्याग' (Omissions) का निर्देश किया है और उनके प्रकाश मे यह प्रतिपादन किया है कि 'चारु०' अपने उपलब्ध रूप मे पूर्ण रचना है। उनके द्वारा निर्दिष्ट दो मुख्य 'परित्यागो पर विचार करना आवश्यक हो जाता है।

पहला परित्याग चेट स्थावरक से सम्बन्ध रखता है। देवधर का कथन है कि स्थावरक ने नाटक के समापन या परिणमन मे महत्त्व की भूमिकाएँ सम्पन्न की हैं (मृच्छ० मे), यथा—गाडी लेकर जाते समय वह मार्गावरोध के कारण चारुदत्त के उद्यान के दरवाजे के सामने रुक जाता है जिससे, प्रमाद से, वसन्तसेना शकार की गाडी पर ही चढ जाती है, उसने वसन्तसेना की हत्या करने के शकार के आदेश का उल्लघन कर दिया है और उसके फलस्वरूप बन्दी बना लिया गया है तथा मृत्यु के जुलूस से चारुदत्त को बचाने के निमित्त वह अपने बन्दीगृह की खिडकी से नीचे कूद पडा है।

इस 'परित्याग' के सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है कि चेट स्थावरक का सनिवेश 'चारु०' मे आगे चल कर किसी बिन्दु पर हो सकता है जैसा देवधर ने भी स्वीकार किया है। पुन, यह आवश्यक नही कि शकार के गाडीवान ने 'चारु०' के फलागम मे इतनी ही महत्त्वपूर्ण भूमिका सम्पन्न की हो जैसी उसने 'मृच्छ०' मे की है। प्रथम अक मे देखा गया है कि शकार का मित्र विट यद्यपि वसन्तसेना को पकडने मे शकार की सहायता करने पर आमद्ध है, तथापि चारुदत्त के प्रति उसकी भावनाएँ आदर एव सम्मान की हैं। 'मृच्छ०' मे तो इस विट ने भी वसन्तसेना की हत्या करने से इनकार कर दिया है। ऐसी अवस्था मे चारुदत्त की प्राण रक्षा करने मे विट का भी

कर्तृत्व 'चारु०' के अगले अंको में रहा होगा। अतएव, चेट स्थावरक को महत्त्व न देकर वहाँ विट को ही महत्त्व मिला होगा, ऐसा अनुमान असंगत नहीं कहा जाएगा।

दूसरा 'परित्याग' रोहसेन से सम्बन्धित है। देवधर की तर्कना है कि वसन्तसेना के आभूषणों ने 'मृच्छ०' के न्यायालय वाले अंक में घातक भूमिका सम्पन्न की है और ये आभूषण जब एक बार चुरा लिये गए तथा शर्विलक द्वारा वसन्तसेना को लौटा दिये गए, तब वे, रोहसेनवाले प्रसंग को हटा लेने के बाद, चारुदत्त' के गृह में फिर क्यों कर जा सकेंगे? इस तर्क का एक सीधा समाधान यह होगा कि 'चारु०' में भी रोहसेन उस अंक में प्रकट हो सकता था या हुआ होगा जहाँ वसन्तसेना ने चारुदत्त के भवन में प्रियमिलन हेतु अभिसार किया होगा। वस्तुतः विचार करें तो स्पष्ट प्रतिभासित हो जाता है कि रोहसेन जैसे छोटी आयु के शिशु के-प्रवेश के लिए अभिसार-विषयक अंक को छोड़कर उससे पूर्व कहीं उपयुक्त अवसर अथवा अवकाश वर्तमान नहीं समझा जाना चाहिए। हम पहले दिखा चुके हैं कि प्रथम अंक में जहाँ चारुदत्त पूजा-जपादि के सम्पादन में संलग्न है, वहाँ रोहसेन की उपस्थिति केवल बाधक सिद्ध होगी और आरम्भ में, 'मृच्छ०' में, रदनिका और चारुदत्त के साथ-साथ रङ्गमञ्च पर प्रवेश करने के समय रोहसेन उनके साथ दिखाई नहीं पड़ता। फिर, दूसरे तीसरे और चौथे अंकों में 'मृच्छ०' में भी, रोहसेन कहीं दिखाई नहीं पड़ा है। वह केवल छठे अंक ही सोने की गाड़ी के लिए रोता मचलता प्रकट होता है। अतएव, यदि पहले अंक में रोहसेन 'चारु०' में प्रविष्ट नहीं होता, तो इससे यह अर्थ कदापि नहीं ग्रहण किया जा सकता कि आगे वाले प्रसङ्गों में भी वह वहाँ प्रकटित नहीं हुआ होगा। देवधर ऐसा ही सोचते दिखाई पड़ते हैं। चारुदत्त के अधिकार में वसन्तसेना के अलंकार पुनः कैसे जाएँगे, इस तर्कना का प्रतिपादन करते हुए वे पूछते हैं—"How is this possible in the absence of Rohasena? इसका उत्तर होगा—'This will be made possible by introducing Rohasena, later on at the appropriate time and place.'"।

देवधर तर्कनाओं का समाहार करते हुए कहते हैं—'मैंने इस प्रकार दिखाया है कि 'चारु०' के परित्याग इतने गम्भीर हैं कि नाटक को पूर्ण करना एकान्त असम्भव है जब तक कि यह न मान लिया जाय कि नाटककार ने घटनाओं के अस्त-व्यस्त जमघट तथा प्रभावविहीन नाटकीय अवरोधों की योजना कर इसे पूरा कर लिया होगा। × × × × यह

निश्चित है कि रचयिता इस नाटक को एक हल्के फुलके ढंग का मनोरंजक सुखान्तकी का रूप देना चाहता था, और नाटक की समाप्ति जहाँ उसने हमें लाकर छोड़ दिया है, कितनी ही उद्वेगकर क्यों न हो, रचयिता को इस बात का सन्तोष है कि उसने इतना तो सकेतित कर ही दिया है कि नायक और नायिका परस्पर मिला करते हैं तथा आनन्द की घड़ियाँ बिताया करते हैं।"[१]

जहाँ तक आकस्मिक घटनाओं के अस्त व्यस्त सगुफन का प्रश्न है, यह माना ही जाएगा कि घटनाओं के उपन्यास के अभाव में 'चारु०' पूरा नहीं होता, लेकिन यह उपन्यास 'अस्त व्यस्त जमघट' का ही स्वरूप ग्रहण करता, ऐसा कहना उचित नहीं जान पड़ता। केवल चेट स्थावरक और रोहसेन के प्रथम चार अंकों में "चारु०" का रचयिता घटना विन्यास में असफल हो जाता, सन्तुलित समीक्षा नहीं कही जाएगी। वास्तव में, घटनाओं का सकुल अवघटन तथा कथा-वस्तु का जटिलतर बनता जाना—यह 'मृच्छ०' में भी तो चौथे अंक के उपरान्त ही घटित हुआ है।

जहाँ तक नाटककार की 'चारु०' को एक हल्के ढंग का मनोरंजक सुखान्तकी बनाने की योजना का प्रश्न है, इससे सहमत होना सम्भव नहीं है। नायक की दीनता एवं रसिकता तथा शकार की क्रूरता एवं दुष्टता का जो चित्रण चार अंकों में सम्पन्न हुआ है, उसकी एकान्त परिणति केवल मनोरंजन-पूर्ण सुखान्तकी में अभीप्सित थी——ऐसा सोचना भी असगत होगा। देवधर ने इसी प्रसंग में चेटी के इस कथन पर कि "बड़ी प्यारी बात है, यह अमृत से भरा नाटक जैसा सिद्ध हुआ' यह टिप्पणी की है कि नाटककार इस बात से प्रसन्न है कि वसन्तसेना को उसके अलंकार वापस मिल गए। चेटी की इस

१ "I have thus shown that the omissions in the Car are of so serious a character that it is a sheer impossibility to complete the play unless on the supposition that the author might have rounded it off by a confused medley of incident and ineffectual dramatic contretemps × × × What then shall we say? Surely enough, the author was compelled to make of this play a pleasing comedy of a lighter tone, and however tantalizing the end where he leaves us, he has the satisfaction to more than suggest that the hero and heroine meet and have their hours of pleasure"— Plays Ascribed To Bhasa, their Authenticity And Merits,' (1927), पृ० ३१-३६।

अभ्युक्ति के ठीक पहले गणिका ने कहा है कि "देखो, जागती हुई मैंने यह स्वप्न देखा है।" देवधर इस कथन से भी यही अभिप्राय ग्रहण करते हैं कि वसन्तसेना को अपने अलङ्कारों के मिल जाने से प्रसन्नता हुई।

मैं समझता हूँ, ये दोनों कथन मदनिका के सज्जलक के साथ उसकी वधू के रूप में निष्क्रान्त हो जाने के तात्कालिक संदर्भ में किये गए हैं और, इसी लिए, इनका संबंध उस अप्रत्याशित आनंददायिनी घटना से ही जोड़ा जाना चाहिए। वसन्तसेना तथा चेटी दोनों इस परिणति से प्रसन्न एवं संतुष्ट हैं कि मदनिका दासीत्व से मुक्त होकर अब अपने प्रेमी की वैध वधू बन गई। वसन्तसेना के भावों में उसी समय सम्मान-मूलक परिवर्तन घटित हो गया जब उसने मदनिका को अलङ्कृत कर, उसे सज्जलक को सौंप दिया। तब उसने कहा—'आर्य! अब 'आर्या' के साथ गाड़ी पर चढ़ें।" मदनिका ने 'आर्या' संबोधन का प्रतिवाद किया—"आर्ये! यह क्या?" वसन्तसेना ने तब कहा—"ऐसी बात मत कहो। तुम अब 'आर्या' बन गई हो। आर्य ग्रहण करें।' पुनः वसंतसेना ने तो सज्जलक से पाये हुए अपने आभूषण नव-वधू मदनिका को ही प्रदान कर दिये हैं—उन्हीं से उसका अलङ्करण किया है—"स्वैराभरणैर्मदनिकामलङ्कृत्य।" यह सोचना भी संगत नहीं होगा कि वसंतसेना ने इन्हीं अलङ्कारों को रोहसेन की स्वर्ण शकटिका के लिए दिया होगा, वह वैभवशालिनी वेश्या थी और उसके पास स्वर्णाभूषणों की कमी नहीं थी। तो, जब उसने अपने उन बहुमूल्य अलङ्कारों से मदनिका का अलङ्करण कर दिया, तब यह अर्थ ग्रहण करना कि "पश्य, जागर्या मया स्वप्नो दृष्टः एवम्" वाले उसके कथन में 'स्वप्न-दर्शन' अलङ्कारों की प्राप्ति का सूचक है, वसंतसेना के प्रति अन्याय होगा। वैसे ही, चेटी का यह कथन कि "प्रियं मे अमृताङ्कनाटकं संवृत्तम्" उन अलंकारों की प्राप्ति से संबंधित नहीं हो सकता क्योंकि वह तो अपनी स्वामिनी के भावों का प्रतिध्वनन करने वाली परिचारिका मात्र है।

अतएव, 'जाग्रत-स्वप्न' तथा 'अमृताङ्क नाटक' वाले कथन मदनिका के वधू जीवन में प्रवेश वाली सुखद आकस्मिक परिणति से प्रसूत, उदार-चित्ता स्वामिनी सहचरी के हार्दिक उद्‌गार समझे जाने चाहिए।[1]

---

[1] "गणिका—(स्वैराभरणैर्मदनिकामलङ्कृत्य) आरोहत्वयि आर्यया सह प्रवहणम्।

मदनिका—अज्जुके! किमेतत्।

गणिका—(मदनिकां गृहीत्वा सज्जलकाय प्रयच्छति।) मा खलु मा खल्वेवं मन्त्रयित्वा। आर्या खल्विदानीं संवृत्ता। गृह्णात्वार्यः।" ('चारु०')।

इसी प्रकार, चेटी के इस कथन पर कि "अज्जुके ! तथा। एतत् पुनरभिसारिकासहायभूत दुर्दिनमुपस्थितम्" (अभिसारिकाओ का सहायक यह मेघाच्छन्न दुर्दिन उपस्थित हो गया) वसतसेना द्वारा किये गए इस कथन का कि 'हताशे ! मा खलु वधय" (अभागिन ! इस बात को अधिक मत बढाओ) देवधर ने यह अर्थ लगाया है कि यह वाक्य नाटककार की इस इच्छा का द्योतक है कि अब नाटक को आगे न बढाया जाय अपितु यही समाप्त कर दिया जाय[१]। कहने की आवश्यकता नही कि यह अर्थ अत्यन्त चमत्कार-पूर्ण एव व्यजना की सीमाओ का अनावश्यक आस्फालन है जैसा स्वय देवधर ने भी महसूस किया है, और इसे स्वीकार नही किया जा सकता। अभी अभी तो वसतसेना ने चारुदत्त के पास अभिसार करने का चेटी से प्रस्ताव किया है—"एहीममलड्कार गृहीत्वायचारुदत्तमभिसरिप्याव।" और, अब "मा खलु वधय" कह कर, वह उस प्रस्ताव का प्रत्याख्यान कैसे करेगी ? 'मा खलु वधय" के कथन से वसतसेना ने चेटी से यह अनुरोध किया है कि वह उस 'दुर्दिन' की चर्चा अधिक न करे क्योकि प्रिय समागम का उसका सकल्प अडिग, अविचलायमान है।

देवधर की स्थापना है कि 'चारु०' मे चरित्रो की अवधारणा मे अपकर्षमूलक परिवर्तन हो गया है। उनका कथन है कि चारुदत्त, विट, विदूषक तथा वसतसेना, सभी पात्रों के चरित्रो मे निरतर वहाँ ह्रास अथवा अपकर्ष घटित हुआ है। चारुदत्त के सबध मे "गुणरसज्ञस्य तु पुरुषस्य व्यसन दारुणतर मा प्रतिभाति" तथा "क्षीणा ममार्था प्रणयिक्रियासु इत्यादि" कथनो की आलोचना की गई है। प्रथम को 'अस्पष्ट' ('Obscure') बताया गया है और दूसरे को नायक की आत्म-विकल्पना समझा गया है तथा उसे 'असस्कृत रुचि' ('crudity of taste') का सूचक कहा गया है।[२] जिसे देवधर अस्पष्ट बताते हैं, उससे हमने यह अर्थ ध्वनित समझा है कि चारुदत्त अपने को गुणज्ञ एव रसज्ञ समझता है और यह महसूस करता है कि धन के अभाव मे उसकी गुणग्राहकता एव रसाभ्यास का उपयोग खडित हो जाएगा। जिसे देवधर

---

१ " 'Fie ! For shame, do not lengthen out' can, Therefoe, be properly understood to imply the author's desire to have done with the play. Some might think this to be possibly too ingenious an interpretation to be correct, but I on my part am tempted to suggest it as the probable drift of the dialogue "—वही, पृ० ३६।

२ वही, पृ० ३७।

आत्म-विकल्पना मूलक असंस्कृत रुचि समझते हैं, उसे मैं दानशील मनस्वी नायक का आत्म-निरीक्षण मानने की सलाह दूँगा जो भाग्य क्षय के कारण, यह अनुभव करने लगा है कि शायद अब प्रणयिजनो तथा याचको का उपकार करने मे वह समय न हो। चारुदत्त के इस कथन में रुचि का असंस्कार देखना उस पूर्वाग्रहशील मनोवृत्ति का परिणाम है जिसने यह मान कर 'चारु०' की समीक्षा आरम्भ की है कि 'चारु०' का प्रत्येक संदर्भ 'मृच्छ०' से निम्न-कोटि का है।

विट तथा विदूषक के सबध मे देवधर का कथन है कि 'चारु०' मे पहला दुर्विनीत, दुश्चरित्र तथा अहम्मन्यतापूर्ण बनाया गया है और विदूषक एकदम मूर्ख अशिष्ट तथा भोडी बुद्धि का। विट के सबध मे देवधर कहते हैं—"चारु" मे विट एक निर्लज्ज वासना-लोलुप व्यक्ति बन गया है जो अपनी डीग हाक कर वसन्तसेना को डरवाना चाहता है। जब रदनिका चारुदत्त के घर से निकलती है, यह विट ही जो उसे कायरता पूर्ण ढग से परेशान करना और उसे वसनसेना बतला कर शकार को धोखा देना चाहता है। जब शकार उसकी आवाज पहचान कर कहता है कि वह वसतसेना नही हो सकती तब विट उसका यह समाधान प्रस्तुत करता है कि उस चतुर युवती ने उसे धोखा देने के लिए अपनी आवाज जान बूझ कर बदल ली है। 'मृच्छ०' मे विट का जो अतीव सुसस्कृत एव वीरत्व मडित स्वरूप निर्मित हुआ है, उसकी तुलना मे यह रूप कितना पतित, कायरता-पूर्ण तथा गर्वीला है। मृच्छ०' मे विट केवल शिक्षित एव सामाजिक सस्कार से पूर्ण व्यक्ति ही नही है, अपितु वह उच्च एव उदात्त चरित्र वाला भी है। आरम से ही, वह गलत परिस्थितियो मे पड गया है और अन्ततोगत्वा वह अपने क्रूर सहचर का साथ छोड देता है तथा नायक का समर्थन कर अपने जीवन को सकटापन्न बना देता है।"[१]

देवधर की यह टिप्पणी असन्तुलित एव पूर्वाग्रहयुक्त है 'चारु०' और 'मृच्छ०' मे प्राप्त सबद्ध उल्लेख परस्पर मिलाकर पढने से ज्ञात होता है कि विट के दोनो नाटको मे प्राप्त कथन प्राय समान है, एक-ही हैं। यह सही है कि 'चारु०' मे उसने वसन्तसेना को डराने के लिए अपने क्रूर स्वभाव तथा क्रूर कृत्यों का व्याख्यान किया है (१।१३-१४)। रदनिका को उसी ने चारुदत्त के भवन से निकलते समय पकडा और परेशान किया है यह भी तथ्य है। किन्तु इतने से ही 'वह वासना-लोलुप' ('Shameless voluptuary') बन गया है, ऐसा कहना सगत नहीं है। चार अकों की सीमा के भीतर जो भी गुण

१ वही पृ० ३८

'मृच्छ०' के विट में दृष्टिगोचर होते वे सभी 'चारु०' के विट में भी उपलब्ध हैं। वसन्तसेना के अपने आभूषण चाहने के उपरान्त प्रश्न करने पर, 'मृच्छ०' का विट कहता है "शान्तम् भवति। वसन्तसेने ! न पुष्पमोषमर्हति उद्यानलता। तत् कृतमलङ्कारणे।" (ऐसा मत कहो वसन्तसेने, उद्यान-वल्लरी फूलों की चोरी के योग्य नहीं। इन अलङ्कार लेकर क्या करोगे ?) 'चारु०' का विट भी ठीक यही कहता है "न पुष्पमोक्षणमर्हति लता कृतमलङ्कारेण।" 'मृच्छ' में रदनिका अवश्य शकार द्वारा पकड़ी गई है किन्तु रदनिका के स्वरों के सम्बन्ध में जैसी उक्ति वहाँ विट ने की है वैसी ही उक्ति 'चारु०' के विट ने भी। 'मृच्छ०' में विट का कथन है—

इयं रङ्गप्रवेशेन कलानां चोपशिक्षया।
वञ्चनापण्डितत्वेन स्वरनैपुण्यमाश्रिता ॥" (१।४२)

(नाट्यशाला में जा-जाकर नृत्यगीतादिक कलाओं के अभ्यास से यह वसन्तसेना छलने की प्रक्रिया में निपुण बन गई है और इसीलिए, अब इसने स्वर-परिवर्तन करना भी सीख लिया है।)

'चारु०' में भी विट का कथन यही है—

'एषा रङ्गप्रवेशेन कलानां चैव शिक्षया।
स्वरान्तरेण दक्षा हि व्याहर्तुं तम् मुच्यताम् ॥" (१।२२)

मृच्छ०' में विट ने विदूषक से प्रार्थना की है कि रदनिका वाली घटना की चर्चा आर्य चारुदत्त से न की जाय "यदीमं वृत्तान्तमार्य्यचारुदत्तस्य व्याहरिष्यसि।" ठीक वैसे ही, 'चारु०' में भी विट ने यही प्रार्थना की है: 'महाब्राह्मण ! वयमर्थे सार्थवाहपुत्रस्य न वक्तव्यम्।" शकार की मूर्खता का जैसा कथन 'मृच्छ०' में विट द्वारा किया गया है, वैसा ही कथन 'चारु०' में भी विट ने किया है। बल्कि, वह शकार को 'पुरुष रूपी पशु का एक नया अवतार' बता रहा है—

अभिनयति वचांसि सर्वगात्रै
किमपि किमप्यनवस्थितार्थमाह।
अनुचितगतिरप्रगल्भवाक्यः
पुरुषमयस्य पशोर्नवावतारः ॥" (१।१६)

(सभी अङ्गों के सञ्चालन द्वारा यह मनोगत भाव को प्रकट कर रहा है तथा अस्पष्टता से नाना अभिप्राय कुछ कुछ प्रकट कर रहा है। यह पुरुषरूपी जीव का एक नया अवतार है जिसका आचरण अनुचित तथा वाक्यरचना विदग्धता-शून्य है।)

स्पष्ट है कि 'चारु०' मे विट ने शकार के अभद्र व्यवहार तथा भोंडी वाक् शैली की आलोचना की है। अर्थात् वह स्वय शिष्टता, संस्कार तथा वचन वैदग्ध्य का समर्थक है। वसन्तसेना को वेश्याओं के अनुकूल आचरण की शिक्षा देने मे उसने 'मृच्छ०' मे अवश्य कुछ नवीन तर्कनाएँ की हैं जिनकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं, किन्तु तर्कना की पद्धति दोनो की एक ही है। देवधर का कथन है कि 'मृच्छ०' का विट आरम्भ से ही गलत परिस्थिति मे पड गया है और अन्तत वह मित्र का साथ त्याग कर आर्यक की सहायता करता और अपना जीवन सकट मे डालता है। लेकिन, 'चारु०' के विट ने अन्त मे शकार का साथ नहीं छोडा, इसके लिए क्या प्रमाण है ? उसने राज्य विप्लव मे किसी भी प्रकार कोई भूमिका सम्पन्न नही की, इसे क्योंकर कहा जा सकता है, जब 'चारु०' की वर्तमान प्रति अपूर्णावस्था मे प्राप्त है ? जैसा मैं ऊपर कह आया हूँ, 'चारु०' अवश्य पूर्ण किया गया होगा और उसमे शकार के साथियो ने उस क्रूर राजश्यालक का साथ अवश्य छोड दिया होगा क्योंकि 'चारु०' की पूर्णत्व-प्राप्ति की रेखाएँ प्राय 'मृच्छ०' के ही सदृश रही होंगी। जब 'चारु०' का विट शकार की 'अनुचित गति' (अनैतिक आचरण) से असन्तुष्ट है और उसे 'पशु का नवीन अवतार' बनाता है, तब यह आसानी से कहा जा सकता है कि वह शकार का साहचर्य आरम्भ से ही गलत परिस्थिति ((false position) मे पड गया है जैसा 'मृच्छ०' के विट के विषय मे कहा गया है।

पुन यदि 'चारु०' के विट ने वसतसेना को डरवाया है, तो यह पूर्णत स्वाभाविक एव प्रसग सिद्ध व्यवहार है। आखिर, वह शकार के साथ घूम ही क्यो रहा है, शकार का सहचर ही क्यो बना है ? इसीलिए तो कि वह शकार के दुष्कृत्यो मे थोडी बहुत सहायता करे ? रदनिका को उसने यह जानते पकडा है कि वह वसन्तसेना नहीं है, किन्तु उसका वास्तविक अभिप्राय है, शकार को ललचाना और उद्विग्न करना। वह तो जानता ही है कि शकार 'पशोर्नवावतार' है अत: उसे थोडा भी चचल बना देना और फलागम के मनस्-*शिखर तक पहुँचा कर पुन नीचे गिरा देना—यही तो उसका प्रकृत उद्देश्य* है रदनिका का पकडने मे। उसने रदनिका के साथ कोई अन्य अभद्र व्यवहार तो किया नहीं। वह शकार का अनन्य मित्र है, अतएव कभी सहायता करता है, और कभी चिढाता-ललचाता है, किन्तु भीतर से तो समझता ही है कि शकार दुष्ट है, 'पशोर्नवावतार' है।

फिर, एक अन्य दृष्टि भी विचारणीय है, तब उसके चरित्र को मापने के लिए शिक्षा, संस्कार तथा उदात्त व्यवहार का माप-दण्ड क्यो खोजा जाय ?

और यदि 'मृच्छ०' मे विट सचमुच इस तुला पर तौले जाने पर विशुद्ध स्वर्ण सिद्ध हुआ है जैसा देवधर का कथन है, तो मैं यही जवाब दूँगा कि वहाँ विट मिथ्या तथा अवास्तविक (false and unrealistic) बन गया समझा जाना चाहिए।

विदूषक के निरा मूर्ख तथा भीरु बन जाने के सम्बन्ध मे देवधर के तर्क महत्त्वहीन हैं और उनकी विवेचना हमे यहाँ इष्ट नही है।

वसतसेना के चरित्र मे अपकर्ष के दो उदाहरण देवधर ने प्रस्तुत किये हैं। वसतसेना पकड लिये जाने पर मृच्छ०' मे पूछती है। "आर्य। अस्मात् किमप्य-लकरण तकयते।" (आय आप मुझसे अलकार की कामना करते हैं ?) किन्तु 'चारु०' मे वह विट से पूछती है। 'आय। अस्माज्जनात् किमिष्यते शरीर वाथवालकारो वा" (आय ! मुझसे क्या आप मेरा शरीर चाहते हैं अथवा अलकार ?)

दूसरा एतादृश स्थल है जहाँ सज्जलक वसन्तसेना के अलकार चुरा कर, मदनिका को देने वसन्तसेना के भवन मे आता है। 'मृच्छ०' मे वसन्तसेना उन दोनो को एकत्र देखकर अनुमान करती है कि वह मदनिका को दासीत्व से मुक्त कराना चाहता है। "तया तकयामि एव स जन एनामिच्छति अभुजिष्या कर्तुम्।" किन्तु, 'चारु०' मे वसन्तसेना अनुमान करती है कि वह मुझे पैसो से खरीदना चाहता है। "तकयाम्येष य कोऽपि क्रयेण मा याचते।"

देवधर का कथन है कि उपर्युद्धृत अभ्युक्तियो मे नायिका के आत्म सम्मान एव चरित्र गौरव मे अपकर्ष घटित हुआ है। मैं समझता हूँ देवधर के निर्देश इन स्थलो के सबध मे अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह सही है[१] कि इन कथनो मे वसतसेना के गौरव की क्षति पहुँची है लेकिन तब, वे वसन्तसेना को उच्चतर धरातल पर प्रतिष्ठित करने की अनात कामना से अनुप्राणित प्रतीत होते हैं। वे एक गणिका को पूर्णतया परिष्कृत एव आदर्शीकृत (Idealised) कर देना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि वेश्या दारिका होने पर भी, वसन्तसेना कभी यह न सोचने पाए कि कोई आगन्तुक उसे पैसो से खरीदने के लिए उसकी चेटी से बातें चला सकता है जबकि 'वेशवास' का यही आचरण है। किन्तु, विचारणीय यह है कि सम्बद्ध वाक्य वसन्तसेना का अनुमान है, मानसिक तर्क है, उसने यह वाक्य किसी दूसरे से, अपनी अन्तरङ्ग चेटी से भी, कहा नही है उसे आशका होती है कि वह आगन्तुक, अपरचित व्यक्ति शायद उसके शरीर

---

१. "There he is a man not only of education and social refinement but also of great nobility of character" (Devadhar)

विक्रय के लिए ही मदनिका से लल्लो-चप्पो कर रहा हो—ऐसी बात तो निश्चित ही नहीं कि वह शरीर विक्रय की भावना को तनिक समय के लिए भी अपने भीतर प्रश्रय दे रही है क्योंकि इसका प्रभूत प्रमाण हमें पहले ही मिल चुका है। चेटी के राजश्याल के प्रवहण-विषयक सूचना देने पर वह उसे डाट चुकी है, 'अरी अविनीते ! दूर हट जा।" (अवेहि अविणीदे !') ऐसी अवस्था में यदि उसने शर्विलक के मदनिका को बुलाने पर उत्पन्न अपनी मानसिक तर्कना पर से पर्दा हटा लिया जब वह एकान्त अकेली है, तो इसमें क्या आपत्ति-जनक बात है ? देवधर कहते हैं कि विशेषतया नायिका के मुख से ऐसा भाव रखना जिससे वेश्यालय की गंध आती हो, नितान्त अनुचित है।[1] वस्तुतः नाटक का प्राय पूरा पूर्वार्ध वेश्यालय की गंध से आपूर्ण है। नाटक यथार्थवादी प्रकृति के लिए ही संस्कृत साहित्य में प्रसिद्ध है और, गणिका के जीवन, वैभव तथा आचरण के वस्तु निष्ठ चित्रण भी उस यथार्थवादी प्रकृति के पोषण में सहयोगी बने हैं। अतएव, वेश्यालय की गंध की तर्कना संगत नहीं है जब तक एक गणिका को शुरू से ही बिल्कुल आदर्शीकृत न कर दिया जाय, अथवा कर्मणा तथा परिवेश से एक पूर्ण पवित्र गृह-देवी न मान लिया जाय।

वैसे ही, वसन्तसेना का विट से यह पूछना कि आप मेरा शरीर अथवा आभूषण, क्या चाहते है उनके गौरव का अपकर्षक नहीं समझा जाएगा। वह शकार और विट से पीडा की जा रही है, और है वह कुल-पुत्र जन के शील स्त्री परितोष से जीवित रहनेवाली वेश्या—'आर्य, कुलपुत्रजनस्य शीलपरितोषोपजीविनी गणिका खल्वहम्।" वसन्तसेना द्वारा दिया गया यह आत्म-परिचय उसके अतीव सन्त्रस्त मनोभाव का विज्ञापन करता है। यह सत्य-कथन है, किन्तु वैसा जैसा साधारण परिस्थिति में प्राय. नहीं कहा जाता। इसी सन्त्रस्त मनोदशा में वसन्तसेना ने पूछा है—"आप मेरा शरीर चाहते हैं अथवा अलंकार, विट के यह उत्तर देने पर कि उन्हें अलंकार की आवश्यकता नहीं, यह पुन नम्रता-पूर्वक निवेदन करती है, मैं आप की बातों का उल्लंघन करके अपने आप को सन्तापित करना नहीं चाहती। "अह खल्विदानीमात्मान न सन्तापयेयम्।" जब शकार कहता है कि मैं कामासक्त हूं, तुम मेरी कामना करो, तब वह केवल यही कहती है, शान्त हो, 'शान्तं पापम्।" लेकिन, मृच्छ०' में वसन्तसेना ने न तो अपना उक्त ढंग का परिचय ही दिया है और न इतनी

---

1. "Especially in the mouth of the heroine it is extremely indelicate to put a sentiment that smells of the brothel."
(Devadhar)

सन्त्रस्त दिखाई पडती है। वहाँ जब शकार कहता है कि 'मुझ देवपुरुष, मनुष्य वासुदेव की कामना करो, तब वह रोषपूर्वक उसे फटकारती है। शान्त ! शान्त ! दूर हटो, अनार्य वाणी बोल रहे हो—'शान्त शान्तम्। अपेहि अनार्यं मन्त्रयसि।"

अतएव, वास्तविकता यह है कि 'मृच्छ०' मे वसन्तसेना का इतना उत्कर्ष-मूलक आदर्शीकरण' सम्पन्न है कि वह 'चारु०' की वसन्तसेना के समान कभी घबराई नही है और इसीलिए, दुर्बल तथा अशोभन समझे जाने वाले उक्त प्रकार के कथन उसके मुख मे रखे नहीं गए। किन्तु, 'चारु०' मे अपनी क्षणिक दुर्बलताओ से मण्डित होने के कारण ही, वह अधिक यथार्थ एव आकर्षक बन गई है। चारुदत्त के प्रति अपनी निष्ठा युक्त आसक्ति एव राजकीय किंवा सामन्तीय सम्मान वैभव के प्रति गहरी अनासक्ति मे, अन्यथा, वह 'मृच्छ०' की वसन्तसेना से कथमपि निम्नकोटीय नही है। जहाँ तक उदारता का प्रश्न है, 'चारु०' की वसन्तसेना वहीं आगे निकल जाती है। वहाँ उसने सज्जलक-द्वारा आनीत अपने आभूषणो से मदनिका का शृगार किया है और सज्जलक को उसे सौंप कर एक विचित्र प्रकार के कल्पनातीत आनन्द का अनुभव किया है जो उसे दिवास्वप्न जैसा लुभावना प्रतीत हुआ, और जो उसकी अनुगामिनी परिचारिका द्वारा अधिक स्पष्ट शब्दावली मे, 'समुनाक नाटक" कहकर परिभाषित किया गया है।

अतएव, अब हमारा वक्तव्य यह होगा कि दो-चार स्फुट प्रसगो अथवा उल्लेखो को लेकर, यह स्थापना करना कि 'चारु०' म चरित्रो की सामान्य अवधारणा मे बहुत बडा परिवतन हुआ है जो सर्वदैव अपकर्ष-मूलक है, उचित एव तथ्य सगत नही समझा जाएगा।[१]

अतएव, अब हम ऊपर किये गए विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर निम्न निष्कर्ष निकाल सकते हैं —

(१) 'मृच्छ०' मे विस्तार अधिक हुआ है, लेकिन 'चारु०' के कतिपय स्थल भी 'मृच्छ०' की तुलना मे अधिक विशद एव विस्तीर्ण हैं।

(२) 'चारु०' का प्रथम अक 'मृच्छ०' की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ एव सुन्दर है जब कि मृच्छ०' का दूसरा अक अपनी नवीन उद्भावनाओं के कारण 'चारु०' की अपेक्षा रोचक एव कलात्मक सौष्ठव से समन्वित है।

---

१ "A minute comparison of she two plays will reveal that there is a considerable change in the conception of characters and that in the Cār the change is always for the worse" (Devadhar

(३) तीसरा अंक दोनों नाटकों में प्रायः समान है।

(४) चौथे अंक में 'मृच्छ०' में शर्विलक के चरित्र को नई सौन्दर्य किरणों से मण्डित किया गया है, इस प्रकार का स्पष्ट प्रयास 'चारु०' में परिलक्षित नहीं होता। 'मृच्छ०' में प्राप्त वसन्तसेना के महल का वैभव भी आकर्षक तथा स्पृहणीय है। (यह विस्तार प्रकाम्य एवं सोद्देश्य है, यह मैंने अन्यत्र प्रदर्शित किया है।)

किन्तु, वसन्तसेना 'चारु०' में यहाँ 'मृच्छ०' की अपेक्षा अधिक उदार चित्रित की गई है मदनिका को 'आर्या' और 'वधू' बना देने में वह "अमृताङ्क नाटक" की आभ्यन्तरिक अनुभूति से गद्गद् हो उठी है।

(५) अनेक सदर्भ 'चारु०' में 'मृच्छ०' की अपेक्षा कलात्मक सौष्ठव से परिपूर्ण है। 'मृच्छ०' का विस्तार अनेक स्थलों में व्यर्थ, अनाटूत एवं कलात्मक सौन्दर्य का संघातक बन गया है जब कि चारु० में एक व्यञ्जनापूर्ण कसावट उभर आई है जो सहृदयों के निकट अधिक मनोहारी सिद्ध होती है।

(६) चारुदत्त का चरित्र 'चारु०' में अधिक व्यवस्थित, अधिक मनस्विता-पूर्ण चित्रित हुआ है जब कि 'मृच्छ०' में वह सर्वथा दीन-दयनीय बन गया है।

(७) 'चारु०' में वसन्तसेना अधिक यथार्थवादी रंगों में चित्रित हुई है जब कि 'मृच्छ०' में उसके चरित्र का उत्कर्ष-मूलक आदर्शीकरण सम्पन्न हुआ है।

(८) कतिपय बिम्ब एवं कथन 'मृच्छ०' में श्रेष्ठ हुए हैं और कतिपय चित्र एवं पंक्तियाँ 'चारु०' में श्रेष्ठ हुई हैं।

इस सम्बन्ध में यह कह देना आवश्यक है कि पण्डितों ने प्रायः 'चारु०' पर "अपरिमार्जित एवं आकस्मिकतया संक्षिप्त" होने का आरोप लगाया है और 'मृच्छ' में तुलनात्मक दृष्टि से पूर्ण एवं परिष्कृत अभिव्यक्तियों ('finished and amplified turns of expression') के दर्शन किये हैं। अपनी इस टिप्पणी के अनुमोदन में उन्होंने दोनों नाटकों से समानान्तर अवतरण उद्धृत किये हैं और यह प्रदर्शित किया है कि 'मृच्छ०' की पंक्तियाँ श्रेष्ठतर हैं।[1] इस सम्बन्ध

---

१ द्रष्टव्य 'मृच्छकटिकम्' (काले सम्पादित), नवीन संस्करण, १९६२, भूमिका, पृ० ३६–३७।

काले ने निम्न समानान्तर पंक्तियाँ उद्धृत की हैं —

१—भाव, नष्टा नष्टा। (चारु०)

भाव भाव, क्लीबस्यन्धकारे मापराशिप्रविष्टेव मसीगुटिका दृश्यमानैव प्रनष्टा वसन्तसेना। (मृच्छ०)

मे मेरा निवेदन है कि 'मृच्छ०' के कतिपय अवतरणो मे 'परिमार्जन' की बात तो स्वीकार की जा सकती है, लेकिन जब 'पूर्णतर' अभिव्यक्ति की बात कही जाती है, तब हमे बहुधा अनावश्यक विस्तार की गन्ध आती है । यह सही है कि कतिपय स्थलो मे 'मृच्छ०' का विस्तार स्पष्टता के लिए

२—शृणोमि गन्धं श्रवणाभ्याम् । अन्धकारपूरिताभ्यां नासापुटाभ्यां सुष्ठु न पश्यामि । (चारु०)
शृणोमि माल्यगन्धम् । अन्धकारपूरितया पुनर्नासिकया न सुव्यक्तं पश्यामि भूषणशब्दम् । (मृच्छ०)

३—स्वरान्तरेण दक्षा हि व्याहर्तुं तत्र मुच्यताम् । (चारु०)
वञ्चनापण्डितत्वेन स्वरनैपुण्यमाश्रिता । (मृच्छ०)

४—तव च मम च दारुण क्षोभो भवति । (चारु०)
मरणान्तिकं वैरं भविष्यति । (मृच्छ०)

५—वासपादपविनाशेन । (चारु०)
वासपादपविसंष्ठुलतया । (मृच्छ०)

६—तत सर्वो जनो भणति अहो चेटस्य कर्मेति । (चारु०)
तत आर्य साधु रे कर्णपूरक साधु इत्येतावन्मात्रं भणन्तो विषम-भराक्रान्तेव नौ एकत पर्यस्ता सकलोज्जयिन्यासीत् । (मृच्छ०)

७—उत्कण्ठितस्य हृदयानुगता सखीव । (चारु०)
उत्कण्ठितस्य हृदयानुगुणा वयस्या । (मृच्छ०)

८—यावदारभे कर्म । (चारु०)
तत्कस्मिन्नुद्देशे सन्धिमुत्पादयामि । (मृच्छ०)

९—नम वरदाय । नमो रात्रिगोचरेभ्यो देवेभ्य । (चारु०)
नमो वरदाय कुमारकार्त्तिकेयाय नम कनकशक्तये ब्रह्मण्यदेवाय देव-व्रताय नमो भास्करनन्दिने नमो योगाचार्याय । (मृच्छ०)

१०—शतसहस्रमूल्या । (चारु०)
चतु समुद्रसारभूता । (मृच्छ०)

११—कोऽप्युपचारोऽपि नैतया भणित । (चारु०)
अहो गणिकाया लोभोऽदक्षिणता च यतो न कथाऽपि कृताऽन्या । अनवधा स्नेहानुसारं भणित्वा निर्मर्यादमेव गृहीता रत्नावली । एतावत्या ऋद्धया न तयाऽहं भणित —आर्य मैत्रेय विश्रम्यताम् । मल्लकेन पानीयमपि पीत्वा गम्यतामिति । (मृच्छ०)

आवश्यक प्रतीत होता है, लेकिन यह भी उतना ही सही है कि कतिपय प्रसगों मे 'मृच्छ०' का विस्तार अलस, श्लथ तथा बिल्कुल व्यर्थ सिद्ध हुआ है और 'चारु०' की 'समास-शैली' अधिक सुदर एव आकर्षक प्रमाणित हुई है। डॉ० बेल्वल्कर ने ठीक ही कहा है "In some of these passages the palm of superiority undoubtedly belongs to Bhāsa, in others to Sudraka"

(द्रष्टव्य—"Proceedings and Transactions of the first oriental Conference, Poona", पृ० १९८)

---

(२)

'चारुदत्त' और 'मृच्छकटिक' का पारस्परिक संबंध

विगत परिच्छेद में हमने 'चारु०' और 'मृच्छ०' का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है, वर्तमान परिच्छेद में उनके पारस्परिक संबन्ध की छानबीन की जाएगी। विवेचन की पूर्णता एवं स्पष्टता के निमित्त प्रस्तुत प्रकरण को तीन भागों में विभाजित किया गया है, यथा—

(क) 'चारु० और 'मृच्छ०' के पृथक् अस्तित्व की स्वीकृति।

(ख) 'चारु०' की वर्तमान अपूर्णता।

(ग) 'चारु०' और 'मृच्छ' में आधार-आधेय सम्बन्ध का परीक्षण।

(क) 'चारु०' और 'मृच्छ०' की पृथकता की स्वीकृति

'चारु०' और 'मृच्छ०' में अत्यन्त गहरी समानता है, यह हम पहले दिखा चुके हैं। लेकिन, इससे यह नहीं कहा जा सकता कि ये दोनों कृतियाँ एक ही प्रतिभा की प्रसूति हैं। अलंकार-शास्त्रियों ने, यद्यपि ऐसे उल्लेख बहुत अधिक नहीं हैं, दोनों नाटकों का भिन्नशः उल्लेख किया है और उनकी पारस्परिक तुलना से भी यह प्रकट होता है कि उनमें से एक दूसरे पर आधारित होगा।

'काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति' में वामन ने तीन उदाहरण दिये हैं, यथा—

(१) "यासां बलिर्भवद्गृहदेहलीनां × × × (५।१।३)

(२) "व्यसनं हि नाम सोच्छ्वासं मरणम् (४।३।२३)

(३) "द्यूतं हि नाम पुरुषस्यासिंहासनं राज्यम्। (४।३।२३)

इनमें से प्रथम श्लोक 'चारु०' (१।२) और 'मृच्छ०' (१।९) दोनों में उपलब्ध है। दूसरा वाक्य 'मृच्छ०' में प्राप्त नहीं है, किन्तु 'चारु०' में यों द्रष्टव्य है—'दारिद्र्यं खलु नाम मनस्विनः पुरुषस्य सोच्छ्वासं मरणम्" और इसी वाक्य के बाद "यासां बलिर्भवति' वाला श्लोक आता है। तीसरा उद्धरण 'चारु०' में नहीं, 'मृच्छ०' में, द्वितीय अंक में, दर्दुरक के कथन रूप में उपलब्ध है जहाँ वह जूए की प्रशंसा करता है[1]।

अभिनवगुप्त ने नाट्यशास्त्र पर रचित अपनी प्रसिद्ध टीका 'नाट्यवेद-विवृति' में 'चारुदत्त' का 'रूपक' की कोटि में उल्लेख किया है, यथा—

---

[1] 'भो। द्यूतं हि नाम पुरुषस्य असिंहासनं राज्यम्। न गणयति पराभवं कुतश्चिद् हरति ददाति च नित्यमर्थजातम्। नृपतिरिव निकाममायदर्शी विभववता समुपास्यते जनेन ॥" (२।७)

"× × ×दैवबहुमानन्युत्पत्तये हि पुरुषकारोऽप्यफलस्तदभावोऽपि सफल प्रदर्शनीय । अतएव दरिद्रचारुदत्तादिरूपकाणि तादृषचाणि ।" (१०।१३)।

प्राच्य पाडुलिपियों के मद्रास स्थित पुस्तकालय(Mabras Oriental Manuscripts Library) म उपलब्ध 'शाकुन्तलाव्याख्या' की पाडुलिपि (R० No२७७८) के एक उल्लेख से अभिनवगुप्त का प्रस्तुत उल्लेख मिला दिया जाय तो यह जान पडता है कि 'चारुदत्त' का वैकल्पिक शीर्षक ही 'दरिद्रचारुदत्त' रहा होगा ।[1]

'नाट्यदर्पण' मे रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने दरिद्रचारुदत्त' का, अभिनव की शैली मे, यो उल्लेख किया है—

'ततो दैवायत्तफले दरिद्रचारुदत्तादिरूपके पुरुषव्यापारस्य गौणत्वात् कथ प्रारम्भादय स्यु । न तत्रापि नायकस्य फलार्थित्वात् फलस्य च प्रारम्भादि नान्तरीयकत्वात् ।' (पृष्ठ ५३) ।

यहाँ भी 'दरिद्रचारुदत्त' चारुदत्त' की ही वैकल्पिक सज्ञा माना जा सकता है । उस उल्लेख के समानान्तर 'नाट्यदर्पण' मे 'मृच्छकटिक' का भी पृथक् उल्लेख हुआ है ।[2]

उपर्युक्त उद्धरणो से यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि 'चारुदत्त' और 'मृच्छकटिक दो भिन्न भिन्न कृतियाँ हैं और अलकार शास्त्रियो ने इनकी पृथक्ता अवस्थिति स्वीकार की है ।

(ख) चारुदत्त की वर्तमान अपूर्णता

'चारुदत्त' की उपलब्ध दो हस्तलिखित प्रतियों मे से एक के अन्त मे "अवसित चारुदत्तम्" का लेख मिलता है जिससे यह अनुमान किया जा सकता है कि नाटक चार अङ्को मे पूर्ण हो गया होगा । लेकिन, हम अभी पिछले परिच्छेद के बीच मे प्रकारान्तर से दिखा चुके है कि 'चारु०' अपनी वर्तमान अवस्था मे अपूर्ण है । इस सम्बन्ध मे हमने कतिपय अन्त साक्ष्यो का सकलन किया है जिनके आलोक मे यह निरूपण किया गया है कि नाटक अपूर्ण है और इसका घटना-विन्यास अवश्य आगे बढा होगा ।

---

१ (क) Bhandarkar commemoration volume (1917) K C mehendale's article—Date of sudrakas,

मृच्छकटिक पृ० ३६८

(ख) Pusalkar Bhasa A study, पृ० १६६–६७

२ Journal of (the Bomboy branch) the Royal Asiatic Society (1945), पृ० २७२

पंडितों ने अन्त:साक्ष्य से आगे बढ़ कर, इस सम्बन्ध में बाह्य साक्ष्य की भी खोज की है और यह प्रमाणित किया है कि नाटक अवश्य पूरा किया गया था। पहला साक्ष्य भोजराज के 'सरस्वती कंठाभरण' से गृहीत किया गया है। भोजने विट की विशेषताओं का वर्णन करने के लिए एक श्लोक उद्धृत किया है जिसमें विट शकार से कहता है कि वह किसी भी प्रकार कोई दुष्कृत्य सम्पादित नहीं करेगा। श्लोक यों है —

"शकार किं प्रार्थनया प्रावारेण मिषेण वा।
अकार्यवर्जं मे ब्रूहि किमभीष्टं करोमि ते॥
(सरस्वती०, पंचम परि०)

यह श्लोक 'मृच्छ०' में उपलब्ध नहीं है, किन्तु इससे मिलती जुलती पंक्तियाँ वहाँ अवश्य मिलती हैं, यथा—

"विट —तत किम्।
शकार — मम प्रियं कुरु।
विट —बाढं करोमि वर्जयित्वा त्वकार्यम्।" ('मृच्छ०,' आठवाँ अङ्क)

भोज-द्वारा उद्धृत श्लोक, ऐसा अनुमान करना असंगत नहीं है, 'चारु-दत्त' से ही लिया गया होगा, और इस प्रकार 'चारु०' में वसन्तसेना की हत्या वाला प्रकरण अवश्य वर्तमान होगा।

दूसरा साक्ष्य सागरनन्दी द्वारा 'नाटकलक्षणरत्नकोश' में उद्धृत एक श्लोक से सम्बन्धित है जिसे 'दरिद्रचारुदत्त' से लिया गया बताया गया है। श्लोक यों है —

"शुष्कद्रुमगतो रौति आदित्याभिमुखः स्थितः।
कथयत्यनिमित्तं मे वायसो ज्ञानपण्डितः॥"[1]
(नाटकलक्षणरत्नकोश)

इसमें कौवे के 'काँव काँव' के अपशकुन का उल्लेख हुआ है। 'मृच्छ०' में इससे बिल्कुल मिलता जुलता श्लोक नवें अङ्क में यों उपलब्ध है —

प्रसंग के साथ यों है —
ः। अनत्यके लक्षण। चूडामणो जीमूतवाहन।
ारुदत्ते। अ यत्रि मन शोभजननमनिमित्त-
यथा चारुदत्त
याभिमुख स्थित।"
सो ज्ञानपण्डित॥
ारत्नकोश, पृ० ४१

विट्
१
वृतश्चिद्
विभववता समुप।
Asiatic
कथयत्य.

"शुष्कवृक्षस्थितो ध्वाङक्ष आदित्याभिमुखस्तथा ।
मयि चोदयते वाम चक्षुर्घोरमसशयम् ।।"
(६।११)

नवाँ अक चारुदत्त पर आरोपित हत्या के अभियोग से सबधित है । सागरनन्दी ने 'चारुदत्त' और मृच्छ०' दोनो नाटको स उद्धरण लिये हैं । अतएव यह अनुमान आसानी से किया जा सकता है कि 'चारु०' मे अभियोग वाला प्रकरण भी सन्निविष्ट हुआ होगा

पुनरा, इस धारणा को शक्ति मिलती है कि 'चारु०' भास-द्वारा पूण किया गया था । तब स्वभावत यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि 'चारु०' वर्तमान रूप मे अपूर्ण क्यो है ? डॉ० भाट ने इस प्रश्न का समाधान यह प्रस्तुत किया है कि जिन परिस्थितियो ने भास के नाटकों को प्रकाश मे आने से रोक दिया उन्ही 'चारुदत्त' की वतमान अवस्था के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है । अतिरिक्त कारणों के रूप मे भाट का कथन है कि नाटक मे एक साधारण व्यक्ति के वेश्या प्रेम का चित्रण दोनो के कारण, जन साधारण मे उसे अनादर का भाजन बनना पडा होगा क्योकि उस युग मे लोग पौराणिक अथवा काल्पनिक नायिकाओ और आदर्श चरित्रों के प्रणय-व्यवहार के प्रेक्षण के अभ्यस्त थे तथा सामान्यत इस प्रकार के यथार्थवादी चित्रण के स्वागत के लिए तैयार नही हो सकते थे जब तक कि वह प्रहसन की मनोभगी मे प्रस्तुत न किया गया हो अतएव, केरल के रगमच पर 'चारु०' को लोक प्रियता प्राप्त नही हो सकी, और इसी कारण, उसका बहुलाश विलुप्त हो गया ।[१]

डॉ० बेलवलकर का भी अभिमत है कि 'चारुदत्त' पूर्ण किया गया होगा और किसी न किसी दिन उसके शेष अशो की प्राप्ति की आशा की जा सकती है । अभी उपलब्ध चार अको तथा उपयुक्त "अवसित चारुदत्तम्" के समापन सूचक लेख के सबध मे उन्होने यह समाधान प्रस्तुत किया है यह माना जा सकता है कि रगमचीय अभिनय के लिए लम्बे नाटक को दो या दो से अधिक छोटे छोटे भागो मे कदाचित् विभक्त करने की पद्धति प्रणाली रही होगी जो *यूनानी एव एलिजबेथन रगमचों पर अभिनीत होने वाले Trilogies तथा* Tetralogies नामक दुखान्तकियो की विभाजन प्रणाली से बहुत साम्य नही रखती होगी, अपितु उसका स्वरूप हमारे आधुनिक रगमच पर व्यवहृत उस प्रणाली के अनुरूप होगा जिसमे कालिदास के *'अभिज्ञानशाकुन्तल'* को दो भागो पहले मे चौथा अक तथा चौथे मे सातवाँ अक, मे बाँट देते है ।[२] 'चारु०' की

१ 'Preface To Mrcchakatika' (1953), पृ० २७-२९,

२ द्रष्टव्य · 'Proceedings And Transactions of the First

एक प्रति मे जो समापन-सूचक लेख उपलब्ध है, इस प्रकार, पूर्ण 'चारु०' का प्रथम भाग रहा होगा, कालान्तर में शेष भाग विलुप्त हो गया अथवा हो गए और यह प्रथम भाग पूर्णत विलुप्त होने से बच गया जो गणपति शास्त्री के अध्यवसाय से अन्ततः प्रकाश मे आ गया।

नाटककार की आकस्मिक मृत्यु अथवा दुर्घटना के कारण नाटक समाप्त नही हो सका, ऐसा मानने मे भारी कठिनाई है, विशेषतया तब जब विद्वानो ने प्राचीन अलकार ग्रन्थो मे उद्धृत ऐसे श्लोक खोज निकाले है जो 'चारु०' के बाद वाले अशो से सबधित प्रतीत होते हैं। लेकिन, चार ही अक क्यो, कैसे बच गये और शेषाश क्यो विलुप्त हो गया, यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका सतोषजनक समाधान अद्यावि नही निकल सका है। डॉ० भाट की तर्कना कि "सामान्य मर्त्य प्राणी के वेश्या प्रेम" (The love of a common mortal for a Loltot") जैसे 'यथार्थवादी चित्रण को केरल के रगमच पर लोक प्रियता प्राप्त नही हो सकी होगी। जिस कारण वह कालातर मे विलुप्त हो गया होगा, सामान्यतया स्वीकार्य प्रतीत होती है। सस्कृत नाटको के सबध मे एक महत्वपूर्ण तथ्य यह ध्यातव्य है कि उनका अभिनय लोकरजन की सामान्य आवश्यकता की परिपुष्टि के साधन-रूप मे नही होकर, कुछ विशिष्ट सम्पन्न-सभ्रान्त वर्गों के मनोविनोद-हेतु सम्पन्न हुआ करता था, और उसके लिए कतिपय विशिष्ट अवसर ही निश्चित थे। आचार्यों का विधान था कि चान्द्र पर्व, राज्याभिषेक, जनाकीर्ण मेले तथा धार्मिक त्योहार, विवाह, मित्रो का मिलन, गृह प्रवेश अथवा नगर-प्रवेश और पुत्र जन्म के अवसर ही नाटकीय अभिनय के लिए वैध अथवा वाछनीय है। अतएव, इन द्विविध कारणो से, सस्कृत नाटको का लोक-सबध घटता गया। प्राचीन यूनान के प्रसिद्ध नगर एथेन्स के कलानुरागी निवासियो के मध्य एक नाटक, कम-से कम उसी रूप मे, दुबारा अभिनीत नही होता था, और हिन्दू नाटक भी प्राय किसी एक निश्चित अवसर के लिए रचित होते थे तथा उसी अवसर-विशेष पर

Oriental Conference, Poona Vol II (printed 1922) पृ० १९२

Trilogy (ट्राइलोजी) तीन दुखान्तिकियो का एक चक होता था जो प्राय समान विषय से सबधित होते थे और अनुक्रम (Immediate succession) मे खेले जाते थे।

Tetralogy (टेट्रालोजी) चार रचनाओं का चक होता था जिसमे तीन दुखान्तकी और एक उपहासात्मक रूपक (Satirical drama) रहते थे जो एक ही अनुक्रम मे अभिनीत होते थे।

उनका रंगमंचीय प्रदर्शन होता था—यह भिन्न बात है कि सफल रचनाएँ जैसे यूनान वैसे भारत में भी एक से अधिक बार अभिनीत होती रही होंगी। हिन्दू नाटकों का रंगमंचीय प्रदर्शन कुछ अवसरों पर ही, कभी कभी हुआ करता था यही कारण अनुमानित किया जा सकता है इस तथ्य के समाधान के लिए कि दस दस अंकों तक प्रसरणशील लंबे नाटक लिखे गये जिनका अभिनय पाँच छै घंटों तक चलता रहा होगा। (अभिप्राय यह है कि जो नाटक लोक-रंजनार्थ बार-बार खेले जाएँगे, वे आकार में अवश्य ही छोटे होंगे।)[1]

अतएव, संस्कृत नाटकों का रंगमंचीय प्रदर्शन, उपर्युक्त प्रतिबन्धों के फल-स्वरूप, घटता गया और उसका परिणाम यह हुआ कि ये नाटक उपेक्षा एवं अवहेलना के भाजन बने। यद्यपि इन कवियों की रचनात्मक प्रतिभा तथा प्रेरणा निरन्तर नए नाटकों का प्रणयन करती रही तथापि हमारा प्राचीन नाटक साहित्य परिमाण में नितान्त न्यून ही बना रहा। सुप्रसिद्ध समालोचक विल्सन ने एक बड़े मार्के की टिप्पणी की है यह कि हमारे श्रेष्ठतम रचनाकार कालिदास तथा भवभूति में से प्रत्येक *केवल तीन-तीन नाटक ही प्रणीत कर* सके जबकि ऐंटीफेनिस ने तीन सौ पैंसठ सुखान्तकियों और लोप डी वेग ने दो हजार सुखान्तकियों की रचना की।[2]

अर्थात् प्राचीन काल में नाटक प्रणयन के लिए परिस्थितियाँ अधिक प्रोत्सा-हनपूर्ण नहीं थीं, और साथ ही नाटकों के कालान्तर में अवहेलित तथा अन्तः-विलुप्त हो जाने की सम्भावनाएँ अधिक परिपुष्ट थीं। केवल वे ही रचनाएँ समय प्रवाह में जीवित बच सकीं जिनमें उत्कृष्ट साहित्यिक सौष्ठव अथवा अन्य प्रकार के मानवीय रस का उद्गिरण करने वाले सनातन महत्त्व के तत्त्व सन्निहित थे। नाटकीय प्रदर्शनों के आयोजक एवं आस्वादयिता प्रायः अभि-जात वर्ग के व्यक्ति थे जो सुरुचि एवं सौन्दर्य के एक निश्चित प्रतिमान की

---

१ चीनी नाटकों का अभिनय कभी कभी दस दिनों तक चलता रहता था।

२ "we may form a tolerably accurate estimate of the extent of the Hindu theatre by the fact that no more than three plays are attributed to each of the great masters of the art, Bhavabhuti and Kalidasa, a most beggarly account, when contrasted with the three hundred and sixtyfive comedies of Antiphanes, or two thousand of Lope de Vega"

('the theatre of the Hindus' (1955) पृ० ५

रक्षा के लिए सचेष्ट थे। भास के नाटको को तत्कालीन एव परवर्ती साहित्यिक सास्कृतिक वातावरण मे अभिजात वर्ग की उपेक्षा मिली होगी। कालिदास ने भास का स्मरण किया, यह भिन्न बात है बहुत सभव है, एक सुसस्कृत नागरिक उससे भी आगे बढ कर, सम्भ्रान्त एव प्रतिष्ठित ब्राह्मण नागरिक के वेश्या-प्रेम की कहानी होने के कारण, 'चारु०' लोक-सम्मान प्राप्त करने से चूक गया और उसका उत्तरार्ध जिसमे चारुदत्त तथा वसतसेना समस्त विघ्नो के घटाटोप का भेदन कर, 'राजा-रानी' बन गये, अन्तत विलुप्त हो गया। केरल के रगमच पर खेले जाने वाले सस्कृत नाटको का उद्देश्य प्राय हिन्दू धर्म एव दर्शन का प्रसार एव परिपोष होना था।[१] ऐसी अवस्था मे, जो नाटक गीर्वाणगिरा का परिधान पहने हुए भी, हिन्दूधर्म तथा हिन्दू मूल्यों का उपलालन करने से चूक जाते थे वे अवश्य ही उपेक्षित होते होते, अन्त मे काल के गाल मे विलीन हो गये होगे। राज-द्रोह अथवा राज्य क्रान्ति वाला अश भी 'चारु०' के अभिजातवर्गीय सामाजिको की मूल्य योजना (Scheme of volues) की सगति मे नही बैठता होगा। अतएव, वह भी उसके सबद्ध अश के विलोप मे सहायक हुआ होगा। डॉ० बेलवलकर का यह अनुमान भी कि अभिनय की सुविधा के हेतु 'चारु०' को दो या तीन भागो मे बाँट दिया गया होगा जिनमे पहला भाग बच गया और शेष भाग विनष्ट हो गये, माना जा सकता, और विनष्ट अशो के विलोप के लिए गणिका प्रणय का तत्व उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। किन्तु सम्पूर्ण अनुमान सदोह के बावजूद चारु० की अपूर्णता की पहेली कभी सुलझ सकेगी, इसमे निविड सदेह है। तथापि, हमे यह आशा रखनी चाहिए कि 'चारु०' का शेषाश भी, किसी न किसी दिन, प्रकाश मे आएगा क्योकि वसन्तसेना तथा चारुदत्त के प्रणय की निश्छलता तथा उनपर आई विपत्तियो की गहनता के तत्वो का सगुफन—जो पूर्ण 'चारु०' मे अवश्य वर्तमान था—दाक्षिणात्यो की सहृदयता का प्रच्छन्न ममत्व

---

१ "Thus the sanskrit section of our theatre has served most effectively to popularise the Hindu religion and philos ophy, and with it the language in which they have found expression "

—K R Pisharoti का "South Indion the atre" शीर्षक निब ध जो विल्सन की पुस्तक 'The Theatre of the Hindus' (१९५५) मे सगृहीत है।

सजग प्राप्त कर सका होगा और इसी कारण, कहीं न कहीं, वही सबद्ध अश जीवित बच गया होगा।

(ग) 'चारुदत्त' और 'मृच्छकटिक' में आधार-आधेय सम्बन्ध

'चारु०' और 'मृच्छ०' मे कौन रचना मूल है और कौन उसका रूपान्तर है, इस विषय मे विद्वानो-द्वारा पुष्कल गवेषणा की गई है। प्राय दो स्पष्ट समूह बन गये हैं और दोनो पक्तियो के पण्डितों ने अपने अपने पक्ष के अनुमोदन मे तर्कों का विशाल व्यूह खडा कर दिया है। 'चारु०' आकार मे छोटा है और 'मृच्छ०' आकार मे बडा है, प्रथम चार अकों की तुलना से यह तथ्य प्रमाणित है। अतएव, 'चारु०' का परिवर्धित एव परिष्कृत सस्करण 'मृच्छ०' हो सकता है और साथ ही, मृच्छ०' का सक्षिप्त रगमञ्चोपयोगी रूपान्तर भी 'चारु०' हो सकता है। बेलवलकर, सुकथकर, भाट, देवस्थली, काले, कीथ और प्राय सभी यूरोपीय विद्वान् 'चारुदत्त' की प्राग्भाविता स्वीकार करते हैं जब कि पी० वी० काणे, रैड्डी, भट्टनाथ, देवधर, करमरकर, परांजपे और जागीरदार जैसे विद्वान 'चारु०' का 'मृच्छ०' का सक्षिप्त रूपान्तर समझते हैं।[1]

'मृच्छकटिक' का सक्षिप्त रगमचीय रूपान्तर 'चारुदत्त'

'मृच्छ०' के विस्तीर्ण आकार को देखते हुए यह सोचने का प्रलोभन स्वभावत उत्पन्न होता है कि उसके सुस्फीत आकार को काट छाँट कर किसी परवर्ती नाटककार ने 'चारु०' की सृष्टि की होगी।

'चारु०' को 'मृच्छ०' का सक्षिप्त रगमञ्चीय मानने के पक्ष मे आपातत निम्न तथ्य प्रस्तुत किये जा सकते हैं—

(१) 'मृच्छ०' के चतुर्थ अङ्क मे विदूषक ने वसतसेना के महल का जो विस्तृत वर्णन किया है, वह 'चारु०' मे उपलब्ध नही है।

(२) शर्विलक ने 'मृच्छ०' के उसी अक मे आठ श्लोकों मे नारियो की चचल वृत्ति का जो व्याख्यान किया है, वह 'चारु०' मे प्राप्त नही है।

(३) द्वितीय अङ्क मे माथुर, दर्दुरक इत्यादि जुआरियों वाला जो लम्बा दृश्य 'मृच्छ०' मे सन्निविष्ट हुआ है, उसका 'चारु०' मे एकान्त अभाव है।

(४) मृच्छ०' के प्रथम अङ्क मे वसतसेना के पीछा किये जाने के दृश्य का वर्णन जहाँ उन्नीस श्लोको और चौहत्तर गद्य पक्तियो मे हुआ है वहाँ 'चारु०' मे वह दृश्य चौदह श्लोको तथा बावन गद्य पक्तियो मे वर्णित हुआ है।

---

१ इन समस्त मतो एव विचारो का सुन्दर, प्रामाणिक विवेचन पुसाल्कर की प्रणीत पुस्तक 'Bhasa A Study' के छठे परिच्छेद मे उपलब्ध है।

(५) चारुदत्त ने 'मृच्छ०' मे अपनी दरिद्रता का दस श्लोकों में विस्तृत वर्णन किया है जब कि 'चारु०' मे इस विषय के केवल पाँच ही श्लोक प्राप्तव्य हैं ।

इन समस्त परिवर्तनों के प्रकाश मे, यह स्थापना की जा सकती है कि सक्षेपकार के सम्मुख ये उद्देश्य वर्तमान थे—

(अ) वह एक अक के बीच मे दृश्य-परिवर्तन वाले सदर्भों का परित्याग, अभिनय की सुचारुता एव सौविध्य के हेतु, आवश्यक समझता था ।

(आ) राज्य क्रांति के प्रकरण को वह सर्वथा छोड देना चाहता था ।

(इ) 'मृच्छ०' के प्रथम चार अङ्कों के नवसङ्कटन से वह प्रमाद-पूर्ण सुखान्तकी की सृष्टि करने के लिए लालायित था "अमृताङ्कनाटक" की सृष्टि करने के हेतु ही उसने शासनारूढ नरेश के विरुद्ध सफल विद्रोह तथा नायक की अनुचित दारुण विपत्तियों के सदर्भ जान बूझकर छोड दिये ।[१]

उपर्युक्त तर्कनाओं मे सबसे महत्त्वपूर्ण तथा केन्द्रगत तर्कना यही है कि 'मृच्छ०' का रूपान्तर करते समय, कृतिकार के सम्मुख प्रधान ध्येय था 'मृच्छ०' के अनावश्यक विस्तार को सकुचित करना । लेकिन, जैसा हमने पूर्व परिच्छेद मे दिखाया है कतिपय सदर्भों मे 'चारु०' 'मृच्छ०' की अपेक्षा अधिक विस्तीर्ण एव विशद है । और इस प्रकार, 'चारु०' को 'मृच्छ०' का सक्षिप्त रूपान्तर मानने मे भारी कठिनाई है । कतिपय प्रसङ्ग तुलना के लिए नीचे उल्लिखित किये गये हैं —

(१) 'चारु०' के प्रथम अङ्क का बीसवाँ श्लोक 'मृच्छ०' मे प्राप्त नहीं है ।

(२) 'चारु०' के दूसरे अङ्क मे सवाहक, वसन्तसेना से अपनी कहानी सुनाते समय, चारुदत्त के दरिद्र हो जाने और अपने जुआरी बन जाने का वर्णन करते हुए यह कहता है "तत स विभवमन्दतया स्वाधीनपरिजनो विसर्जितकुटुम्बभरणव्यापारितमात्रावशेष· सापवाहकुले प्रतिवसति अहमपि तेनार्येणाभ्यनुज्ञातोऽयमुपतिष्ठामिति । कथमन्यमीदृश मनुष्यरत्न लभेयेति कथ च तस्य कोमलललितमधुरशरीरस्पर्शकृतार्थं मे हस्त साधारणशरीरसमर्दन शोचनीय करिष्यामीति जातनिर्वेदो दरिद्रशरीररक्षणार्थं द्यूतोपजीवी सवृत्त ।" (पृ० ६३–६४)

---

१ देवधर Carudatta', Introduction, पृ० ६–८,
जागीरदार 'Drama of Sanskrit Literature, Appendix, पृ० १६२–६३

'मृच्छ०' मे यहाँ सवाहक ने केवल यही कहा है 'ततः तेन आर्येण सवृत्त परिचारक क्रीतोऽस्मि। चारित्र्यावशेषे च तस्मिन् द्यूतोपजीवी अस्मि सवृत्त। (पृ० १३१-३२) 38/92

(३) 'चारु०' के तीसरे अक मे सोने के पहले विदूषक और चारुदत्त मे जो सवाद हुआ है, वह 'मृच्छ०' म उपलब्ध नहीं है।

(४) 'चारु०' के तीसरे अक का बारहवाँ श्लोक तथा उसके ठीक पहले का शर्विलक का कथन 'मृच्छ०' मे नहीं मिलता।

(५) 'चारु०' के तीसरे अक का सोलहवाँ श्लोक और विदूषक का कथन जिसके उत्तर रूप मे चारुदत्त ने यह श्लोक कहा है, 'मृच्छ०' में वर्तमान नहीं है। इसी प्रकार, 'चारु०' के तीसरे अक का अठारहवाँ श्लोक भी 'मृच्छ०' मे नहीं मिलता।

(६) 'चारु०' के चतुर्थ अक मे जब विदूषक वसन्तसेना को मुक्तावली प्रदान करता है, तब वसन्तसेना मन ही मन कहती है : "(आत्मगतम्) धिक् खलु गणिकाभावम्। लुब्धेति मा तुलयति। यदि न प्रतीच्छामि, स एव दोषो भविष्यति। आनयत्वार्यः."

किन्तु, 'मृच्छ०' मे वसन्तसेना सखी का मुख देखकर विहसती है और रत्नावली ग्रहण कर लेती है "(विहस्य सखीमुख पश्यन्ती) मैत्रेय! कथ न ग्रहीष्यामि रत्नावलीम्? (इति गृहीत्वा पार्श्वे स्थापयति।)"

(७) इसी प्रकार, स्थापना की समाप्ति के अनन्तर 'चारु०' मे विदूषक ने सूत्रधार के भोजन विषयक निमन्त्रण को अस्वीकृत करते हुए चारुदत्त के घर मे मधुर पदार्थों के भक्षण से सुख के दिन व्यतीत करने का जो कथन किया है, वह 'मृच्छ०' की तुलना में अधिक विशद एव विस्तृत है : 'चारु०' मे पचीस पक्तियाँ उपलब्ध हैं जबकि 'मृच्छ०' म केवल सोलह।[1]

---

१ 'चारु०' और 'मृच्छ०' के तुलनात्मक विवेचन वाले प्रकरण में मैंने अपने निष्कर्षों मे दिखाया है कि यद्यपि सामान्यतया मृच्छ०' 'चारु०' की अपेक्षा विस्तृत एव विजृम्भित है तथापि 'चारु०' भी कतिपय स्थलों मे 'मृच्छ०' की तुलना मे अधिक विशद तथा विस्तीर्ण है। प्रस्तुत उद्धरण बेलवल्कर द्वारा 'मृच्छ०' और 'चारु०' का सम्बन्ध निरूपण करने वाले उनके निबन्ध मे सगृहीत किये गये हैं जो 'Proceedings and Transactions of the First Oriental Conference, Poona (1922)' मे प्रकाशित है। मैंने प्राकृत के अशों का सुविधार्थ सस्कृत रूपान्तर दिया है तथा उद्धरणों को समझने के लिए प्रसग-निर्देश भी कर दिया है।

अतएव, दृष्टान्त रूप में अंकित इन उद्धरणों तथा स्थलों के आलोक में यह प्रमाणित हो जाता है कि ऐसी तर्कना सार नहीं समझी जायगी कि 'चा०' में 'मृच्छ०' का संक्षेपीकरण सम्पन्न हुआ है।

लेकिन, यह तर्कना की जा सकती है कि रूपान्तरकार अथवा संक्षेपकार सुविधानुसार नाटकीय प्रभाव के उत्कर्ष के निमित्त मूल के कतिपय प्रसंगों को संक्षिप्त करने के साथ साथ कहीं कहीं अपनी ओर से विस्तार भी कर सकता है।[1] डॉ० बेलवलकर ने इस तर्कना का औचित्य स्वीकार करते हुए यह टिप्पणी की है कि संक्षेपकार, विस्तार का प्रश्रय लेते हुए, कम से कम इतना तो ध्यान रखेगा ही कि मूल के प्रभाव अथवा सौन्दर्य की हत्या अकलात्मक एवं निरर्थक संवादों के नवीन सन्निवेश से, न होने पावे। 'मृच्छ०' को 'चारु०' का मूल न मानते हुए भी, उन्होंने यह अभिमत प्रकट किया है कि 'चारु०' के वैसे स्थल जहाँ 'मृच्छ०' की तुलना में विस्तार अथवा नवीनता दिखाई पड़ती है, दुर्बल एवं अकलात्मक सिद्ध होती हैं। उदाहरण-रूप में, उन्होंने 'चारु० के प्रथम अंक में नायक तथा गलती से रदनिका समझी जाने वाली गणिका के बीच हुए संवाद, और चौथे अंक में सज्जलक से पहले वसन्तसेना के सज्जलक को "साहस" (चोरी) करने का प्रत्यक्षतः अपराधी ठहराने के सन्दर्भों का उल्लेख किया है। उनकी दूसरी तर्कना प्रश्न रूप में यह उत्थापित हुई है कि यदि 'चारु०' 'मृच्छ०' का संक्षेप है तो उज्जयिनी की राज्य क्रान्ति जैसे महत्त्वपूर्ण उप-कथानक को, जिसके सहारे शूद्रक ने नाटकान्त में सभी पात्रों को 'काव्यात्मक न्याय'[2] (Poetic justice) का भाजन बनाया है, भास क्यों छोड़ देते ?[3]

बेलवल्कर का प्रथम तर्क देवधर के तर्क से मिलता है . नायक और गणिका के बीच हुआ संवाद, सज्जलक से पहले वसन्तसेना के सम्मुख विदूषक का प्रवेश। मैंने विगत परिच्छेद के अन्त में इन टिप्पणियों का निराकरण किया

---

१. "For, in adaptation abridgment is as common and natural a determining principle as amplification"—Dr Sukthankar . 'Sukthankar Memorial Edition, Vol II, Analecta पृ० ११३।

२ Poetic Justice' अंग्रेजी नाटकों का परिभाषित पद जैसा समझा जाना चाहिए जिसका अभिप्राय होता है, 'जैसे को तैसा'।

३ Proceedings and Transactions of the First Oriental Conference Poona (1922) पृ० १९६–९७

है और यह दिखाया है कि भास के ये सदर्भ सगत एव सुविचारित हैं, अतएव प्रस्तुत प्रसग मे उन तर्कों की पुनरावृत्ति नही की जा रही है। जहाँ तक राज्य विप्लव वाली तकना का प्रश्न है, देवधर तथा जागीरदार जैसे पण्डितों ने उसका समाधान यह प्रस्तुत किया है कि 'चारु०' का रचयिता सत्तारूढ शासन के विरुद्ध सफल विद्रोह तथा नाटक के अवसाद-पूर्ण पर्यवसान का प्रदर्शन करना उचित नही समझता था। बेलवलकर इस प्रसग के प्रत्यक्षत दिखाई पडने वाले परित्याग को भास की नाटकीय कला का दोष मानते हैं, विशेषत तब जब भास के समुख शूद्रक की सफल राज्यक्रान्ति वाली योजना वर्तमान थी। किन्तु, जैसा मैंने पूर्व प्रकरण मे प्रतिपादित किया है, भास इन समस्त परित्यक्त समझे जाने वाले विवरणो एव सदर्भो को अपनी पूर्ण रचना मे, चौथे अक के बाद भी, समाविष्ट कर सकने थे। मैं मानता हूँ कि 'चारु०' पूर्ण किया गया था और उसके विकास एव अवसान की रेखाएँ प्रायः वही थी जो 'मृच्छ०' की हैं। जैसे रोहसेन को चौथे अक के बाद, पाँचवें अथवा छठें अक मे भी पहली बार समाविष्ट किया जा सकता था और उसके बाल-हठ की परितुष्टि के हेतु वसतसेना उसी समय अपने सुवर्णाभूषणो को, नए सुवर्णाभूषणो को (क्योकि 'चारु०' मे उसने पहले वाले आभूषण मदनिका को दे दिये हैं और उसके पास ऐसे बहुमूल्य आभूषणों की कमी तो नही थी), नायक के घर मे छोड सकती थी, वैसे ही राज्य-क्रान्ति वाला उप-कथानक भी चौथे अक के बाद जोडा जा सकता था, जोडा गया होगा, उसमें कैसी और कितनी सफलता मिलती अथवा मिली होगी, यह भिन्न बात है। आखिर, 'मृच्छ०' मे भी तो राज्य-क्रान्ति का कथानक प्राय पर्दे के भीतर विकसित होता रहा है और अन्त मे ही उसकी पूर्ण परिणति की विज्ञप्ति हुई है—उस विप्लव का सकेत स्पष्ट भाव से वहाँ भी चौथे अक मे ही मिला है जब शर्विलक के मदनिका को साथ लेकर गाडी पर प्रस्थान करते समय, नेपथ्य मे यह आवाज सुनाई पडी है कि राजा पालक ने गोपपुत्र आर्यक को अपना सिंहासन बचाने की चिन्ता मे, बन्दी बना लिया है। अतएव, चौथे अक के बाद भी राज्य-क्रान्ति वाली योजना का नियोजन भास द्वारा किया जा सकता था—ऐसा मानना निराधार नही है।

बेलवल्कर ने अपनी इसी मनोभगी तथा तर्क शैली मे यह निरूपण किया है कि 'चारु०' मे विट के चरित्र का एकान्त विपर्यय घटित हुआ है जो अपकर्ष-मूलक है। देवधर ने भी नाटकीय पात्रों के चारित्रिक अपकर्ष के लिए 'चारु०' के रचयिता की तीव्र आलोचना की है। मैंने विगत परिच्छेद मे यथा-

स्थान उनकी टिप्पणियों का स प्रमाण उच्छेद किया है और यह प्रतिपादन किया है कि नाट्य वस्तु की यथार्थवादी प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, 'चारु०' में अंकित चरित्र सम्पन्न एवं सुंदर समझे जाएंगे। अतएव, बेलवलकर की एतत्संबंधी टिप्पणियों के प्रतिवाद की यहाँ चेष्टा नहीं की गई है।[१]

'मृच्छ०' को चारु०' का मूल मानने के लिए देवधर जैसे विद्वानों ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि 'मृच्छ०' कालक्रम में 'चारु०' से पुराना है। वस्तुत काल-क्रम वाला आधार ही सबसे पुष्ट एवं प्रामाणिक होना चाहिए क्योंकि एक बार यदि यह प्रमाणित हो जाय कि मृच्छ०' पुराना है, तो 'चारु०' को उसका संक्षिप्त रंगमंचीय संस्करण मान लेने में कोई कठिनाई नहीं होगी। जिन उल्लेखों तथा उद्धरणों के आधार पर चारु०' और 'मृच्छ०' को दो भिन्न, पृथक् रचनाएं सिद्ध किया गया है,[२] प्राय उन्हीं का अवलम्ब ग्रहण कर, देवधर ने यह प्रमाणित करने का उद्योग किया है कि उन अलंकार-शास्त्रियों को 'चारु०' की कोई जानकारी नहीं थी और सबद्ध उद्धरण 'मृच्छ०' से ही गृहीत हुए हैं क्योंकि 'मृच्छ०' से ही बाद में 'चारु०' का प्रणयन किया गया। 'नाट्यवेदविवृति' के उद्धरण के सम्बन्ध में देवधर का कथन है कि अधिक संभावना यही होनी चाहिए कि वह 'मृच्छ०' से ही गृहीत हुआ है। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् G Moagcustierne का अवलम्बन कर, उन्होंने तर्कना की है कि 'चारु०' में नायक सर्वदा 'दरिद्रसार्थवाहपुत्र चारुदत्त'' की अभिधा से ख्यापित हुआ है। न कि "दरिद्रचारुदत्त" की संज्ञा से जब कि 'मृच्छ०' में "दरिद्रचारुदत्त" की आख्या का प्रयोग हुआ है। इससे देवधर का अनुमान है कि 'मृच्छ०' का वैकल्पिक शीर्षक 'दरिद्रचारुदत्त' हो सकता है। इस अनुमान की उन्होंने, प्रकारान्तरेण, इस तर्कना से संपुष्टि की है कि अभिनवगुप्त की किसी रचना के लिए वैकल्पिक संज्ञा का प्रयोग

---

१. "In fact, the character of this Vita as Bhasa paints him is most cowardly our contemptible and has none of the cul ture and other relieving features of Sudraka's vita, x x x it is evident that such a total change is the conception of a character--a change again which is not a change for the better--is beyond the province of the mere abridgement—maker"

—proceedgins and Transactions of the First Oriental Conference Poona (1922), पृ० १६४-६५

२ देखिए इसी परिच्छेद का (क) भाग।

करने की पद्धति रही है, चाहे कवि ने स्वयं उसे वह दूसरा नाम प्रदान किया हो अथवा नहीं उदाहरणतः, 'रत्नावली' को उन्होंने 'नाटचवेदविवृति' तथा 'ध्वन्यालोक' (लोचन) दोनों ग्रन्थों में "वत्सराजचरित" के व्यापक शीर्षक में आख्यापित किया है। रामचन्द्र-गुणचन्द्र के 'नाटचदर्पण' वाले पूर्वोक्त उद्धरण की चर्चा करते हुए, देवधर ने कहा है कि "दरिद्रचारुदत्तादिरूपक" का उल्लेख मृच्छ० के लिए ही हुआ है न कि 'चारु०' के लिए जो 'मृच्छ०' का एक अंश-मात्र है।[१]

"यासा बलि" वाले उल्लेख के सम्बन्ध में भी देवधर का कथन है कि वामन ने उसे, जैसा पी० वी० काणे ने कहा है, 'चारु०' से नहीं, अपितु 'मृच्छ०' से गृहीत किया है क्योंकि 'द्यूतं हि नाम' वाला वाक्य 'मृच्छ०' में ही उपलब्ध है, 'चारु०' में नहीं। वामन के श्लेष विषयक कथन "शूद्रकादि-रचितेषु प्रबन्धेषु भूयानस्य प्रपञ्चो दृश्यते" को उद्धृत करते हुए, देवधर ने सिद्ध किया है कि शूद्रक की रचनाएँ वामन के निकट पूर्णतया परिचित थीं। अतएव, देवधर की स्थापना है कि इस विश्वास के लिए आधार नहीं है कि वामन तथा अभिनवगुप्त जैसे अलंकार शास्त्रियों को 'चारु०' की कोई जान-कारी थी।[२]

लेकिन देवधर की उपर्युक्त तर्कना व्यवस्थित नहीं प्रतीत होती। "दरिद्र-चारुदत्त' और 'दरिद्रसार्थवाहपुत्र चारुदत्त' में विभेद करना किसी पूर्वाग्रह की पुष्टि की चिंता से परिणमित समझा जाएगा। "द्यूतं हि नाम" 'मृच्छ०' में ही उपलब्ध है, इसीलिए "यासा बलि" वाला श्लोक (जो 'चारु०' और 'मृच्छ०' दोनों में प्राप्य है) भी 'मृच्छ०' से ही गृहीत हुआ है—ऐसी तर्कना निस्सार है। उलटे 'ध्यमन हि नाम सोच्छ्वास मरणम्' वाला वाक्य 'चारु०' में ही उपलब्ध है (मृच्छ० में नहीं मिलता) और इसी वाक्य के बाद "यासा बलिर्भवति" वाला श्लोक वहाँ आया है। अतएव, इस श्लोक के 'चारु०' से ही, न कि 'मृच्छ०' से, उद्धृत किये जाने की सम्भावना अधिक सशक्त है। यह ध्यान देने की बात है कि 'द्यूतं हि नाम" वाला वाक्य 'मृच्छ०' के दूसरे

१ यह ध्यातव्य है कि 'नाट्यदर्पण' तथा 'नाटचवेद०' के उद्धरणों में यह स्थापना की गई है कि फलागम से ही रूपक का पर्यवसान होता है। यतः 'चारु०' में फलागम बाधित है, अतः "दरिद्रचारुदत्त" का अभिधान 'मृच्छ०' के लिए ही मानना चाहिए क्योंकि उसमें नायक-नायिका फल-सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। देवधर का तर्क, चातुर्य पूर्ण होते हुए भी, विश्वसनीय नहीं है।

२. C. R. Devadhar Plays Ascribed To Bhasa etc (1927), पृ० २०–२१।

अङ्क के सातवें श्लोक के उपसर्ग रूप मे आया है जब कि "पासा वलि" वाला श्लोक 'मृच्छ०' के प्रथम अक मे उपलब्ध है। अतएव, यदि इस श्लोक के मूल उद्गम की खोज के लिए "द्यूत हि नाम" और "व्यसन हि नाम" वाले वाक्यो मे से किसी एक की सहायता लेना आवश्यक है तो विवेक का अनुरोध यही होगा कि 'व्यसन हि नाम" को ही अधिक विश्वसनीय माना जाय क्योकि इस वाक्य के ठीक बाद ही उक्त श्लोक दोनो नाटकों मे से एक मे आया है, और वह नाटक 'चारु०' है, 'मृच्छ०' नही। अतएव, देवधर का यह कथन भी अयौक्तिक एव असगत है। वैसे ही, श्लेष के सम्बन्ध मे वामन द्वारा शूद्रक की रचनाओ का उल्लेख किया जाना भी असगत प्रतीत होता है क्योकि 'मृच्छ०' मे श्लेष का विशेष "प्रपच" नही दिखाई पडता।

दण्डी ने 'काव्यादर्श' मे "लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जन नभ" पक्ति उद्धृत की है। उसके सबध मे भी देवधर का कथन है कि यह उद्धरण "मृच्छ०' से ही लिया गया है जबकि वह श्लोक ठीक उसी रूप मे 'चारु०' मे भी उपलब्ध है।[1] देवधर दूसरी पक्ति मे प्राप्त उपमा "असत्पुरुषसेवेव" (अयोग्य पुरुषो की सेवा के समान निष्फल हो जाना) मे, विट के पूर्व कथन "रत्न रत्नेन सङ्गच्छते" (रत्न के साथ रत्न का सयोग फबता है, अर्थात्, चारुदत्त मे वसतसेना की अनुरक्ति उचित है) का स्मरण कराकर, विशिष्ट 'औचित्य' का दर्शन करते हैं और उससे यह ध्वन्यर्थ निकालते है कि 'योग्य के साथ योग्य के सगमन मे उसे बाधक नही होना चाहिए' यह सोचकर, विट सतोष की साँस लेता है कि चतुर्दिक् व्याप्त प्रगाढ अधकार मे उसकी दृष्टि ठीक-ही व्यर्थ सिद्ध हो रही है (छिपी हुई वसतसेना अधकार मे दिखाई नही पडती) क्योकि वह अयोग्य ('असत्') पुरुष की सेवा मे निरत है और योग्य व्यक्ति के योग्य व्यक्ति के साथ सयोग मे विघ्न उपस्थित करने की चेष्टा कर रही है।' 'रत्न रत्नेन सगच्छते" वाली अध्युक्ति अवश्य 'चारु०' मे 'वर्त-

---

१. "लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जन नभ ।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलता गता ॥"
('चारु', १।९, 'मृच्छ', १।३४)

'अधकार मानो अगो का विलेपन कर रहा है। आकाश मानो अजन की वर्षा कर रहा है। अतएव, असत् पुरुषो की सेवा के समान मेरी दृष्टि व्यर्थ हो गई है।'

२ 'Plays Ascribed To Bhasa etc' (1922), २१ २२।

मान नही है, किन्तु इसी कारण, "लिम्पतीव तमोऽङ्गानि" वाली पंक्ति को 'मृच्छ०' से उद्धृत मानना उचित नही है जब कि यह श्लोक 'बालचरित' मे भी उपलब्ध है जो भास की ही रचना माना गया है। देवधर की तर्कना मे उद्भावना का चमत्कार अवश्य है, किन्तु वह विश्वासोत्पादक नही है क्योंकि 'असत्पुरुषसेवेव'—जैसी उपमाएँ अलंकार-शास्त्रियो द्वारा प्राय. उदाहृत की जाती थी, और यह समझने का कोई सम्यक् आधार नही है कि वह पंक्ति 'मृच्छ०' से ही इस कारण उद्धृत की गई कि वहाँ उसके प्रयोग की विशिष्ट अथवत्ता थी। शायद, देवधर भी यह अनुभव करते हैं क्योंकि उन्होने वही कहा है—"There is no doubt that it was the stock in trade of rhetoricians."

सागरनन्दी के 'नाटकरत्नकोश' मे 'उद्धृत 'शुष्कद्रुमगतो रौति" वाले श्लोक के सबध मे भी देवधर ने कहा है कि वह 'चारु०' से न होकर, 'मृच्छ०' से उद्धृत किया गया है। इस श्लोक का सदर्भ यह है:—

"रुज प्रहारादिप्रभवा वेदना। यथा शक्त्यके लक्ष्मण। चूडामणौ जीमूतवाहन। लाभकायने स एव। तत्र ते पीडा नाटयन्ति। अन्येऽपि मन क्षोभजननमनिमित्तदर्शनमपि रुजावश एव व्याचक्षते। यथा-चारुदत्त" इसके बाद वह श्लोक उद्धृत हुआ है।

यहाँ एक आपत्ति देवधर ने उठाई है जो सगत प्रतीत होती है। "यथा चारुदत्त" का अर्थ यह नही लिया जा सकता कि वह नाटक जिसका शीर्षक 'चारुदत्त' हो क्योंकि वैसी अवस्था मे इसे "यथा चारुदत्ते" होना चाहिए था। अतएव, देवधर का कथन है, "यथा चारुदत्त" से वह नाटक विवक्षित है जिसमे चारुदत्त एक पात्र है जो यह श्लोक कहता है। सिल्वाँ लेवी ने जो प्रस्तुत उद्धरण को 'चारुदत्त' नाटक से गृहीत मानते है, "चारुदत्तः" की जगह "चारुदत्ते" पढने का सुझाव दिया है। वस्तुत विचार किया जाय तो जान पडता है कि सिल्वाँ लेवी के सुझाव को न मानते हुए भी, देवधर के अर्थ को ही स्वीकार कर, यह कहा जा सकता है कि यह श्लोक 'मृच्छ' से न लिया जाकर, 'चारु०' से ही गृहीत किया गया है क्योंकि 'चारु०' मे भी तो 'चारुदत्त' एक पात्र है और 'चारु०' के समाप्य पूर्णरूप मे उसके द्वारा इस श्लोक के कहे जाने की सभावना का प्रतिवाद नही किया जा सकता। वास्तव मे, देवधर ने जो यह मान लिया है कि "असमाप्तनाटक" होने के कारण 'चारुदत्त' अपने वर्तमान रूप मे पूर्ण है, उसी से यह समस्त तर्कना उत्पन्न होती है।

अर्थात् , यह मान लेने का कोई तर्कसगत आधार नही दिखाई पडता कि प्राचीन आचार्यो—द्वारा दिये गये उद्धरण 'चारु०' से न होकर, 'मृच्छ०' से

लिये गये हैं। देवधर का कथन है कि 'मृच्छ०' की पंक्तियों को उद्धृत करते समय आचार्यों ने पाठ की प्रामाणिकता की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया, किन्तु यही बात 'चारु०' के संबंध में भी समान शक्ति एवं औचित्य के साथ कही जा सकती है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कतिपय विद्वान् गणपतिशास्त्री द्वारा प्रकाश में लाये गये तेरह नाटकों के समूह को उस प्रसिद्ध नाटककार भास की रचना नहीं मानते जिसकी प्रशस्ति कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' में, बाण ने 'हर्षचरित' में, वाक्पतिराज ने 'गौडवहो' में तथा जयदेव ने 'प्रसन्नराघव' में गाई है और वामन तथा भामह जैसे अलंकार-शास्त्रियों ने अपने रीति-ग्रंथों में जिसकी रचनाओं की आलोचना की है अथवा उनसे उद्धरण लिये हैं।[1] तथापि कतिपय

---

[1] सन् १९१२ से १९१५ तक गणपतिशास्त्री ने इन नाटकों को त्रिवेन्द्रम से प्रकाशित किया जिन्हें 'भास-नाटकचक्र' अथवा 'Trivandrum Plays' की आख्या मिली है इन नाटकों के नाम ये हैं—पञ्चरात्र, दूतवाक्य, मध्यमव्यायोग दूतघटोत्कच, कर्णभार, उरुभंग, बालचरित, प्रतिमा अभिषेक, स्वप्नवासवदत्ता, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अविमारक तथा चारुदत्त। चारु०' प्रथम बार १९१४ में और दूसरी बार १९२२ में प्रकाशित किया गया। इनमें से पहले नव नाटकों की वस्तुवस्तु महाभारत-रामायण जैसे महाकाव्यों तथा विष्णुपुराण अथवा हरि-वंशपुराण जैसे पुराण ग्रंथों से ली गई है और अन्तिम चार की वस्तुवस्तु गुणाढ्य की बृहत्कथा से गृहीत की गई समझी गई है। गणपति शास्त्री की गवेषणाओं से नाम शेष समझे जाने वाले भास के कृतित्व पर जो प्रकाश पड़ा, उसकी आरंभ में भूयसी प्रशंसा हुई, किन्तु बाद का, यह सम्पूर्ण नाटक चक्र तीव्र विवाद का विषय बन गया है। ये नाटक उसी प्रसिद्ध भास के हैं, अथवा किसी अन्य भास के हैं, उनके प्रणयन का क्या काल हो सकता है, वे कहाँ तक प्रामाणिक हैं, उन्हें एक ही लेखक की कृतियाँ माना जा सकता है या नहीं, इत्यादि नानाविध प्रश्न उत्पन्न हो गये, और यद्यपि इनके संबंध में पूर्ण मतैक्य स्थापित नहीं हो सका है। फिर भी, सामान्यतः यह मान लिया गया है कि ये नाटक भास द्वारा ही रचित हैं। 'स्वप्न०' को सर्वश्रेष्ठ तथा अपने में भी विशिष्ट नाटकीय महत्त्व से मंडित स्वीकार किया गया है। 'प्रतिज्ञा०' को 'स्वप्न' के बाद का महत्त्व मिला है। राजशेखर ने एक श्लोक में कहा है कि 'समीक्षकों ने भास के नाटकों का एक गोला बना कर अग्नि में फेंक दिया। उनमें 'स्वप्नवासवदत्त' आग की लपटों में जलने से बच गया।" इस कथन से यह ध्वनि निकलती है कि 'स्वप्न०' इस सम्पूर्ण नाटक चक्र में शिरोमणि है।

अन्य विद्वानो ने चित्र योजना, विचार साम्य, भाव-ध्वनि, श्लोक पद पंक्तियो की एकरूपता तथा नाटकीय टेक्नीक एवं योजनाओ (Dramatic devices) की समानता जैसे आधारो पर इन नाटको को भास कृत सिद्ध करने का प्रयास किया है। और प्राय. यह माना है कि यह सम्पूर्ण चक्र पर्याप्त पुराना है। डॉ० सुकथंकर ने अपने शोध पूर्ण निबन्ध "A Bibliographical Note" मे दोनो पक्षो के तर्कों एवं प्रमाणो का विवेकपूर्ण सक्षेप प्रस्तुत किया है और स्वत, प्रसिद्ध यूरोपीय विद्वान् विण्टरनिज के साथ यह प्रतिपादित किया है कि इन 'त्रिवेन्द्रम नाटको' को भास कृत् मानने के लिए प्रचुर प्राथमिक औचित्य (Prima facie case) वर्तमान है, किन्तु साथ ही, अब तक के सकलित साक्ष्य के आधार पर इस मान्यता के लिए अन्तिम, निर्णायक निष्कर्ष नही निकाला जा सकता।[१] कतिपय इतर समीक्षको की यह स्थापना भी स्वीकार नही की जा सकती कि ये नाटक साहित्यिक जालसाजी अथवा "काव्यार्थचौर्य" के प्रतिफल हैं क्योकि केरल के वशानुगत अभिनेताओं (Hereditary actors) के एक वर्गविशेष द्वारा खेले जाने वाले नाटक-चक्र मे इनका निश्चित स्थान है, इनकी पाडुलिपिया भी उपलब्ध होती हैं और यदि इन नाटको मे रचयिता का कहीं नामोल्लेख नहीं है, तो अन्य क्लासिकल नाटक-कारों की ऐसी कृतियां भी इन अभिनेताओ द्वारा सुरक्षित रखी गई हैं जिनमे रचयिताओ के नामोल्लेख का अभाव है।[२] जो विद्वान् इन नाटको के भास कृत होने के सबध मे किसी निश्चय पर नही पहुँच सके हैं, उनके पक्ष का उपस्थापन, उनसे सहमत

---

१ "Between the two extreme sections lie the views of Winternitz and the present writer, who, While they recognise that the supporters of the theory have a good prima facie case, that the authorship of Bhasa is a factor within the range of possibility, hold on the other hand, that the evidence hitherto adduced does not amount to a conclusive proof the proposition, they accept it merely tentatively' as a working hypothesis"—'Sukthankar Memorial Edition, Vol II Analecta', पृ० १४२।

—किन्तु, देवधर ने सबद्ध नाटको के स्वसम्पादित सस्करण की भूमिका मे लिखा है कि विंटरनिज ने बाद को यह स्वीकार किया कि इन नाटको के भास कृत होने के सिद्धान्त मे उसे विश्वास नही रह गया है।

२ Dr S K Dey 'History of Sanskrit Literature (1957) पृ० १०३,

होते हुए, डॉ० सुशील कुमार डे ने यों किया है—'इन अध्ययनों से एक बात स्पष्ट हो गई है, यह कि चाहे ये नाटक भास के लिखे हों या नहीं, उनकी प्रकृति रंगमंच के लिए संस्कारित अथवा संक्षिप्तीकृत नाटकों जैसी है, और वे केरल प्रदेश में निरंतर रंगमंच पर अभिनीत होते रहे हैं। × × × इन त्रयोदश त्रिवेंद्रम नाटकों में न केवल शाब्दिक एवं संघटनात्मक अपितु, शैली-गत एवं आदर्श-गत भी समानताएँ उपलब्ध होती हैं जिनसे यह सोचने की प्रेरणा जगती है कि इनका रचयिता एक ही व्यक्ति है। × × × किन्तु, यत ये नाटक रूपान्तरण (adaptations) हैं तथा उनकी मूल-कृतियों का आज पता नहीं है, अतः उनका एक ही व्यक्ति की रचनाएँ स्वीकार किया जाना संगत एवं साधार नहीं होगा।"[१] देवधर ने इन नाटकों में चित्र-योजना पद योजना, भाव साम्य इत्यादि के आधार पर पुष्कल समानताओं की खोज करते हुए भी, यह स्थापना की है कि "'चारु०' के समान इस वर्ग के अन्य नाटक ('स्वप्नवासवदत्तम्' प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' तथा 'अविमारक') भी रूपान्तरण हो सकते हैं और शिल्प, शैली, भाव इत्यादि में सर्वविदित इनकी समानताओं से यह अनुमान निकाला जा सकता है कि इनके रचयिता ऐसे लेखक रहे होंगे जिनका एक विशिष्ट वर्ग होगा और जो एक सामान्य समूह अथवा सम्प्रदाय से सम्बन्धित होंगे तथा एक सामान्य उद्देश्य की सिद्धि के लिए कार्य करते होंगे।"[२]

मध्यवर्ती स्थिति को स्वीकार करने वाले कतिपय विद्वान् स्वप्न०', 'प्रतिज्ञा०' तथा 'चारु०' को भास की रचनाएँ मानते हैं।[३] भास का नामोल्लेख नहीं होने से अवश्य इन नाटकों को असंदिग्धरूपेण भास कृत मानने में कठिनाई उत्पन्न होती है। इन नाटकों की रचना गत विशेषताओं का निरूपण करते समय ये सामान्य तथ्य सामने लाये गये हैं, यथा—सूत्रधार द्वारा प्रस्तावना का प्रारंभ जिसे बाणभट्ट द्वारा संकेतित समझा गया है,[४] प्रस्तावना के लिए 'स्थापना' शब्द का प्रयोग, युद्ध तथा मृत्यु के दृश्यों का रंगमंचीय प्रदर्शन, कतिपय नाटकों का अवसादपूर्ण पर्यवसान तथा भरत वाक्य का भेद। मोटे रूप में यह तथ्य लक्षित किया गया है कि इन नाटकों में भरत के शास्त्रीय

१ वही, पृ० १०७

२ Plays Ascribed To Bhasa etc, पृ० ६१

३ S K De History of Sanskrit Lierature (1957) पृ० १०८

४ 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधार" के उल्लेख के बाद सूत्रधार प्रस्तावना का प्रारम्भ करता है।

विधानो का अनुपालन नही किया गया है। लेकिन, दूसरी ओर से यह भी प्रदर्शित किया गया है कि ये सभी रचना-गत विशेषताएं अन्यान्य रचयिताओ के बहुसंख्यक नाटकों की मलयालम पाण्डुलिपियो मे भी उपलब्ध होती हैं। क्लासिकल-पूर्व युग के नाटको की रचना-शैली (Pre-classical technique) के सम्बन्ध मे, पुन, हमे कोई जानकारी नही है। अतएव, ऐसी विशेषताएं जो त्रिवेन्द्रम नाटको तक ही सीमित नही हैं, किसी निर्णायक निष्कर्ष तक पहुँचने मे सहायक सिद्ध नही हो सकती अधिक से-अधिक, इनसे यही अनुमान किया जा सकता है कि दक्षिण भारत मे, भरत से अतिरिक्त, कोई अन्य नाटकीय परम्परा वतमान रही होगी, और इससे इन नाटको की प्राचीनता सिद्ध नही होती।[१]

तथापि, जैसा आरम्भ मे कहा गया है, अधिकाश भारतीय विद्वान् तथा प्राय सभी विदेशी विद्वान् त्रिवेन्द्रम नाटको को प्रसिद्ध भास की रचना मानते हैं। बाण इत्यादि रचयिताओ तथा आचार्यों ने 'भासनाटकचक्र' का उल्लेख किया है जिससे ज्ञात होता है कि भास ने अनेक नाटक लिखे होगे और ये नाटक साहित्यिक ख्याति प्राप्त कर चुके होगे। वामन तथा अभिनवगुप्त जैसे प्राचीन आचार्यों ने 'चारु०' के साथ 'स्वप्नवासवदत्त' से उद्धरण लिये हैं जो इन नाटकों का मुकुटमणि समझा गया है और जिसे प्राय भास की रचना मान लिया गया है। अतएव, जैसा डा० कीथ का कथन है, 'स्वप्नवासवदत्त' को भास कृत मान लेने की स्वाभाविक तथा तर्क सगत निष्पत्ति यही है कि अन्य बाहर नाटको को भी भास-कृत मान लिया जाय, यदि अन्त साक्ष्य का अनुमोदन प्राप्त हो, और इस सम्पूर्ण नाटकचक्र मे शैली, शिल्प, प्राकृत भाषा इत्यादि के आधार पर प्रचुर समानताएं खोज ही निकाली गई हैं।[२]

जो विद्वान् स्वप्न०', 'प्रतिज्ञा०', 'अवि०' तथा कुछ अन्य नाटको को भी भास-कृत मानते हैं, 'लेकिन 'चारु०' को भास कृत नहीं मानते, वे प्राय उसके खण्डित स्वरूप तथा 'मृच्छ०' से उसकी घनिष्ट समानता के कारण ही उन्हे

१ S K De Hist of Sanskrit Literature' (1947) पृ० १०८।

२ "The ascription of the svapnavasavadatta' to Bhasa Gives us the right to accept his author-ship of the rest if internal evidence supports it That this is so is undeniable, even by those who suspect the attribution to Bhasa, the coincidences in technique in the Prakrits, in metre and in style are over-whelming"—Dr Keith 'The Sanskrit Drama' (1959) पृ० ९२-९३

इस बात का लोभ हो जाता है कि 'मृच्छ०' जैसे प्रसिद्ध नाटक की स्पर्धा करनेवाले नव प्राप्त खण्डित नाटक को भास—जैसे प्राचीन नाटककार के साथ सम्बन्धित न किया जाय क्योंकि उसमे 'मृच्छ०' का गौरव प्रतिहत हो जाता है। डॉ० भाट ने प्रचुर अन्त साक्ष्यों का सकलन कर, स्पष्टतापूर्वक प्रतिपादित किया है कि 'चारु०' भास की रचना है और भास की कारयित्री प्रतिभा की सर्वश्रेष्ठ प्रसूति है —

"यह विश्वास करने का यथेष्ट आधार है कि चारु०' भास की लेखनी से ही उद्गमित है। एक-दो योजनाओं को छोड़कर, सामान्य सघटनात्मक कौशल, दिलचस्प नाटकीय स्थितियाँ, प्रकृत सवादो की प्रचुरता तथा इन सवादो मे उपलब्ध स्फूर्ति, कसावट, स्वाभाविकता तथा सूक्ष्म हास्य-विनोद—ये सभी तत्त्व यह सिद्ध करते हैं कि प्रस्तुत नाटक रचयिता की कारयित्री प्रतिभा के परिपक्व काल से सम्बद्ध है।"[१]

अब, सक्षेपकार के उद्देश्यो का पडितो-द्वारा जो निरूपण किया गया है, उनका प्रत्याख्यान यों किया जा सकता है —

(अ) दृश्य-परिवर्तन वाले संदर्भों का परित्याग

केवल दूसरे अक को छोड कर जिसमे जुआरियो वाले दृश्य का परित्याग किया गया है, 'चारु०' के सभी अको मे व्यापारो का द्वैत प्रदर्शित किया गया है जो कभी कभी साथ साथ चलते हैं और कभी-कभी एक दूसरे मे समाहित हो जाते हैं। वसतसेना का पीछा किया जाना और चारुदत्त की पूजन क्रिया, निद्रा वाला दृश्य और सज्जलक का सधिच्छेद, विदूषक का वसतसेना के घर जाना और मदनिका सज्जलक की प्रणय-कहानी—ये सभी व्यापार सफलता-पूर्वक तब तक नहीं प्रदर्शित किये जा सकते जब तक रगमंच का विभाजन नहीं किया जाय।[२]

अतएव, एक अक के भीतर दृश्य-परिवर्तन वाले सदर्भों के परित्याग की स्थापना सगत नहीं है।[३]

(आ) राज्य क्रान्ति के प्रकरण का परित्याग.

'चारु०' के वर्तमान सस्करण मे राज्य विप्लव के स्पष्ट सकेतों के अभाव

---

१ The Poona Orientalist', Vol XIV, Nos 1 to4 (1949) पृ० ७४-७७

२ 'The Poona Orientalist, Vol XIV, Nos, 1 to4, 1949,' पृ० ७३, पाद टिप्पणी।

३ यह भिन्न बात है कि 'मृच्छ०' की तुलना मे 'चारु०' रगमचीय प्रदर्शन की दृष्टि से अधिक सफल है।

से यह अर्थ नहीं ग्रहण किया जा सकता कि भास ने जान बूझकर, इस प्रकरण को छोड दिया। जैसा अभी दिखाया गया है, 'चारु०' के पूर्णरूप मे राज्य-क्रान्ति के उप-कथानक की योजना सन्निविष्ट रह सकती है।

(३) कथानक को सुखद अवसान प्रदान करना—"अमृताङ्क-नाटक" की सृष्टि की चिन्ता

"प्रिय मे अमृताङ्कनाटक सवृत्तम्"—यह 'चारु०' के चौथे अक के अन्त मे चेटी द्वारा वसन्तसेना से कहा गया वाक्य है। जैसा मैंने पूर्वपरिच्छेद में कहा है, मदनिका सज्जलक के प्रणय सयोग पर यह टिप्पणी चेटी द्वारा की गई है जो इस आनन्दपूर्ण अवसर के सर्वथा अनुकूल है। वसन्तसेना की जिस उक्ति के उत्तर मे यह कथन किया गया है, वह यो है—"पश्य जाग्रत्या मया स्वप्नो दृष्ट एवम्" (देखो, जागती हुई मैंने यह स्वप्न देखा है)। वसन्तसेना स्वय चारुदत्त की वधू बनने का स्वप्न देख रही है। प्रेम ने उसका हृदय कोमल बना दिया है। इसीलिए, सज्जलक-मदनिका-मिलन उसे वैसा ही आकर्षक एव आनन्ददायी सिद्ध हुआ है जैसा स्वप्न। चेटी निष्ठा-पूर्ण परिचारिका है और अपनी स्वामिनी की आकाक्षाओं तथा भावनाओ की पुष्टि तथा अनुमोदन करना वह अपना कर्त्तव्य समझती है। इसीलिए, जब गणिका ने कहा—"जागती हुई मैंने यह स्वप्न देखा है", तब चेटी ने कहा—"यह तो मेरे लिए अमृत से भरा नाटक जैसा प्रिय लगा।" 'नाटक' इसलिए कि मदनिका सज्जलक मिलन सोलहो आने 'नाटकीय' रहा क्योकि वह नितान्त अप्रत्याशित रूप से सम्पन्न हुआ, परिचारिका "आर्या" बन गई,[1] वसन्तसेना की उदारता भी 'नाटकीय' ही रही, कौन जानता था चारुदत्त के घर से चोरी करके लाये हुए अपने आभूषण वसन्तसेना-द्वारा मदनिका को दे दिये जाएगे और वह 'साहसी' सज्जलक की वैध 'वधू' स्वीकार कर ली जाएगी। यह सभी सदर्भ "अमृताङ्कनाटक" की व्याख्या के लिए पर्याप्त है।

जागीरदार ने कहा है—"It is a very curious and unusual remark which on second thoughts, makes us wonder if it is not a criticism of the other play, viz., the Mrchhakatika (चेटी का यह वाक्य एक अत्यन्त विचित्र तथा असाधारण कथन है जिसे दुबारा सोचने पर, हम आश्चर्य मे पड जाते हैं कि यह दूसरे नाटक 'मृच्छकटिक' पर की गई टिप्पणी तो नही है।')[2]

---

१ वसन्तसेना ने मदनिका को 'आर्या' कहा है—"आर्या सत्वसीदानी सवृत्ता।"

२ Drama In Sanskrit Literature' (१९५७) Appendix पृ० १६२.

जागीरदार ने चेटी के कथन में वह व्यंजना देखी है जो वे उसमें देखना चाहते थे। उन्होंने पूर्व धारणा बना ली थी कि 'मृच्छ०' का रंगमंचोपयोगी रूपान्तर 'चारु०' है, यह भी कि वह भास द्वारा लिखित नहीं है।

[उन्होंने स्पष्ट टिप्पणी की है "A Bhasa who could show Duryodhana die on the stage would never put such a limitation on his art" ("वह भास जो 'उरुभंग' नाटय में दुर्योधन की मृत्यु रंगमंच पर प्रदर्शित कर सकता था, अपनी कला को इस प्रकार की सीमा में प्रतिबन्धित नहीं करेगा।")[1]]

अपनी इन दोनों धारणाओं को मिला कर, जागीरदार स्वभावत इस निश्चय पर पहुँच गये कि "अमृताच्छूनाटक" वाली चेटी का कथन, 'मृच्छ०' के अवसादपूर्ण कथानक, विशेषतया उसके नायक नायिका के ऊपर अवतरित विपत्ति एवं संकट के सम्बन्ध में की गई प्रतिकूल टिप्पणी है। जैसा मैंने दिखाया है, 'चारु०' भास की रचना है और भास के सामने यह उद्देश्य नहीं था कि नाटक को एकान्त सुखात्मक बना दिया जाय, साथ ही, चेटी का वनमान कथन उसकी आनन्दानुभूति का सूचक है और उसमें कोई प्रसंग बाह्य दूरारूढ व्यंजना की खोज करना सर्वथैव असंगत है।

'चारुदत्त' का परिवर्धित रूपान्तर 'मृच्छकटिक'

हमने अभी दिखाया है कि 'चारु०' 'मृच्छ०' का संक्षिप्त रूपान्तर नहीं है। प्रस्तुत प्रसंग में यह निरूपण किया गया है कि 'मृच्छ०' 'चारु०' का परिवर्धित संस्करण है। गणपति शास्त्री ने स्वप्नवासवदत्तम्' की भूमिका में इन दोनों नाटकों की समानताओं का पहले पहल दिग्दर्शन कराया और यह अभिमत प्रकट किया कि 'चारु०' का "छोटा नाटक, सुन्दर अवतरणों के जोड़ से, शूद्रक द्वारा रचित समझे जाने वाले 'मृच्छ' के नाम से प्रसिद्ध हो गया है जिसका कथा विन्यास इन नवीन अवतरणों के कारण अधिक रुचिर एवं रोचक बन गया है"[2] तब से अधिकांश विद्वानों ने शास्त्री की स्थापना स्वीकार कर ली है और प्रस्तुत लेखक को भी यह मत मान्य प्रतीत हुआ है।

(क)

डा० सुकथकर ने यह टिप्पणी करते हुए कि 'चारु०' की संक्षिप्तता और 'मृच्छ०' की विस्तीर्णता के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि 'चारु०'

---

१ वही, पृ० १६३

२ Ganapati Shastri 'Svapnavasavadatta, Introduction PP xxxviii—xlii

'मृच्छ०' का मूल है, दोनों नाटकों की विषमताओं का अध्ययन किया है और अपने ढंग से यह स्थापना की है कि 'चारु०' 'मृच्छ०' का आधार माना जा सकता है। विषमताएँ चार वर्गों में रखी जा सकती हैं : (१) शैली अथवा टेक्नीक (२) प्राकृत, (३) छन्दोरचना तथा (४) नाटकीय घटना-विन्यास। इनमें से प्रत्येक का पृथक्-पृथक् विवेचन नीचे किया जा रहा है।

(१) शैली अथवा टेकनीक

जैसा पहले दिखाया जा चुका है, 'चारु०' का 'मृच्छ०' से (जैसा अन्य क्लासिकल नाटकों से) मुख्य अन्तर दो विवरणों में हैं प्रथमतः, 'चारु०' की दोनों उपलब्ध प्रतियों में सामान्य 'नान्दी' नहीं है,[२] द्वितीयतः, स्थापना में नाटक अथवा नाटककार का कोई उल्लेख नहीं है तथा सभासदों के प्रति सामान्य संबोधन का भी अभाव है। इसके विपरीत 'मृच्छ०' में दो श्लोकों का नान्दी दिया है तथा सूत्रधार के आरम्भिक कथन में नाटक तथा नाटककार की प्रशस्ति उपनिबद्ध हुई है।

(चारु०' की एक दूसरी विशेषता यह है कि वहाँ चारुदत्त अपने नाम से स्थापित नहीं होकर अपनी भूमिका के अनुसार, 'नायक' शब्द से अभिहित किया गया है, वसन्तसेना भी अपने नाम से नहीं, अपितु 'गणिका' शब्द से विज्ञापित हुई है।

'चारु०' की प्रथम दोनों विशेषताओं को अधिक महत्व नहीं दिया जा सकता। आरम्भ में गणपति शास्त्री जैसे विद्वानों ने त्रिवेन्द्रम नाटकों में प्राप्त इन विशेषताओं की ओर पंडितों का ध्यान आकर्षित किया था (इन नाटकों में प्रस्तावना के लिए 'स्थापना' शब्द का प्रयोग हुआ है)। किन्तु तब से दक्षिण भारत के अन्य अनेक लेखकों के नाटकों को पता लगाया गया है जिनमें इन विशेषताओं में से कुछ का प्रयोग उपलब्ध है। जहाँ तक तीसरी विशेषता का प्रश्न है, ल्यूडर्स-जैसे विद्वानों ने इसे पुरानी प्रथा (Archaism) स्वीकार किया है क्योंकि अश्वघोष के नाटकावशेषों में यही बात पायी जाती है जहाँ मगधवती को उसके नाम से नहीं अपितु उसकी भूमिका के अनुरूप "गणिका" शब्द से विज्ञापित किया गया है। श्रीहर्ष-रचित 'नागानन्द' नाटक में भी यह प्रणाली अपनाई गई है जिसे ल्यूडर्स ने रचयिता-द्वारा जान बूझ कर अपनाये जाने की बात कही है। लेकिन ल्यूडर्स की प्रस्तुत स्थापना पंडितों द्वारा इस आधार पर खंडित समझी गई है कि कुलशेखरवर्मन-द्वारा रचित 'तपतिसंवरण' नामक नाटक

---

२ नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः" से नाटक आरम्भ होता है और प्रस्तावना के लिए 'स्थापना' शब्द का प्रयोग हुआ है।

मे,जो प्राचीन नही, अपितु अर्वाचीन रचना है, नायिका को उसके नाम से नही, अपितु 'नायिका' शब्द से विज्ञापित किया गया है।[१] अतएव इन टेक्निकल विशेषताओ के आधार पर 'चारु०' की प्राचीनता और 'मृच्छ०' की पश्चाद्-भाविता का निरूपण नही किया जा सकता।

(२) प्राकृत

विद्वानो ने बडे परिश्रम के साथ भास के नाटको की प्राकृत का अध्ययन किया है और यह प्रतिपादन किया है कि इन नाटको की प्राकृत, क्लासिकल नाटको मे प्रयुक्त प्राकृत की अपेक्षा सामान्यतया पुरानी है। 'चारु०' की प्राकृत, इस प्रकार, 'मृच्छ०' की प्राकृत से पुरानी समझी गई है। सुकथनकर ने 'चारु०' मे प्राप्तव्य "अहमाअ", "अह्के", "आम", "करिअ," "गच्छिअ," "किस्स" "दिस्स", 'खु' (खलु) 'तुव' इत्यादि रूपो के आधार पर 'चारु०' की प्राकृत को पुरानी माना है। लेकिन, देवधर ने इन समस्त रूपो की वर्तमानता क्लासिकल युग के नाटको मे भी, तथा विशेषतया दक्षिण भारत के नाटको मे, प्रदर्शित की है।

अतएव, 'चारु०' को पुरानी रचना सिद्ध करने के लिए प्राकृत रूपो का आधार बहुत पुष्ट नही कहा जायगा।[२]

(३) छन्दोरचना

यह भी दिखाया गया है कि दोनो नाटको मे प्राप्त समान श्लोको की तुलना से यह प्रत्यक्ष होता है कि 'मृच्छ०' का पाठ 'चारु०' की अपेक्षा प्राय सदैव श्रेष्ठ एव सुन्दर है।[३] इसके प्रतिपादनार्थ कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। अपनी परीक्षा के लिए मैं उनमे से दो तीन उदाहरण यहाँ ले रहा हूँ।

(१) प्रथम अक के एक श्लोक मे चारुदत्त ने कहा है कि जैसे अन्धकार मे दीपक का प्रकाश रुचिकर होता है, वैसे ही दुख के अनुभव के बाद ही सुख का आगमन शोभा देता है। यह कथन दोनो नाटको मे यो उपलब्ध है—

"सुख हि दु खान्यनुभूय शोभते
यथान्धकारादिव दीपदर्शनम् ॥" ('चारु०', १।३)

"सुख हि दु खान्यनुभूय शोभते
घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम् ।" ('मृच्छ०', १।१०)

---

१. देवधर Plays Ascribed To Bhasa etc (1927) पृ० २५

२ वही, पृ० २४, ५४।

३. 'In the verses common to both plays the Mrccha-katik' almost always offers better readings ...' Sukathankar Memorial Edition Vol II Anhlecta पृ०११७

पंडितों ने बताया है कि दूसरी पंक्ति में 'चारु०' में जहाँ "यथा" का प्रयोग है वहाँ 'मृच्छ०' में "धना" रखकर पहले प्रयोग के दोष का माजन कर दिया गया है। यह कथन संगत है क्योंकि समानता सूचक "इव" के होते हुए, इसी अर्थ वाले "यथा" का प्रयोग अनावश्यक सिद्ध होता है।

पुन उसी श्लोक की अन्तिम पंक्तियों में चारुदत्त ने कहा है कि जो व्यक्ति सुख के बाद दरिद्र हो जाता है। वह जीवित होने पर भी मृतक तुल्य है —

'सुखात् यो याति दशा दरिद्रता
स्थित शरीरेण मृत स जीवति।'
('चारु०')

'सुखात् यो याति नरो दरिद्रता
धृत शरीरेण मृत स जीवति।'
(मृच्छ०')

पहली पंक्ति के संबंध में कहा गया है कि 'चारु०' में "दशा दरिद्रता" का प्रयोग भद्दा (clumsy) बन गया है जब कि 'मृच्छ०' में "दशा" की जगह "नरो" रखकर, इस अशुद्ध प्रयोग से बचने की चेष्टा की गई है—'दशा दरिद्रा" का प्रयोग (व्याकरण से) सही होगा।

'दशा दरिद्रता" व्याकरण में सर्वथा अशुद्ध है ऐसा तो नहीं ही माना जा सकता और न माना ही गया है, "दशा दरिद्रा" अवश्य श्रेष्ठतर 'पाठ' हुआ रहता।

लेकिन, मेरी समझ से अंतिम पंक्ति में 'मृच्छ०' के 'धृत शरीरेण' की तुलना में 'चारु०' का 'स्थित शरीरेण" अधिक सुष्ठु प्रयोग माना जाएगा।

(२) पहले अंक के एक श्लोक में विट ने मैत्रेय से कहा है कि वे लोग एक स्वाधीनयौवना वनिता का पीछा कर रहे थे जब कि वह उनके चंगुल से भग गई और चेटी भूल से अपमानित हो गई। श्लोक यों हैं —

"अकामा ह्रियतेऽस्माभि काचित् स्वाधीनयौवना।
सा भ्रष्टा शङ्कया तस्या प्राप्तेय शीलवञ्चना॥"
('चारु०', १।२५)

'सकामाऽन्विष्यतेऽस्माभि काचित् स्वाधीनयौवना।
सा नष्टा शङ्कया तस्या प्राप्तेय शीलवञ्चना॥"
(मृच्छ०', १।४४)

'चारु०' में ऐसी नारी के अपहरण प्रयासका कथन किया गया है जो स्वत इच्छुक नहीं है, "अकामा" है जब कि 'मृच्छ०' में ऐसी नारी की खोज का कथन किया गया है जो स्वत इच्छुक है, "सकामा" है। 'अकामा' के

बदले 'सकामा' कहने से 'चारु०' के विट के चरित्र में दिखाई पड़ने वाली स्पष्टभाषिता 'मृच्छ०' के विट में परिष्कृत हो गई है और नहीं बात को छिपाने की उसकी ढंग सुन्दर ढंग से प्रकाश में ला गई है—ऐसा पंडितों ने बताया है।

मैं अपने तईं इस 'तर्कना' से सहमत नहीं हूँ। 'चारु०' के विट के चरित्र की अवधारणा एक दृष्टि से हुई है और 'मृच्छ०' के विट का चरित्राङ्कन दूसरी दृष्टि से। अनेक विद्वानों ने दिखाया है कि 'चारु०' में विट, वसन्तसेना इत्यादि के चरित्र अपकर्षमूलक रहे हैं जब कि 'मृच्छ०' में उनको सौष्ठव से सम्पन्न बनाया गया है। मैंने पिछले अध्याय में इस आरोप का सप्रमाण उच्छेद किया है। सुतरां, इस सन्दर्भ में यह तर्कना उचित नहीं कही जाएगी कि "अकामा" के बदले 'सकामा" का पाठ अधिक श्रेष्ठ है।

(३) प्रथम अंक के अन्त में वसन्तसेना के घर जाने के समय में चारुदत्त ने चन्द्रोदय का वर्णन किया है। श्लोक यों हैं —

"उदयति हि शशाङ्कः क्लिन्नखर्जूरपाण्डुः—
युवतिजनसहायो राजमार्गप्रदीपः।"
('चारु०', १।२९)

"उदयति हि शशाङ्कः कामिनीगण्डपाण्डुः—
ग्रहगणपरिवारो राजमार्गप्रदीपः।"
('मृच्छ०', १।५७)

पहले श्लोक में चन्द्रमा को आर्द्र खजूर की तरह शुभ्र' और दूसरे श्लोक में 'कामिनी के कपोल-स्थल की भाँति शुभ्र' कहा गया है। उन दोनों उपमाओं में 'आर्द्र खर्जूर' का उपमान अधिक सरल एवं यथार्थ है जब कि 'कामिनी-गण्ड' का उपमान अधिक शृंगारिक एवं मनोरम है। किन्तु, इससे यह नहीं सिद्ध किया जा सकता कि 'मृच्छ०' का पाठ 'चारु०' की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित अथवा श्रेष्ठ है।

(४) तीसरे अंक के प्रारंभ में चारुदत्त और विदूषक संगीत का आस्वाद लेने के बाद बहुत रात गये घर लौटते हैं। उस समय चारुदत्त ने अस्ताचल को जाते चन्द्रमा का वर्णन किया है। श्लोक यों हैं —

'असौ हि दत्त्वा तिमिरावकाशमस्तं गतो ह्यष्टमपक्षचन्द्रः।
तोयावगाढस्य वनद्विपस्य विषाणकोटीव निमज्जमाना॥"
('चारु०', ३।३)

"असौ हि दत्त्वा तिमिरावकाशमस्तं व्रजत्युन्नतकोटिरिन्दुः।
जलावगाढस्य वनद्विपस्य तीक्ष्णं विषाणाग्रमिवावशिष्टम्॥"
('मृच्छ०', ३।६)

'चारु०' मे कहा गया है कि अष्टमी का अस्तगत चन्द्रमा अन्धकार में विलीन होता हुआ ऐसा दीख पडता है जैसे जल मग्न बनैले हाथी के दातो का अग्रभाग जल के भीतर डूबता जा रहा हो। मृच्छ०' मे कहा गया है कि अस्ताचल को जाता चन्द्रमा अधकार मे विलीन होता ऐसा दिखाई पडता है जैसे जल मग्न बनैले हाथी के दातो का तीक्ष्ण अग्रभाग पानी मे डूबने से बच गया हो। इन दोनो उपमाओं म किसी एक को दूसरे से श्रेष्ठ अथवा हीन नहीं ठहराया जा सकता। लेकिन, 'चारु०' के 'निमज्जमाना'' मे भयकर व्याकरणीय भूल हुई है क्योकि 'नि मज्ज' धातु सस्कृत मे परस्मैपदी है और उसके साथ 'शानच' प्रत्यय का 'मान'' व्यवहृत नही हो सकता।

(५) तीसरे अक मे सन्धिच्छेद के सदर्भ मे, शर्विलक (सज्जलक) चतुःशाला मे प्रवेश करता हुआ इस बात का स्मरण करता है कि पडित गण छल-पूर्वक की गई चोरी को शौर्य-कर्म नही मानकर, निकृष्ट कर्म मानते है। श्लोक की सबद्ध पक्तियाँ यो हैं —

"काम नीचमिद वदतु विबुधा सुप्तेषु यद्वर्तते
विश्वस्तेषु हि वञ्चनापरिभव शौर्यं न कार्कश्यता।"
(चारु०', ३।६)

"काम नीचमिद वदतु पुरुषा स्वप्ने च यद्वर्तते
विश्वस्तेषु च वञ्चनापरिभवश्चौर्यं न शौर्यं हि तत्।"
('मृच्छ०', ३।११)

'चारु०' मे विश्वस्तजनो की वञ्चना को शौर्य न बताकर, कर्कश (क्रूर) कर्म बताया गया है जब कि 'मृच्छ०' मे कहा गया है कि विश्वस्तजनो की वञ्चना शौर्य नही, चौर्य (चोरी) कहलाती है। स्पष्ट है कि 'चारु०' मे "कर्कश" का द्विगुणित भाववाचक शब्द "कार्कश्यता" ('कार्कश्य' स्वत भाववाचक है) व्याकरण से परिमार्जित प्रयोग नही है। मृच्छ०' मे इस प्रयोग को बचाकर, "शौर्य" की शैली मे "चौर्य" का व्यवहार किया गया है जो वाछनीय परिवर्तन समझा जायगा।

उपर्युक्त उद्धरणो को देखते हुए, मेरी अपनी स्थापना यह है कि शब्दो अथवा पदो के प्रयोग का जहाँतक प्रश्न है, 'चारु०' मे ऐसे दृष्टान्त अवश्य प्राप्तव्य हैं जिनमे या तो व्याकरण दृष्टि से दोषावह प्रयोग हुए हैं अथवा अन्य ऐसे प्रयोग हुए हैं जिनमे भाषागत या शैलीगत परिमार्जन का अवधान हुआ है। पहले प्राशारक के सम्बन्ध मे "प्रवेश्यताम्" के स्खलित प्रयोग का उल्लेख हो चुका है। लेकिन मैं यह नहीं मानता कि चरित्राकन की दृष्टि से 'चारु०' 'मृच्छ०' की तुलना मे त्रुटिपूर्ण अथवा दुर्बल है या यह कि काव्य सौन्दर्य की

दृष्टि से 'मृच्छ०' में उपलब्ध प्रयोग की भिन्नताएँ 'चारु०' की तुलना में सर्वदा बाहतर अथवा श्रेष्ठतर हैं। पिछले अध्याय में मैंने दिखाया है कि कई उपमाएँ 'चारु०' में 'मृच्छ०' की अपेक्षा अधिक सटीक एवं व्यञ्जक हैं और साथ ही, चरित्राङ्कन की दृष्टि से, 'चारु०' के चारुदत्त एवं वसन्तसेना 'मृच्छ०' की तुलना में अधिक यथार्थ एवं आकर्षक सिद्ध होते हैं।

(४) नाटकीय घटना-विन्यास

समीक्षकों की टिप्पणी है कि 'मृच्छ०' में घटनाओं का चयन एवं संगुम्फन 'चारु०' की अपेक्षा सुन्दर एवं श्रृंखलित हुआ है। उस तर्कणा के अनुमोदन में निम्न तथ्य नियोजित हुए हैं —

(१) 'चारु०' का व्यापार विदूषक के स्वगत-कथन से प्रारम्भ होता है जिसके बाद नायक और विदूषक में दरिद्रता-विषयक लम्बा वार्तालाप हुआ है। यह वार्तालाप, किन्तु, वसन्तसेना के बाहर सड़क पर शकार तथा विट के द्वारा पीछा किये जाने के दृश्य से सहसा खण्डित हो गया है। 'मृच्छ०' में दृश्य का यह आकस्मिक परिवर्तन बड़ी चातुरी के साथ चारुदत्त के इस कथन से बचा लिया गया है कि "वयस्य तब तक ठहरिये। मैं सायंकालीन जपादि से निवृत्त हो लूँ": "भवतु। तिष्ठ तावत्। अहं समाधिं निर्वर्तयामि।' पुनः चारुदत्त कहता है कि "हे मित्र! मैंने जपादि समाप्त कर लिया" . "वयस्य! समाप्तजपोऽस्मि।" ठीक इसी समय वसन्तसेना चारुदत्त के पार्श्वद्वारपर पहुँच जाती है। इस प्रकार, चारुदत्त की 'समाधि' का काल सम्बद्ध व्यापार बिन्दुओं को चारुतापूर्वक जोड़ देता है, अर्थात्, जब तक वह पूजोपचार में संलग्न है, तब तक वसन्तसेना के पीछा किये जाने और उसके भागकर चारुदत्त के पार्श्व द्वार पर पहुँच जाने का व्यापार सम्पन्न हुआ है। चारुदत्त के ये कथन 'चारु०' में उपलब्ध नहीं हैं।

(२) 'चारु०' के चतुर्थ अंक में सज्जलक अपनी प्रेयसी मदनिका को स्वतन्त्र करने के निमित्त सन्धिच्छेद से प्राप्त आभूषण लेकर, गणिका के महल तक आता है और बाहर खड़े होकर ऊँची आवाज में मदनिका को बुलाता है। मदनिका अपनी स्वामिनी की परिचर्या में है, किन्तु यह देखकर कि वसन्तसेना कुछ सोच विचार में मग्न है वह चुपके से खिसक जाती है और सज्जलक से मिलती है। सज्जलक का उच्च स्वर वसन्तसेना को सुनाई न पड़ा हो और उसकी विचार-मुद्रा भग न हुई हो, ऐसा समझना असंगत एवं अयौक्तिक है। 'मृच्छ०' में यह स्पष्ट असंगति, फिर बचा ली गई है शर्विलक वसन्तसेना के महल के बाहर खड़ा उचित अवसर की प्रतीक्षा कर रहा है, उसी समय

वसन्तसेना मदनिका को किसी कार्य से बाहर भेजती है, लौटते समय वह शर्विलक द्वारा देख ली जाती है और नितरां स्वाभाविक रीति से दोनों मिल जाते हैं।

(३) 'चारु०' के इसी प्रसंग में पहले विदूषक मुक्तावली लेकर गणिका के सामने आया और चला गया है, तब उसके बाद सज्जलक वसन्तसेना के सम्मुख उपस्थित किया जाता है और मदनिका को प्राप्त कर, लौट जाता है। किन्तु 'मृच्छ०' में शर्विलक-मदनिका मिलन के उपरान्त मैत्रेय आया है और उसके प्रस्थान के अनन्तर ही, वसन्तसेना ने चारुदत्त के घर अभिसार करने की योजना बनाई है।

(४) 'चारु०' के प्रथम तीन अंकों के समग्र विश्लेषण से ज्ञात होता है कि इनमें विकसित घटनाएँ किसी चान्द्र-पक्ष की षष्ठी, सप्तमी एवं अष्टमी तिथियों को लगातार घटित हुई हैं। 'मृच्छ०' के पहले तीन अंकों की घटनाएँ भी उपरित- तीन दिनों के भीतर घटित हुई हैं, किन्तु, इस तथ्य की स्पष्ट स्थापना के लिए कोई प्रत्यक्ष उल्लेख वहाँ उपलब्ध नहीं है। 'चारु०' में दो ऐसे श्लोक भी मिलते हैं जिनमें चन्द्रोदय (१।२९) और चन्द्रास्त (३।३) का वर्णन हुआ है। विद्वानों ने दिखाया है कि इन दोनों श्लोकों में चन्द्रमा के उगने और अस्त होने का जो कथन किया गया है उसको षष्ठी, सप्तमी एवं अष्टमी तिथियों के प्रत्यक्ष उल्लेख से मिला देने पर, 'चारु०' की तिथि योजना असंगति-पूर्ण बन जाती है, 'मृच्छ०' में यह दोष नहीं आने पाया है।[१]

(ख)

(१) प्रथम तुलना उचित एवं संगत समझी जाएगी। 'चारु०' में नायक और विदूषक का मिलाप सचमुच आकस्मिक रीति से घटित हो गया और जब वसन्तसेना अन्धकार में भागकर, चारुदत्त के पक्षद्वारपर पहुँच आई है, तब नायक ने स्वाभाविक ढंग से विदूषक को आदेश दिया है कि वह चतुष्पथ पर जाकर मातेश्वरी आदि शक्तियों को बलि चढ़ा आए। स्वभावतः यह जिज्ञासा यहाँ उत्पन्न होती है कि इस बीच की अवधि में नायक और विदूषक क्या करते रहे ? इसका समाधान 'चारु०' में नहीं है जब कि 'मृच्छ०' में चारुदत्त को 'समाधि' की व्यवस्था कर यह रिक्ति भर दी गई है। अतएव, यह स्थल 'मृच्छ०' में कलात्मक कौशल से समन्वित समझा जाएगा।

(२) सज्जलक के मदनिका को उच्च स्वर में बुलाने की बात भी कला-

---

१ 'Sukthankar Memorial Edition, vol. II, Analecta' (1945), पृ० ११३–२२

दोष मानी जाएगी। जो सज्जलक नितान्त सावधानी तथा कुशलता से संधि-च्छेद-जैसा संकट पूर्ण कृत्य सम्पन्न कर सकता है, उसे यह तो समझना चाहिए था ही कि वसन्तसेना को ऊँची आवाज से बुलाना खतरे से खाली नहीं है। (सज्जलक का यह आचरण इस अनुमान से क्षम्य हो सकता है कि बहुमूल्य रत्नाभूषण को प्राप्त करने के बाद, उसे अपनी प्रेमिका से मिलने की जल्दबाजी उद्विग्न कर रही थी जिस कारण वह गणिका के घर पहुँचने के बाद, और प्रतीक्षा नहीं कर सकता था। तो भी 'मदनिके! मदनिके!" कहकर चिल्लाना उचित नहीं प्रतीत होता।)

(३) विदूषक के वापस चले जाने के बाद 'चारु०' में जो सज्जलक का वसंतसेना के समुख उपस्थित होना दिखाया गया है, वह मेरी दृष्टि में आपत्ति-जनक नहीं है। मृच्छ०' में शर्विलक-मदनिका-मिलन सम्पन्न कराने के बाद (जब मदनिका शर्विलक की पत्नी बन कर उसके साथ चली गई है), नाटक-कार ने इतमीनान के साथ विदूषक को वसंतसेना के समुख उपस्थित किया है। वह वसंतसेना के भव्य प्रासाद के विभिन्न प्रकोष्ठों का वर्णन करना चाहता था और इनमें से प्रत्येक का प्रत्यक्ष अनुभव मैत्रेय को कराना चाहता था। इस सम्पूर्ण व्यापार के लिए समय और फुरसत की आवश्यकता थी, और यह तभी सम्भव था जब शर्विलक मदनिका-काण्ड से लेखक एकदम निवृत्त हो गया हो। 'मृच्छ०' में, इसी कारण, शर्विलक के उपरान्त विदूषक को वसंतसेना के समुख उपस्थित किया गया है। लेकिन, 'चारु०' के रचयिता की योजना बिल-कुल भिन्न है, और यह योजना अपेक्षया अधिक नाटकीय आस्वाद से परिपूर्ण है।

'चारु०' में सज्जलक के आगमन तथा उसके उद्देश्य की प्रच्छन्न विज्ञप्ति कराई जाने के बाद, सज्जलक को कामदेव के मन्दिर में प्रतीक्षा करने के लिए छोड़ दिया गया है—मदनिका अवसर देख कर, वसंतसेना से उसके संबंध में निवेदन करेगी—"अहमवसर ज्ञात्वाऽज्जुकायै निवेदयामि।" यहाँ भास ने स्पष्ट "अवसर" की प्रतीक्षा की बात कही है। 'मृच्छ०' में स्थिति भिन्न है। वहाँ मदनिका ने शर्विलक से कामदेव-गृह में "क्षण मात्र" ठहरने के लिए अनुरोध किया है जब तक वह वसंतसेना से उसके आगमन की सूचना नहीं दे आती—"तेन हि त्वमस्मिन् कामदेवगेहे मुहूर्तक तिष्ठ यावदार्यायै त्वागमन निवेद-यामि।" अर्थात्, भास का 'अवसर' समय सापेक्ष है, उस अवसर के आने में कुछ समय लगेगा। इसी समयान्तराल में 'चारु०' के विदूषक के आगमन की सूचना मिलती है; वह चेटी-द्वारा वसंतसेना के कक्ष में लाया जाता है; जुए में हारने के बहाने से चारुदत्त द्वारा प्रेषित रत्नावली वह वसंतसेना को अर्पित

करती है, वसंतसेना द्यूत-पराजय के रहस्य से अभी अभी परिचित हो चुकी है, वह रत्नावली ग्रहण कर लेती है और विदूषक तत्काल निकल जाता है। यह संपूर्ण व्यापार पाँच सात मिनट के अन्तराल में सम्पन्न हो गया समझा जा सकता है। इस अन्तराल के बीत जाने के बाद, मदनिका भीतर प्रवेश करती है और सज्जलक के आगमन का वसन्तसेना से निवेदन करती है। सज्जलक, मदनिका के पूर्व निर्देश का अनुसरण कर, चारुदत्त के संदेश का छलपूर्ण कथन करता है—"मुझे आर्य चारुदत्त ने भेजा है और यह संदेश कहलवाया है कि जो अलंकार मेरे हाथों धरोहर-रूप में सौंपा गया था, उसकी रक्षा करना घर की टूटी फूटी दशा के कारण, कठिन हो गया है। (अत आप इसे ग्रहण करें)।"

स्मरणीय है कि 'मृच्छ०' में भी शर्विलक-द्वारा ऐसा ही कथन कराया गया है। वहाँ भी वसंतसेना को यह छिपी जानकारी मिल गई है कि शर्विलक ने उस अलंकार का रात में अपहरण किया है। किन्तु, 'चारु०' का प्रस्तुत संदर्भ अतिरिक्त सौन्दर्य से भरित हो गया है—वसंतसेना को अपने अलंकार-न्यास के बदले बहुमूल्य रत्नावली मिल चुकी है और अब उसे अपना सुवर्णा-भूषण भी मिल रहा है। इस प्रकार, वसन्तसेना का मानसिक उल्लास द्विगुणित हो गया है, रत्नावली तो उसने प्रयोजनवशात् ही स्वीकार की है, किन्तु फिर भी, उसे मानसिक परितृप्ति एवं उत्साह का एक प्रेरक आधार तो मिल ही गया है। इसी मानसिक पृष्ठ भूमि में, वसन्तसेना अपने अलंकारों से मदनिका का अलंकरण करती है और उसे "आर्या" की अभिधा से गौरवान्वित कर, शर्विलक के साथ प्रसन्नता पूर्ण विदाई देती है। वह सम्पूर्ण व्यापार उसे ऐसा सजीला, आश्चर्य तथा विस्मयजनक प्रतीत होता है जैसे उसने जागती हुई वह स्वप्न देखा है—"पश्य जाग्रतया मया स्वप्नो दृष्टः।" और फिर उसकी भावनाओं का और भी स्पष्ट मुखरण उसकी निष्ठामयी परिचारिका द्वारा यों किया गया है—"प्रियं मे अमृताङ्कनाटक संवृत्तम्।"

'मृच्छ०' में शर्विलक-मदनिका मिलन को ऐसा महत्त्व नहीं मिला है। वहाँ, जैसा पहले कहा गया है वसन्तसेना के प्रकोष्ठों का वर्णन नाटककार को अभीष्ट था जिसका उद्देश्य था मैत्रेय को प्रभावित करना। भास विदूषक को जल्दी विदा कर देना चाहते थे जिससे सज्जलक-मदनिका मिलन की वह मोद-मयी घटना पूर्ण उभार में आ सके, 'अमृताङ्क नाटक' के ऊपर पाठक अथवा प्रेक्षक की दृष्टि थोड़ी देर तक रम सके, और तब, वह मंगलमय मिलन सम्पन्न कराने के बाद, उसी की लीक में, वसन्तसेना का अपने प्रिय चारुदत्त के साथ भी वैसा ही अमृताङ्क' संमिलन घटित हो सके। काने ने कहा है कि 'मृच्छ०'

मे मैत्रेय के मुक्तावली देने के बाद वसन्तसेना चारुदत्त की उदारता से प्रभावित होती है और तत्काल उसके पास अभिसार करने का निश्चय करती है। किन्तु, 'चारु०' के संबंध मे कुछ वैसी ही बात, अधिक औचित्य के साथ, यो कही जा सकती है—'वसंतसेना को अपना सुवर्णाभूषण पहले-ही मिल चुका है, इसने उसके मानस्पटल मे चारुदत्त की उदारता एवं उच्चाशयता की छाप अंकित हो चुकी है, अब सज्जलक-मदनिका मिलन का आनंद उसे मधुर भावनाओं से भर देता है और वसन्तसेना एक प्रणय संयोग सम्पन्न कराने की मोदमयी अनुभूति से गद्गद् होकर, अपने निजी प्रणय मिलन के लिए अभिसार करने को उद्यत हो जाती है।'

अस्तु। मैं यह नहीं कहता कि 'मृच्छ०' का प्रस्तुत प्रसंग 'चारु०' की अपेक्षा हीन महत्त्व का है, किंतु साथ ही, यह भी नहीं मानता कि 'चारु०' की तुलना मे वह अधिक चारु एवं व्यवस्थित है। दोनो नाटककारों की अपनी अपनी योजना थी और उसकी चरितार्थता के निमित्त उन्होंने शर्विलक और विदूषक को आगे-पीछे वसन्तसेना के सम्मुख उपस्थित कराया है।

(४) तिथि योजना 'चारु०' की त्रुटि पूर्ण हो गई है, इसमे पर्याप्त सार है। प्रथम अंक मे विदूषक कहता है कि षष्ठी तिथि पर देव-कार्य सम्पादित करने वाले मान्य चारुदत्त के निमित्त वह पुष्प एवं परिधेय वस्तु लाया है—"ना सट्ठीकिददेवकय्यस्स × × ×।" इससे प्रतीत होता है कि उस दिन षष्ठी की तिथि थी। बाद मे, उसी अंक मे चेटी को सुवर्णालंकार देता हुआ कहता है कि षष्ठी एवं सप्तमी को वह उस आभूषण की रक्षा करेगी और वह अष्टमी तिथि को, अनध्याय होने के कारण, उसे धारण करेगा—"सट्ठीए सत्तमीए अ धारेहि। अह अट्ठमीए अणज्झाए धारइस्सं।" तीसरे अंक मे चेटी अलंकार की पेटी हाथ मे लिये प्रवेश करती है और विदूषक को स्वर्णभाण्ड सौंपते हुए कहती है कि षष्ठी एवं सप्तमी तिथियो के बीत जाने पर वह उसे सुवर्ण भाण्ड देना चाहती है क्योंकि उस दिन अष्टमी की तिथि है—"इअं सुवण्णभाण्डं सट्ठीए सत्तमीए परिवेट्ठामि। अट्ठमी क्खु अज्ज।" उसी अंक मे आगे चल कर चारुदत्त की पत्नी ब्राह्मणी, यह सुन कर कि वसन्तसेना का अलंकार पास रात मे चोरी चला गया है, विदूषक को अपनी रत्नावली प्रदान करती है और उसी सिलसिले मे कहती है कि वह उस दिन षष्ठी व्रत का उपवास कर रही है—'ष सट्ठि उववसामि।'' किन्तु वह तिथि कथन मे भूल कर रही है जिस पर विदूषक उसका मार्जन करता हुआ कहता है कि आज षष्ठी नहीं, अष्टमी है—"अट्ठमी क्खु अज्ज।"

इन तिथि-निर्देशों से स्पष्ट हो जाता है कि 'चारु०' के प्रथम तीन अंको

की घटनाएँ लगातार तीन दिनो के भीतर घटित हुई हैं। किन्तु, कुछ अन्य ऐसे समय सूचक उल्लेख भी 'चार०' मे उपलब्ध हैं जिनका अवलोकन आवश्यक है। प्रथम अक मे, नायक ने चन्द्रोदय का ललित वर्णन यो किया है —

"उदयति हि शशाङ्क. क्लिन्नखर्जूरपाण्डु—
युवतिजनसहायो राजमार्गप्रदीप ।
तिमिरनिचयमध्ये रश्मयो यस्य गौरा
हृतजल इव पके क्षीरधारा पतन्ति ।"

(१।२९)

—'आद्र खजूर की तरह शुभ्र, युवतियों के अभिसरण-काल मे सहायक राज मार्ग का प्रदीप चन्द्रमा उदय हो रहा है जिसकी शुभ्र रश्मियाँ घने अन्धकार समूह मे इस प्रकार गिर रही हैं मानो जल शून्य पक मे दूध की धाराएँ गिर रही हैं।'

इस कथन से ज्ञात होता है कि सूर्यास्त के पश्चात् कुछ रात बीत गई है जिस बीच अन्धकार गाढा हो गया है, और तब उदय होने वाले चन्द्रमा की किरणें उस घने अधकार मे दूध की धाराओ के समान गिर रही है, और इसी समय मे वसन्तसेना शकार से पीछा छुडाकर, चारुदत्त के घर म प्रवेश कर गई हैं। तीसरे अक मे, सगीत-श्रवण के बाद घर लौटते समय, चारुदत्त ने प्रसन्न मुद्रा मे चन्द्रास्त का सुन्दर वर्णन यो किया गया हैं —

"असो हि दत्वा तिमिरावकाशमस्त गतो ह्यष्टमपक्षचन्द्र ।
तोयावगाहस्य वनद्विपस्य विषाणकोटीव निमज्जमाना ।।"

—'अष्टमी का चन्द्रमा अन्धकार को अवकाश देकर, अस्त हो रहा है। ऐसा भासित होता है जैसे जल के भीतर डूबे वनैले हाथी के दाँतो का अग्रभाग भी पानी मे डूब गया हो।'

द्रष्टव्य यहाँ यह है कि उस श्लोक के ठीक पूर्व चारुदत्त ने वहाँ विदूषक से कहा है कि हे सखे ! आधी रात हो गई, राजमार्ग मे घना अन्धकार समाप्त है—"सखे ! उपारूढोऽपरात्र स्थिरतिमिरा राजमार्गा."।

चन्द्रोदय एव चन्द्रास्त के इन उल्लेखो से यह प्रकट होता है कि पहली अवस्था मे काफी रात बीत जाने पर चन्द्रमा उदय हुआ है और दूसरी मे अर्धरात्रि के समय चन्द्रमा डूब रहा है। स्पष्ट ही, जैसा सुकथकर ने निर्दिष्ट किया है, इन दो श्लोको मे दो भिन्न पखवारो का सकेत है। केवल कृष्णपक्ष मे ही चन्द्रोदय काफी देर से होता है और शुक्लपक्ष मे ही अर्धरात्रि के आसपास चन्द्रास्त घटित होता है। अर्थात्, यदि किसी दिन काफी रात बीते चन्द्रमा

उदय होता दिखाई पड़ता है, तो यह बिलकुल असंभव है कि अड़तालीस घंटों के अन्तराल के बाद, चन्द्रमा आधी रात के बाद आसपास डूबना दिखाई पड़े।

स्मरणीय है कि 'चारु०' के पहले तीन अंकों की घटनाएँ षष्ठी, सप्तमी और अष्टमी तिथियों को ही घटित हुई हैं।

अतएव, स्पष्ट हो जाता है कि 'चारु०' की सामान्य तिथि योजना में अन्तर्विरोध आ गया है और इसलिए, वह दोषपूर्ण है। 'मृच्छ०' में जैसा पहले कहा गया है, यह स्पष्ट समय दोष नहीं आने पाया है।

(ग)

उपर्युक्त विवेचन के आलोक में निम्नांकित निष्कर्षों की स्थापना की जा सकती है --

(अ) टेकनीक संबंधी विशेषताओं के आधार पर 'चारु०' को मृच्छ०' से पुराना नहीं सिद्ध किया जा सकता।

(आ) 'चारु०' के प्राकृत वाले प्रयोगों का आधार भी बहुत पुष्ट नहीं है, अतएव, वैसे प्रयोगों के आधार पर 'चारु०' को 'मृच्छ' से पुराना नहीं माना जा सकता यद्यपि सामान्यतया विद्वानों का अभिमत यही है कि 'चारु०' के प्राकृत-प्रयोग पुराने हैं जबकि 'मृच्छ०' के प्रयोग मध्यकालीन हैं।

(इ) छन्दों की रचना के विषय में सामान्यतया यह माना जाना चाहिए कि 'मृच्छ०' के श्लोक भाषा अथवा व्याकरण की दृष्टि से 'चारु०' की तुलना में अधिक पुष्ट, सुगठ एवं संगत हैं। 'मृच्छ' में, ऐसा प्रतीत होता है, जानबूझ कर, असंगत, अव्यवस्थित अथवा अपाणिनीय प्रयोगों को बचाया गया है क्योंकि संभवत पाठकों में व्याकरण-सम्मत प्रयोगों की माँग बढ़ रही थी।

लेकिन, 'चारु०' की श्लोक-रचना को 'मृच्छ०' की तुलना में इस आधार पर हीन अथवा स्खलित बताना कि उस कारण किसी चरित्र में अपकर्ष घटित हो गया है और उस परिवर्तन से 'मृच्छ०' के उस चरित्र में कोई उत्कर्ष आ गया है, उचित नहीं है। "अदामा" और "सदामा" का उल्लेख ऊपर हो चुका है जिससे हमारा अभिप्राय स्पष्ट हो जाएगा।

(ई) जहाँ तक घटना विन्यास का संबंध है, यह नहीं कहा जा सकता कि 'मृच्छ०' में 'चारु०' की अपेक्षा सदैव श्रेष्ठत्व की उपलब्धि हुई है। चारुदत्त की 'समाधि' तथा सज्जलक के "मदनिके, मदनिके" चिल्लाने जैसे संदर्भों में 'मृच्छ०' अवश्य श्रेष्ठतर है, लेकिन, वसन्तसेना के समुख विदूषक तथा शर्विलक (सज्जलक) के आगे पीछे उपस्थित होने जैसे प्रकरणों से सबद्ध तकना संगत एवं सशक्त नहीं समझी जाएगी। बहुत सूक्ष्म अवलोकन करने से 'चारु०' के कई स्थान 'मृच्छ०' की तुलना में अधिक सुन्दर एवं सार्थक प्रमाणित किये

जा सकते हैं। मैंने पिछले अध्याय में विस्तारपूर्वक दिखाया है कि 'चारु०' कहीं-कहीं 'मृच्छ०' से श्रेष्ठ है और 'मृच्छ०' कहीं-कहीं 'चारु०' से श्रेष्ठ है।

(उ) 'चारु०' की तिथि योजना 'मृच्छ०' की तुलना में निश्चिततया दोषपूर्ण है।

(घ)

अब, उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन के आलोक में अधिक प्रत्यक्षरूपेण यह स्थापना की जा सकती है कि 'चारु०' मूल रचना है और 'मृच्छ०' उसका परिवर्धित संस्करण है।

हमने दिखाया है कि 'मृच्छ०' के जो संदर्भ 'चारु०' की अपेक्षा विस्तीर्ण हैं, उन्हीं को लेकर विद्वानों ने यह उपपादित करने का प्रयास किया है कि 'चारु०' उसका संक्षिप्त स्वरूप है, लेकिन ऐसा मानना निरापद नहीं है क्योंकि 'चारु०' अनेक स्थलों में 'मृच्छ०' की अपेक्षा विस्तृत है। वास्तव में, संकोच तथा विस्तार के प्रश्न पर इस दृष्टि से विचार होना चाहिए कि संबद्ध संदर्भों का विस्तार पारिमाणिक दृष्टि से दोनों नाटकों में से किसमें अधिक हैं। इस रीति से विचार करें तो स्पष्ट हो जाता है कि 'चारु०' के विस्तार का जहां कतिपय स्थलों में 'मृच्छ०' में परित्याग किया गया है, वहां 'चारु०' के संकोच का उन्हीं संदर्भों में इतना विस्तार घटित हुआ है कि यह मानने के लिए पर्याप्त आधार मिल जाता है कि 'मृच्छ०' में 'चारु०' का सचेष्ट विस्तार सम्पन्न हुआ है न कि 'चारु०' में 'मृच्छ०' का संकोच। और यदि 'मृच्छ०' में 'चारु०' के कतिपय विस्तार परित्यक्त हो गये हैं, तो इसका कारण 'मृच्छ०' के रचयिता की अपनी पसन्द हो सकती है जिसके लिए किसी तर्क-संगत कारण की सदैव तलाश नहीं की जा सकती। इसके विपरीत, जिन संदर्भों में 'मृच्छ०' में विस्तार दृष्टिगोचर होता है, उनके सम्बन्ध में हम नाटककार के अभिप्राय का संगत अनुमान लगा सकते हैं।

विस्तार के मुख्य संदर्भ, 'मृच्छ०' में, वसन्तसेना के प्रासाद का वर्णन (चतुर्थ अंक) तथा जुआरियों वाले दृश्य (द्वितीय अंक) हैं। मैंने एक पूर्व प्रसंग में दिखाया है कि जुआरियों वाले दृश्य के चित्रण से नाटक में समाज के निम्नवर्गीय जीवन का यथार्थ मूर्त रूप में उतर आया है। जैसा बेलवलकर ने कहा है, शूद्रक की कला प्रेक्षक-समूह के उस सामान्य वर्ग को विशेष आकर्षित करने का प्रयास करती है जिसकी रुचि असंस्कृत तथा जिसकी पसन्द निम्न-स्तरीय होती है। स्पष्ट ही, ऐसी श्रेणी के प्रेक्षक निम्नवर्गीय जीवन के यथार्थ और सुस्फीत एवं स्थूल हास्य से अधिक आकर्षित होते हैं। जुआरियों वाला संदर्भ इसी कोटि का यथार्थ तथा इसी कोटि का हास्य प्रदान करता है। प्रथम

अंक में प्राप्त शकार के कतिपय वचन भोंडे, स्थूल हास्य के प्रतिपादक हैं। उदाहरणार्थ, शकार की निम्न उक्तियाँ अवलोकनीय हैं—

(i) 'इदो भावे, इदो चेडे। भावे चेडे,
चेडे भावे। तुम्हे दाव ए क्कन्ते चिट्ठ।"
—'इधर विट, उधर चेट। विट चेट, चेट-चेट। आप दोनों तब तक एकान्त में ठहरें।"

(ii) भावे! भावे! इत्थिआ अण्णेसदि ?"
× × ×
'इत्थिआण सद मालेमि शूले हगे।"
—'भाव! भाव!! क्या स्त्री को खोज रही है ?"
× × ×
सैकड़ो स्त्रियों के मारने में मैं शूर हूँ।"

(iii) "अले काकपदशीशमस्तका दुट्टवडुआ! उवविश उवविश।'
—'अरे कौवे के पैर के समान क्षीण मस्तक वाले, दुष्ट वटुक! बैठ जा, बैठ जा!'

तीसरे अंक में विदूषक और वर्धमानक के बीच का वार्तालाप जिसका विषय विदूषक का अपना पैर धुलवाने का हठ है, और चौथे अंक में विदूषक का वह कथन जिसमें वसन्तसेना की माता का वर्णन है—इन स्थलों में भी प्रेक्षकों को आवर्जित करने की जो शैली अपनायी गई है, वह सुसंस्कृत एवं सुरुचिपूर्ण नहीं समझी जाएगी।

अतएव, जिन स्थलों में 'मृच्छ०' में 'चारु०' की अपेक्षा विस्तार अथवा विजृम्भण को प्रश्रय दिया गया है, उनके संबंध में यह स्थापना की जा सकती है कि शूद्रक, भास की तुलना में, अपने प्रेक्षक समूह को आवर्जित करने के उद्देश्य से अधिक अनुप्रेरित थे और इस कारण, अपेक्षया भोंडे तथा स्थूल मर्मों एवं कथनों का भी उन्होंने समावेश किया जिससे हास्य अथवा आवर्जन का स्वरूप असंस्कृत तथा अपरिष्कृत बन गया। यदि यह भी मान लिया जाय कि ये सभी स्थल 'मृच्छ०' के मूल रचयिता के जोड़े हुए नहीं हैं, अपितु प्रक्षेप हैं जैसा विद्वानों ने अनुमान किया है, तो भी प्रकारान्तर से इसी स्थापना की पुष्टि होती है कि 'चारु०' की मूल रचना में काल-क्रम से परिवर्धन होते गए कुछ 'मृच्छ०' के मूल रचयिता-द्वारा, कुछ उसके अनुकरण में अन्यान्य परवर्ती व्यक्तियों द्वारा जिसका सकलित परिणाम है 'मृच्छकटिक' का वर्तमान स्वरूप।

जहाँ तक वसन्तसेना के महल के विस्तृत वर्णन का प्रश्न है, वहाँ भी

नाटककार का प्रेक्षक समूह को आकर्षित करने का सचेष्ट प्रयास लक्षित किया जा सकता है, यद्यपि यहाँ नाटककार ने रुचि के भोंडेपन का परिचय नही दिया है, तथापि उस वेश्याप्रासाद के आठ प्रकोष्ठों की वस्तुओं, व्यापारो तथा सजावट का जो सूक्ष्म एव विस्तृत वर्णन उसने किया है, वह एकसाथ ही इतना सटीक यथार्थ कल्पना-रमणीय तथा विस्मयजनक प्रतीत होता है कि प्रेक्षक समूह के उसमे गहराई के साथ प्रभावित एव आकर्षित होने का आसानी से अनुमान किया जा सकता है। मैं समझता हूँ नाटककार ने यहाँ वेश्या गृह का 'आदर्शीकरण' (Idealsation) सम्पन्न किया है, अर्थात् यह चित्रित किया है कि वसन्तसेना जैसी गणिका के महल का बहिरग तथा अन्तरग विन्यास एव सघटन कैसा होना चाहिए और इस चित्रण मे धर्म, विलास, वैभव, सगीत, साहित्य इत्यादि का ऐसा अपूर्व मिश्रण हो गया है कि शिष्ट-सुसस्कृत सामाजिक-वृन्द भी चमत्कृत एवं प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। एक अन्य दृष्टि भी महत्वपूर्ण है। 'चारु०' मे नायक की निर्धनता का चित्रण तो था, किन्तु नायिका के वैभव का उसी अनुपात मे वर्णन वहाँ उपलब्ध नहीं था। इससे दरिद्रता एव ऐश्वर्य की सम्भावित सगाई का वह चमत्कारी प्रभाव प्रेक्षकों के मानस पर नही पड़ता जो 'मृच्छ०' मे सम्भव हो सका है, इस तथ्य की विज्ञापना से कि चारुदत्त जितना ही गरीब है, वसन्तसेना उतनी ही वैभव-शालिनी है। विदूषक की यह विस्मयभरी अभ्युक्ति प्रेक्षकों के मानस पर पडने-वाले प्रभाव का ही प्रतीक है—"एव वसन्तसेनाया बहुवृत्तान्तम् अष्टप्रकोष्ठ भवन प्रेक्ष्य यत् सत्य जानामि एकस्थमिव त्रिविष्टप दृष्टम्। प्रशसितु नास्ति मे वाचाविभव। किं तावत् गणिकागृहम्? अथवा कुबेरभवनपरिच्छेद?" (वसन्तसेना का यह आठ प्रकोष्ठो वाला भवन देखकर, मुझे विश्वास हो गया है कि मैंने स्वर्ग, मर्त्य एव पाताल तीनो लोको को एकत्र स्थित देख लिया है। इनकी प्रशसा के लिए मेरी वाणी मे शक्ति नहीं है। क्या यह गणिका का घर है अथवा कुबेर के महल का कोई खड है?)

अतएव, वसन्तसेना के भवन का विस्तृत वर्णन भी प्रेक्षक समुदाय को शक्तिपूर्वक आकर्षित एव प्रभावित करने का नाटकीय उपक्रम है, और शूद्रक का इस सम्पूर्ण विस्तारयोजना मे यही उद्देश्य रहा है

एक अन्य दृष्टि से भी विचार करना सगत प्रतीत होता है। गणिका-भवन का प्रस्तुत वर्णन रगमचीय अभिनय के लिए कठिन समस्या है। पुन घटना सक्रमण मे इससे अवरोध भी उत्पन्न हो जाता है। साथ ही नाटककार ने अष्टप्रकोष्ठो के वर्णन मे काव्यात्मक भगिमा का पल्लवित उपयोग भी किया है। ये सभी तत्त्व इस तथ्य की ओर इङ्गित करते हैं कि 'मृच्छ०' मे सस्कृत

नाटक के उत्तरोत्तर विकास के तत्वों की योजना हुई है। आरम्भ से ही, नाटक यहाँ काव्य का एक विभाग था और उसपर रामायण-महाभारत महाकाव्यों की गहरी छाया एवं गहरा प्रभाव रहा। इसका कालक्रम मे एक परिणाम यह हुआ कि संस्कृत नाटकों में रंगमंचीय अभिनय-तत्वों की उपेक्षा होती गई और काव्यात्मक तत्वों का प्राचुर्य घटित होता गया। काव्य का एक प्रधान गुण था 'वर्णन करना', 'कवि' शब्द का व्युत्पत्तिक अर्थ ही यही होता है। वर्णन करने के इस उपक्रम मे कथा कथन का उतना ध्यान नहीं रहा जितना किसी मनोनुकूल तथ्य अथवा स्थिति के स्थिरभाव से सूक्ष्म एवं विस्तृत वर्णन का। 'मृच्छ०' के गणिकावास के वर्णन मे नाटककार का यह प्रलोभन प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है। इसके विपरीत, 'चारु०' मे भास ने केवल पाँच वाक्यों में ही, विदूषक के मुख से, "गणिकावाट" का वर्णन कराया है और इन पाँच वाक्यों को सूत्र रूप मे ग्रहण कर, शूद्रक ने इनमे से प्रत्येक पर मानो विस्तृत भाष्य की रचना की है।[१]

संस्कृत नाटक की विकास यात्रा के अवलोकन से ज्ञात होता है कि उनमे आरम्भ से ही वे तत्त्व विद्यमान थे जो कालांतर मे उनके ह्रास के कारण बने। महाकाव्यों पर अधिक निर्भर करना, नाटक तथा काव्य के उद्देश्यों की समानता (रस व्यंजना) गीत एवं संगीत का अभाव, श्लोकरचना का प्राचुर्य, अति प्राकृत तत्व की योजना, सार्वजनिक रंगमंच का अभाव, राजकीय संरक्षण तथा सहृदय सभ्यजनों (आयमिश्रो) तक प्रेक्षक-वर्ग का परिसीमन ये सभी ह्रास के लक्षण बताये गये हैं। परवर्ती काल के नाटककारों ने इन तत्वों का अधिकाधिक उपयोग किया जिसके परिणामस्वरूप तथा अन्य परिवर्तित परिस्थितियों के कारण, संस्कृत नाटक का पतन घटित हुआ।[२] 'मृच्छ०'

---

१ 'चारु०' का वर्णन यों है—"अहो गणिकावाटस्य सश्रीकता। नानापट्टरणसमागतैरागमिकैः पुस्तकानि वाच्यन्ते। सयोज्यन्ते चाहारप्रकाराः। वीणा वाद्यन्ते। सुवर्णकाराः अलङ्कारप्रकारानादरेण योजयन्ति।" (अहो! गणिकागृह का यह आकर्षण एवं सौन्दर्य! विभिन्न नगरों से आये हुए शास्त्रज्ञों द्वारा शास्त्रों का पाठ किया जा रहा है। नानाप्रकार के भोजनों की व्यवस्था की जा रही है। वीणाएँ बजाई जा रही हैं। स्वर्णकार नानाविध आभूषणों का निर्माण कर रहे हैं।)

'मृच्छ०' के वर्णन मे एक-दो नए बिन्दु जोड़े गये हैं, अन्यथा इन्हीं सभी तथ्यों का उपबृंहण वहाँ उपलब्ध है।

२. I. Shekhar. "Sanskrit Drama Its Origin And Decline" (1960) Chap VIII-IX.

मे जहां एक ओर यथार्थवादी रङ्गो का सन्निवेश हुआ है जो नाटक के स्वस्थ विकास का लक्षण समझा जाएगा, वही उसम वर्णन-विस्तार तथा श्लोक संख्या का आधिक्य, का ऐसे तत्व भी सगुंफित हैं जो उसे संस्कृत-नाटक की सुदीर्घ जीवन-यात्रा के आरम्भिक नही, अपितु बहुत बादके सोपान पर प्रतिष्ठित करते हैं। यह उल्लेखनीय है कि जहाँ 'चारु०' की उपलब्ध प्रति मे कुल मिलाकर पचपन श्लोक आये हैं वहाँ 'मृच्छ०' के केवल प्रथम अङ्क मे अट्ठावन श्लोक उपनिबद्ध हुए हैं। वर्णन-विस्तार तथा श्लोक-संख्या की अधिकता, इस प्रकार, 'मृच्छ०' के 'चारु०' का परवर्धित संस्करण समझे जाने मे सहायक सिद्ध होते हैं।[१]

शूद्रक ने उपबृंहण की इस प्रक्रिया मे भाषा विषयक परिष्कार किया है, 'चारु०' मे आये समय-दोष से बचने का उपक्रम किया है और कुछ सन्दर्भों मे 'चारु०' की असगतियो का परिमार्जन भी किया है।

(ङ)

भास के अन्य प्रभाव भी 'मृच्छ०' मे प्रदर्शित किये जा सकते है, यथा —

(अ) इसके हिंसात्मक दृश्य भास की परम्परा मे पडते हैं।

(आ) नायक-विदूषक की नीद का वह असाधारण दृश्य भास के 'स्वप्नवासवदत्त' से घनिष्ट साम्य रखता है।

(इ) शर्विलक का सन्धिच्छेद अविमारक के रात्रिकालीन साहसिक व्यापार का स्मरण कराता है।

(ई) वर्षा के उपरान्त नायक नायिका का अन्त कक्ष मे चला जाना 'अविमारक' के समान दृश्य की शैली मे पडता है।

(उ) नवें अक मे प्राप्त अपशकुनो का उल्लेख 'पचरात्र' मे प्राप्त अपशकुनो के समान है।

(ऊ) भास ने "निष्क्रम्य प्रविश्य" का टेक्नीक पात्रों के त्वरित निष्क्रमण तथा प्रवेश की सुविधा के हेतु प्रयुक्त किया है। नवें अक मे मृच्छ०' मे यही टेक्नीक अपनाया गया है जिससे चारुदत्त और वसतसेना की माता रगमच पर उपस्थित कराये गये हैं तथा वीरक एक मृत स्त्री की शव की पहचान के लिए बाहर भेजा गया है।

---

१ शेखर ने कतिपय प्रसिद्ध नाटकों मे प्रयुक्त श्लोकों की सख्या यो गिनाई है—'मृच्छ०' मे लगभग ३८०, 'शाकुन्तल' मे १९५ 'विक्रमो०' मे गीतो को छोडकर १३५, 'उत्तरराम०' मे २५५, 'मुद्रा०' मे १७०, 'वेणीसहार' मे २०८, 'महानाटक' मे ६५० तथा 'बालरामायण' (राजशेखर) मे ७४१। (पृ० १४२)

(ए) भास की एक शैली है श्लोको को तोड कर लिखना, यह रीति 'मृच्छ०' मे अपनाई गई है, यथा, पहला अक, श्लोक स० ४४-५४, सातवाँ अक, श्लोक सख्या ७; दसवाँ अक, श्लोक स० ५५।

(ऐ) भास म जैसे पूरे के-पूरे वाक्य दुहराये गये हैं; वैसा ही 'मृच्छ०' मे भी दिखाई पडता है।

(ओ) 'मृच्छ०' मे यौगन्धरायण द्वारा उदयन को मुक्त किये जाने (४।२६) तथा चौथे अक म मैत्रेय के कथन मे आया "मल्लक" शब्द भास के 'प्रतिज्ञा' का स्मरण कराते है।

(औ) 'मृच्छ०' तथा 'स्वप्न०' मे प्रयोग की निम्नाकित समानताएँ अवलोकनीय हैं—

(i) 'प्रतिष्ठा' ('मृच्छ०', ४, 'स्वप्न०', २)।

(ii) "दयितासहित तपस्वी पारावत" ('मृच्छ०', ४, 'स्वप्न०,' ३)।

—चारुदत्त की कबूतर की रक्षा की चिन्ता उदयन की भ्रमरो की रक्षा की चिन्ता के सदृश है।

(iii) "बलदेववट" की उपमा ('मृ०', ५।४५, 'स्व०', १।१ तथा ४)।

(iv) 'मृच्छ०' (८) मे विट का कथन "वसन्तसेना तव हस्ते न्यासः" 'स्वप्न०' (१,६) के वासवदत्ता के पद्मावती के हाथो म सौंपे जाने का स्मरण कराता है।

(vi) मृच्छ०' के आठवें अक के अन्त मे प्राप्त भिक्षुक का कथन "अपसरत आर्या अपसरत" 'स्वप्न०' के आरभ मे उपलब्ध है।

(क) "भीमस्यानुकरिष्यामि बाहु• शास्त्र भविष्यति" (६।१७), 'छिद्रैस्त-नर्पाविट्ठलीभवन्ति" (८।२६), "करिकरसमबाहु" (७।५), "योऽह लता कुसुमिता" (६।२८)—'मृच्छ०' मे प्राप्त ये कथन तथा विचार भास मे भी प्राय समान रूप मे उपलब्ध हैं।

(ख) 'मृच्छ०' मे अवलोकनीय शैली की प्राञ्जलता, सवादों की नाटकीयता तथा हास्य एव यथार्थ के तत्त्व—इन सभी बिन्दुओ मे शूद्रक की रचना का भास के नाटको से घनिष्ट साम्य है।[१]

हमने आरभ मे कहा है कि 'चारु०' के पूर्ण सस्करण मे राज्यक्रान्ति का उपकथानक भी सगुम्फित रहा होगा और उसकी विकास रेखाएँ बहुत-कुछ वही होगी जो 'मृच्छ०' मे द्रष्टव्य हैं। यह भी युक्तिसगत रीति से दिखाया गया

१. G K Bhat 'Preface To Mrcchakatika (1953), पृष्ठ ३२-३४

है कि रोहसेन तथा राज्य विप्लव के जो उल्लेख या संकेत 'मृच्छ०' के प्रथम चार अंकों में प्राप्त हैं, उनके अभाव में भी, 'चारु०' के रचयिता के लिए यह असंभव नहीं था कि नाटक के उत्तरार्ध में उसने राज्य-क्रान्ति के संकेतों एवं तत्वों का सन्निवेश एवं पल्लवन किया हो। और, हमारा अनुमान है कि 'चारुदत्त' अपने पूर्ण रूप में 'मृच्छकटिक' के वर्तमान आकार का आधार रहा होगा।

(च)

'चारुदत्त' की मूल रचना का ही उपबृंहण कर, शूद्रक ने 'मृच्छकटिक' का स्वरूप खड़ा किया किन्तु उसकी कथावस्तु के नाना सूत्र 'कथासरित्सागर' इत्यादि कहानी-कोषों में भी बिखरे हुए दिखाई पड़ते हैं।

'कथासरित्सागर' में गणिका कुमुदिका की कहानी दी हुई है जो उज्जयिनी के निवासी श्रीधर नामक एक गरीब ब्राह्मण से प्रेम करती थी। श्रीधर राजा-द्वारा बन्दी बना लिया गया था। कुमुदिका ने अधिकार च्युत नरेश विक्रमसिंह का साथ पकड़ कर, उसे पुनः सिंहासन प्राप्त करने में सहायता पहुँचाई जिसके प्रसाद रूप में, उपकृत राजा ने श्रीधर को कारा मुक्त कर दिया और कुमुदिका इस प्रकार, अपने प्रेम पात्र से परिणयसूत्र में संयुक्त हो गई।[१] 'कथासरित्सागर' में ही रूपणिका नामक एक अन्य वेश्या की कहानी मिलती है जिसमें उसकी माता एक निर्धन व्यक्ति से प्रेम करने से उसे रोकने की चेष्टा करती है।[२] यहीं एक जुआरी का उल्लेख मिलता है जो जुए में बर्बाद होकर, एक खाली मंदिर में शरण लेता है और मदनमाला नामक वेश्या के महल के वैभव-ऐश्वर्य का वर्णन करता है जो 'मृच्छ०' में प्राप्त वसन्तसेना के भवन के विभिन्न प्रकोष्ठों के वर्णन से घनिष्ठ साम्य लिये है।[३] 'दशकुमारचरित' में निम्नस्तरीय जीवन, मायावी छलपूर्ण साधुओं, राजकुमारियों एवं कष्टापन्न राजाओं, वेश्याओं तथा उनके प्रेमियों और कुशल चोरों का चित्रात्मक, ललित वर्णन हुआ है। उसके द्वितीय उच्छ्वास में एक वेश्या के प्रेम की कहानी वर्णित है और अपहारवर्मा नामक एक चोरों के राजा का वृत्तान्त दिया है जो चौर्य-कला पर लिखी किन्तु अब विलुप्त एक पुस्तक के प्रणेता कर्णीसुत-द्वारा निर्धारित आदर्शों के अनुसार, एक नगर को लूटने की योजना बनाता है। 'कथासरित्सागर' की बारहवीं तरंग में प्रद्योत तथा अंगारवती के दो पुत्रों गोपाल और पालक का उल्लेख उपलब्ध है। आर्यक इसी गोपाल का पुत्र प्रतीत होता है, और चाचा एवं भतीजे का सत्ता-प्राप्ति के लिए संघर्ष 'मृच्छ०' के राज्य विप्लव

---

१ 'कथासरित्सागर' ५८-२। २. वही, १२-४।

३ वही १८।२०-२७।

का आधार समझा जा सकता है। किन्तु, सोमदेव का 'कथासरित्सागर' और दण्डी का 'दशकुमारचरित' क्रमश ईसा की ग्यारहवीं एव सातवीं शताब्दी की रचनाएँ हैं, जिस कारण, 'मृच्छ०' पर इनके प्रभाव की कल्पना निस्सार समझी जाएगी क्योंकि वह इनके पहले की रचना है। अतएव, 'कथासरित्सागर' के मूलाधार गुणाढ्यकृत 'बृहत्कथा' को 'मृच्छ०' का उपजीव्य ग्रथ समझा जा सकता है जिसमे ऐसी कहानियाँ रही होंगी। लेकिन, 'बृहत्कथा' जैसे कथा-कोषों से भास ने भी प्रेरणा ग्रहण की है; और 'चारु०' तथा 'मृच्छ०' मे जिस प्रकार का घनिष्ठ साम्य दृष्टिगोचर होता है, उसे देखते हुए यह कल्पना सगत नही होगी कि इन दोनो नाटककारो ने स्वतन्त्र-भाव से, पृथक् पृथक्, एक सामान्य स्रोत से सामग्री सकलित कर, अपने नाटको की रचना की होगी।

सुतरा, 'चारुदत्त' मूल रचना है और 'मृच्छकटिक' उसका परिवर्धित सस्करण, ऐसा मानने के प्रतिपक्ष मे हमे कोई तर्क-सगत आधार नहीं मिला है।

(३) मृच्छकटिक और शूद्रक

'मृच्छकटिक' की अन्तर्योजना जितनी मनोरजक एव पिटी पिटाई लकीर से पृथक् रही है, उतना ही जटिल एव विवादग्रस्त उसके रचयिता का प्रश्न रहा है। एक समय 'मृच्छकटिक' संस्कृत का सबसे पहला नाटक माना गया था।[१] बाद को, जैसा पूर्व प्रकरणों मे दिखाया जा चुका है, भास के 'चारुदत्त' की प्राप्ति के बाद उसका महत्त्व तनिक धूमिल होना प्रतीत होने लगा क्योकि 'चारुदत्त' ही उसका मूल आधार माना जाने लगा है। विल्सन ने बडे परिश्रम के साथ 'मृच्छकटिक' तथा नवीन यूनानी सुखान्तकी (New Attic Comedy) के बीच प्राप्त समानताओ का अनुसधान कर, उसे बहुत पुराने समय की रचना सिद्ध किया था। तब से अनेकानेक भारतीय तथा यूरोपीय विद्वानो ने विभिन्न दृष्टियो से 'मृच्छकटिक' की रचना तथा रचयिता के सबध म प्रचुर विचार-मथन किया है। एक तरफ शूद्रक को काल्पनिक व्यक्ति माना गया है तो दूसरी तरफ उसे ऐतिहासिक नरेश सिद्ध किया गया है और इसी तरह, यदि एक ओर शूद्रक को मृच्छकटिक' का रचयिता माना गया है, तो दूसरी ओर इस स्थापना का प्रवीण युक्तियो से प्रत्याख्यान भी किया गया है। स्टेन कोनो तथा मेहण्डेल ने इन समस्त विरोधी विचारो को बडी योग्यता तथा प्राजलता के साथ उपनिबद्ध किया है।[२] ऐसी अवस्था मे, शूद्रक-विषयक हमारे निष्कर्ष, युक्तिसगत होने हुए भी, अधिकाशत अनुमान सापेक्ष रहेगे।

(१)

शूद्रक ऐतिहासिक व्यक्ति है अथवा नहीं—प्रथम विचारणीय विषय यही उपपन्न होता है। यहाँ यह मानना पडेगा कि शूद्रक नाम किसी राजा के लिए, किसी ऐसे राजा के लिए जो द्विजो की श्रेणी का सुशोभित कर सके, कुछ विचित्र सा ध्वनित होता है। यदि उस राजा ने शूद्रक को अभिधा उपनाम के रूप मे भी ग्रहण की तो भी कुतूहल बना रह जाता है कि उसने अपने सम्पूर्ण

---

१. H H Wilson 'The Theatre of the Hindus', (1955) पृ० ५३–५७।

२ Sten Konow · 'Indian Drama', पृ० ५७।
K C Mehendale 'Bhandarkar Commemoration Volume' (Poona, 1917), पृ० ३६७।

पाडित्य के बावजूद, ऐसी सज्ञा क्यों अपनाई जो किसी भी प्रकार हीनता की व्यंजना से गर्भित हो ? वास्तव मे डॉ० कीथ की प्रतिक्रिया किसी भी सामान्य पाठक की प्रतिक्रिया होगी कि शूद्रक एक बिलकुल काल्पनिक व्यक्ति है क्योंकि सामान्य कोटि के किसी राजा के सबध मे ऐसे अटपटे नाम की धारणा मूर्खता-पूर्ण होगी।[1]

लेकिन तब, शूद्रक नाम सस्कृत साहित्य मे यथेष्ट ख्याति एव लोकप्रियता प्राप्त कर चुका है। ऐसा विश्वास है कि गुणाढ्य की बृहत्कथा मे शूद्रक की कहानी समाविष्ट थी जहाँ से क्षेमेन्द्र ने इसे बृहत्कथामजरी मे तथा सोमदेव ने कथा-सरित्सागर मे सन्निविष्ट किया। कथासरित्सागर के बारहवें लम्बक की ग्यारहवी तरग मे शूद्रक की कथा आई है।[2] कथा यो कही जा सकती है —

शूद्रक नामक राजा, अत्यन्त न्यायपरायण तथा शूरवीर, शोभावती नगरी मे राज्य करता था। मालवदेशीय वीरवर नामक व्यक्ति प्रतिदिन पाँच सौ अशर्फियाँ वेतन पर उसके द्वारा भृत्य नियुक्त किया गया। एक दिन रात्रि के समय जब घनघोर वर्षा हो रही थी वीरवर महल के मुख्य द्वार पर बैठा पहरा दे रहा था। तभी दूर से किसी स्त्री के करुणापूर्ण क्रदन की आवाज राजा को सुनाई पडी और उसने उस स्त्री के सबध मे पता लगाने के लिए वीरवर को आदेश दिया। वीरवर हाथ मे तलवार लिये अकेला उस ओर चल पडा जिस ओर से वह आवाज आ रही थी। राजा शूद्रक भी कौतूहल वश चुपचाप वीरवर के पीछे चलता गया। नगर के बाहर एक तालाब के किनारे वह रोती हुई स्त्री वीरवर को मिली। पूछने पर उसने बताया कि वह पृथ्वी है, राजा शूद्रक उसका स्वामी है और वह रो इस कारण रही है कि उसके तीसरे दिन राजा की मृत्यु हो जाएगी, किन्तु यदि वीरवर चण्डी के मन्दिर मे अपने पुत्र की बलि दे दे, तो राजा के प्राणों की रक्षा हो सकती है। वीरवर झटिति घर लौटा और पृथ्वी देवी का वह वचन परिवार वालों को सुनाया। स्वामी के प्राणो की रक्षा की वह योजना उसके पुत्र ने सहर्ष स्वीकार कर ली। तत्काल चडी के मदिर मे आकर वीरवर ने अपने पुत्र का सिर काट कर बलि चढ़ा दी। तब उसकी पुत्री तथा पत्नी ने भी शोक-विह्वल होकर अपने प्राण दे दिये। अत में, विषाद मग्न वीरवर देवी की आराधना मे अपने सिरश्छेदन

---

१ 'The Sanskrit Drama' (1959) पृ० १२९।

२ प्रस्तुत लम्बक की आठवीं तरग से बत्तीसवी तरग तक की कहानियाँ 'वैतालपचीसी' ('वेतालपचविंशति') के नाम से आख्यापित हैं। 'पचीसी' मे शूद्रक वर्धमान नगर का शासक बताया गया है।

के लिए भी जब तत्पर हो गया, तब आकाशवाणी हुई कि वह वैसा दुस्साहस न करे। देवी के आशीर्वाद से वीरवर के सभी मृत स्वजन जीवित हो उठे। शूद्रक ने यह सम्पूर्ण घटना स्वप्न देखी और प्रातःकाल होने ही वीरवर को सभा में बुलाकर उसके साहसपूर्ण कार्य का बखान किया तथा पुरस्कार-रूप में उसे प्रचुर रत्नसुवर्णादि प्रदान किये।

शूद्रक की इस कहानी से उसके चरित्र की उदारता तथा दाक्षिण्य पर प्रकाश पड़ता है, लेकिन उसके ऐतिहासिक व्यक्तित्व के संबंध में हमें कोई प्रतीति नहीं होती। बाण की कादंबरी में कथामुख शूद्रक वर्णन से ही प्रारम्भ होता है। वहाँ शूद्रक को विदिशा नगरी में शासन करने वाला पृथिवी रूपी नायिका का स्वामी अत्यन्त प्रतापी, कामदेव को जीतने वाला, सदाचार के कठोर नियमों का पालक, यज्ञों का अनुष्ठान करने वाला, शास्त्रों का पारङ्गत, ललित कलाओं का आश्रय, काव्य के पीयूष-रसों का संगम, काव्य-प्रबन्धों की रचना करने वाला, संगीत का अभ्यासी, सुहृदों तथा विद्वानों की गोष्ठियों में कालयापन करने वाला तथा हृदयहारिणी रम्यांगनाओं से घिरे रहने पर भी स्त्री-सहवास के सुखों से उदासीन बताया गया है।[1] पूर्व जन्म में उसे चन्द्रापीड कहा गया है जब कादम्बरी उसकी प्रणयिनी थी। वैशम्पायन शुक के मुख से पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनने पर शूद्रक पुनः चन्द्रापीड बन गया है और अपनी प्रेमिका से मिल गया है। 'कादम्बरी' का यह शूद्रक रोमांस का व्यक्तित्व है तथा उसे इतिहास सिद्ध प्राणी मानने की आपाततः कोई प्रेरणा उत्पन्न नहीं होती।

बाण की दूसरी रचना हर्षचरित में उल्लेख आया है कि चकोर नामक देश के राजा चन्द्रकेतु ने किसी पूर्व अवसर पर द्वारपाल के द्वारा राजा शूद्रक का अपमान कराया था जिसके प्रतिशोध में शूद्रक के दूत ने छल-द्वारा चन्द्रकेतु के प्राण हर लिये।[2] यह उल्लेख उस प्रसंग में उपलब्ध है जब सेनापति स्कन्दगुप्त ने महाराज हर्षवर्धन के समीप राज्यवर्धन की हत्या का प्रतिशोध लेने के निमित्त प्रस्तावित आक्रमण के विषय में संभाव्य संकटों का वर्णन करते हुए, पूर्ववर्ती नरेशों के दृष्टान्त प्रस्तुत किये हैं। हर्षचरित ग्रंथ का विषय ऐतिहासिक है, और पुराने राजाओं से संबंधित दृष्टान्तों के सिलसिले में जिस ढंग से शूद्रक का उल्लेख हुआ है, उसमें यह अनायास मान लेने की प्रेरणा होती है कि शूद्रक ऐतिहासिक व्यक्तित्व है।

---

१ कादम्बरी, पूर्वभाग (चौखम्बा), पृ० १०–२१

२. हर्षचरित (चौखम्बा) षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३४९.

दण्डी की नवप्राप्त रचना 'अवन्तिसुन्दरीकथा' में प्राचीन राजवंशों का इतिवृत्त उपनिबद्ध हुआ है जो मत्स्य, वायु तथा अन्य पुराणों में उपलब्ध वृत्तान्तों से घनिष्ठ साम्य रखता है। इसमें वररुचि, व्याडि, उपवर्ष इत्यादि प्रसिद्ध पुरुषों के साथ शूद्रक का भी वृत्त वर्णित हुआ है। ये वृत्त बृहत्कथामंजरी तथा कथासरित्सागर से भिन्न हैं। किन्तु, यतः क्षेमेन्द्र एवं सोमदेव की तुलना में दंडी का समय लगभग तीन शताब्दियाँ पूर्व (आठवीं शती) पड़ता है, अतः ऐसा माना जा सकता है कि उसके वृत्तान्त गुणाढ्य की बृहत्कथा के मूल स्वरूप के अधिक समीप पड़ते होंगे। शूद्रक-विषयक जो वृत्त वहाँ उपलब्ध है, उसमें शूद्रक काल्पनिक की अपेक्षा ऐतिहासिक अधिक प्रतीत होता है। अवन्तिसुन्दरीकथा में शूद्रक का निम्न वृत्त उपलब्ध है —

कोसल देश में शौनक नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह किसी प्रकार कोसल-नरेश की कन्या बन्धुमती के प्यार में फँस गया और उसे लेकर चुपके से भग गया। त्रिगर्त देश के राजा ने जिससे बन्धुमती के विवाह का निश्चय हुआ था, यह जान कर कि उससे छल करके बन्धुमती के बदले कोई अन्य निम्नस्तरीय कन्या ब्याह दी गई थी, कोसल पर आक्रमण किया और उस राजा को राज्य से बाहर निकाल दिया। शौनक ने तब अपने श्वशुर की सहायता कर कोसल का राज्य त्रिगर्त नरेश से वापस लौटा लिया जिससे प्रसन्न होकर कोसल के राजा ने आधा राज्य उसे पुरस्कार में दे दिया।'

शौनक अत्यन्त वृद्ध होकर मृत्यु को प्राप्त हुआ और अश्मक देश में इन्द्राणि गुप्त नामक ब्राह्मण के रूप में पुनः जन्म लिया। उसे कविगण शूद्रक कहा करते थे। उसने ब्राह्मण की महत्ता ('ब्रह्मश्री') का तिरस्कार कर, अनेक कष्ट सहन करने के बाद राजा की महत्ता ('राजश्री') ग्रहण की। आन्ध्रवंश के राजकुमार स्वाति के साथ उसका लालन-पालन हुआ। बाद को, दोनों खेल ही खेल में परस्पर घोर शत्रु बन गये। बन्धुदत्त तथा अन्य मित्रों के साथ जंगल में भ्रमण करते हुए शूद्रक ने एक बहुत भारी शिला उठा ली। दाक्य सुपित्र्य उसका यह प्रचंड बल देखकर, उसकी जान मारने के उद्देश्य से एक गुहा में उसे ले गया, किन्तु उसने उस बौद्ध को ही अन्ततः मार डाला। एक अन्य शाक्यभिक्षुणी ने उसे अपने घर में लाकर मारने की योजना बनाई, लेकिन एक दुःस्वप्न देख वह सतर्क हो गया और वह स्थान छोड़कर विदिशा की ओर चला गया। तब अपने मित्रों को इकट्ठा कर, उसने बन्धुदत्त को

---

१ अवन्तिसुन्दरीकथासार (सं० हरिहर शास्त्री, १९५७), ४।१६२-७४— सं० कथा की प्राप्त प्रति में कथा का यह भाग नष्ट हो गया है।

बन्धनागार से छुड़ाया और उनके साथ उज्जयिनी चला गया। वहाँ बन्धुदत्त के घर जाकर, वह रगपताका नामक एक अभिनेत्री अथवा नर्तकी ('भरत-कन्या') मे अनुरक्त हो गया। एक उद्यान मे विनयवती को उसने देखा और उसमे आसक्त हो गया। विनयवती भी उसे देखकर कामदेव-रूपी सर्प से डँसी गई, किन्तु शूद्रक के सस्पर्श से वह उस दशा से मुक्त हुई। रात को वह उस राजकन्या के अन्त पुर मे चुपके-से प्रविष्ट हुआ और पहरेदारो द्वारा पकडा गया। तब एक दाइ (धात्री) की सहायता से वह किसी प्रकार बन्धन से मुक्त हुआ और राजकन्या को लेकर महल से बाहर भाग निकला। रास्ते मे मालव-नरेश ने विनयवती का अपहरण कर लिया। जगल मे निस्सहाय घूमता हुआ शूद्रक डाकुओं द्वारा पकडा गया और बन्दीगृह मे डाल दिया गया। वहाँ डाकुओं के प्रमुख की कन्या आर्यदासी के साथ उसका प्रेम हो गया और उसकी सहायता से वह बन्धनगृह से पलायित हो गया। विनयवती की खोज मे वह इधर-उधर घूमता रहा और विन्ध्याटवी के एक शिकारी से यह जानकर कि विनयवती ने एक ब्राह्मण के घर मे शरण ली है, उसके घर गया। वहाँ उसे यह ज्ञात हुआ कि उस ब्राह्मण ने विनयवती को मथुरा मे अपनी पुत्री के पास भेज दिया है। शूद्रक तब मथुरा चला गया। वहाँ एक तालाब मे स्नान करता हुआ वह चोर होने के सन्देह में पकडा गया। विनयवती को जब यह घटना मालूम हुई तब उसने उस राज्य के मन्त्री की सहानुभूति प्राप्त कर, अपने पति को मृत्यु मुख से बचा लिया। शूद्रक ने मन्त्री की कन्या यज्ञदा से भी, जो विनयवती की सखी थी, विवाह किया। पुनः मथुरा की राजकुमारी शूरसेना मे वह अनुरक्त हो गया जिस कारण उसे अनेक सकटो का सामना करना पडा। अन्यान्य विपत्तियो से बचते हुए, उसने अपने बाल्यकाल के मित्र स्वाति के विरुद्ध युद्ध किया और उसे बन्दी बनाया (तथा बाद मे उसे उसके पिता का राज्य लौटा दिया)। तब अपनी प्रियाओ एव सुहृदो के साथ उसने एक सौ वर्ष तक पृथिवी का शासन किया। अन्त मे एक ब्रह्मराक्षस के साथ युद्ध करता हुआ वह मारा गया और धर्मपाल के पुत्र कामपाल के रूप मे पुन जन्म लिया।[1]

दशकुमारचरित की उत्तरपीठिका के चतुर्थ उच्छ्वास मे शूद्रक का निम्न उल्लेख मिलता है। अर्थपाल ने मगध-राजपुत्र राजवाहन से अपना पर्यटन-

---

१ अवतिसुन्दरीकथासार, ४।१७५-२०२।

—कोष्ठांकित अंश अ० कथा की प्राप्त प्रति मे मिलता है, किन्तु कथासार में नहीं।

वृत्त सुनाते हुए, यह बताया कि वह उनके अन्वेषणार्थ भ्रमण करता हुआ वाराणसी नगरी में पहुँचा जहाँ पूर्णभद्र नामक एक व्यक्ति से उसकी भेंट हुई। पूर्णभद्र ने काशिराज्य के प्रधानमंत्री कामपाल से सुनी हुई उसकी पूर्वकथा का निवेदन करते हुए, अर्थपाल से बताया कि उसने (कामपाल ने) काशिराज की कन्या कान्तिमती के सौन्दर्य से आकर्षित होकर उसके साथ गुप्तरीत्या रमण किया जिसके फलस्वरूप उसके एक सुन्दर बालक उत्पन्न हुआ। रहस्य प्रकाश के भय से वह नवजात शिशु, कन्यान्तःपुर की सखियों की योजना से, क्रीडापर्वत पर विसर्जित कर दिया गया (वही बालक अर्थपाल था)। इस उपक्रम में समस्त रहस्य का उन्मीलन हो गया और कामपाल चाण्डालों के खड्‌ग प्रहार से किसी प्रकार बचकर, स्वच्छन्दभाव में अरण्यों में भ्रमण करने लगा। इसी काल में एक दिव्याकार वाली साश्रुवदना कन्या कामपाल के समीप आई और अपना वृत्तान्त सुनाती हुई, उसे बताया कि वह यक्षराज मणिभद्र की पुत्री तारावली है। एक दिन काशी की श्मशान भूमि में एक रोते हुए शिशु को उसने देखा, वह शिशु कुबेर के दरबार में उसके पिता द्वारा लाया गया जिस पर कुबेर ने उस शिशु से संबंधित एक कहानी कही। उस कहानी से प्राप्त तथ्यों के आधार पर तारावली कामपाल से कहती है—"आप ही शौनक, शूद्रक और कामपाल हैं, अर्थात्, इस जन्म में आप कामपाल हैं, इसके पूर्व आप शूद्रक थे और उसके भी पूर्व आप शौनक थे। इसी प्रकार, बन्धुमती, विनयवती और कान्तिमती भी क्रमशः वेदिमती, आर्यदासी और सोमदेवी थीं। शौनकावस्था में जिस गोपकन्या से आपने परिणय किया, वही आर्यदासी हुई और वही इस समय तारावली नामक मैं हूँ। जब मैं आर्यदासी थी और आप शूद्रक थे, तब यह पुत्र मुझ से उत्पन्न हुआ था। विनयवती द्वारा यह पुत्र स्नेहपूर्वक पालित-पोषित किया गया था। वही पुत्र इस समय कान्तिमती के गर्भ से उत्पन्न हुआ है। भाग्यवशात् मुझे यह पुत्र काशी के श्मशान में प्राप्त हो गया और वह सम्प्रति, कुबेर के आदेश से, पाटलिपुत्रनरेश राजहंस के भावी चक्रवर्ती पुत्र कुमार राजवाहन की परिचर्या के हेतु राजहंस की देवी को समर्पण कर दिया गया है। गुरुवर्ग के आज्ञानुसार मैं यमराज के मुख से बच कर आपके चरणकमलों की सेवा के हेतु यहाँ पर उपस्थित हुई हूँ।"[1]

दण्डी के उपर्युक्त वृत्तान्त से शूद्रक का व्यक्तित्व ऐतिहासिक प्रतीत होता है। पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्म के उल्लेखों में इस ऐतिहासिकता में कोई बाधा उत्पन्न

---

[1] दशकुमारचरित (चौखम्बा), उत्तरपीठिका, चतुर्थोच्छ्वास, पृ० २९७-३०९।

नहीं होती जब हम पूर्वकालीन महापुरुषों के संबंध मे सनातन भारतीय मनोदृष्टि का स्मरण करते हैं। युवतियो मे आसक्तिशील हो जाना तथा उनकी प्राप्ति के लिए साहसिक कार्य करना, यह भी भारतीय नरेशो के चरित का स्वभावसिद्ध अंग रहा है। अतएव, रोमास एव युद्ध के अनुरागी शूद्रक को ऐतिहासिक व्यक्तित्व मानने मे कोई आपत्ति नही दिखाई पडती—यह भिन्न बात है कि उसके राज्य स्थान, विभिन्न राजनीतिक सम्पर्कों इत्यादि के विषय मे प्रामाणिक जानकारी न मिल सके। नाना गवेषणाओ के बावजूद प्राचीन भारतीय इतिहास का चित्रपटल अद्यापि सुस्पष्ट नही हो सका है, और शूद्रक को तब तक अपने व्यक्तित्व से पूर्ण प्रकाशन के लिए प्रतीक्षा करनी पडेगी। विद्वानो की यह आपत्ति कि शूद्रक नाम हीनता का द्योतक है और किसी ब्राह्मण द्वारा यह अपनाया नहीं गया होगा,[१] अवन्तिसुन्दरीकथा के इस उल्लेख से निराकृत हो जाती है कि उसका मूल नाम इन्द्राणी गुप्त था और 'ब्रह्मश्री' का परित्याग कर उसने जो 'राजश्री' का वरण किया, इसी कारण कवि अथवा पंडित लोग ('बुधा') उसे शूद्रक कहने लगे थे।[२]

कल्हण की राजतरंगिणी मे भी शूद्रक का एकाधिक बार उल्लेख हुआ है। तीसरी तरंग मे, रात्रि में भ्रमण करते हुए एक नदी तट पर पहुँचने वाले राजा प्रवरसेन की एक पिशाच से भेंट हो गई जिसने कहा, "हे राजन्! महाराज विक्रमादित्य, परमवीर राजा शूद्रक तथा आप के अतिरिक्त मैंने किसी भी मनुष्य मे इतना प्रबल धैर्य नहीं देखा।"[३] आठवी तरंग मे, राजा सुस्सल के विरुद्ध गर्ग द्वारा प्रवर्तित तुमुल संग्राम मे शृंगार तथा कपिल नामक दो राज्य-मंत्रियो और कर्ण तथा शूद्रक नामक दो सहोदर भाइयो एव नीतिज्ञो के मारे जाने का उल्लेख हुआ है।[४] कल्हण के इन उल्लेखो से शूद्रक ऐतिहासिक

---

१ Dr I Shekhar 'Sanskrit Drama' (1960) पृ० ११६।

२ "आयुषोऽन्ते स एवासावश्मवेपु द्विजोत्तम।
इन्द्राणीगुप्त इत्यासीद् य प्राहु शूद्रक बुधा.॥ ४।१७५।
अधावज्ञानया सप्त प्राप्य ब्रह्मश्रिया निधि।
राजश्रियमपायानामन्ते गत्वा भवानिति॥" ४।१७६।

अवन्तिसुन्दरीकथासार के इन श्लोको का ऐसा अर्थ गृहीत भी किया गया है—द्रष्टव्य Introduction by H Sastri Page XII, तथा 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' by डॉ० वरदाचार्य, हिन्दी अनुवाद, १९६२, पृ० २३८।

३ राजतरंगिणी, ३।३४३।

४ वही, ८।५०७।

व्यक्तित्व प्रतिभासित होता है एक बार वह परमवीर राजा तथा दूसरी बार राजभक्त नीतिज्ञ बताया गया है।

स्कन्दपुराण के कुमारिकाखण्ड मे शूद्रक का उल्लेख मिलता है जिसमे वह आन्ध्रभृत्यों का प्रथम शासक बताया गया प्रतीत होता है। राजशेखर ने काव्यमीमांसा म 'कविसमाज' का वर्णन करते हुए राजा के कर्तव्य का यो निरूपण किया है—"तत्र यथासुखमासीन काव्यगोष्ठी प्रवर्तयेत् भावयेत्परीक्षेत च। वासुदेवसातवाहनशूद्रकसाहसाङ्कादीन् सकलान् सभापतीन् दानमानाभ्यामनुकुर्यात्।"[1] अर्थात्, सभामडप मे सुखपूर्वक आसीन राजा काव्यगोष्ठी का प्रारभ कराये तथा कविताओ का आलोचन-परीक्षण भी कराये, और वासुदेव, सातवाहन, शूद्रक, साहसाक इत्यादि पूर्वकालीन नृपतिगण जिस प्रकार अपनी सभाओ मे गुणीजनो को दान-मान से सम्मानित करते थे, उसी प्रकार वह भी कवियों को पुरस्कारादि से सत्कृत करे। 'वीरचरित' मे तथा परवर्ती राजशेखर द्वारा शूद्रक का उल्लेख सातवाहन अथवा शालिवाहन के मन्त्री रूप मे किया गया है तथा यह भी कहा गया है कि सातवाहन ने उसे प्रतिष्ठान-समेत अपना आधा राज्य दे दिया।[2]

इन उल्लेखो से भी शूद्रक कल्पना-लोक का प्राणी न होकर, वास्तविक ससार का ख्यात व्यक्ति प्रतीत होता है और भारतीय इतिहास के उन नरेशो की पक्ति मे प्रतिष्ठित जान पडता है जो साहस एव शौर्य के साथ काव्य का प्रणयन तथा रसास्वादन करने के लिए विख्यात रहे हैं। राजशेखर ने सूक्ति-मुक्तावली में रामिल तथा सोमिल के द्वारा शूद्रक-कथा रची जाने की बात कही है।[3] विद्वानो ने बाद की भी 'शूद्रकवध' नामक काव्य तथा 'विक्रान्त-शूद्रक' नामक नाटक के प्रणयन की सूचना प्रस्तुत की है। इनमे से भोजराज ने सरस्वतीकण्ठाभरण तथा शृगारप्रकाश मे 'विक्रान्तशूद्रक' का उल्लेख किया है। हेमचद्र ने अपने काव्यानुशासन मे किसी पञ्चशिख के द्वारा प्रणीत 'शूद्रककथा' का उल्लेख किया है जिसे भोजराज ने भी शृगारप्रकाश मे उद्धृत किया है।[4] स्पष्ट है कि इन रचनाओं का नायक शूद्रक ही है। अमर-

१ काव्यमीमासा (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्) दशम अध्याय, पृ० १३३।

२ कीथ Sanskrit Drama (1959), पृ० १२९।

३ "तौ शूद्रककथाकारौ वन्द्यौ रामिलसोमिलौ।
यथोर्द्वयो \ काव्यमासीदर्धनारीश्वरोपमम् ॥"

४ Dr S K. De - 'History of Sanskrit Literature' (1947), पृ० २४१, पादटिप्पणी।

कोष के टीकाकार क्षीरस्वामी ने शूद्रक के पर्यायवाची शब्दों मे विक्रमादित्य, साहसाक, अग्निमित्र, हाल तथा सातवाहन का परिगणन कराया है।[१] इस उल्लेख से प्रतीत होता है कि शूद्रक का व्यक्तित्व टीकाकार की जानकारी मे भारतीय इतिहास के ऐसे प्रख्यात व्यक्तित्वो के साथ घुल-मिल गया है जिनके चरित्र मे शौय एव लालित्य का सौरभ युगपत् प्रस्फुटित हुआ है।

उपर्युक्त विवरणो के आलोक मे यह तत्काल समझा जा सकता है कि शूद्रक का वृत्त सस्कृत साहित्य मे इतनी संकुलता के साथ गुम्फित हुआ है कि उसे केवल कल्पना का विलास बताना उचित नही होगा। ऐसा विश्वास करने का प्रचुर कारण है कि शूद्रक सज्ञा अथवा उपाधि धारण करनेवाला कोई राजा प्राक्तन भारतीय इतिहास मे अवश्य था और उसके व्यक्तित्व मे शौर्य, साहस, शृगार तथा 'नागरकवृत्त' के अभ्यास के तत्त्व चमत्कारी रीति से गुम्फित हुए थे[२] और क्या आश्चर्य कि समान शील एव आसक्तियों वाले परवर्ती नरेशों द्वारा यह अभिधान ग्रहण कर लिया गया हो? विद्वानो ने बताया है कि उत्तरी और दक्षिणी दोनो ही भारत के इतिहास मे राजाओ का शूद्रक नाम उपलब्ध है। राष्ट्रकूट नरेश कन्नडदेव अकालवर्ष के अधीन शूद्रकय्य नामक राजा था जो ९६८ ई० मे शासनारूढ था तथा जिसने "उज्जयिनीभुजग" की विचित्र उपाधि ग्रहण की थी। उत्तरी भारत के इतिहास मे भी शूद्रक नामक अन्य राजा था जिसे १००० ई० के आस-पास गया के अल्पजीवी राजवश की स्थापना करनेवाला बताया गया है।[३] ऐसी अवस्था मे शूद्रक को काल्पनिक (mythical) व्यक्तित्व मानना युक्तिसगत नही समझा जाएगा।

(२)

तब प्रश्न उठता है कि 'मृच्छकटिक' का रचयिता शूद्रक माना जाय अथवा नहीं? इस विषय मे स्मरणीय यह है कि शूद्रक के अतिरिक्त परम्परा किसी अन्य व्यक्ति को 'मृच्छकटिक' का रचयिता मानती नही आई है। यदि शूद्रक रचयिता नही है, तो फिर किसे रचयिता माना जाय? किसी अन्य लेखक ने ऐसा महत्वपूर्ण नाटक लिखकर उसके कृतित्व का आरोप शूद्रक नामक

१. "× × × विक्रमादित्य साहसाकः शकान्तक।
शूद्रकस्त्वग्निमित्रो वा हाल स्यात् सातवाहन॥"

२ विद्यापति ने 'पुरुषपरीक्षा' नामक ग्रन्थ मे शूद्रक राजा को अनुकूल दक्षिण नायक का आदर्श माना है। (द्रष्टव्य पृ० ५०', ३५ अनुकूल कथा)

३ Ray Dynastic History of Northern India', I, पृ० ३४८, ३८६।

राजा पर कर दिया अथवा किया जाने दिया—ऐसी कल्पना बहुत सारपूर्ण तथा विश्वसनीय नहीं प्रतीत होती। पिशेल ने पहले यह निरूपण किया कि 'मृच्छकटिक' का रचयिता भास है और बाद को, यह घोषणा कर दी कि उसकी रचना वस्तुत दण्डी ने की है, सम्भवत इस अनुश्रुति से प्रेरित होकर कि दण्डी-द्वारा तीन प्रसिद्ध ग्रन्थ प्रणीत किये गये थे।[१] पिशेल की स्थापना का मुख्य आधार था "लिम्पतीव तमोऽङ्गानि" से आरम्भ होनेवाला परिचित श्लोक जिसे दण्डी ने 'काव्यादर्श' मे भास के नाटको से लेकर, यह दिखाने के लिए उद्धृत किया है कि इसमे उपमा नही, अपितु उत्प्रेक्षा अलकार है। दण्डी के 'मृच्छकटिक' का रचयिता होने की उपपत्ति अब सामान्यतया अस्वीकृत कर दी गई है। लेकिन, करमरकर ने बाद को पिशेल की इस स्थापना का नये सिरे से अनुमोदन किया है। उनकी युक्तियाँ निम्नाकित हैं :—

(क) दण्डी ने दशकुमारचरित मे शूद्रक के विभिन्न जन्मों का वर्णन किया है।

(ख) मृच्छकटिक के कतिपय उल्लेखो से पता चलता है कि उसका रचयिता दाक्षिणात्य रहा होगा। दण्डी के (जो दाक्षिणात्य था) काव्यादर्श मे उपर्युक्त श्लोक के अतिरिक्त ऐसे कतिपय अवतरण पाये जाते हैं जो 'मृच्छकटिक' में प्राप्त अवतरणो से कतिपय घनिष्ठ समानताएँ रखते हैं।

(ग) 'दशकुमारचरित' तथा 'मृच्छकटिक' मे विचार तथा अभिव्यक्ति की अनोखी समानताएँ उपलब्ध हैं।

(घ) रगमच पर प्रदर्शित हिंसात्मक दृश्य, मृत्युदण्ड प्राप्त अपराधी का वर्णन, रगमच विषयक विस्तृत निर्देश तथा सामाजिक अवस्था के चित्र—ये सभी बातें हर्षवर्धन रचित 'नागानन्द' नामक नाटक में उपलब्ध होती हैं जिसका समय ईसा की छठी शताब्दी है जो दण्डी का भी समय है।[२]

परन्तु यहाँ यह बिना हिचकिचाहट के कहा जा सकता है कि करमरकर-द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य अधूरा तथा अपूर्ण है। विचारो तथा सामाजिक अवस्था की समानता से किसी ग्रन्थ के समय का पता चल सकता है, किन्तु वह रचयिता के प्रश्न का समाधान नहीं सिद्ध हो सकता। 'मृच्छकटिक' मे प्राप्त रगमचीय

---

१ द्रष्टव्य, पिशेल द्वारा सम्पादित 'शृगारतिलक' (रुद्रट कृत), निर्णयसागर प्रेस, १९१०, पृ० १८।

"त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुता।" (राजशेखर)

२ R D Karmarkar 'Mrcch.' (1937), Introduction, पृ० ८९।

टेक्नीक के कतिपय विवरण भास के नाटकों मे उपलब्ध हैं और भास का घनिष्ठ प्रभाव उसमे पहले दिखलाया जा चुका है। अतएव 'नागानन्द' की तुलना मे भास के नाटको से 'मृच्छकटिक' का सादृश्य अधिक ठोस है। पुन 'काव्यादर्श' मे उद्धृत उपर्युक्त श्लोक के सम्बन्ध मे पिशेल की भ्रान्ति की चर्चा अभी की जा चुकी है। कीथ की भांति करमरकर भी शूद्रक को काल्पनिक व्यक्ति मानते हैं। तब, बात समझ मे नही आती कि अपनी ही रचना (मृच्छ०) को दण्डी एक काल्पनिक नरेश ने नाम पर क्यों आरोपित कर देता ? जिस लेखक ने 'दशकुमारचरित' और 'काव्यादर्श' का प्रणयन किया तथा उनका रचयिता होने का स्वीकरण भी किया, उसे मृच्छकटिक' जैसे महत्त्वपूर्ण नाटक की रचना करने के तथ्य को स्वीकार करने मे कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए थी।[१]

तब, इस विषय में महत्त्व का प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि 'मृच्छ०' की प्रस्तावना मे रचयिता का जो परिचय उपनिबद्ध है, उसे कहाँ तक ऐतिहासिक महत्त्व प्रदान किया जाय ? यह तो हमने अभी स्वीकार किया है कि शूद्रक नामक राजा के अस्तित्व का निषेध करना युक्तिपूर्ण नही होगा। किन्तु, प्रस्तावना मे सन्निविष्ट कवि परिचय की थोडी छानबीन आवश्यक हो जाती है। वहाँ शूद्रक गजराज के समान मद गम्भीर गतिवाला, चकोर के समान चारु नेत्रवाला, पूर्णेन्दु के समान मनोहर मुखवाला, परमसत्त्वशील, गणित तथा वेदो का ममज्ञ, शृङ्गार-कलाओ ('वैशिकी कला') मे निपुण, हस्तिशिक्षा मे प्रवीण, समरव्यसनी, तपोनिष्ठ, शत्रुओ के हाथियो से मल्लयुद्ध करने वाला तथा शकरजी की कृपा से नेत्रो की ज्योति (अथवा ज्ञान-चक्षुओ) को प्राप्त करनेवाला 'नृप' अथवा 'क्षितिपाल' बताया गया है। पुन यह कहा गया है कि उसने अपने पुत्र को सिंहासन पर आरूढ कर, उद्योगपूर्वक अश्वमेध (यज्ञ) किया और एक सौ वर्ष तथा दस दिन की लम्बी आयु प्राप्त कर अग्नि मे प्रवेश किया।

प्रस्तुत कवि-परिचय पर तनिक विचार करने से यह स्पष्ट प्रतिभासित होता है कि इसमे दो प्रकार के तथ्य समाविष्ट हुए हैं पहला, सामान्य जैसा तथा दूसरा, वैयक्तिक जैसा। 'गजराज', 'चकोर' तथा 'पूर्णेन्दु' उपमानो की योजना से शूद्रक की शारीरिक भव्यता, वेदों तथा गणित मे नैपुण्य के उल्लेख से वैदुष्य, अतुल पराक्रम तथा हस्तिशिक्षा, समरव्यसन, वैशिकी कला इत्यादि मे प्रवीणता के कथन से नृपोचित (प्राचीन प्रतिमान से) गुणों की

---

१ Dr G K. Bhat Preface To Mrcchakatika' (1953), पृ० १७६ ७७

वर्णमानता और तपोनिष्ठता के उल्लेख से उनकी धार्मिक बुद्धि की विज्ञप्ति की गई है। वस्तुत ये समस्त तथ्य वैसे ही हैं जो प्राचीन काल के राजाओं के चरित्र-वर्णन में सामान्यतया अनुस्यूत मिलेंगे। युद्ध एवं शृंगार दो ही प्रधान व्यसन हैं जिनमे पुराकालीन क्षितिपाल रस लेते थे। हस्तिकला तथा शत्रुओं के हाथियों से मल्लयुद्ध करना भी राजाओं का सामान्य गुण समझा जाएगा। 'अवन्तिसुन्दरीकथा' में दण्डी ने पल्लव नरेशों को हाथियों का प्रेमी तथा 'गजशास्त्र' का निपुण ज्ञाता बताया है।[1] राजाओं के सम्बन्ध में आदर्शीकरण की जो प्रवृत्ति प्राचीन प्रशस्तियों में उपलब्ध होती है, उसका प्रतिबिम्ब 'मृच्छ०' की प्रस्तावना में उपनिबद्ध शूद्रक-प्रशस्ति में स्पष्ट लक्षित होता है। केवल दो तथ्य ऐसे उल्लिखित हैं जिन्हें वैयक्तिक जैसा समझा जा सकता है, वे हैं—शंकर की कृपा से नेत्रों की ज्योति प्राप्त करना तथा दस दिन अधिक एक सौ वर्ष तक जीवित रहकर अग्नि में प्रवेश करना। शिवप्रसाद से नेत्र ज्योति प्राप्त करने—'शवप्रसादात् व्यपगततिमिरे चक्षुषी चोपलभ्य" का अर्थ ज्ञान-चक्षु प्राप्त करने से भी लिया गया है, ऐसी अवस्था में यह उल्लेख भी सामान्य जैसा ही समझा जाएगा (अश्वमेध वाला वचन भी नृप-प्रशस्ति का सामान्य तत्त्व समझा जा सकता है)। तब, 'शताब्द दशदिनसहित' की आयु वाला उल्लेख ही एक मात्र वैयक्तिक विशेषता का विज्ञापक बच जाता है। इस प्रशस्ति के आधार पर विद्वानों ने इतिहास में शूद्रक की खोज करने का प्रयास किया है जिसे आगे चलकर हम दिखायेंगे। स्पष्ट है कि 'मृच्छ०' के शूद्रक में नृप सुलभ सामान्य चरित्रगत विशेषताओं का जो बाहुल्य चित्रित हुआ है उसके आधार पर नाटककार शूद्रक के व्यक्तित्व को पकड़ पाना नितान्त कठिन है। और इसी कारण, इतिहास प्रथित किसी नरेश विशेष के साथ उसकी पहचान करने का प्रयत्न विफल रहा है, शायद बराबर विफल रहेगा।

लेकिन तब, जैसा कहा गया है, परम्परा शूद्रक के अतिरिक्त किसी अन्य को 'मृच्छ०' का प्रणेता नहीं मानती। और इसी कारण, प्रस्तावना में अङ्कित कवि परिचय परम्परा पर आधारित न होकर कपोलकल्पित है या विश्वसनीय नहीं है—ऐसा मानने का कोई युक्तिसंगत कारण नहीं दिखाई पड़ता।[2] 'किल' अव्यय का प्रयोग जो प्रस्तावना में कई बार हुआ है, उससे 'ऐतिह्य'

---

१ 'अवन्तिसुन्दरीकथासार' (सम्पादित, हरिहर शास्त्री) Introduction, Page VIII

२ Dr S K. De 'History of Sans Literature' (1947), पृ० २४०, पाद०।

अर्थात् परम्पराप्राप्त प्रमाण का अभिप्राय ग्रहण किया जा सकता है।[१] 'बभूव' तथा 'चकार' जैसे लिट् लकार वाले क्रियापदो के प्रयोग से शूद्रक का बहुत पहले वर्तमान होना सूचित होता है। अतएव, परम्परा के ही आधार पर यदि प्रस्तावना के कवि परिचय-लेखक ने शूद्रक को 'मृच्छ०' का रचयिता बताया तथा शूद्रक की वर्तमानता का परोक्षभूत मे निर्देश किया तो इससे यह क्योकर मान लिया जाय कि 'मृच्छ०' शूद्रक नामधारी राजा की रचना नही है? सभव है, शूद्रक के मरने के बहुत बाद ही, उसके किसी प्रशसक ने नाटक मे यह प्रशस्ति जोड दी हो। शूद्रक ने अपना नाम नाटक मे नही दिया था। प्राचीन ग्रन्थो के साथ अनिवार्य रूप से लेखक का नाम-परिचय रहता भी नही था।

शूद्रक ने अपना नाम क्यो नही दिया, बहुत काल के बाद नाटक के साथ शूद्रक के नाम को प्रत्यक्ष जोडने की क्यो आवश्यकता पडी—ऐसे प्रश्न कुतूहल उत्पन्न करने वाले अवश्य हैं किन्तु उनसे शूद्रक के रचयिता होने के तथ्य मे कोई अन्तर नही पडता। हो सकता है, शूद्रक के जीवन काल मे नाटक को बहुत महत्त्व नही मिला और उसकी मृत्यु के बहुत समय बाद, जब नाट्य-कला के कुशल पारखियो की अभिरुचि का प्रवाह उसके यथार्थवादी चित्रणो की ओर आकर्षित होने लगा, तब किसी प्रशसक ने उसके रचयिता शूद्रक की प्रशस्ति प्रस्तावना मे जोड दी—यह सोचकर कि ऐसी निराली रचना के रच-यिता का प्रत्यक्ष नामोल्लेख उस रचना के साथ जुडा हुआ चलना चाहिए ताकि सुदूर भविष्य मे उसका श्रेय किसी दूसरे को न मिल जाय। और, इस उत्साह मे, उसने कवि परिचय मे अतिरजना का स्वभावत प्रश्रय ग्रहण किया—ऐसा हम मानते हैं। उसी अतिरञ्जनापूर्ण मनोदृष्टि के कारण, शूद्रक की प्रशस्ति प्रसिद्ध प्राचीन नरेशो के सामान्य गुणो का समवाय बन गई जिससे इतिहास म शूद्रक को पकडना कठिन हो गया।

प्रस्तावना में शूद्रक को "द्विजमुख्यतम" कहा गया है। 'तम' प्रत्यय के सयोग से इस पद का अर्थ 'क्षत्रिय' नहीं 'ब्राह्मण' मानना युक्तिसगत होगा क्योंकि द्विजो मे सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण ही माना गया है। ऐसी आपत्ति उठाना कि 'समर-व्यसनी', 'अगाधसत्त्व' इत्यादि विशेषणो का प्रयोग क्षत्रिय के सबध मे ही सभव है, उचित नही है क्योकि ब्राह्मण राजा के लिए भी ये गुण तथा ये विशेषण नियोजनीय होंगे। अतएव, हमारी मान्यता है कि 'मृच्छ०' का रचयिता शूद्रक ब्राह्मण नरेश था, और यह भी सभव है कि 'शूद्रक' उसकी

१ 'किल' का प्रयोग प्राय वार्ता अथवा ऐतिह्य तथा सभावना का बोध कराता है—यथा, "वार्तासभाव्ययो किल।" (अमरकोश)

आत्मस्वीकृत अथवा समकालीन पंडितों द्वारा प्रदत्त उपाधि थी क्योंकि उस अभिधा के साथ साहस, शौर्य तथा शृंगार के रोमांटिक अनुषंग परम्परा से संलग्न हो गये थे और नाटककार के व्यक्तित्व में ये तत्त्व, उसके निराले जीवन-चरित के फलस्वरूप, समुचित हो गये थे।[1] भास के 'चारुदत्त' में प्रणय की कहानी अधूरी कही गई थी, और वह प्रणय था एक दानशील किन्तु दरिद्र ब्राह्मण तथा एक समृद्ध सम्पन्न वेश्या कन्या के बीच। शूद्रक की शृंगार-सवलित कुशल काव्य-चेतना चारुदत्त तथा वसंतसेना में भास-द्वारा उपलालित चरित्रगत विशेषताओं को पल्लवित एवं संवर्धित करने और प्रणय-परिपाक के आस्वाद को सघन सान्द्र बनाने के निमित्त उसके प्रवाह-पथ को कुटिल एवं विपदापन्न बनाने में आत्म-तुष्टि का लाभ कर सकी। राजा होने के कारण न्यायपीठ के नियमों की सूक्ष्म जानकारी तथा शासन की छत्रच्छाया में पोषण प्राप्त करने वाले राजपुरुषों की विलासिता एवं उच्छृङ्खलता का उसे समीप का अनुभव था। साथ ही ब्राह्मण होने के कारण ज्योतिष तथा मनुस्मृति इत्यादि धर्मशास्त्रों का भी घनिष्ठ परिचय उसे प्राप्त था। राज्यसत्ता के विरुद्ध विद्रोह की कहानी सोचना भी उसके लिए अकल्पनीय नहीं समझा जाएगा क्योंकि विद्रोह तथा षड्यन्त्र के प्रश्रयण से शासन सत्ता का हस्तान्तरण भारतीय इतिहास के प्राचीन काल में कोई अभूतपूर्व घटना नहीं था। शूद्रक ने संभवतः 'ब्रह्मश्री' का परित्याग कर, 'राजश्री' का वरण किया था जैसा उल्लेख अवन्तिसुन्दरीकथा में आया है। ब्राह्मण शर्विलक को राज्य विप्लव का नायक बनाने तथा दरिद्र ब्राह्मण चारुदत्त के चरित्र को उदारता एवं क्षमाशीलता के पूर्णतम आलोक से उद्भासित करने के तथ्य की सफाई राजा शूद्रक के इसी जीवन-रहस्य में खोजी जानी चाहिए। ब्राह्मणों के संदर्भ में दरिद्रता का 'आदर्शीकरण' (दरिद्रता कितनी दयनीय बन सकती है, इसका प्रदर्शन) तथा नैतिक स्खलन के बावजूद चरित्र की चिनगारी को प्रज्वलित रखना एवं अत्याचार के विरुद्ध उसके अन्तर्निहित सत्त्व को उत्तेजित करना (शर्विलक के संदर्भ में)—ये सभी तथ्य अपरगमित समझे जाएँगे।

---

१. विद्वानों ने ऐसा कथन भी किया है कि 'शूद्रक' संज्ञा इतनी प्रसिद्ध बन गई कि अनेक भारतीय शासकों ने, विशेषतः पल्लव तथा पश्चिमी गङ्गा राजवंशों के नरेशों ने, औरस के प्रतीक रूप में, 'शूद्रक' की उपाधि धारण कर ली।

—देखिये 'Chaturbhani' (Madras, 1922),
Introduction, P IV.

विद्वानों ने यह सदेह उठाया है कि यदि शूद्रक राजा होता और 'द्विज' होता, तो उसने निम्नस्तरीय चरित्रो को प्रमुखता देकर, आभिजात्य-विरोधी भावनाएँ प्रदर्शित नही की होती।[१] इस सबध मे हमारा निवेदन है कि शूद्रक का रोमांटिक व्यक्तित्व जिसके निर्माण मे उसके जीवन के अपने व्यक्तिगत अनुभव होंगे, ऐसे चरित्रो की अवतारणा के लिए उत्तरदायी रहा होगा। 'राजश्री' प्राप्त करने के सदर्भ मे उसे क्षत्रिय सत्ता के साथ शायद सघर्ष करना भी पडा होगा। अतएव, बिलकुल स्वाभाविक ढग से शूद्रक ने प्रस्तुत नाटक मे स्थिर स्वार्थों की अवमानना कर, निम्नवर्गीय पात्रो के चरित्रो का उत्कर्ष चित्रित किया। और, इसमे जानबूझ कर आभिजात्य विरोधी भावनाएँ प्रदर्शित की गई—ऐसा समझने का कोई तात्त्विक आधार स्वय नाटक मे वर्तमान नही है।

अतएव, 'मृच्छ०' का रचयिता शूद्रक ब्राह्मण राजा है—ऐसा अनुमान अनुचित नही प्रतीत होता।

(२)

शूद्रक की ऐतिहासिक दृष्टि से पहचान करने का प्रचुर प्रयत्न किया गया है। इस पहचान के सन्दर्भ मे स्वभावत उसके समय निर्धारण का प्रश्न भी उठा है, और तब दोनो प्रश्न परस्पर उलझ गये हैं क्योंकि एक का निर्णय दूसरे के निर्णय के अभाव मे महत्त्वहीन हो जाएगा। पूरी समस्या तब अवश्य कुछ आसान बन जाती है जब यह मान लिया जाय कि शूद्रक काल्पनिक व्यक्ति था क्योंकि वैसी अवस्था मे उसकी ऐतिहासिक पहचान करने का प्रश्न ही समाप्त हो जाता है। कतिपय प्रसिद्ध मतो एव मान्यताओ का यहाँ सक्षिप्त उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है।

शूद्रक की पहचान के सम्बन्ध मे संस्कृत साहित्य की एक सनातन कठिनाई यह उत्पन्न होती है कि वहाँ एक ही नाम धारण करनेवाले अनेक छोटे-बडे कवि अथवा नाटककार हो गये हैं जिनका आविर्भाव काल अनुमान तथा अनिश्चय के गर्भ मे पडा हुआ है। कालिदास के सम्बन्ध मे ही नव कालिदासो की गणना कराई गई है जिनमे से 'अभिज्ञानशाकुन्तल' इत्यादि काव्यो के रचयिता 'दीपशिखा' कालिदास को पृथक् कर लिया गया है। विभिन्न ग्रन्थो मे शूद्रक

१ "It is strange that despite being a King, Sudraka shows some Kind of anti aristocratic feelings by elevating the character of all the minor actors"—Dr Shekhar: 'Sans Drama Its Origin And Decline' (1960), पृ० ११७.

के जो उल्लेख उपलब्ध हैं, उनके आधार पर डॉ० पुसाल्कर ने सत्ताइस शूद्रकों की गणना कराई है जिनमें से तीन को ऐतिहासिक व्यक्ति माना गया है, और 'मृच्छ०' के रचयिता शूद्रक को विक्रमादित्य से अभिन्न मानकर, उसे ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी का बताया गया है।[1]

(१) स्कन्दपुराण के कुमारिकाखण्ड में एक उल्लेख आया है कि शूद्रक नाम का एक महान् राजा कलि संवत् के ३२९० वें वर्ष में राज्य करेगा।[2] नवीन गणना से यह वर्ष ईसवी संवत् का १९०-वाँ वर्ष (सन् १९० ई०) ठहरता है। कर्नल विल्फोर्ड ने सबसे पहले स्कन्दपुराण के इस शूद्रक को आन्ध्र-भृत्य राजवंश के प्रवर्तक सिमुक से अभिन्न ठहराया। उनकी स्थापना के आधार ये थे : (क) भागवतपुराण में प्रथम आन्ध्रनरेश को 'वृषल' अथवा 'शूद्र' कहा गया है[3], और इस प्रकार यह सम्भव है कि उसे सामान्यतः शूद्रक कहा जाता रहा हो, (ख) 'सिमुक' के 'सिन्धुक, सिशुक', 'शिशुक', सिन्धुक' तथा 'सिप्रक' एवं 'शिप्रक' रूप भी अन्यान्य ग्रन्थों में उपलब्ध हैं[4] और इस प्रकार सम्भव है 'सिमुक' आरम्भ में 'शूद्रक' रहा हो जिसकी गौरवपूर्ण गाथा ही परवर्ती साहित्य में काव्यात्मक अतिरंजना के साथ वर्णित की गई हो। विल्फोर्ड तथा विल्सन ने स्कन्दपुराण के शूद्रक को आन्ध्रभृत्यों के सिमुक से अभिन्न ठहराते हुए 'मृच्छ०' का कर्ता भी माना है।[5] आधुनिक विद्वानों ने आन्ध्रभृत्य वंश की स्थापना का समय २०० ई० पू० निश्चित किया है[6], और इस प्रकार, स्कन्दपुराण के शूद्रक तथा आन्ध्रभृत्यों के प्रथम शासक सिमुक के, समयों में लगभग चार शताब्दियों का अन्तराल पड़ जाता है। लेकिन इस

---

१ Sanskrit Drama Its Origin And Decline'
(Dr I Shekhar), पृ० ११८, पा० टि०।

२ 'त्रिषु वर्षसहस्रेषु कलेर्यातेषु पार्थिव ।
त्रिशतेषु दशन्यूनेष्वस्यां भुवि भविष्यति ॥ १ ॥
शूद्रको नाम वीराणामधिपः सिद्धिमत्र च ।
चर्चितायां समाराध्य लप्स्यते भूभयावह" ॥ २ ॥

३ 'हत्वा कण्वं सुशर्माणं तद्भृत्यो वृषलो बली ।
गां भोक्ष्यत्यन्ध्रजातीयः कञ्चित्कालमसत्तमः ॥" (१२।१।२०)

४ डॉ० भण्डारकर Early History of the Dekkan' (1957),
पृ० ३२।

५ H H Wilson The Theatre of the Hindus' (1955)
पृ० ५३।

६ विन्सेन्ट स्मिथ 'Early History of India' (1914) पृ० २१६।

विद्वानों ने इस व्यवधान का समाधान इस तर्कना से किया है कि स्कन्दपुराण के रचयिता ने सही तिथि का पता लगाने की चेष्टा किये बिना ही, परम्परा-प्राप्त अनुश्रुति के आधार पर, अथवा स्मृति से, शूद्रक का उपर्युक्त समय (१९० ई०) अंकित कर दिया होगा।[1] इसके अतिरिक्त, दो अन्य तर्क ये प्रस्तुत किये गये हैं : (१) नाटककार दाक्षिणात्य प्रतीत होता है और आन्ध्र-भृत्य (जिन्हें सातवाहन अथवा शालिवाहन भी कहा गया है) वंश के नरेश भी दाक्षिणात्य थे जिनका प्राकृत प्रेम प्रसिद्ध है और 'मृच्छ०' में प्राकृत को स्पष्ट महत्त्व मिला है, (२) नाटक में निबद्ध राज्यविप्लव की कहानी साभिप्राय है क्योंकि प्रथम आन्ध्रभृत्य शासक ने कण्व वंश के अन्तिम राजा के विरुद्ध (जिसका वह मन्त्री था) विद्रोह कर, सत्ता अपनाई थी और सम्भव है, नाटक की रचना करते समय, इस विप्लव को छद्म नामों की आड में उसने कथानक के साथ सहेतुक रूप से जोड़ दिया हो क्योंकि लोगों की स्मृति में वह घटना अभी ताजी बनी होगी।[2]

किन्तु 'मृच्छ०' की रचना के लिए अन्य प्रमाणों के आधार पर इतना पहले का समय नहीं दिया जा सकता। अतएव, उसके रचयिता शूद्रक को स्कन्दपुराण के शूद्रक अथवा आन्ध्रभृत्यों के संस्थापक सिमुक से अभिन्न ठहराना युक्तिसंगत नहीं माना जाएगा।

(२) दण्डी के 'अवन्तिसुन्दरीकथासार' में वर्णित शूद्रक की चर्चा पहले विस्तारपूर्वक की जा चुकी है जिसमें उसे उज्जयिनी का ब्राह्मण राजा तथा कवि बताया गया है और यह भी कहा गया है कि उसने आन्ध्रभृत्यवंशीय राजकुमार स्वाति को युद्ध में पराजित किया। 'कथा' के एक श्लोक में प्राप्त पद "वाचा स्वचरितार्थया" के आधार पर यह अनुमान किया गया है कि शूद्रक की रचनाओं में आत्मचरितात्मक तथ्य सन्निविष्ट थे। इस प्रकार यह बताया गया है कि 'मृच्छ०' में शूद्रक के जीवन विषयक तथ्य सन्निहित हैं चारुदत्त 'कथासार' का अनुकृत है जो शूद्रक का घनिष्ठ मित्र था और संकट के समय उसकी प्राय सहायता की थी अथवा आर्यक स्वयं शूद्रक का प्रतिनिधित्व करता है। चूंकि आन्ध्रभृत्य स्वाति का शासन-काल ५६ ई० पू० तक चलता है अत एव संवत्सर के प्रवर्तक राजा विक्रमादित्य से अभिन्न इस

---

१. M R Kale : 'मृच्छकटिकम्' (सम्पादित), १९६२ संस्करण, भूमिका, पृ० १८-१९।

२ काले 'मृच्छकटिकम्' (सम्पादित, १९६२ संस्करण), भूमिका पृ० २०।

शूद्रक को सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है।[1] इस प्रकार, शूद्रक का समय ५६ ई० पू० ठहरता है। यह मत केवल एक सुझाव के रूप में ही उपस्थित किया गया है और इसे विद्वानों का अनुमोदन प्राप्त नहीं है।

(३) एक मनोरंजक स्थापना, राजशेखर द्वारा उल्लिखित "धावक भास" के आधार पर, यह की गई है कि भास स्वयं 'मृच्छ०' का रचयिता है जिसे उसने अपनी पूर्व-रचना 'दरिद्र-चारुदत्त' को परिवर्धित कर, उसे नया स्वरूप प्रदान किया। और, चूंकि भास शूद्र था, इसलिए उच्च वर्ण के पंडितों तथा स्थिर स्वार्थों ने उसे हीनता सूचक "शूद्रक" उपनाम प्रदान किया।[2] इस उपपत्ति का आसानी से खण्डन इस प्रकार हो जाता है कि यदि 'मृच्छ०' भास की रचना होता तथा उसके सम्बन्ध में उसे 'शूद्रक' की उपाधि मिली होती, तो फिर भास के अन्य नाटकों के सम्बन्ध में 'शूद्रक' शब्द का प्रचलन क्यों नहीं हुआ? पुनः, जैसा पहले दिखाया जा चुका है, 'चारुदत्त' और 'मृच्छकटिक' दोनों दो पृथक् रचनाएं हैं तथा दोनों के रचयिता दो भिन्न भिन्न व्यक्ति हैं। अतएव, भास को शूद्रक मानना उचित नहीं है।

(४) प्रो० स्टेनकोनो ने यह स्थापना की है कि 'मृच्छ०' का रचयिता शूद्रक आभीर राजा शिवदत्त है जिसने डॉ० फ्लीट के अनुसार, (अथवा उसके पुत्र ईश्वरसेन ने) सन् २४८-४९ ई० में आन्ध्रवंश के अन्तिम राजा को अपदस्थ कर शासन सत्ता ग्रहण की और चेदि संवत् चलाया। इस मान्यता का आधार है नाटक के कथानक में अनुस्यूत राज्यविप्लव वाली उपकथा जिसमें "गोपालदारक" आर्यक-द्वारा राजा पालक के विरुद्ध विद्रोह कर शासन-सत्ता अपनाये जाने का कथन हुआ है। आभीरों ने महाराष्ट्रप्रदेश के उत्तरी भाग में किसी समय एक राज्य की स्थापना की थी, इस तथ्य की पुष्टि नासिक के उन शिलालेखों से होती है जो आभीर नरेश शिवदत्त के पुत्र ईश्वरसेन के शासन के नवें वर्ष की स्मृति को स्थायी बनाने के लिए अंकित किये गये हैं।[3] किन्तु कोनो की इस स्थापना का जे० चार्पेन्टियर (J Charpentier) तथा विण्टरनिट्ज ने तीव्र विरोध किया है।[4] प्रो० कीथ ने (भी) गोपालदारक

---

१ द्रष्टव्य - Proceedings of the Second Oriental Conference (1923) में प्रकाशित M R. Kavi का निबन्ध पृ० १९३-२०१।

२ नररवर 'मृच्छकटिक' (सम्पादित) भूमिका, पृ० १५-१९।

३ Luders - 'List of Brahmi Inscriptions', No 1137

४ Dr I Shekhar 'Sans Drama Its Origin And Decline' पृ० ११७।

आर्यक तथा पालक की कहानी को काल्पनिक अथवा गल्प (legendary) मानते हुए, प्रो० कोनो की स्थापना का प्रत्याख्यान किया है। भास के प्रति 'मृच्छ०' की अधमर्णता का संकेत करते हुए, कीथ ने भास के 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' की ओर ध्यान आकर्षित किया है जिसमें गोपाल तथा पालक उज्जयिनी के राजा प्रद्योत के पुत्र बताये गये हैं, और यह भी सम्भावना निर्दिष्ट की है कि गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' में यह कहानी अवश्य रही होगी जिसमें प्रद्योत के मरने पर गोपाल ने अपने अनुज पालक को पिता का राज्य समर्पण कर दिया होगा और बाद को गोपाल के पुत्र आर्यक ने अपने पितृव्य पालक से शासन सत्ता छीन ली होगी। कीथ ने, इस प्रकार, 'बृहत्कथा' में सन्निविष्ट कहानी के आधार पर ईसा की तीसरी शताब्दी का इतिहास निर्मित करने के प्रयास को असम्भव बताया है।[१]

अतएव, आभीर राजा शिवदत्त के साथ 'मृच्छ०' के रचयिता राजा शूद्रक की अभिन्नता का प्रतिपादन युक्तिसंगत नहीं सिद्ध होता।

(५) शूद्रक की ऐतिहासिक पहचान का शायद सबसे व्यवस्थित प्रयास डॉ० साल्तेटोर ने किया है। चूंकि वामन ने 'काव्यालङ्कारसूत्र' में 'मृच्छ०' से उद्धरण लिया है और उसका समय ईसा की आठवीं शती है, अतएव शूद्रक वामन का समसामयिक नहीं तो पूर्ववर्ती अवश्य माना जाएगा—इस तथ्य से प्रेरणा ग्रहण कर, साल्तेटोर ने बड़े मनोयोग के साथ नाटक की प्रस्तावना में उक्ति कवि परिचय के आधार पर शूद्रक की खोज का प्रयास किया है और उसे दक्षिण के प्राचीन गंग राजवंश के राजा शिवमार प्रथम से अभिन्न ठहराया है जो प्रसिद्ध पराक्रमी राजा श्रीपुरुष का अनुज था तथा जिसके 'नवकाम', 'पृथ्वीकोङ्गुणी', 'श्रीपुरुष' एवं 'शिष्टप्रिय' उपनाम थे।

डॉ० साल्तेटोर ने प्रस्तावना की कवि प्रशस्ति के आधार पर शूद्रक की पहचान के लिए निम्नांकित छः प्रमुख कसौटियाँ निर्धारित की हैं :—

(क) शूद्रक का रूप-सौन्दर्य
(ख) शूद्रक की जाति
(ग) शूद्रक की स्मृतियों की जानकारी
(घ) शूद्रक का दीर्घायुष्य
(ङ) शूद्रक की युद्धप्रियता
(च) शूद्रक की हस्तिशिक्षा निपुणता तथा हाथियों से मल्लयुद्ध करने की लोलुपता

---

१ 'The Sanskrit Drama' (1959), पृ० १२९–३०।

इन छ कसौटियों में भी सालेटोर ने दीर्घायुष्य तथा हस्तिविद्या-प्रवीणता को सर्वाधिक महत्व की कसौटियाँ माना है और ऐतिहासिक प्रमाणों से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि शिवमार प्रथम इन कसौटियों पर कसे जाने से 'मृच्छ०' का रचयिता शूद्रक ठहरता है। नीचे की पंक्तियों में सालेटोर के प्रतिपादन का सार प्रस्तुत किया जा रहा है।

लगभग सन् ७०० ई० में अंकित हेन्नुरु ताम्रपत्रलेखों में शिवमार प्रथम की प्रशस्ति वर्णन करते यह बताया गया है कि भूविक्रम का अनुज, जिसके चरण-कमल नम्रशिरस्क होकर झुकनेवाले महान् नरेशों के मुकुटों में जड़े असंख्य रत्न-मणियों के प्रकाश से जगमगाते रहते थे, 'नवकाम', 'शिष्टप्रिय' तथा शत्रुदल-संहारक कहा जाता था, वह विष्णु की प्रसिद्धि का अपहरण करने वाला, राम के विशुद्ध चरित्र की अभिलाषा करनेवाला, मनु के सिद्धान्तों को माननेवाला, संसार के लिए एक अवर्णनीय आतंक और दूसरों की नवयुवती पत्नियों को फुसलानेवाला था, उसके चरित का गान किन्नरों द्वारा गाया जाता था, उसके द्वारा मारे गये हाथियों के मस्तकों से चूनेवाली मदधार से किरात-कामिनियाँ अपने शरीर का शृंगार करती थी। शालिग्राम ताम्रपत्रलेख में शिवमार प्रथम को (सन् ७०९ ई०) वैवस्वत मनु के समान वर्णों तथा आश्रमों का संरक्षक बताया गया है।

इन लेखों से 'मृच्छ०' की प्रस्तावना में अंकित शूद्रक प्रशस्ति के चार तथ्यों का मेल बैठता है, यथा, (i) शिवमार अत्यन्त रूपवान् था, तभी तो 'नवकाम' कहा जाता था, (ii) वह वैशिकी कलाओं में प्रवीण था, तभी तो दूसरों की नवयुवती पत्नियों को बहकानेवाला कहा जाता था, (iii) वह मनु के सिद्धान्तों का पालक तथा माता था; (iv) वह युद्ध-व्यसनी तथा शत्रुओं को आतंकित करने वाला था। अन्य लेखों से भी शिवमार प्रथम की युद्ध वीरता का पता चलता है।

शूद्रक की जाति, सालेटोर "द्विजमुख्यतम" के आधार पर ब्राह्मण मानते हैं, और यह स्थापना की है कि गंग-वंश के नरेश काण्वायन गोत्र के ब्राह्मण थे यद्यपि वे साथ ही अपने को सूर्यवंशी क्षत्रिय भी मानते थे। 'मृच्छ०' में शूद्रक को "हस्तिशिक्षा" में प्रवीण बताया गया है और शुण्टमोटक नामक दुष्ट हाथी की विनाशकारी करतूतों के चित्रण से इसकी पुष्टि भी होती है। सालेटोर की स्थापना है कि शिवमार प्रथम भी हस्तिशिक्षा का निष्णात पण्डित था जिस तथ्य की पुष्टि गजशास्त्र ग्रंथ 'गजशास्त्रम्' से होती है जिसमें हाथियों की विशेषताओं का विवेचन किया गया है। यह ग्रन्थ संस्कृत में लिखा है और

लेखक का नाम शिवमार दिया गया है ।[१] सालेटोर का कथन है कि यह शिवमार गंग-वंश का शिवमार प्रथम ही है और 'मृच्छ०' के शूद्रक की हस्तिशिक्षा-निपुणता से उसे इस नाटक का रचयिता शूद्रक माना जा सकता है। हल्लुरु ताम्रपत्रों में अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से जो कथन यह किया गया है कि शिवमार प्रथम के द्वारा मारे गए हाथियों के मस्तकों से निकलने वाली मद-धाराओं से स्त्रियाँ अपना हर-शृंगार किया करती थीं, उसमें नाटक की प्रस्तावना में उल्लिखित "परवारणबाहुयुद्धलुब्ध" (शत्रुओं के हाथियों से मल्लयुद्ध करने) की संगति बिल्कुल सटीक बैठ जाती है।

'मृच्छ०' के रचयिता के दीर्घायुष्य का भी मेल शिवमार प्रथम के साथ प्रमाणित हो जाता है। शिवमार प्रथम के पौत्र तथा उत्तराधिकारी श्रीपुरुष द्वितीय के बारदूर ताम्रपत्रों में, जो सन् ७२६ ई० में अंकित किये गये थे, शिवमार प्रथम के पूरे एक सौ वर्ष जीवित रहने की विज्ञप्ति होती है। डॉ० सालेटोर ने इन ताम्रलेखों में जो उद्धरण दिया है उसमें शिवमार प्रथम के उन गुणों का समर्थन होता है जो हल्लुरु ताम्रपत्रों में अङ्कित पहले दिखाये गये हैं और नई विशेषताएँ ये मिलती हैं कि वह अगणित चोरों के लिए यमराज के समान था, "पृथ्वीकोंगुणी वृद्धराज श्रीपुरुष" कहलाता था और स्मृतियों का पालन करते हुए एक सौ वर्ष की आयु प्राप्त की थी—"स्मृति-अविरोधेन वर्षशतपूर्णायु।" लम्बी आयु पूरे एक सौ वर्ष के कारण ही, शिवमार प्रथम 'वृद्धराज' कहलाता था। सालेटोर का कथन है कि 'मृच्छ०' की प्रस्तावना में नियोजित पात्र 'नृपवृद्ध' और प्रस्तुत 'वृद्धराज' में जो नाम-साम्य वर्तमान है वह निरुद्देश्य नहीं, अपितु नाटककार शूद्रक-द्वारा अपनी पहचान के लिए छोड़ा गया एक संकेत है।

बारदूर ताम्रपत्रों में शिवमार प्रथम की एक नई विशेषता जो यह बताई गई है कि वह शत्रु-सैन्य के चोरों के लिए यमराज, "तस्करान्तकर" था, उसकी भी संगति 'मृच्छ०' के तीसरे अङ्क में शर्विलक-द्वारा प्रस्तुत सन्धिच्छेद के विवरणों से बैठ जाती है। सालेटोर का अनुमान है कि शिवमार प्रथम चोरी की कला में भी प्रवीण था (!) और शूद्रक के रूप में, उसने नाटक में सेंध लगाने का सूक्ष्म विवरण अंकित कर, आत्मचरितात्मक संकेत भी सन्नि-विष्ट किये हैं।

---

१ कुप्पुस्वामी शास्त्री, 'Triennial Catalogue of Manuscripts in the Madras Oriental Library, IV, NO 3791.

—इस ग्रंथ से शिवमार प्रथम की काव्य रचना की क्षमता के द्योतन की बात भी कही गयी है।

इसी प्रकार, प्रस्तावना की शेष तीन विशेषताओं—शंकर की कृपा से नेत्रों की ज्योति पुनः प्राप्त करना, पुत्र को सिंहासन प्रदान करना तथा अश्वमेध यज्ञ करना—के सम्बन्ध में सालेटोर ने दिखाया है कि शूद्रक के राज्यकाल में पल्लवनरेश नन्दिवर्मन द्वितीय के साथ हुए विलिन्द के युद्ध में सम्भवतः शिवमार प्रथम को अपनी आँखों की हानि उठानी पड़ी थी यद्यपि नेत्र-ज्योति कैसे पुनः प्राप्त हुई, नहीं कहा जा सकता (शिवमार शिव का भक्त तो जान ही पड़ता है); पुत्र को राज्यारूढ़ करने का इतिहास से समर्थन मिलता है, रह गई अश्वमेध करने की बात तो उस समय के किसी दक्षिणी राजा-द्वारा अश्वमेध किये जाने का प्रमाण उपलब्ध नहीं होता और अधिक-से-अधिक, यही अनुमान किया जा सकता है कि 'छान्दोग्योपनिषद्' में उल्लिखित रूपकात्मक रीति से शिवमार प्रथम ने अश्वमेध सम्पन्न किया होगा और नहीं तो 'मृच्छ०' के रचयिता नरेश ने परवर्ती पीढ़ियों को चकमे में डालने के लिए ही प्रस्तावना में अश्वमेध का उल्लेख कर दिया होगा—"The mention of the Ashvamedha Sacrifice is an equally clever attempt on the part of the author to baffle posterity."

इस स्थल पर यह उल्लेख कर देना उचित है कि डॉ० सालेटोर ने 'मृच्छ०' को दो रचयिताओं की सम्मिलित कृति माना है। प्रथम अंक से चौथे अंक के लगभग पूर्वार्ध तक की रचना का श्रेय वे शिवमार प्रथम को प्रदान करते हैं तथा चौथे अंक के उत्तरार्ध से अन्त तक का रचयिता वे शिवमार प्रथम के पौत्र श्रीपुरुष द्वितीय के पुत्र एवं उत्तराधिकारी शिवमार द्वितीय को मानते हैं और उसे राज्यद्रोह वाली उपकथा से किसी-न-किसी प्रकार सम्बन्धित बताते हैं—"The author, who wrote the drama from about the middle of the IV Act, evidently was in some manner connected with the political plot."

सालेटोर की तर्कनायें यों हैं—

जिस सुन्दर रीति से राजनीतिक उपकथानक नाटक की मुख्य कथा के साथ गुम्फित हुआ है, उससे ज्ञात होता है कि इस भाग का लेखक नाटक कला के सिद्धान्त एव व्यवहार दोनों पहलुओं का प्रवीण जानकार होगा। चौथे अंक के मध्य से नाटक में जो चमत्कारी उपमाएँ उपलब्ध होती हैं, उनसे ज्ञात
शूद्रक
लेखक महान् कवि भी रहा होगा। पुन, वसन्तसेना के महल तथा
हाथी की ।
चित्रित चित्रों के वर्णन से प्रतीत होता है कि वह ललित
की तपना है कि
। इनके अतिरिक्त, द्रष्टव्य यह है कि चौथे अंक के
तथ्य की पुष्टि नवप्राप्त
कथानक आरंभ होता है, नाटक में सालेटोर
विशेषताओं का विवेचन ।

का कथन है—प्राकृत का प्रयोग बहुत अधिक बढ गया है। इससे ऐसा अनुमान करने की प्रेरणा मिलती है कि नाटक के दूसरे भाग का प्रणेता प्राकृत भाषा का बडा विद्वान् रहा होगा। नवें अक मे चित्रित न्यायालय के प्रभावशाली दृश्य से जान पडता है कि लेखक स्वत न्याय-विधानो का मर्मज्ञ एव अनुमोदक होगा। और, उसी अक मे जो प्रचुर तर्कना दिखाई पडती है तथा पिछले दो अकों, चौथे एव पाँचवे मे, नाटकीय पात्रो मे जो दार्शनिक चिन्तन की प्रवृत्ति दिखाई पडती है, उससे जान पडता है कि लेखक भी तर्कशास्त्र एव दर्शन-शास्त्र का प्रवीण पडित रहा होगा।

उपर्युक्त सभी बातें सालेटोर के अनुसार शिवमार द्वितीय के विषय में सटीक ठहरती हैं। उन्होने यह स्वीकार करते हुए कि गग-वश का इतिवृत्त निर्मित करना कठिनाई से खाली नही है, यह अभिमत व्यक्त किया है कि शिवमार प्रथम की मृत्यु के बाद गद्दी हथियाने के लिए उसके वश मे किसी अज्ञात दावेदार की तरफ से सघर्ष छेडा गया होगा, उसमे शिवमार प्रथम के (सभावित) पुत्र दुर्विनीत एडियग को पराजित होना पडा होगा और बाद को, दुर्विनीत का पुत्र श्रीपुरुष द्वितीय शत्रु को परास्त कर विजयी बना होगा। इसी श्रीपुरुष द्वितीय का पुत्र शिवमार द्वितीय था जो पिता के मरने पर सिंहासन पर आसीन हुआ और जो, सालेटोर के मतानुसार, 'मृच्छ०' के उत्तरार्ध का रचयिता माना जाना चाहिए। सालेटोर का कथन है कि शिव मार द्वितीय का, इस प्रकार, अपने पिता एव पितामह के काल मे छिडे राजनीतिक सघर्ष से प्रत्यक्ष सबध ठहरता है और 'मृच्छ०' के राज्यपरिवर्तन वाले उपकथानक का गुफन उसने उसी घटना के सकेत पर जानबूझ कर किया। नाटक मे राजा पालक के लिए जो किसी उदार एव महत्त्वपूर्ण विशेषणो का प्रयोग नही किया गया है, उससे जान पडता है कि वह (पालक) *राजा श्रीपुरुष के पिता एडियग के उस अज्ञात प्रतिद्वन्द्वी का प्रतिनिधित्व* करता है जो उस सघर्ष मे पराजित हुआ था। बात जो भी हो, श्रीपुरुष द्वितीय का पुत्र शिवमार द्वितीय इस राजनीतिक उथल-पुथल की घटनाओ का प्रत्यक्षदर्शी रहा होगा, और इसी कारण, सालेटोर की तर्कना है, नाटक को आगे बढाते समय, उसने राज्य-परिवर्तन वाले उपकथानक को वैयक्तिक सबधो के कारण सन्निविष्ट किया। सालेटोर अपने निश्चय को दुहराते हुए कहते हैं कि यह निर्भ्रान्त रीति से दृढता-पूर्वक कहा जा सकता है कि राजा शिवमार द्वितीय ने स्वत 'मृच्छ०' का प्रणयन पूर्ण किया जो या तो शूद्रक शिवमार प्रथम द्वारा अपूर्ण छोड दिया गया था या फिर उसने जानबूझ कर,

नाटक को संक्षिप्त ढंग से लिखा था।[१] (शिवमार द्वितीय का शासन-काल सन् ७९७ से सन् ८१५ ई० बताया गया है जबकि शिवमार प्रथम का राज्य-काल सन् ६७० ई० से सन् ७२५ ई० कहा गया है।)

सालेटोर ने दिखाया है कि शिवमार द्वितीय को विपत्तियों का लगातार सामना करना पड़ा, कई बार वह राष्ट्रकूट नरेशों द्वारा बन्दी बनाया गया और पुनः राज्यारूढ किया गया। "दक्षिण के सम्पूर्ण इतिहास में कभी ऐसा पाया नहीं गया जब कि दुर्भाग्य ने किसी राजा का इस कदर पीछा किया हो जितना इस उदारचेता नरेश शिवमार द्वितीय का।' लेकिन, इन राजनीतिक परिवर्तनों के बीच उसने अपनी मानसिक शालीनता बनाये रखी, और सालेटोर ने पुष्ट ऐतिहासिक प्रमाणों से (ताम्रलेखों के आधार पर) इस तथ्य को सबलित बनाया है। शिवमार द्वितीय के सबसे बड़े लड़के युवराज मारसिंह से सबधित मणि ताम्रलेख तथा आलूर ताम्रलेख में शिवमार द्वितीय की प्रशस्ति यों दी गई है 'परोपकारी शिवमार द्वितीय ने अपने न्याय-परायण शासन से कलियुग की बुराइयों का उच्छेद किया था, अपने राज-नीतिक सिद्धान्तों के कार्यान्वयन में बृहस्पति को भी लज्जित करता था, धर्म की रक्षा के लिए प्रस्तरस्तंभ के समान था, अपनी निर्बाध दानशीलता से द्विजों को सन्तुष्ट बना दिया था, मूर्खों के एक समूह ने उसे अनन्त बन्दीगृह में डाल दिया था, वह ललित कलाओं का अनुरागी तथा काव्य के मर्मज्ञों-द्वारा प्रशंसित प्रवीण कवि था, पाणिनीय व्याकरण के अथाह समुद्र को पार करनेवाला था, तर्कशास्त्र के लिए उपयुक्त दृढ बुद्धि रखता था, हस्ति-शिक्षा का निष्णात ज्ञाता एवं धनुर्विद्या में पारंगत था, हाथी-दान्त के विविध उपयोगों से सबधित एक नया ग्रन्थ प्रणीत किया था, 'सेतुबन्ध' नामक काव्य का रचयिता था और नाट्य-रचना के सिद्धान्तों के प्रयोग में नितान्त कुशल था।' आगे चल बाद को, सन् १०७७ ई० के मैसूर राज्य के अन्तर्गत नागर ताउुरा के हुमचा नामक स्थान में अवस्थित पंचबस्ती नामक जैन मंदिर में प्राप्त एक प्रस्तर लेख में शिवमार द्वितीय को "शिवमारमत" शीर्षक गज-

---

१ "We might unequivocally assert that King Sivamara II was himself the author, who completed the drama which had been left either incomplete by King Sudraka Sivamara I, or which the latter had deliberately written in brief."

—Journal of the University of Bombay, Vol XVI (New Series) Part IV, No 32 (Jan 1948), पृ० १।

शास्त्र का रचयिता बताया गया है और यह भी कहा गया है कि यदि इस ससार मे किसी गूंगे व्यक्ति को "गजाष्टक" सुना दिया जाय, तो वह बोलने की शक्ति प्राप्त कर लेगा।[1] (शिवमार द्वितीय के ये दोनो ग्रंथ बनाये गये हैं जिनमे प्रथम 'शिवमारमत' कन्नड मे था और दूसरा 'गजाष्टक' संस्कृत मे था।)

सालेटोर ने उपर्युक्त काव्य 'सेतुबन्ध' का पृथक्, विशिष्ट उल्लेख करते हुए बताया है कि मण्णि तथा आलूर के ताम्रलेखो मे शिवमार द्वितीय को जिस 'सेतुबन्ध' काव्य का रचयिता बताया गया है, वह वही प्रसिद्ध प्राकृत काव्य 'सेतुबन्ध' है जिसकी रचना का श्रेय बहुत दिनो तक, उसके काव्यात्मक सौष्ठव के कारण, महाकवि कालिदास को दिया जाता रहा है। इस प्राकृत काव्य के आलोक मे यह प्रमाणित हो जाता है कि शिवमार द्वितीय प्राकृत भाषा का प्रकाड पडित था और इसी कारण, 'मृच्छ०' के उत्तरार्द्ध की रचना मे उसने प्राकृत पदो का, पूर्वार्ध की तुलना मे जो शिवमार प्रथम (शूद्रक) द्वारा प्रणीत था, अधिक प्रयोग किया है। नाटक के दसवें अक मे, चारुदत्त के उदात्त चरित्र की प्रशसा मे चाडालो-द्वारा यह कथन कराया गया है—"किनारे हट जाओ, सज्जनो ! गुणो की निधि, सज्जनो के लिए दुःख को पार करने मे सेतु के समान सहायक चारुदत्त आज अलकार-विहीन होकर इस नगरी से बाहर निकाले जा रहे हैं।"[2] सालेटोर का कथन है कि चाडालो की इस अभ्युक्ति में शिवमार द्वितीय ने अपने चरित्र को आदर्शीकृत दिखाने की चेष्टा तो की ही है, साथ-ही अपने प्राकृत-काव्य 'सेतुबन्ध' ("उत्तरणसेतु" के उल्लेख से) की ओर भी साभिप्राय सकेत किया है।[3]

'मृच्छ०' की रचना का काल निर्णय करते हुए, सालेटोर का कथन है कि नाटक का पूर्वार्ध (शिवमार प्रथम-द्वारा) ईसा की सातवी शताब्दी के मध्य के लगभग तथा उत्तरार्ध (शिवमार द्वितीय द्वारा) आठवी शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश मे रचा गया होगा, और सौ सवा सौ वर्षों के इस अन्तराल के बावजूद जो दोनों अशों की शैली मे अन्तर नही पडा, उसका कारण था शिवमार द्वितीय की निराली काव्य प्रतिभा।[4]

---

१. वही पृ० १०–१३।

२ "एष गुणरत्ननिधिः सज्जनदुःखानामुत्तरणसेतु।
अमुवर्णमण्डनकम् अपनीयतेऽद्य नगरीत॥" (१०।१४)

३ Journal of the University of Bomboy,
पूर्वोक्त अङ्क पृष्ठ १४।

४ वही पृ० १५।

डॉ० सालेटोर ने 'मृच्छ०' के रचयिता को दाक्षिणात्य सिद्ध कर, गंगावंशीय शिवमार द्वय के रचयिता होने की उपपत्ति को और भी पुष्ट किया है। शूद्रक का दाक्षिणात्य होना प्रमाणित करने के लिए नाटक मे चित्रित धार्मिक अवस्था, सामाजिक अवस्था, भौगोलिक निर्देश एव अन्यान्य फुटकर विवरण, तथा 'शूद्रक' एव 'चारुदत्त' अभिधानो की दक्षिण भारत मे लोकप्रियता का विस्तार पूर्वक विवेचन सालेटोर ने प्रस्तुत किया है।

दक्षिण भारतीयो का एक प्रधान भोजन चावल या भात है। 'मृच्छ०' मे कई स्थलो पर उसका उल्लेख सन्निविष्ट हुआ है। प्रस्तावना मे सूत्रधार अपने घर मे से भात के मॉड की धाराओ के बाहर सडक पर प्रवाहित होने का कथन करता है और आगे यह पूछता है कि क्या वह इतना भूखा है कि उसे सम्पूर्ण ससार भात मय दिखाई पड रहा ? प्रथम अङ्क मे ही शकार कहता है कि निरन्तर ताजा बनी रहने वाली वस्तुओ मे भात है जो जाडे की सर्द रात मे पकाया गया हो। चौथे अङ्क मे, वसतसेना के भव्य प्रासाद के प्रथम प्रकोष्ठ मे पहुँच कर मैत्रेय देखता है कि दधि के साथ कलम नामक धान के भात से लुभाए जाने पर भी, स्फटिक की आभा से युक्त होने के कारण, सुधा के समान उस बलि को कौवे भी नही खा रहे हैं। दूसरे प्रकोष्ठ मे मैत्रेय देखता है कि भात से बहते हुए तेल से मिले हुए अन्नपिण्ड को महावतगण हाथी को खिला रहे हैं। सातवें प्रकोष्ठ मे पहुँचने पर मैत्रेय कहता है कि दही तथा भात मे परितुष्ट ब्राह्मण के समान पिजडे का सुग्गा सुन्दर वाक्यो का उच्चारण कर रहा है। दसवें अङ्क मे जब स्थावरक चाण्डालो से स्वीकार करता है कि वह स्वय सभी वसतसेना को जीर्णोद्यान मे ले गया था, जहाँ शकार ने उसकी हत्या की, निर्मम सस्थानक वहाँ पहुँच कर प्रसन्नतापूर्वक चिल्ला उठता है कि उसने अपने घर मे शालि चावल का भात मास के साथ, तिक्त एव अम्ल साग के साथ, दाल के साथ, उत्तम मछली के साथ तथा प्रचुर गुड मिला कर खूब खाया। प्रथम अक मे चारुदत्त तथा वसतसेना के परस्पर झुककर अभिवादन करने के दृश्य को देखकर, मैत्रेय ने विनोद मे टिप्पणी की है कि व एक दूसरे से सिर सटा कर ऐसे मिले जैसे धान की दो फसलें झुक कर परस्पर मिल गई हो। सालेटोर की अभ्युक्ति है कि दक्षिण के प्रधान भोजन भात तथा मानसून की समाप्ति के समय दक्षिण के खेतो मे लहलहाने वाली धान की मोटी फसलो की घनिष्ठ जानकारी नाटककार के दाक्षिणात्य होने का प्रमाण प्रस्तुत करती है।

आठवें अक मे, भात के अतिरिक्त एक अन्य भोज्यान्न का भी उल्लेख मिलता है जो केवल दक्षिण मे ही प्रचलित है। शकार बौद्ध भिक्षु को डाँटते

हुए कहता है कि तुम उस स्वच्छ पुष्करिणी में पुराने कुलथी के चूर्ण से चित्रित एवं दुर्गंधित कोपीन धो रहे हो। सालेटोर का कथन है कि "कुलुथ" अथवा 'कुलित्थ' (जिसे 'घोड़े का चना', 'horse-gram' कहा जाता है) की जानकारी किसी भी उत्तरभारतीय के लिए सम्भव नहीं है।

अतएव, भोजन तथा भोज्यान्नों के उल्लेख से 'मृच्छ०' का लेखक दाक्षिणात्य ठहरता है। छठे अङ्क में प्राप्त चन्दनक का भाषण भी इस विषय में दूसरा प्रमाण है। आर्यक के लिए "आर्य" तथा "आर्या" विशेषणों के क्रमिक प्रयोग पर जब वीरक को सन्देह होता है, तब उसे डाँटते हुए चन्दनक कहता है : 'अरे ! क अप्रत्ययस्तव. ? वय दाक्षिणात्या अव्यक्तभाषिणः। खसखत्ति खडा-खडट्टो-विलय कर्णाट-कर्ण प्रावरण द्रविड चोल चीन-बर्बर-खेर खान मुख मधुघात-प्रभृतीना म्लेच्छजातीनाम् अनेकदेशभाषाभिज्ञो यथेष्ट मन्त्रयाम —'दृष्टो दृष्टा वा, आर्य आर्या वा'।"

अर्थात्, "अरे ! तुम्हें अविश्वास क्यों हो रहा है ? हम दाक्षिणात्य अस्पष्ट भाषा बोलने वाले होते हैं। खस, खत्ति, खडा, खडट्टो, विलय, कर्णाट, कर्ण, प्रावरण, द्रविड, चोल, चीन, बर्बर, खेर, खान, मुख, मधुघात इत्यादि म्लेच्छ जातियों की अनेक देशभाषाओं के जानकार हम लोग होते हैं और इसी कारण, जैसा चाहते हैं वैसा, चाहे 'देखा गया' या 'देखी गई' और चाहे 'आर्य' या 'आर्या', मनमाने ढंग से बोला करते हैं।"

डा० सालेटोर का कथन है कि सम्पूर्ण दक्षिणवासियों की भाषा भ्रष्ट अथवा अस्पष्ट नहीं होती जैसा कि चन्दनक के इस भाषण का कतिपय विद्वानों ने अर्थ लगाया है। उनकी यह तर्कना अवश्य कुछ सार रखती है कि कर्णाट, चोल तथा द्रविड जातियों के लोग खस, खत्ति, बर्बर इत्यादि असभ्य जातियों की पंक्ति में नहीं बिठाये जा सकते और इसी कारण, उनकी भाषा को व्याकरण भ्रष्ट अथवा अपरिमार्जित नहीं कहा जा सकता क्योंकि प्राचीन कर्णाटकों का अपना सुविकसित एवं सुव्यवस्थित व्याकरण था जिसकी तुलना आर्यों के व्याकरण से की जा सकती है। अतएव, चन्दनक मूलतः किसी विदेशी जाति का सदस्य था जो निकट अतीत में दक्षिणभारत में आकर बसी थी और इसीलिए, वह अपनी अनभिज्ञता में खस, खत्ति, खडा इत्यादि बर्बर जातियों के साथ चोल, कर्णाट एवं द्रविड जातियों को भी गिना गया। बात जो भी हो, विवक्षार्थ इतना ही है कि ये सभी जातियाँ उस समय दक्षिण भारत में निवास कर रही थीं। चन्दनक ने वीरक को इसी प्रसंग में "कर्णाटककलहप्रयोग" अपनाने की धमकी दी है। चीनी यात्री युवानच्वाग ने उस समय के कर्णाटकों के स्वभाव का जो वर्णन किया है, उससे इस 'कलहप्रयोग' (लड़ाई करने का तरीका) का पता

चलता है। सालेटोर की तर्कना है कि इस कथन से ज्ञात होता है कि चन्दनक स्वयं कर्णाट जाति का नहीं था। तथापि, मूल विवक्षा तो यही है कि उनके द्वारा कथित जातियाँ उस समय दक्षिण में वर्तमान थीं जैसा सालेटोर ने ऐतिहासिक प्रमाणों से दिखाया है। और, इस आधार पर भी कहा जा सकता है कि शूद्रक दाक्षिणात्य था क्योंकि दक्षिणी जातियों की यह जानकारी किसी उत्तरी भारतीय लेखक के लिए संभव नहीं होगी।

नाटक में समाविष्ट भौगोलिक विवरणों के आधार पर भी सालेटोर ने शूद्रक का दाक्षिणात्य होना सिद्ध किया है। विन्ध्य पर्वत के अतिरिक्त, एक अन्य दक्षिणी पर्वत शृङ्खला 'सह्याद्रि' का उल्लेख भी नाटककार द्वारा किया गया है। दसवें अंक में, श्मशान में हाथ से तलवार छूट कर गिर जाने पर चाण्डाल ने कहा है—"भगवतीसह्यवासिनी प्रसीद प्रसीद अपि नाम चारुदत्तस्य मोक्षो भवेत्।" सह्याद्रि के इस उल्लेख के अतिरिक्त 'भगवती' शब्द का प्रयोग भी ध्यातव्य है। यहाँ इस शब्द का प्रयोग केवल 'देवी' के सामान्य अर्थ में नहीं आया है, अपितु बौद्धों की देवी तारा की ओर भी इसमें संकेत है जो सातवीं शताब्दी में दक्षिण भारत भर में "ताराभगवती" कही जाती थी।

सालेटोर ने दसवें अंक में चारुदत्त का राज्यारोहण करने वाले आर्यक द्वारा एक राज्य विशेष दिये जाने के *कथन का विशिष्ट उल्लेख किया है।* "वेणातटे कुशावतीराज्यमतिसृष्टम्"—इस वाक्यांश का साधारणतः अर्थ लगाया गया है, 'वेणा नदी के तट पर अवस्थित कुशावती नगरी का राज्य।' सालेटोर की कल्पना है कि 'कुशावती' दक्षिण का विशिष्ट शब्द है और यह पश्चिमी समुद्र तट पर बहने वाली एक छोटी नदी का नाम है, और इस प्रकार प्रस्तुत वाक्यांश का अर्थ होगा, वेणा तथा कुशावती नदियों के बीच में स्थित राज्य। अब, यदि 'मृच्छ०' का लेखक उत्तर भारत का निवासी होता, तो उसे दक्षिण की इन दोनों छोटी-छोटी नदियों का ज्ञान नहीं होता।[१]

प्राचीन विवरणों में सालेटोर ने नाटक में प्राप्त 'श्रेष्ठिन्', 'तडाग', 'नन्दन वन', 'ग्रामसमूह', 'वीणा' तथा 'मयूर' के उल्लेखों की चर्चा की है। 'श्रेष्ठिन्' दक्षिण में बड़े बड़े व्यापारियों (सार्थवाहों) के लिए प्रयुक्त होता था, और चारुदत्त "श्रेष्ठिचत्वर" में रहता बताया गया है क्योंकि ब्राह्मणों के भी श्रेष्ठिन् बनने के उदाहरण मौजूद हैं। दूसरे अंक में वसन्तसेना ने गुण तथा विभव के मेल को असम्भव बताते हुए टिप्पणी की है कि जिस तालाब का पानी पीने योग्य नहीं होता, उसमें प्रचुर जल रहता है—'अपेयेषु तडागेषु

[१] Journal of the University of Bombay, Vol XVI (New Series) Part I, No 31, पृ० १०-२०।

न्वहुतरमुदक भवति ।" उत्तरी भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत मे तालाबो का अधिक महत्त्व है । चौथे अक मे 'नन्दनवन' का उल्लेख सार्थक है । परम्परा कहती है कि नन्दवश के नरेशो ने कुन्तल प्रदेश पर शासन किया था जिसमे पूरा पश्चिमी डेक्कन तथा उत्तरी मैसूर का भाग सम्मिलित था । द्राविडो की एक प्राचीन जाति के लोकगीतो मे नन्दनवन का बार-बार उल्लेख आता है जिसमे अतीत के उन सुखद दिनो की याद छिपी है जब नन्दवश के राजा कुन्तल प्रदेश पर शासन करते थे । नाटक मे नदनवन के उल्लेख से उसके रचयिता का दाक्षिणात्य होना सूचित होता है । पाँचवें अक मे 'ग्रामसमूह' का उल्लेख इसी तथ्य का सकेतक समझा जाएगा क्योकि छठी शताब्दी से लेकर अठारहवी शताब्दी तक के उत्कीर्ण लेखो के आलोक मे दक्षिण भारत की ग्राम परिषदो का विशेष महत्त्व विदित होता है । इसी प्रकार, तीसरे-चौथे अको मे वीणा-वादन का उल्लेख तथा पाँचवें अक मे सात छिद्रो वाली वशी का उल्लेख और पाचवें अक के ही आरभ मे प्राप्त चारुदत्त के दुर्दिन-विषयक कथन में गृह-मयूरों का उल्लेख—ये सभी, सालेटोर के अनुसार, नाटककार के दाक्षिणात्य होने का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं क्योकि ये सभी वस्तुएँ दक्षिण भारत की निजी विशेषताएँ हैं ।[१]

सालेटोर ने 'मृच्छ०' के रचयिता को दक्षिण का निवासी सिद्ध करने के सिलसिले मे, अन्तिम रूप से, यह प्रदर्शित किया है कि दक्षिण भारत के इतिहास मे राजा शूद्रक तथा चारुदत्त दोनो की बडी लोकप्रियता रही है । शूद्रक के समान चारुदत्त भी दक्षिण का निवासी रहा प्रतीत होता है और उसकी दानशीलता इतनी विख्यात हो गई थी कि दक्षिण के अनेक राजा "चारुदत्त" या "अभिनवचारुदत्त" की अभिधा से प्रशस्तियो मे विभूषित होने लगे थे । इसी प्रकार, अनेक योद्धा तथा राजा 'शूद्रक' की सज्ञा ग्रहण कर चुके थे और राजा प्राय 'रणरगशूद्रक' (युद्ध मे शूद्रक के समान शूरवीर) की उपाधि धारण कर लेते थे ।[२]

इस प्रकार, स्पष्ट है कि डॉ० सालेटोर ने बडे पुष्ट ऐतिहासिक प्रमाणो के आधार पर यह निर्भ्रांत रीति से सिद्ध कर दिया है कि 'मृच्छ०' का रचयिता दक्षिणी भारत का निवासी था । और, शूद्रक विषयक उनके अन्यतर सारपूर्ण अनुसधान का यही अश सबसे सबल एव स्वीकार्य सिद्ध हुआ है ।

---

१ Journal of the University of Bombay, Vol XVI (New Series), Part 4, No 32, पृ० १–२ ।

२ वही, पृ० २–४ ।

लेकिन, 'मृच्छ०' की रचयिता विषयक उनकी स्थापनाएँ बहुत संगत तथा युक्तिपूर्ण नहीं रही हैं। प्रस्तावना में सन्निविष्ट शूद्रक प्रशस्ति के आधार पर उन्होंने शिवमार प्रथम में उन सभी विशेषताओं की पहचान कराई है जो नाटककार शूद्रक में बताई गई हैं। उनके कतिपय निर्देश, यथा, शिवमार प्रथम का 'वृद्धराज' कहा जाना तथा 'कन्दनारदनम्' नामक हस्तिशास्त्र का प्रणयन तथा दूसरों की नवयुवती पत्नियों को हड़पा लेना बड़े ध्यानाकर्षक तथा विश्वासोत्पादक प्रतीत होते हैं और लगता है जैसे शिवमार प्रथम ही दीर्घायुष्य प्राप्त करने वाला हस्तिशिक्षा विज्ञान एवं वैशिकी (वेश्या-विषयिणी) कलाओं का पारगत मर्मज्ञ शूद्रक हो। 'शिवमार' नाम इत्यादि तथ्यों के प्रकाश में गंगावंशीय राजाओं के शिवभक्त होने की बात, जिससे 'शर्व-प्रसादात् व्यपगततिमिरे चक्षुषी" का मेल बैठ जाता है, भी युक्तियुक्त प्रतीत हो सकती है। लेकिन तब शिवमार प्रथम के 'शूद्रक' उपनाम का कोई उल्लेख क्यों नहीं प्राप्त होता—इस संदेह का अवकाश बना ही रह गया है। यदि दक्षिण के अन्य राजा प्रशस्तियों में ''रणरंगशूद्रक'' की उपाधि से विभूषित किये गये मिलते हैं, तो शिवमार प्रथम ही, जिसके पक्ष में नाटककार शूद्रक की समस्त विशेषताओं का बड़ी खूबी के साथ प्रदर्शन हो जाता है, अपनी अथवा अपने उत्तराधिकारियों के किसी उत्कीर्ण लेख में 'शूद्रक' संज्ञा से क्यों वंचित रह गया ? स्पष्ट ही, यह संदेह बना रह जाता है और हम डॉ० मालेटोर के साथ बहुत दूर तक आगे नहीं बढ़ सकते हैं।

'मृच्छ०' के रचयिता के द्वैत की तर्कणा भी सबल नहीं है। सबसे पहली आपत्ति तो यही है कि सालेटोर स्पष्टतया यह निर्देश नहीं कर सके हैं कि नाटक के किस स्थल विशेष से दूसरे रचयिता का कर्तृत्व आरम्भ होता है। मैं समझता हूँ कि सालेटोर अपनी स्थापनाओं को बिल्कुल सही-सटीक बनाने के प्रयास में उस रेखा से आगे बढ़ गये हैं जहाँ यदि वे रुक गये होते तो उनके निष्कर्ष की विश्वास्यता शायद अधिक अंशों में बनी रह जाती। मेरा मतलब यह है कि शिवमार द्वितीय को उन्हें मुख्यतः इसलिए लाना पड़ा कि नाटक में राज्यविप्लव वाली उपकथा का ऐतिहासिक समाधान मिल जाय। और, शिवमार द्वितीय के विषय में गजशास्त्रज्ञान के अतिरिक्त, 'सेतुबन्ध' काव्य के प्रणेता होने की बात का ऐतिहासिक साक्ष्य भी उन्हें मिल गया जिसके आधार पर 'मृच्छ०' में प्राकृत के अतिशय प्रयोग की सफाई देने में भी वे सबूत प्राप्त कर सके।

इस विषय में सबसे महत्त्व की बात तो यह है कि शिवमार प्रथम की मृत्यु के बाद सिंहासन पर अधिकार जमाने के लिए जैसा संघर्ष छिड़ा, उसमें

कौन से व्यक्ति या शक्तियाँ सम्मिलित थीं, इसकी कोई जानकारी इतिहास नही देता, इसे सालेटोर ने स्वत स्वीकार किया है। शिवमार प्रथम का पुत्र दुर्विनीत एडियग था, इसका भी स्पष्ट प्रमाण नहीं है और सालेटोर ने इसे भी अनुमानित कर लिया है। पुन, उनका यह अनुमान भी मनोरजक है कि नाटक मे उल्लिखित राजा पालक उस व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता है जिसने सघर्ष छेडकर, एडियग को सिंहासनस्थ नहीं होने दिया और इसी कारण, पालक मे कोई उदात्त गुण नही दिखाया गया। फिर, नाटक के एक स्थल-विशेष पर आये 'सेतु' शब्द से यह अर्थ निकालना कि उसमे 'सेतुबन्ध' काव्य का सकेत है, दूरारूढ कल्पना समझी जाएगी। और, यह भी मान लेने का क्या आधार है—जैसा सालेटोर मान लेते हैं—कि शिवमार प्रथम ने नाटक को अपूर्ण ही छोड दिया ? वास्तव मे शिवमार द्वितीय की ऐतिहासिक महत्त्व वाले उत्कीर्ण लेखो मे जो प्रशस्तियाँ उन्हे मिल गईं तथा 'सेतुबन्ध' काव्य के साथ जो उसका नाम जुडा हुआ मिला और फिर, एडियग के राज्यारूढ होने के उल्लेख के अभाव मे, शिवमार प्रथम की मृत्यु के बाद किसी सघर्ष के छिडने की सभावना को जो प्रश्रय मिला—इन सभी बातो से सालेटोर को यह मान लेने की अज्ञात प्रेरणा मिली कि शिवमार द्वितीय को 'मृच्छ०' के उत्तरार्ध की रचना के साथ जोड दिया जाय क्योंकि वैसा करने से राज्य परिवर्तन वाले उपकथानक को सत्याभास का आधार मिल जाता है। मेरा अपना अनुमान है कि यदि शिवमार प्रथम को ही अकेले 'मृच्छ०' का रचयिता बताया गया होता, तो शायद सालेटोर की स्थापना अधिक सुसगत हुई रहती। फिर, भास के 'चारुदत्त' के साथ 'मृच्छ०' के सभावित सबध की ओर उनका ध्यान बिलकुल आकर्षित ही नहीं हुआ जबकि उनके पूर्व इस विषय मे प्रभूत ऊहापोह हो चुका था। इसी प्रकार, यह कहना भी युक्तिसगत नही जँचता कि अश्वमेध का उल्लेख प्रस्तावना की प्रशस्ति मे परवर्ती पीढियों को चकमा देने के निमित्त किया गया। और, सबसे मनोरञ्जक अनुमान सालेटोर का यह है कि शायद शिवमार प्रथम चोरी की कला मे भी प्रवीण था। आधार इस अनुमान का यह है कि बारदूर ताम्रलेखो मे शिवमार प्रथम को "शत्रु-सैन्य के चोरो के लिए यमराज" बताया गया है और फिर, नाटक के तीसरे अङ्क मे सेंध लगाने का सूक्ष्म विवरण उपलब्ध है! अर्थात्, जो लेखक सेंध फोडने का सूक्ष्म विवरण प्रस्तुत करेगा, वह स्वय चौर्यकला का प्रवीण अभ्यासी होगा!

इस प्रसग मे एक बात कहना चाहूँगा। अन्त साक्ष्य का सकलन लेखक के समय एव जीवन वृत्त के निर्माण के लिए एक उपयोगी पद्धति है, किन्तु जब किसी रचना मे सन्निविष्ट प्रशेर चित्रण के सहारे यह प्रतिपादित अथवा

प्रमाणित करने का प्रयत्न किया जाने लगे कि लेखक उस विषय का प्रवीण पंडित भी है या था, तो स्थिति बदल जाती है और निष्कर्ष सही के बदले गलत हो सकते हैं। मृच्छ०' की प्रस्तावना में प्राप्त कवि-परिचय के आधार पर किसी समय नरेश की हस्तिशिक्षा में निपुणता की खोज तो की जा सकती है, लेकिन यह खोज इस आधार पर नहीं अवलम्बित होनी चाहिए कि नाटक में वसन्तसेना के दुष्ट हाथी के उपद्रवों का सटीक चित्रण हुआ है। वैसे ही सन्धिच्छेद के विवरण के आधार पर यह निष्कर्ष करना कि लेखक चोरी की कला में प्रवीण भी होगा, उचित एवं युक्तिसंगत नहीं है। मैं समझता हूँ हस्ति-शिक्षा में प्रवीण नहीं होने वाला लेखक भी किसी दुष्ट हाथी के उपद्रवों का जीवन्त चित्रण कर सकता है और उसी प्रकार स्वयं चोरी में प्रवीण नहीं होने वाला व्यक्ति भी सेंध फोड़ने का सटीक विवरण अङ्कित कर सकता है। मृच्छ०' के ये चित्रण ऐसे नहीं हैं जिनके अङ्कन के लिए इन विषयों की किसी निपुण एवं गम्भीर जानकारी की आवश्यकता पड़े।

अतएव डॉ० सालेटोर ने शूद्रक की जो पहचान की है वह अध्यवसाय-प्रसूत होते हुए भी, स्वीकार्य सिद्ध नहीं होती।

(६) इधर हाल का सम्भवतः अन्तिम प्रयत्न शूद्रक की गुत्थी सुलझाने का स्व० पं० चन्द्रबली पाण्डे द्वारा किया गया है। उन्होंने आन्ध्रवंशीय वासिष्ठीपुत्र श्रीपुलुमावि के रूप में शूद्रक की पहचान की है और 'अवन्तिसुन्दरीकथासार' के उस उल्लेख से इस पहचान का केन्द्रीय सूत्र ग्रहण किया है जिसमें कहा गया है कि अश्मक देश का निवासी इन्द्राणिगुप्त नामक ब्राह्मण पण्डितों द्वारा शूद्रक कहा जाता था।[1]

पाण्डे जी ने शूद्रक की पहचान में अनुमानों की शृंखला जोड़ दी है, यथा—

(१) "हमारी समझ में इस 'नप्ता' का अर्थ है यहाँ दौहित्र न कि पौत्र।"[2]

(२) "हमें तो ऐसा लगता है कि यही 'उत्तर' श्री पुलुमावि का 'महा-पर्व' और है।"[3]

(३) "यदि उक्त लेख के राजा 'वृहत्स्तिमित्र' को ही कौशमी का पिता मान लें तो स्यात् सारी बातों का सरल समाधान हो जाता है।"[4]

१ 'आसुषा न स एव साहसमासु द्विजोत्तम।
इन्द्राणिगुप्त इत्यासीत् प्राहुः शूद्रकं बुधाः।।' (४ १७५)
—यह पूरा प्रसङ्ग इसी परिच्छेद में पहले उद्धृत किया जा चुका है।

२ 'शूद्रक' (मोतीलाल बनारसी दास), पृ० ५

३ व ४ वही, पृ० ७।

(४) "आरूढसेन ने राजा 'ऊदाक' अथवा 'ओद्रक' का कोई परिचय नहीं दिया जिससे माना जा सकता है कि वह कदाचित् उसका अग्रज था, वही श्री पुलुमावि के लेख का 'महार्थक' भी।"[1]

(५) 'फिर आगे चलकर शातकर्णी और बृहस्वातिमित्र' में सम्बन्ध स्थापित हो गया तो आश्चर्य क्या ?'[2]

(६) "और यदि शब्द के अर्थ को समझें और दंडी के 'इन्द्राणिगुप्त' को 'पुलुमावि' मान लें तो इसमें दोष क्या ? 'इन्द्र' का 'पुलुमावि' नहीं तो 'पुलोमारि' होना तो प्रसिद्ध ही है, फिर इसमें दूर की कोई उड़ान नहीं। हाँ, दुराव की पकड़ अवश्य है।"[3]

(७) "पर इतना तो व्यक्त ही है कि इस शूद्रक को 'पुलुमावि' मान लेने में कोई क्षति नहीं।'[4]

(८) " 'हाल' शालिवाहन को सभी लोग जानते हैं, पर कितने लोग हैं ऐसे जो 'शूद्रक' सातवाहन को भी बता सकें ?"[5]

(९) 'सारांश यह कि पुलुमावि' के विषय में जो कुछ इतिहास में देखा गया है वही सारतम में साहित्य में भी है; और 'शूद्रक' को उसी का उपनाम मानने में कोई क्षति नहीं। सातवाहन सिंहासन पर विराजमान होने के कारण वह 'सातवाहन' और 'शातकर्णी' भी कह दिया गया तो अनुचित नहीं हुआ। व्यवहार सदा से इसका द्योतक रहा है।"[6]

उपर्युक्त उद्धरणों के आलोक में यह स्पष्ट हो जाता है कि पाण्डेजी ने अनुमानों का अत्यधिक सहारा लिया है और इसी कारण, उनकी स्थापनाएँ विश्वसनीय नहीं बन सकी हैं। उनका अन्तिम अनोखा अनुमान तथा चमत्कार सुझाव है भास को शूद्रक का साथी मान लेने का . "तो फिर उसे शूद्रक' का साथी मान लेने में क्षति क्या ?" वे आगे कहते हैं—"अधिक तो कह नहीं सकता, पर जो जानता है कि यदि भास को राजा शूद्रक का राजकवि मान लिया जाय तो चारुदत्त' और 'मृच्छकटिक' की उलझन भी बहुत कुछ सुलझ जाय × × × × × × × × मात्र यह कि

---

१ वही, पृ० ८।

२. वही, पृ० ८।

३ वही, पृ० ७।

४ वही, पृ० २२।

५ वही, पृ० ३१।

६ वही, पृ० ३३. पांडेजी ने तद्भिन्न वाक्य 'शिल्पविकारम्' तथा 'मृच्छ०' की विस्तृत तुलना भी की है किन्तु उससे किसी निश्चित निर्णय पर पहुँचना कठिन जान पड़ता है।

प्रभूत प्रमाण इस पक्ष मे है कि भास को राजा शूद्रक का राजकवि माना जाय और खुल कर कह दिया जाय कि वास्तव मे उसी की प्रेरणा से कवि भास 'चारुदत्त' की रचना मे लीन थे। किन्तु, दैव का दुर्विपाक कहिये कि बीच ही मे चल बसे। निदान शूद्रक को आप ही अपनी कामना पूरी करनी पड़ी और फलत 'चारुदत्त' झट 'मृच्छकटिक' मे परिणत हो गया।"

'चारु०' और 'मृच्छ०' की समस्या का कितनी आसानी से भरा समाधान पाण्डेजी ने प्रस्तुत कर दिया है[1]।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शूद्रक की ऐतिहासिक खोज करना नितान्त कठिन है। जैसा हमने ऊपर कहा है, प्रस्तावना की कवि प्रशस्ति मे अतिरंजना का यथेष्ट पुट है, लेकिन नाटक का रचयिता 'शूद्रक' संज्ञा अथवा उपाधि धारण करनेवाला ब्राह्मण नरेश है जिसका रोमांटिक व्यक्तित्व था— ऐसा मानना हम उचित एव युक्तिसगत समझते हैं। फिर, ऐसा भी सोचना असङ्गत नही होगा कि शूद्रक कोई बहुत प्रसिद्ध राजा नही था यद्यपि नाटकीय प्रतिभा उसकी निराली थी। विख्यात नही होने के कारण ही, कोई प्राचीन उत्कीर्ण लेख अथवा अन्य सामग्री उससे सम्बन्धित अद्यावधि नही मिल सकी है।

(४)

जिस प्रकार 'मृच्छ०' के रचयिता शूद्रक को इतिहास मे खोजना और पकड़ना कठिन रहा है, उसी प्रकार उसकी रचना का समय निर्धारण भी कठिन सिद्ध हुआ है। यदि शूद्रक की ऐतिहासिक पहचान हो गई होती, तो नाटक के प्रणयन काल का प्रश्न शायद बिलकुल उठता ही नही। शूद्रक की पहचान के लिए विद्वानो के सम्मुख एक प्रधान सकेत या सूत्र रहा है राज्य-विप्लव वाला अन्त कथानक जिसमे यह अनुमान किया गया है कि नाटककार, किसी न किसी प्रकार, किसी न किसी सत्तापहरण वाले घटना चक्र से सम्बन्धित रहा होगा। स्कन्दपुराण में शूद्रक विषयक उल्लेख से एक अत्यन्त पुरानी तिथि मिल जाती है जहाँ से बादवाले समय मे शूद्रक की खोज युक्तिसगत बन गई है। अतएव, आन्ध्रभृत्यो के प्रथम शासक सिमुक के समय २०० ई० पू० को (क्योंकि उसे ही स्कन्दपुराण का शूद्रक ठहराया गया है) 'मृच्छ०' की रचना की प्राचीनतम काल सीमा मानकर, परवर्ती शताब्दियो मे ऐसे अन्य राजाओ की भी खोज की गई है जो किसी न-किसी राजनीतिक विप्लव अथवा संघर्ष से सम्बन्धित रहे हो, और तब, नाटक मे प्राप्त कुछ अन्य सकेत सूत्रों—चित्रणो एव उल्लेखो के सहारे उन्हें शूद्रक मान लिया गया है। डॉ० सालेटोर ने

[1] वही, पृ० ६०—६१।

मगावद्यीय सिवमार प्रथम को शूद्रक माना है तथा 'मृच्छ०' के रचयिता के द्वैत की स्थापना कर, उसकी रचना को ईसा की आठवीं शताब्दी के अन्तिम चरण तक नीचे खींच लाये हैं। उधर आचार्य वामन ने 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' में 'मृच्छ०' के दूसरे अङ्क में 'द्यूत हि नाम" वाली उक्ति[1] उद्धृत करने के साथ ही, श्लेष की चर्चा करते हुए शूद्रक का स्पष्ट नामोल्लेख भी किया है।[2] वामन का समय आठवीं शताब्दी माना गया है। इससे ऐसी कल्पना की जा सकती है कि 'मृच्छ०' की रचना आठवीं शती तक अवश्य हो चुकी होगी जिससे उसे आठवीं शताब्दी के बाद की रचना नहीं माना जाना चाहिए।

अतएव, 'मृच्छ०' के प्रणयन को, शूद्रक की पहचान के आधार पर अथवा *बाह्य प्रमाणों के आधार पर, २०० ई० पू० से लेकर ईसा की आठवीं शताब्दी* तक के विस्तीर्ण काल प्रवाह में रखा गया है। यह विस्तृत अवधि लगभग एक हजार वर्ष की होती है। और, विद्वानों-द्वारा इस लम्बी अवधि में जो भी तिथि अथवा समय नाटक की रचना के लिए प्रस्तावित अथवा निर्दिष्ट किया गया है, उसके अनुमोदन में कुछ न कुछ औचित्य अवश्य है यद्यपि तद्विषयक तर्क अथवा प्रमाण अन्तिमरूपेण पूर्ण एवं अकाट्य नहीं समझे जायेंगे। इस 'मिट्टी की गाड़ी' ने गीर्वाणगिरा के स्वर्ण-शकटों की नाटकीय श्रेणी को अपनी निराली 'टोन' अथवा 'स्पिरिट' से जिस प्रकार चुनौती दी है, उसी प्रकार अपने निर्माण काल के सम्बन्ध में भी इसने पण्डितों तथा समालोचकों की मेधा को पथरा दिया है।

'मृच्छ०' की प्राचीनता के समर्थक विद्वानों ने जो तिथियाँ उसके प्रणयन के संबंध में निर्दिष्ट की हैं, वे मोटे रूप से दक्षिण के आन्ध्रभृत्यों अथवा सातवाहनों के शासनकाल, ईसा पूर्व २०० से लेकर ईसा की दूसरी-तीसरी शताब्दी तक को पर्याच्छिन्न कर लेती हैं। सातवाहन नरेशों का शासन काल 'बृहत्कथा' तथा 'गाथासप्तशती' जैसे काव्य-ग्रन्थों के प्रणयन से सौरभित था और ये ग्रंथ उनके प्राकृत प्रेम के परिचायक समझे जाएँगे।[3] पुन, सातवाहनों के राज्य-काल में बौद्धधर्म की यथेष्ट उन्नति हुई थी और उसे राज्य की ओर से प्रचुर प्रोत्साहन भी मिला था।[4] 'मृच्छ०' में प्राकृत भाषा का पुष्कल प्रयोग हुआ

---

१ 'मृच्छ०' (चौखम्बा), पृ० ११३।

२ "शूद्रकादिरचितेषु प्रबन्धेषु अस्य भूयान् प्रपञ्चो दृश्यते।"

(काव्यालंकार०, ३।२।४)

३ Dr. R. G Bhandarkar 'Early History of the Dekkan' (1957), पृ० ४७–४९

४. वही, पृ० ४९–५०।

है और सवाहक भिक्षु के प्रति प्रदर्शित व्यवहार से बौद्धधर्म की उन्नत एवं सम्मानपूर्ण अवस्था का अथ ग्रहण किया गया है।[१] अतएव, 'मृच्छ०' को सातवाहन-काल की रचना मानने के लिए यथेष्ट आकर्षण वर्तमान है। इस आकर्षण को और भी आकर्षक बनाने के लिए विल्सन ने दो अन्य तर्क प्रस्तुत किये हैं। पहला तर्क शकार संस्थानक के अटपटे उद्धरणों से सबद्ध है। विल्सन का कथन है कि उसके सम्पूर्ण उद्धरण रामायण तथा महाभारत से लिये गये हैं और पौराणिक कथाओं में प्राप्त ध्रुव, दक्ष, प्रह्लाद प्रभृति पात्रों की कोई चर्चा उनमें उपलब्ध नहीं है। इससे जान पड़ता है कि मृच्छ०' की रचना पुराणों की रचना के पूर्व हुई होगी क्योंकि नाटककार उनकी कथाओं से परिचित नहीं जान पड़ता। विल्सन का दूसरा तर्क यह है कि ब्राह्मण चारुदत्त तथा वेश्या वसंतसेना में जो वैध दाम्पत्य संबंध स्थापित हो गया है, उससे भी लक्षित होता है कि नाटक उस समय से पूर्व रचा गया होगा जब ब्राह्मण एवं शूद्र में वैवाहिक संबंध निषिद्ध ठहराया गया।[२]

'मृच्छ०' की प्राचीनता के साक्ष्य में अन्य तर्क भी प्रस्तुत किये गये हैं। नाट्यशास्त्र पर परवर्ती आचार्यों द्वारा जो सूक्ष्म नियम निरूपित किये गये—यथा, किसी रस विशेष की प्रधानता अथवा किसी पात्र विशेष के लिए किसी प्राकृत-विशेष की योजना—उनका पालन शूद्रक ने यहाँ नहीं किया है। प्रस्तावना में "वैशिकी कला" का उल्लेख तथा वेश्या को नायिका-रूप में प्रतिष्ठित करना उस समय की ओर संकेत करते हैं जब वात्स्यायन ने अपने 'कामसूत्र' का 'वैशिक' प्रकरण लिखा, और वात्स्यायन का समय लगभग १०० ई० पू० से बाद का नहीं हो सकता।[३] नवें अंक के तैंतीसवें श्लोक में बृहस्पति को मंगल का शत्रुग्रह बताया गया है।[४] यह सिद्धान्त वराहमिहिर के विपरीत पड़ता है और उनके पूर्ववर्ती ज्योतिषाचार्यों द्वारा माना जाता था जिसका उल्लेख उसने 'बृहज्जातक' में किया है।[५] वराहमिहिर का समय चूँकि लगभग

---

१ H H Wilson 'The theatre of the Hindus' (1955), पृ० ५५।

२ वही, पृ० ५४–५६।

३ M R Kale 'मृच्छकटिकम्' (सम्पा०, १९६२ संस्करण), Introduction, पृष्ठ २५।

४ "अङ्गारकविरुद्धस्य प्रक्षीणस्य बृहस्पतेः।
ग्रहोऽयमपरः पार्श्वे धूमकेतुरिवोत्थितः॥" (९।३३)

५ बृहज्जातक, २।१५।१६।

५०० ईसवी पड़ता है, अतएव 'मृच्छ०' की रचना उस समय से शताब्दियों पूर्व हुई होगी।[1] नाटक की सरल किन्तु विदग्ध सामान्य शैली न तो कालिदास के समान मसृण स्निग्ध है और न तो भवभूति एवं भट्टनारायण के समान कृत्रिम एवं विजृम्भणपूर्ण ही है। अत: वह संस्कृत के प्राचीन नाटककारों की बिरादरी में पड़ता है।[2] डा० पराजपे ने अन्य तर्कों के साथ, दो तर्क ये भी प्रस्तुत किये हैं : प्रथम, कायस्थों का विरक्षी शकों तथा पल्लवों के वशगत समूह से संबध है और द्वितीय, चूंकि भारतीयों ने यूनानियों तथा रोमनों से नक्षत्रविद्या अपनाई, इसलिए मृच्छ०' के छठे अंक में प्राप्त ज्योतिष-विषयक उल्लेख ईसा की पहली अथवा दूसरी शताब्दी में स्वाभाविक समझे जा सकते हैं।[3] कतिपय विद्वान् नवें अंक में प्राप्त 'अयं हि पातकी विप्रो' इत्यादि (९.३९) के आधार पर 'मृच्छ०' को मनुस्मृति के बाद की अर्थात् ईसवी संवत् के आसपास की रचना मानते हैं।[4]

'मृच्छ०' की प्राचीनता के प्रमाण में बौद्ध जातकों के कतिपय उल्लेख प्रस्तुत किये जा सकते हैं। पुराने पालिग्रंथों में ऐसे अनेक 'भयों' के उल्लेख मिलते हैं जिनसे उन दिनों के भारतीय प्राय: सशंकित रहा करते थे। 'मिलिन्द प्रश्न' में ऐसे 'भयों' की संख्या सत्रह तक पहुँच जाती है और इनमें शासकों-द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों का भय, चोर-डाकुओं का भय, भूतों का भय इत्यादि गिनाये गये हैं।[5] 'मृच्छ०' में शासकों के अत्याचारों का प्रतिनिधित्व स्थानक-द्वारा होता है और चोरों के भय का प्रतिफलन चारुदत्त के घर में सेंध फोड़ने के रूप में हुआ है। जातकों में भात को एक सामान्य भोज्य

---

१ Kale : वही, पृ० २९।

२ काले : वही, पृ० २५।

३ Dr Paranjpe : 'Mrcch' (Edited, 1937) Introduc, P XVI ff

—पराजपे का कथन है कि कायस्थ जिसका सर्वप्रथम उल्लेख 'याज्ञवल्क्य-स्मृति' में हुआ है तथा जातियों की विस्तृत गणना में जिसे छोड़ दिया गया है, विदेशी जाति का रहा होगा। इस स्मृति का रचनाकाल १०० ई० पू० से ३०० ई० तक माना गया है।

४ Dr. Devasthali . Introduction To The Study of Mrcch. (1951) पृ० ६।

५ आ० परशुराम चतुर्वेदी : 'बौद्ध साहित्य की सांस्कृतिक झलक' (१९५८), पृ० ३०।

पदार्थ बताया गया है जिसे सवसाधारण 'यागु' अथवा 'यवागु' (मांड) के साथ खा लिया करते थे और भात के साथ मास खाने को महत्त्व दिया जाता था।[१] नाटक मे भात को सामान्य भोजन का तथा मांस को विशिष्ट भोजन का महत्त्व मिला है (चेट ने भागती हुई वसन्त० को दवार के घर मे मछली का मास खाने का प्रलोभन दिया है)। जातको से यह भी पता चलता है कि वेश्या प्रसग की आदत श्रेष्टिपुत्रो, राजकर्मचारियो तथा पुरोहितो तक मे मिलती थी। 'उद्दालक जातक' मे पुरोहित उद्यानक्रीडा के लिए गई हुई गणिका पर आसक्त होकर उसके साथ रमण करता है।[२] यौन सबधो की शिथिलता के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं। व्यभिचार के अतिरिक्त, दुर्व्यसनो म सुरापान तथा जुए का खेल बडा प्रचलित था। चोरी करने के लिए कुछ लोग सेंध मारा करते थे अथवा दल बाँध कर डकैती भी करते जान पडते हैं। 'कणवेर जातक' से ज्ञात होता है कि ऐसे लोग प्राय नगर की वेश्याओं के साथ भी सम्पर्क रखते थे और अवसर पाते ही, उनके भी गहने-कपडे चुराने मे नही चूकते थे।[३] डाकू अधिकतर सौदागरो की गाडियो पर लदे माल को लूटकर भाग जाते थे और इसमे उनका रक्षको से लडना भी पड जाता था।[४] 'मृच्छ०' मे ये सभी बातें—पान, वेश्या ससर्ग, द्यूतक्रीडा, सेंध फोडना, चौर्यवृत्ति वालो का वेश्या सबध तथा गाडियो के प्रयोग का प्रचलन—उपलब्ध हैं। जातको मे गौतम बुद्ध के आविर्भाव काल की सामाजिक अवस्था का वर्णन हुआ माना गया है। इससे यह निष्कर्ष स्वभावत निकाला जा सकता है कि ईसा पूर्व पहली दूसरी शताब्दी के आगे-पीछे तक भारतीय समाज की ऐसी दशा रही होगी क्योकि सामाजिक परिवर्तन की गति हमारे यहाँ नितान्त मद रही है। और तब, 'मृच्छ०' मे चित्रित सामाजिक अवस्था के आलोक मे उस उन युगों की रचना माना जा सकता है। सातवाहनो के समय म प्राकृत को साहित्य रचना का विशेष महत्त्व मिला था और बौद्ध धर्म की उन्नति भी हुई थी, 'मृच्छ०' म ये दोनो तथ्य सन्निविष्ट हुए हैं। अतएव, इन समस्त बातो को मिला देने से ऐसा मानने की प्रेरणा अनायास होती है कि 'मृच्छ०' सातवाहन-काल की रचना हो सकता है।[५]

---

१ वही, पृ० ५६।　　　२ वही, पृ० ५७।

३ वही, पृ० ५९।　　　४ वही, पृ० ५९।

५ डॉ० भडारकर के अनुसार आन्ध्रभृत्यों अथवा सातवाहनों ने दक्खिन मे (theDekkant) ई० पू० ७३ से ईसवी सन् २१८ तक राज्य किया।

— Early Hist oftheDekkan' (1957) पृ० ४६।

हमने अभी कहा है कि ईसा की आठवीं शती तक 'मृच्छ०' की रचना अवश्य हो गई होगी—दण्डी तथा वामन के प्रमाण तो ये ही, आधुनिक विद्वानों में डॉ० साल्टोर ने, शूद्रक की जो ऐतिहासिक खोज की है, उसमे भी इस धारणा को प्रश्रय मिलता है यद्यपि उनकी शूद्रकविषयक स्थापना से हम सहमत नहीं हैं। जिस प्रकार सातवाहन युग के प्रति हमारा आकर्षण साधार है, उसी प्रकार भारतीय इतिहास में एक अन्य परवर्ती युग है जिसके साथ 'मृच्छ०' के प्रणयन को जोड़ने का आकर्षण उतना ही औचित्य-पूर्ण ठहरता है—वह युग है, गुप्तवंश के पतन से लेकर हर्षवर्धन के अभ्युदय-काल तक का। विद्वानों ने इस युग के पक्ष में भी तर्क प्रस्तुत किये है।[1] सातवाहन-काल से नीचे गुप्त-काल के अन्तिम चरणों तक नाटक की रचना को खींच लाने के लिए, जोल्ली जैसे विद्वानों ने नवें अङ्क के अभियोग प्रकरण से साक्ष्य संकलन किया है। प्राणदण्ड के कार्यान्वयन-हेतु विष खिला कर मार डालने, जल में डुबाने, यन्त्र पर चढ़ाने तथा अग्नि में प्रविष्ट कराने के, चाण्डालों द्वारा शरीर पर आरा चलाये जाने के अतिरिक्त, चार विकल्पों के कथन[2] को, न्याय-कार्य में श्रेष्ठिन् की उपस्थिति को, न्यायाधीश के इस कथन को कि 'हम लोग यानी न्यायाधीश निर्णय के अधिकारी है, शेष बात यानी निर्णय के कार्यान्वयन की बात राजा जानें",[3] तथा अन्य सबद्ध तथ्यों को प्रमाण रूप में प्रस्तुत कर, जोल्ली ने यह प्रतिपादन किया है कि 'मृच्छ०' में इनका सन्निवेश सूचित करता है कि नारद तथा बृहस्पति के बाद वाले समय में ही नाटक का प्रणयन हुआ।[4] नारद तथा बृहस्पति का समय सन् १०० ई० और सन् ४०० ई० के बीच में पड़ता है,[5] अतएव 'मृच्छ०' पाँचवीं शताब्दी की रचना माना जा सकता है। डॉ० भाट ने वसन्तसेना के

१ Prof. Jagirdar Drama In Sanskrit Literature' (1947) पृ० १०२-०३।

२. "विषसलिलतुलाग्निप्रार्थिते मे विचारे,
क्रकचमिह शरीरे वीक्ष्य दातव्यमद्य (९।४३)।

३ "आर्यचारुदत्त ! निर्णये वयं प्रमाणं शेषे तु राजा।" (अङ्क ९)

४. Jolly 'Tagore Law Lectures' (1883) Page 68 ff

५ काणे : 'Hist. Of Dharmasastra, vol I, PP, 205 and 210 — नारदस्मृति' का रचनाकाल १०० ई० से ३०० ई० तक तथा 'बृहस्पति-स्मृति' का रचनाकाल २०० ई० से ४०० ई० तक माना गया है। 'नारद-स्मृति' लघु तथा बृहद् दो संस्करणों में उपलब्ध है। 'बृहस्पतिस्मृति सम्प्रति अपूर्ण रूप में उपलब्ध है और इसका आधार मूलतः 'मनुस्मृति' है।

महल के बगल में प्राप्त पान के उल्लेख की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। छठे प्रकोष्ठ का वर्णन करते हुए, विदूषक मैत्रेय से कहता है कि वेश्या और कामुक प्रेमी को कर्पूर के सहित पान दिया जा रहा है—'दीयते गणिकाकामुकानो सकर्पूर ताम्बूलम्।'' डॉ० गोडे ने अपने ताम्बूल विषयक अध्ययन में बताया है कि यद्यपि ताम्बूल विदेशी द्रव्य था तो भी इसने गुप्तों के आरम्भिक काल में भारतवर्ष में प्रवेश किया और भारतीय जीवन एवं संस्कृति के साथ पूर्णतः घुलमिल गया।[१] डॉ० भाट का कथन है कि ताम्बूल का नाटक में उल्लेख ईसा की चौथी शताब्दी से पहले नहीं हो सकता।[२] हमारा सुझाव है कि जिन प्रमाणों के आधार पर 'मृच्छ०' को गुप्तों के अनतिकाल अथवा उनसे सम्बद्ध युग का बताया गया है, उनमें यह ताम्बूल वाला तथ्य भी जोड़ा जा सकता है और उस मान्यता के अनुमोदन में इसका उपयोग किया जा सकता है।

इस स्थल पर 'मृच्छ०' तथा 'मुद्राराक्षस' और 'मृच्छ०' के कतिपय श्लोकों तथा 'पञ्चतन्त्र' के कतिपय श्लोकों में प्राप्त सादृश्य की चर्चा करना उचित प्रतीत होता है। 'मुद्राराक्षस' तथा 'मृच्छ०' के कई दृश्य परस्पर समान दिखाई पड़ते हैं। प्रथम के पाँचवें अंक का वह अंतिम दृश्य जिसमें राक्षस मलयकेतु द्वारा दुष्पूर्ण आचरण का अपराधी ठहराया जाता है द्वितीय के न्यायालय वाले दृश्य से साम्य रखता है। पुनः 'मुद्रा०' के सातवें अंक का वह दृश्य जिसमें चन्दनदास चाण्डालों-द्वारा शूली पर चढ़ाये जाने के लिए वध्यस्थान ले जाया गया है, 'मृच्छ०' के उस दृश्य से समानता लिये है जिसमें चाण्डाल चारुदत्त को वध्य-स्थान ले जा रहे हैं। फिर, दोनों नाटकों की घटनाओं में भी साम्य देखा जा सकता है। किन्तु विशाखदत्त के समय का अभी तक कुछ निश्चित परिज्ञान नहीं है, और 'मुद्रा०' को 'मृच्छ०' की तुलना में प्रायेण अर्वाचीन माना भी गया है। अतएव 'मुद्रा०' तथा 'मृच्छ०' में उपलब्ध समानताओं के आधार पर 'मृच्छ०' के रचना काल के विषय में कुछ निश्चय करना असंगत ही माना जाएगा।

'पञ्चतन्त्र' तथा 'मृच्छ०' के कतिपय श्लोकों में प्राप्त सादृश्य भी प्रस्तुत विषय में सहायक सिद्ध नहीं होता। नीचे सबद्ध श्लोक उद्धृत किये जा रहे हैं —

'एता हसन्ति च रुदन्ति च वित्तहेतो-
विश्वासयन्ति पुरुषं न तु विश्वसन्ति।

१ Gode's article, 'Studies In the History of Tambula etc' in the Poona Orientalist, Vol. XIV, Nos 1-4, pages 78-84.
२. 'Preface To Mrcch.' (1953) पृ० १९५-९६।

तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन
वेश्याः श्मशानसुमना इव वर्जनीया. ॥
('मृच्छ०', ४।१४)

"एता हसन्ति च रुदन्ति च कार्यहेतो-
र्विश्वासयन्ति च परं न च विश्वसन्ति।
तस्मान्नरेण कुलशीलवता सदैव
नार्यः श्मशानघटिका इव वर्जनीयाः ॥"
('पंचतन्त्र', १।४।२०३)

"समुद्रवीचीव चलस्वभावाः सन्ध्याभ्रलेखेव मुहूर्तरागाः।
स्त्रियो हृतार्था पुरुषं निरर्थं निष्पीडितालक्तकवत् त्यजन्ति ॥'
('मृच्छ०' ४।१५)

'पंचतंत्र' (१।४।२०६) में यह श्लोक अक्षरशः मिलता है, अन्तर केवल यह है कि दूसरी पंक्ति में वहाँ "स्त्रियः कृतार्था" पाठ है।

'कः श्रद्धास्यति भूतार्थं सर्वो मां तूलयिष्यति।
शङ्कनीया हि लोकेऽस्मिन् निष्प्रतापा दरिद्रता ॥'
('मृच्छ०', ३।२४)

'शङ्कनीया हि सर्वत्र निष्प्रतापा दरिद्रता।
उपकर्तुमपि प्राप्तं निःस्वं सन्त्यज्य गच्छति ॥"
('पंचतंत्र', २।३।९९)

'पंचतंत्र' के द्वितीय तंत्र की तीसरी कथा में प्राप्त श्लोकों ९२,९३ तथा १०२ से १०६ तक में निर्धनता विषयक जो विचार प्रकट किये गये हैं, उनमें 'मृच्छ०' के प्रथम अंक में प्राप्त दरिद्रता विषयक विचारों की घनिष्ठ प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। उपर्युद्धृत उदाहरणों में तो 'मृच्छ०' के श्लोकों का 'पंचतंत्र' में प्रायः यथावत् स्वरूप देखा जा सकता है। 'पंचतंत्र' का मूल संस्कृत वाला संस्करण तथा फारस के बादशाह नौशेरवाँ के लिए रचित पहलवी भाषा में उसका अनुवादित संस्करण अब उपलब्ध नहीं है। इतने इतना माना जा सकता है कि पहलवी वाले संस्करण से बहुत काल पूर्व संस्कृत का संस्करण रचित हो गया होगा। अतएव, मूल पंचतंत्र की रचना का समय तीसरी शताब्दी ईसा माना जा सकता है।[1] लेकिन, वर्तमान संस्करण जिस रूप में उपलब्ध है वह आठवीं शताब्दी ईसा के पहले की रचना नहीं हो सकता, ऐसी विद्वानों

---

[1] डॉ० वरदाचार्य 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' (अनूदित, १९६२), पृ० १९८।

की धारणा है।[1] इस अवस्था में यह कह सकना कठिन है कि 'पंचतन्त्र' तथा 'मृच्छ०' में से किसके श्लोक किसमें गृहीत किये गये हैं। पुन, 'मृच्छ०' का श्लोक 'क श्रद्धास्यति भूतार्थं' भास के 'चारुदत्त' में भी प्रायः उसी रूप में उपलब्ध है।[2] 'मृच्छ०' के प्रथम अंक में प्राप्त दरिद्रता-विषयक वर्णन भी 'चारु०' में लगभग वैसे ही वर्तमान मिलता है। अब, इन नाटकों से ये श्लोक 'पंचतन्त्र' में लिये गये अथवा पंचतन्त्र' से नाटकों में लिये गये, इस बात का निर्णय करना कठिन है। मेरी निजी धारणा तो यह है कि 'पंचतन्त्र' की कथाएँ तथा उनमें समाविष्ट उपदेश काफी पुराने होंगे और इन नाटककारों ने पंचतन्त्र' से ही लोकप्रिय पद्यों को ग्रहण किया होगा क्योंकि इन दोनों नाटककारों की लोकवादी 'स्पिरिट' बिल्कुल प्रत्यक्ष है। अस्तु, मूल विवक्षा यही है कि 'पंचतन्त्र' और 'मृच्छ०' के उपर्युक्त श्लोकों में प्राप्त समानताएँ 'मृच्छ०' की रचना के काल निर्धारण में किसी विशेष महत्त्व की नहीं मानी जानी चाहिए।

इधर डॉ० बुद्धप्रकाश ने 'मृच्छकटिक' के प्रणयन काल के निर्धारण का नवीन प्रयास किया है। उन्होंने नाटक से अन्त साक्ष्य का संकलन किया है और शूद्रक के व्यक्तित्व की विशेषता से, ऐतिहासिक धरातल पर उसकी रचना का समय निर्धारित किया है। उनकी तर्कनाओं का संक्षेप यहाँ प्रस्तुत करना आवश्यक प्रतीत होता है।

(१) आठवें अंक में, वसन्तसेना की हत्या के लिए तत्पर शकार चारुदत्त की मखौल उड़ाने की मनोभंगी में यों कहता है—

"क्या चारुदत्त इन्द्र है, या बालि का पुत्र महेन्द्र है या रम्भा अप्सरा का पुत्र कालनेमि है, या सुबन्धु है, या राजा रुद्र है, या द्रोण का पुत्र जटायु है, या चाणक्य है, या धुन्धुमार है, या त्रिशंकु है?"[3]

डॉ० बुद्धप्रकाश का कथन है कि शकार ने अपने प्रस्तुत कथन में उन शक्तिशाली व्यक्तियों की चर्चा की है जो उसकी सम्मति में वसन्तसेना की प्राण-रक्षा के निमित्त आ सकते थे। शकार की इस तालिका में कथित सुबन्धु और रुद्र ऐसे व्यक्तित्व हैं जो तत्कालीन वातावरण में शक्ति एवं साहस के प्रतीक

---

१. *Bhandarkar Commemoration Volume*, (K C Mehendale), Poona, 1917, पृ० ३७४।

२ 'चारुदत्त', १।१५।

३ 'किं शक्रो वालिपुत्रो महेन्द्रः रम्भापुत्रः कालनेमिः सुबन्धुः ।
रुद्रो राजा द्रोणपुत्रो जटायुश्चाणक्यो वा धुन्धुमारस्त्रिशङ्कुः ॥"
(८।३४)

थे। राजा सुबन्धु के दो उत्कीर्ण लेख प्राप्त हैं। उनमे से पहला एक ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण है जो बाग नामक स्थान मे गुहा सख्या दो के भग्नावशेष मे पाया गया है जिसमे माहिष्मती के राजा सुबन्धु द्वारा, बौद्ध साधुओ के जीवन पालनार्थ तथा बुद्ध की पूजा अर्चा के लिए, दसिथकपल्ली नामक ग्राम के दान दिये जाने का उल्लेख है। दूसरा लेख मध्यभारत के बरवानी प्रदेश मे प्राप्त एक ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण है जिसमे माहिष्मती के "महाराजा" सुबन्धु द्वारा, पुण्यार्जन के हेतु, शाण्ठिस्वामिन् नामक ब्राह्मण को उदुम्बरगर्ता जिले मे अवस्थित सोहजना नामक ग्राम के दान दिये जाने का उल्लेख उपलब्ध है। डॉ० मिराशी ने इस राजा की तिथि सन् ४१६-१७ ई० निश्चित की है तथा उसे नमदातट पर विस्तृत अनूप नामक प्रदेश का शासक बताया है। डॉ० प्रकाश ने थोडे-बहुत सशोधन के पश्चात् मिराशी की स्थापना का समर्थन करते हुए कहा है कि सुबधु एक शक्तिमान् एव साहसी शासक प्रतीत होता है जिसने ईसा की पाँचवी शताब्दी के अन्तिम चरण तथा सभवत छठी शताब्दी के प्रथम चरण मे मध्यभारत के निवासियों के मानस पर अपने प्रभाव की गहरी छापें अकित की थी।[1]

डॉ० प्रकाश राजा रुद्र को सुबन्धु का समसामयिक मानते हैं और उसे श्यामिलक द्वारा रचित भाण 'पादताडितकम्' मे उल्लिखित दशपुर के राजा रुद्रवर्मन् ('दाशेरक रुद्रवर्मन्") से अभिन्न ठहराते हैं। अभी हाल मे मध्यभारत भोपाल, के पुरातत्वविभाग के उपनिदेशक श्री त्रिवेदी को मदसौर के किसी राजा रुद्र के कतिपय विचित्र ताँबे के सिक्के मिले हैं। डॉ० प्रकाश ने इन तीनों रुद्रो को एक मानते हुए कहा है कि 'मृच्छ०' का राजा रुद्र पाँचवी शताब्दी के उत्तरार्ध मे वर्तमान होगा और उज्जयिनी के तत्कालीन शृगारप्रिय समाज मे प्रचुर ख्याति प्राप्त कर ली होगी।[2]

(२) 'मृच्छ०' के छठे अङ्क मे चन्दनक द्वारा परिगणित विदेशी जातियो मे उल्लिखित दो जातियों 'खरवाण' तथा 'मधुघाट' को खोजबीन करते हुए डॉ० प्रकाश ने उन्हें पाँचवी शती के उत्तरार्द्ध तथा छठी शती के आरम्भिक चरणो मे वर्तमान बताया है जब भारतवर्ष मे हूणो का प्रभुत्व जमने लगा।[3]

(३) राज्यक्रान्ति वाले उपकथानक को ऐतिहासिक तथ्य से जोडने का

---

१ 'Studies in Indian History and Civilization' (1962), पृ० ३९९-४०४।

२ वही, पृ० ४०५।

३ वही, पृ० ४०९-१०।

भी उपक्रम डॉ० प्रकाश ने किया है। 'आर्यमंजुश्रीमूलकल्प' में एक कथा आई है कि गोपाल राजा ने भकाराख्य राजा के पुत्र पकाराख्य को बन्दी बना लिया किन्तु वह किसी प्रकार मुक्त हो गया और सौदागरों के साथ अर्ध निशीथ में एक राजा के शिविर में पहुँचा जिसने उस देश पर चढ़ाई की थी, अथ च प्रातःकाल उसके द्वारा मागधों का राजा बनाया गया।[1] जायसवाल ने 'भकाराख्य' को भानुगुप्त, 'गोपाल' को गोपराज तथा 'पकाराख्य' को प्रकटादित्य माना है। उनका कथन है कि भानुगुप्त ने अपने पुत्र को, उसके विद्रोहशील स्वभाव के कारण बन्दी बना कर अपने सामन्त गोपराज की निगरानी में छोड़ दिया था। ५१०–११ ई० में यह गोपराज हूण आक्रमणकारी तोरमाण के साथ हुए संग्राम में मारा गया। ऐसा लगता है कि हूण आक्रमण की अशांतिपूर्ण परिस्थिति में पकाराख्य (जो पीछे प्रकटादित्य कहलाया) बन्दीगृह से मुक्त हो गया और गोपराज की मृत्यु के अनन्तर, सिंहासनासीन बनाया गया।[2] डॉ० बुद्धप्रकाश का कथन है कि गुप्तराज्य के उत्तरकालीन इतिहास में घटित इस राजनीतिक सत्तापहरण के संदर्भ में पालक के बन्दीगृह से छूट कर आर्यक का राजा बन जाना विशिष्ट प्रासंगिक महत्त्व ('Singular topical interest') रखता है।[3] नाटक में जो यह दिखाया गया है कि रात्रि के अन्धकार में शकार इत्यादि ने वसन्तसेना का पीछा किया, उससे तथा कतिपय

---

१ 'तस्याप्यनुजो भकाराख्य प्राची दिशि समाश्रित।
तस्यापि सुत पकाराख्य प्राग्देशेष्वेव जायत॥
क्षत्रिय अग्रणी प्रोक्त बाल्यबन्धानुचारिण।
दशवर्षाणि सप्त च बन्धनस्थमधिष्ठित॥
गोपाख्येन नृपतिना बद्धो मुक्तोऽसौ नगराह्वये।
पश्चाद्देशमायात भकाराख्यो महानृप॥
प्राचि दिशिवदन्त गङ्गातीरमधिष्ठित।
सभो च क्षत्रियो बाल वणिजा च तथागत॥
रात्रौ प्रविष्टवारतत्र राज्यन्ते च प्रपूजित।
मागधानां तदा राज्ये स्थापयामास तं निनृम्॥"
—K. P. Jaiswal 'An Imperial History of India' (Text), पृ० ५६–५७।

२ जायसवाल। वही, Introduction, पृ० ६३–६४।

३ 'Studies in Indian History and Civilization' (1962), पृ० ४१०–११।

अन्य उल्लेखों से जान पडता है कि उस समय उज्जयिनी मे सडको पर रोशनी का प्रबन्ध नही था। ऐसा प्रतीत होता है कि छठी शताब्दी के प्रथम चरण मे जो राजनीतिक विप्लव घटित हुआ उसके फलस्वरूप प्रशासकीय व्यवस्था विघ्नित हो गई और नगरो का जीवन अरक्षित बन गया। मृच्छ०' उस समय की उज्जयिनी मे व्याप्त अनिश्चय के वातावरण को चित्रित करता है।[1]

(४) नवें अक मे प्राप्त न्यायालय वाले दृश्य से भी डॉ० प्रकाश ने अपने मन्तव्य की पुष्टि के लिए साक्ष्य ग्रहण किया है। 'अधिकरणिक' (न्यायाधीश) के साथ उसकी सहायता के लिए एक 'श्रेष्ठिन' (सौदागर) तथा एक कायस्थ' नामक अधिकारी सलग्न दिखाई पडते हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि न्यायालय मे अधिकारी तथा सार्वजनिक जीवन के प्रतिनिधि साथ-साथ बैठते थे। गुप्त काल मे प्रशासन के साथ गैर-अधिकारी व्यक्तियो को सलग्न करने की प्रथा प्रचलित थी। दामोदरपुर मे प्राप्त ताम्रपत्रो से ज्ञात होता है कि 'विषयपति (जिलाधीश) की सहायता के हेतु एक समिति होती थी जिसमे 'नगरश्रेष्ठिन्', 'सार्थवाह' 'प्रथमकुलिक' (शिल्पियो का सरदार) और प्रथम कायस्थ' रहते थे। वैशाली मे श्रेष्ठिन्, सार्थवाह तथा कुलिक की मुहरे मिली हैं। मृच्छ०' मे अधिकरणिक के साथ श्रेष्ठिन् का सहयोग, इस प्रकार, गुप्तकाल की प्रशासकीय व्यवस्था की ओर सकेत करता है।

छठी शताब्दी मे वणिको को राजा की ओर से 'आचारस्थितिपत्र" प्रदान किये जाते थे जिनमे उनके अधिकारो इत्यादि का उल्लेख रहा करता था। विष्णुदेव (५९२ ई०) के एक ऐसे 'स्थिति-पत्र' मे कतिपय ऐसी धाराएँ उल्लिखित हैं जो 'मृच्छ०' के न्यायालय प्रकरण मे अकित कार्यवाही मे साम्य रखती हैं। इस पत्र की पाँचवी पक्ति मे कहा गया है कि कोई व्यक्ति सन्देह पर नहीं पकडा जा सकता— 'शकया गृहण नास्ति।" पाँचवी छठी पक्तियो मे यह कहा गया है कि कतिपय अवस्थाओ मे, विशेषत आग लगने की दशा मे, 'छल' स्वीकार नही किया जा सकता—"छलो ना ग्राह्य।" इसी प्रकार इस पत्र की आठवी पक्ति मे कहा गया है कि लिखित आवेदनपत्र के अभाव मे मौखिक अभियोग ('उत्कृष्टि') स्वीकार नही किया जाएगा—"आवेदकेन विना उत्कृष्टि न ग्राह्या।" 'मृच्छ०' के न्यायालय प्रसग मे इस स्थितिपत्र के ये तीनो निर्देश पालित दिखाई पडते है। शकार के अभियोग लगाने पर और वसन्तसेना की माता के सदेह पोषक बयान देने पर, न्यायाधीश ने चारुदत्त को न्यायालय मे बुलाने के लिए शोधनक को भेजा है जिसमे सन्देह के आधार पर कार्रवाई

---

[1] वही, पृ० ४१२।

न हो सके। शकार का मौलिक अभियोग न्यायाधीश की आज्ञा से लिपिबद्ध कर लिया गया है। ऐसे ही, न्यायाधीश ने चारुदत्त से अनुरोध किया है कि वह मौन भङ्ग कर सत्य भाषण करे क्योंकि वहाँ 'छल' को स्वीकृति नहीं मिल सकती— ब्रूहि सत्यमलं धैर्यं छलमत्र न गृह्यते" (९।१८)। अतएव, डॉ० प्रकाश का कथन है कि 'मृच्छ०' तथा उक्त स्मितिपत्र में एक समान न्यायविधि का जो उल्लेख मिलता है, उससे सिद्ध होता है कि ये दोनों लेख एक ही (छठी शताब्दी) युग की वस्तुएँ हैं।

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में डॉ० बुद्धप्रकाश ने यह स्थापना की है कि 'मृच्छ०' छठी शताब्दी ईसा के प्रारम्भिक चरणों की रचना है।[1] अस्तु।

डॉ० प्रकाश की तर्कनाओं में, यह विचित्र संयोग है, वे ही त्रुटियाँ वर्तमान हैं जो डॉ० सालेटोर की तर्कनाओं में पहले दिखाई जा चुकी हैं। सबसे पहली बात यह है कि उन्होंने भी सालेटोर की तरह भास के 'चारुदत्त' को अपनी विचार प्रक्रिया से एकदम बहिष्कृत कर दिया है। आखिर, 'मृच्छ०' में 'चारु०' का पूर्ण प्रतिबिम्ब दिखाई ही पड़ता है। उदाहरणतः, यदि मृच्छ में चित्रित उज्जयिनी की सड़कों पर रात्रि-काल में प्रकाश का अभाव उत्तर गुप्त काल की राजनीतिक उथल पुथल का परिणाम है, तो 'चारु०' में सन्निविष्ट ठीक इसी प्रकार का चित्रण भी क्या इसी राजविप्लव का परिणाम समझा जाय? और, यदि हाँ, तो क्या ये दोनों नाटक उत्तर गुप्त-काल की रचना माने जायँ? दूसरी बात है: जैसे सालेटोर ने राज्य परिवर्तन वाले उप कथानक की ऐतिहासिक संगति खोजने के प्रयास में 'मृच्छ०' के रचयिता के द्वैत की स्थापना की है, उसी प्रकार डॉ० प्रकाश ने जायसवाल द्वारा प्रस्तुत 'पकाराज्य'—मकाराज्य'-'गोपाहय' के समाधान के आधार पर नाटक में गुम्फित राजनीतिक अन्तःकथानक का समाधान खोज निकाला है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन दोनों विद्वानों के एतद्विषयक समाधान स्वर एवं खानापूरी करते जैसे प्रतीत होते हैं—खानापूरी इसलिए कि अन्यान्य प्रमाणों की खोज के साथ उन लोगों ने राजनीतिक उपकथानक का अपने-अपने द्वारा सुझाये समय के भीतर, ऐतिहासिक समाधान भी प्रस्तुत करना आवश्यक समझा है। हमने एक पूर्व प्रकरण में दिखाया है कि सम्भव है, 'चारुदत्त' में भी सत्तापहरण वाली यह उपकथा अनुस्यूत होगी क्योंकि भास के लिए चौथे अङ्क के बाद भी (क्योंकि हमारा विश्वास है कि 'चारु०' वर्तमान रूप में खण्डित है और अवश्य पूर्ण किया होगा) इस उपाख्यानक की अन्तर्धारा को समाविष्ट

1 वही, पृ० ४१५-१६।

करना अशक्य नहीं था। वास्तव मे, इस उपकथानक का ऐतिहासिक समाधान खोजने का प्रयास सर्वदा असफल रहा है। डॉ० बुद्धप्रकाश ने सुबन्धु तथा राजा रुद्र की जो ऐतिहासिक पहचान की है तथा न्यायालय की प्रक्रिया से सम्बन्धित जो कतिपय तथ्य प्रस्तुत किये हैं, वह 'मृच्छ०' की प्रणयन प्रहेलिका के कालांश के समाधान की दिशा मे उनका विशिष्ट अवदान समझा जायगा—यद्यपि जौल्ली के पूर्वोक्त प्रयास से भी उन्हे नया विश्वास प्राप्त हुआ होगा।

'मृच्छ०' के काल निर्धारण के विषय मे प्रस्तुत की गई तर्कनाएँ ऐसी हैं जो, जैसा ऊपर कहा गया है, सातवाहन-काल तथा उत्तर-गुप्तकाल दोनो के सम्बन्ध मे सटीक ठहरती हैं। बौद्धधर्म की अवस्था सामाजिक जीवन मे सामान्य नैतिकता की शिथिलता तथा सत्तापहरण का कोई-न-कोई प्रयास (उसकी पहचान यद्यपि नहीं हो सकी है, यह दूसरी बात है)—ये सभी प्रमुख तथ्य दोनो युगों मे समान भाव से खोजे और पाये जा सकते हैं। एक ही विषय ऐसा है जो शायद अभी तक सातवाहन काल के सम्बन्ध मे खोजा नही जा सका है, वह है नवें अक मे चित्रित न्यायालय वाला प्रकरण। ईसा की आरम्भिक शताब्दियो मे वैसी न्याय विधि नहीं होगी क्योकि उसका उल्लेख प्राप्त नहीं होता—ऐसा मानना अवश्य युक्तिसगत नहीं होगा।[१] लेकिन, विद्वानो ने मृच्छ०' की न्याय-प्रक्रिया के सूक्ष्म विवरणो का अध्ययन कर, उन्हे पाँचवी-छठी शती के इतिहास की कसौटी पर कसने का जो उद्योग किया है, वह गुप्तकाल अथवा उत्तर-गुप्तकाल के पक्ष मे साक्ष्यो की तुला को भारी बना देता है। वेश्याओ की समृद्धि का जो चित्रण 'मृच्छ०' मे उपलब्ध है, वह भी गुप्तकाल की सामान्य समृद्धि तथा तत्सामयिक नागरको के वेश्या प्रेम का प्रतिबिम्ब समझा जा सकता है।

मृच्छकटिक' मे देश काल का जो वर्णन आया है, उसका समर्थन अन्यान्य ग्रंथों से होता है जो गुप्तकालीन सभ्यता सस्कृति के विज्ञापक हैं। बुधभट्ट के 'बृहत्कथाश्लोकसग्रह', सघदास महत्तर के 'वसुदेवहिंडी', बाण के 'हर्षचरित' एव 'कादम्बरी', दडी के 'दशकुमारचरित' और सबसे बढकर, 'चतुर्भाणी' मे समाज का जो चित्र अकित हुआ है, उसका घनिष्ठ सादृश्य प्रस्तुत नाटक के लोक चित्र से लक्षित होता है। चतुर्भाणी मे शूद्रक-विरचित 'पद्मप्राभृतक', ईश्वरदत्त प्रणीत धूर्तविटसवाद,' वररुचि रचित 'उभयाभिसारिका' तथा श्यामिलक प्रणीत 'पादताडितक', ये चार भाण सग्रहीत हैं। इनमे 'पद्मप्राभृतक' की रचना का श्रेय शूद्रक को ही मिला है, इस कारण भी, चतुर्भाणी का महत्त्व

१ M R Kale 'मृच्छ०' (सम्पादित, १९६२ ई०), Introduction, पृ० २४

हमारे लिए बढ़ जाता है। 'मृच्छ०' के लोक चित्र के कतिपय विवरणों का अत्यन्त समीप का सादृश्य इन भाणों में अंकित चित्रों से मिल जाता है।

नगर वर्णन गुप्तकालीन तथा परवर्ती साहित्य में एक रूढ़ि सा बन गया था जिसमें राजमार्ग, शिल्पिस्थान, हाट बाजार, पुष्पवीथी तथा वहाँ होने वाली भीड़ भाड़, चहल पहल इत्यादि का वर्णन होता था। मृच्छ० में उज्जयिनी का विस्तृत वर्णन उपलब्ध नहीं है, किन्तु जो है उसका व्यापक अनुमोदन 'पद्मप्राभृतकम्' तथा 'पादताडितकम्' दो भाणों से होता है। इन दोनों का कथा-स्थल उज्जयिनी ही है। 'पद्मप्राभृतकम्' में विट उज्जयिनी को 'अवन्ति-सुन्दरी' कहता है और उसे जम्बूद्वीप के नारी की पत्र लेखा से उपमित करता है। वहाँ निरन्तर चलित होने वाले वेदाभ्यास, हाथी, घोड़े तथा रथों के संचार से उठने वाली आवाज, विद्वानों के शास्त्रार्थ, दूकानों पर बिकने वाले माल-असबाब, नृत्य संगीत, मनोविनोद, जुए इत्यादि का विट ने ललित वर्णन किया है। कामदेव के मंदिर की भी चर्चा आई है जहाँ नृत्य प्रमोद होता रहता था। 'पादताडितकम्' में "सार्वभौमनगर" उज्जयिनी का अधिक सोल्लास वर्णन हुआ है। यहाँ यह ध्यान में रखना उपयोगी है कि उज्जयिनी को जम्बूद्वीप का तिलक तथा 'सार्वभौमनगर', अर्थात् अंग्रेजी में 'Cosmopolitan City' कहा गया है और बाद को उसके लिए केवल 'सार्वभौम' शब्द रूढ़िवत् प्रयुक्त हुआ है।[2] [चरित्रचित्रण वाले प्रकरण में हमने शर्विलक द्वारा प्रयुक्त 'कस्मोपोलिटन' शब्द की उपयुक्तता पर विचार किया है।] 'पादताडि०' के अनुसार, नगर संगीत, आभूषणों की झनकार, क्रीडापक्षियों के कलरव, स्वाध्याय की ध्वनि, धनुष की टंकार, कसाईखाने के शोरगुल तथा कक्षाओं के भीतर अभिनेत्रियों की आवाजों से गुंजायमान रहता था। वहाँ शक, यवन तुखार तथा पारसीक जैसे विदेशी तथा पूर्वभारत के मगध, किरात, कलिंग, वंग एवं काश्य लोग और दक्षिण भारत के माहिषक, चोलक, पाण्ड्य एव केरल भी

---

१ 'चतुर्भाणी' का सुन्दर सम्पादन श्री मोतीचन्द्र तथा श्री वासुदेवशरण अग्रवाल ने इधर हाल में बम्बई से प्रकाशित कराया है। यह पठनीय है तथा परिश्रम की उपज है।

२ "अहो नु खलु जम्बूद्वीपतिलकभूतस्य सर्वरत्नाभिकृतविभूतेः सार्वभौमनगरे द्वाधिष्ठितस्य सार्वभौमनगरस्य परा श्री।"

'एष भो अनेकदेशजनकलकलस्वरसंचरविक्रोशमिश्रितवीथीरूपसंकुलमार्गापणां सार्वभौमस्य विपणिमनुप्राप्य।"

—दे० 'चतुर्भाणी' (सम्पा० मोतीचन्द्र तथा अग्रवाल), पृ० १६२ व १६६

रहते थे। सार्वभौम नगर का बाजार अनेक देशों के जल स्थल मार्गों से आये बढ़िया घटिया ('सारफल्गु') पदार्थों के क्रय विक्रय करने वाले लोगो से भरा रहता था। दूकानों में फूल बिकते थे तथा पानागारों में आसवपान का तांता लगा रहता था। राजवीथी मे 'लवणिकापण' में वेश्याएँ रहती थी। भारतवर्ष के चारो कोनो से गणिकाएं नगर की समृद्धि से आकर्षित होकर वहाँ आ बसी थीं। कामदेव तथा प्रद्युम्न-काम के मंदिरो का भी उल्लेख हुआ है। बाण की 'कादम्बरी' मे दिये हुए उज्जयिनी विवरण से भाण का प्रस्तुत वर्णन घनिष्ठतया मिलता है। 'मृच्छ०' में जो थोड़े उल्लेख उपलब्ध हैं उनसे 'पद्मप्राभृ०' तथा 'पादताडि०' के उज्जयिनी-वर्णन का घनिष्ठ सादृश्य है, नगर की सामान्य समृद्धि तथा नागरिको का प्रमोद विलास और कामदेव के मंदिर की लोकप्रियता—इन तथ्यो की ओर हमारा ध्यान सद्य आकर्षित होता है। नगर में अनेक देशी-विदेशी जातियों के आकर बसने का उल्लेख 'मृच्छ०' मे चन्दनक द्वारा परिगणित जातियों के संदर्भ में और सार्थक बन जाता है।

चतुर्भाणी का मुख्य उद्देश्य 'वेश' (वेश्याओ की बस्ती) तथा उसमें रहने वाली वेश्याओ, विटो तथा उनमे आने जाने वाले मनचले धोकीनो का जीवन्त वर्णन करना है। तत्कालीन समाज मे 'वेश' अथवा 'वेशवास' को स्वीकृत महत्त्व मिल गया था और वेश्याओं के साथ संबंध रखना कोई अपकीर्ति का भाजन नहीं माना जाता था। वेश नगर का अत्यन्त साफ-सुथरा तथा सौंदर्यपूर्ण भाग होता था। 'पद्मप्राभृ०' में वेश को काम का आवेश, लम्पटों का उपदेश, माया का कोश, ठगी का अड्डा तथा निर्धनो के लिए त्याज्य बताया गया है। 'धूर्तविटसंवाद' के अनुसार सुन्दर अधखुली आँखों से अवलोकन, मधुर तथा विनोदयुक्त भाषण स्थूल नितम्बों से घिरा अर्धासन, स्नेहपूर्ण वक्रोक्तियाँ—ये सब बातें वेशवास में प्रवेश करने मात्र से ही मिल जाती हैं। 'पादताडि०' में उज्जयिनी के वेश तथा प्रधान वेश्याओं के महलों का अतीव सजीव वर्णन आया है। उसमे चहारदीवारी, हर्म्यशिखर, कपोतपाली, अट्टालक अवलोकनप्रतोली, वलभीकूट (ऊपरी कमरा), गवाक्ष, वितर्दि (चौपाल), वीथी इत्यादि का वर्णन मिलता है। महलों के भीतर स्थित लता-गृहों, वापियों तथा उनमे विकसित कमलपुष्पों और तोरणों, पताकाओ इत्यादि का उल्लेख हुआ है। कामिनियो के शृंगार विलास, क्रीडा मनोविनोद इत्यादि का भी उल्लासपूर्ण अंकन हुआ है।

'मृच्छ०' में वेश्यालय विलास का जो चित्रण उपलब्ध है, उसमें चतुर्भाणी के वेश-वर्णन का प्रत्यक्ष परोक्ष प्रतिबिम्ब स्पष्ट झलकता है। लेकिन, 'मृच्छ०' का वेश्यालय-वर्णन बुधस्वामी के 'बृहत्कथाश्लोकसंग्रह' मे दिये गये वेश-

वर्णन से बहुत ही घनिष्ठ सादृश्य रखता है। जैसे मैत्रेय ने, एक एक करके, वसन्तसेना के महल के आठ प्रकोष्ठों का ललित वर्णन किया है वैसे ही 'श्लोक-संग्रह' में नायक गोमुख वेश्यालय की आठ कक्षाओं में क्रमशः प्रवेश करता और उनकी शोभा का अवलोकन करता चला गया है। वेश्याओं ने 'चेतदा-दास' (वेश्यागृह) की प्रशंसा करते हुए, गोमुख से अपनी कृतज्ञता का यों कथन किया है—

'दीर्घायुषा गृहमिदं चिन्तामणिसधर्मणा।
अलङ्कृतं च गुप्तं च गमितं च पवित्रताम्॥" (१०।१०३)

—'दीर्घजीवी तथा चिन्तामणि के समान मनोवाञ्छित फल देने वाले आप के प्रवेश से यह अलङ्कृत तथा गुप्त गृह पवित्र बन गया।'

इन दोनों ग्रंथों में वेश्यावास के चित्रणों का जो नितान्त घनिष्ठ साम्य लक्षित होता है उसे देखकर समझा जा सकता है कि शूद्रक तथा बुधस्वामी दोनों ने गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' से अपने विवरण ग्रहीत किये हैं।[1] इसी प्रकार, सुरा-पान तथा द्यूतक्रीडा के जो उल्लेख 'मृच्छ०' में आये हैं, वे चतुर्भाणी तथा अन्य समान ग्रंथों में भी उपलब्ध होते हैं। 'पद्मप्राभृ०' में उज्जयिनी की द्यूतसभा का उल्लेख हुआ है। 'धूर्तविटसंवाद' में विट जुए को इसलिए दूर ही से नमस्कार करता है कि उसके पासे सदैव सीधे नहीं पड़ते। 'पादताडि०' में, सार्वभौम नगर के मादक जीत कर, मालपुए, मांस तथा मदिरा लिये हुए परिचारकों के साथ जुआरियों का वेश की तरफ जाने का उल्लेख है। 'मृच्छ०' के जुआरियों वाले दृश्य को, जिसमें द्यूताध्यक्ष "सभिक" का समावेश है, इस पृष्ठभूमि में अवलोकित किया जा सकता है। 'वसुदेव-हिंडी' में अनेक स्थलों पर जुए का विचित्रतापूर्ण वर्णन हुआ है। उपवन-यात्रा भी वैशिक संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग रहा है। चतुर्भाणी में प्रसङ्गवश ही यत्र-तत्र उपवन-यात्रा की चर्चा आई है। 'बृहत्कथाश्लोकसंग्रह' में नागवन की यात्रा का अत्यन्त रमणीय चित्राङ्कन किया गया है। 'मृच्छ०' में पुष्प-करण्डक उद्यान में शकार तथा चारुदत्त के प्रमोदार्थ जाने का उल्लेख हुआ है यद्यपि कोई सविस्तर वर्णन नहीं। नृत्य एवं संगीत तथा वेशभूषा एवं आभरणों के जो उल्लेख भाणों में हुए हैं, उनका साम्य 'मृच्छ०' के एतद्विषयक उल्लेखों से मिलता है। चतुर्भाणी में चित्रित वेशभूषा तथा आभरणों की समता गुप्तकालीन कला एवं साहित्य में अंकित वेशभूषा एवं आभरणों के साथ दिखाई गई है जिससे पता चलता है कि चतुर्भाणी (और इसी आधार पर 'मृच्छ०' भी) गुप्तकाल की रचना है।

१. 'चतुर्भाणी' (सं० मोतीचन्द्र तथा अग्रवाल), भूमिका, पृ० २६–२७।

चतुर्भाणी मे कई स्थानों पर बौद्धधर्म की भी चर्चा आई है। भाण-प्रणेताओं ने दुराचारी बौद्धों की हँसी उड़ाई है, यद्यपि बौद्ध धर्म के प्रति कहीं अनास्था नही प्रकट की गई है। 'पद्मप्राभृ०' में बौद्ध भिक्षु सविलक ('मृच्छ०' के शर्विलक से साम्य देखें) को वेश मे देखकर, विट उबल पड़ा है और उसके व्यर्थ ही सिर मुँडाने की निन्दा की है यद्यपि बौद्धधर्म की अपनी भीतरी शक्ति की प्रशसा की है। 'पादताडित०' मे विट बौद्ध निरपेक्ष पर बौद्धधर्म को लेकर, चुभती फबतियाँ कसता है। 'धूर्तविटसंवाद' मे विश्वलक की उपमा नग्न श्रमणक से दी गई है। 'मृच्छ०' में बौद्धधर्म का प्रतिनिधि सवाहक श्रमण है जिसका आकस्मिक दर्शन तो अशुभसूचक बताया गया है, किन्तु, जिसे अत्यन्त दयालु एव उदार दिखा कर, अन्त म समस्त विहारों का कुलपति बना दिया गया है। 'पादताडि०' में अधिकरण अर्थात् न्यायालय का कतिपय स्थलों पर उल्लेख आया है। सूर्यनाग पर अधिकरण में पताका वेश्याओ ने मुकदमा चलाया था और वह म्लेच्छ असवध श्रावणिको द्वारा वहाँ लाया गया था, लेकिन, बलदर्शक स्कन्दकीर्ति ने उसे यह कह कर बचा लिया कि वह राजा का साड़ है। मृच्छ०' में, वेश्या-दारिका वसन्तसेना की हत्या का अभियोग राजश्याल शकार ने प्रस्तुत किया है और अधिकरणिक को अभियोग के दौरान मे खरी-खोटी सुनाई है, इस कारण कि वह राजा का साला है।

ऊपर कहा गया है कि उज्जयिनी मे कामदेव तथा प्रद्युम्नकाम के मदिरो की वर्तमानता का उल्लेख चतुर्भाणी के दो भाणो मे हुआ है। यहाँ प्रद्युम्न तथा कामदेव के मदिर से शायद एक ही मदिर का अभिप्राय है और प्रद्युम्न तथा कामदेव की पूजा से पाञ्चरात्र भागवत धर्म की ओर सकेत है।[1] 'पद्मप्राभृ०' मे, उज्जयिनी के कामदेवायतन (कामदेव मदिर) से गणिका वनराजिका फूलों के गहनो तथा हारो मे लदी हुई नीचे उतरती दिखाई गई है। 'पादताडि०' मे उज्जैन के कामदेवायतन का अनेक स्थलों पर उल्लेख आया है। एक बार विट ने बूढ़ी वेश्या सरणिगुप्ता को मकरयष्टि की प्रदक्षिणा करके कामदेवायतन से उतरते देखा है। मदयन्ती इत्यादि और भी वेश्याओ का उल्लेख है जो कामदेव मदिर मे आती जाती थीं। 'उभयाभिसारिका' में, नारायण के मदिर मे कुबेरदत्त द्वारा मदन के आराधन के लिए मदनसेना का जल्सा किया गया है। इन उल्लेखो से जान पडता है कि वेश्याएं मदिरों मे आती-जाती थीं और मदिरो की पूजा अर्चा मे भाग लेती थी। 'मृच्छ०' के प्रथम अंक मे ही उल्लेख आता है कि उज्जयिनी के कामदेवायतन के उद्यान मे वसन्तसेना गई थी और वही से वह चारुदत्त मे अनुरक्त हो गई। ऐसा प्रतीत

१ 'चतुर्भाणी' (स० वही), भूमिका, पृ० ८२।

होता है, वह काम पूजन के उत्सव मे सम्मिलित होने गई थी जहाँ शकार ने उसके साथ छेड़खानी की थी और चारदत्त ने उसे बचाया था। अतएव, कामदेव-मंदिर मे वेश्याओ के आवागमन के समान उल्लेख से इस धारणा को बल मिलता है कि 'मृच्छ०' उसी युग की रचना है जिस युग मे चतुर्भाणी, की रचना हुई थी।

और, इन भाणो के सूक्ष्म अनुशीलन के आधार पर, विशेषत इनमे चित्रित वैशिकी संस्कृति को ध्यान मे रखते हुए, यह स्थापना की गई है कि ये भाण गुप्तकाल की ही समृद्धि एव विलासिता के द्योतक हैं तथा इनका प्रणयन उसी युग मे हुआ है।[1] अतएव, इस दृष्टि से 'मृच्छ०' भी शूद्रक द्वारा 'पद्मप्राभृतकम्' के साथ साथ, गुप्त-काल मे (अन्य प्रमाणो से उसके अन्तिम चरण मे) प्रणीत किया गया समझा जाना चाहिए।

(५)

शूद्रक के समय के स्थिरीकरण के विषय म एक अत्यन्त महत्वपूर्ण समय-रेखा कालिदास का आविर्भाव काल है। विद्वानो न यह निश्चय करने का उद्भट प्रयत्न किया है कि शूद्रक को कालिदास का पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती नाटककार माना जाय। कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' की प्रस्तावना मे भास तथा कविपुत्र के अतिरिक्त, अपने पूर्ववर्तियो मे जिस सौमिल्लक का परिगणन कराया है, उसने तथा रामिल ने, राजशेखर के कथनानुसार, शूद्रक के सम्बन्ध मे 'शूद्रककथा' का प्रणयन किया था। लेकिन, इस कथा का नायक शूद्रक 'मृच्छकटिक' का रचयिता कवि शूद्रक भी था, ऐसा मानने के लिए कोई आधार वर्तमान नही है। 'प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां' मे कालिदास न, यह समझा जा सकता है, केवल उन्ही नाटककारो का उल्लेख किया है जो ख्यातिलब्ध थे, 'प्रथितयशस्' थे और 'आदीनां' कह कर, यह भी सूचना दे दी है कि अन्यान्य छोटे मोटे नाटककार भी उनके समय मे अथवा उनस पूर्व वतमान थे जिन्हें विशिष्ट नामोल्लेख का गौरव प्रदान करना वे उचित अथवा आवश्यक नही समझते थे। ऐसी अवस्था मे दो अनुमान किये जा सकते है प्रथम कि शूद्रक नामक कोई नाटककार था ही नही, द्वितीय कि यदि वह कोई नाटककार था तो प्रसिद्ध नही था अथवा यह कि कालिदास ने साहित्यिक ख्याति के अतिरिक्त कोई अन्य कसौटी भी अपने सामने रखी थी जिस पर कसे जाने पर शूद्रक खरा नही सिद्ध हुआ। अब यदि शूद्रक कोई नाटककार था, तो वह प्रसिद्ध नही था जिस कारण कालिदास ने उसे "आदीनां" के

---

१ 'चतुर्भाणी' (स० मोतीचन्द्र तथा अग्रवाल) भूमिका, पृ० ८७।

फुटकर खाते मे डाल दिया। तब, वह 'मृच्छकटिक' का रचयिता शूद्रक नही रहा होगा। यह दिखाया गया है कि कालिदास ने संस्कृत के प्रथम कवि एव नाटककार अश्वघोष का भी उल्लेख नही किया है। इस सम्बन्ध मे कहा जा सकता है कि 'मालविकाग्नि०' की प्रस्तावना मे सूत्रधार का अभीष्ट केवल प्रसिद्ध नाटककारो का ही उल्लेख करना था क्योंकि भासमिश्रो के ऊपर कालिदास की नवोन्मिषित कला की आपेक्षिक श्रेष्ठता की छाप छोडना उसका तात्कालिक उद्देश्य था, और अश्वघोष के 'शारिपुत्रप्रकरण' इत्यादि रूपको को उस समय तक कोई महत्त्व नही मिल सका था, कारण चाहे जो भी रहा हो। 'मृच्छकटिक' के विषय म ऐसी कल्पना नहीं की जा सकती। उसका वस्तु-विन्यास इतना निराला है कि कालिदास उसके रचयिता का विशिष्ट नामोल्लेख करना विस्मरण नही करते। यह भी कहा गया है कि 'मृच्छकटिक' यतः भास के 'चारुदत्त' का परिवर्धित संस्करण था, अत कालिदास ने मौलिक रचयिता भास का तो उल्लेख किया, किन्तु भास की रचना को पल्लवित कर, नाटककार का श्रेय चाहनेवाले शूद्रक को जानबूझ कर छोड दिया। इस सम्बन्ध मे हमारा निवेदन यह है कि 'मृच्छकटिक' मे, 'चारुदत्त' का विस्तृत संस्करण होने के बावजूद, ऐसी क्षमता अवश्य थी कि कालिदास की व्यापक कवि-दृष्टि उसके रचयिता की अवहेलना नही कर सकती थी विशेषत, तब जब कि भास के अतिरिक्त सोमिल्लक तथा कविपुत्र का उन्होने पृथक् उल्लेख किया जिनकी नाट्य रचनाएँ उस समय ख्यात थी किन्तु जिनमे इतनी क्षमता नहीं थी कि वे दीर्घकाल तक जीवित रह सकें (अद्यापि उनकी किसी रचना का पता नहीं लग पाया है)। कालिदास ने 'मृच्छकटिक' तथा उसके रचयिता शूद्रक की, किन्हीं साहित्येतर कारणों से, उपेक्षा की, यह मानने मे हम असमर्थता का अनुभव करते हैं।[1] हमारी विवक्षा यह है कि शूद्रक कालिदास का परवर्ती है।

---

१ डॉ० शेखर ने यह मत व्यक्त किया है कि शूद्रक क्षत्रिय अथवा ब्राह्मण यद्यपि नहीं रहा होगा क्योंकि उसने 'मृच्छ०' मे ऐसे चित्र अंकित किये हैं जो आभिजात्य के विरोधी हैं, क्योंकि उसने संस्कृत की तुलना में प्राकृत को प्रामुख्य प्रदान किया है और क्योंकि उसके द्वारा ब्राह्मण पोषित परम्पराओं का तिरस्कार किया गया है। डॉ० शेखर की कल्पना म आर्य बनाम अनार्य' की मनोदृष्टि कार्यशील रही है जो उनकी सम्पूर्ण पुस्तक मे आद्यापान्त द्रष्टव्य है। शूद्रक अनार्य नाटककार था, इस कारण कालिदास ने अश्वघोष के साथ (जो बौद्ध था), शूद्रक का भी तिरस्कार कर दिया—यह डॉ० शेखर का निष्कर्ष है। शूद्रक विवेचन की अंतिम पंक्तियाँ यो हैं —

प्रो० जागीरदार ने 'मृच्छ०' के कालिदास की परवर्ती रचना होने के प्रमाण में कतिपय सुझाव प्रस्तुत किये हैं जिन्हें महत्त्व का समझा जाना चाहिए। उनकी तर्कनाएँ निम्नलिखित हैं —

(१) कालिदास ने नाटक को समसामयिक जीवन के सामीप्य में लाने का क्रान्तिकारी कदम उठाया। 'मृच्छ०' उसी दिशा में किया गया महत्त्वपूर्ण प्रयास है क्योंकि उसमें निम्नतर समाज से अधिक संख्या में स्त्री तथा पुरुष दोनों जाति के पात्र गृहीत किये गये हैं। यही कारण है कि नाना प्रकार की प्राकृतों का उपयोग यहाँ हुआ है। (सत्ताइस पात्रों में से) केवल पाँच—चारुदत्त, आर्यक, शर्विलक दर्दुरक तथा अधिकरणिक—संस्कृत बोलते हैं और शेष प्राकृत तथा अपभ्रंश (भी) बोलते हैं। अतः 'मृच्छ०' कालिदास के बाद की रचना है।

(२) 'मृच्छ०' के वस्तु-विकास से भी उसकी परवर्ती रचना होने का साक्ष्य मिलता है। पूरे नाटक में भाग्य अथवा प्रारब्ध का निर्मम नाटय प्रदर्शित है यद्यपि उसका अवसान आनन्द में ही होना निश्चित था। बौद्धधर्म की जो अवस्था चित्रित हुई है, वह उसकी सम्मानपूर्ण स्थिति की द्योतक नहीं है। संवाहक श्रमण के प्रति सम्मान नहीं सहिष्णुता की भावना प्रदर्शित है। यह युग मौर्य साम्राज्य के विघटन के तत्काल बाद वाला नहीं हो सकता है क्योंकि तब बौद्धधर्म को राज्य का आश्रय प्राप्त था। पुन अपभ्रंश बोलियों का विकास भी अभी होना हो था। मौर्यों के बाद दूसरा साम्राज्य जो बना और विघटित हुआ, गुप्तों का ही था। पाँचवीं शताब्दी ईसा के मध्य में गुप्त-साम्राज्य की अवनति के दिनों में बौद्धधर्म ने अपना सिर पुनः उठाया होगा (जैसा चीनी यात्रियों के आगमन से संकेतित होता है) जब हूणपतन ने इसकी उन्नति का मार्ग बिल्कुल बन्द कर दिया। सम्भवतः 'मृच्छ०' गुप्तों के पतन तथा हूण के उदयकाल के मध्य में रचा गया।

"It is intriguing that Kalidas takes no notice of him, but then the Shakespeare of India is equally reticent about Aśvaghosa who certainly flourished before him Strange though it may appear, it is a hard fact that the first dramatist of Sanskrit literature was a Buddhist, and a close second hails, as far as can be seen, from a non Aryan Stock of which so little is known —'Sanskrit Drama Its Origin And Decline' (1960) पृ० १२०-२१।

(३) आठवें अङ्क के चौथे श्लोक की दूसरी पंक्ति, 'हृदयमिव दुरात्मनामगुप्त नवमिव राज्यमनिर्जितोपभोग्यम्", मे 'अगुप्त' पद से उस नये राज्य का बोध होता है जिसमे गुप्त राजाओ का शासन नही है।[१]

जागीरदार की तर्कनाएं अकाट्य नहीं हैं, लेकिन उनमे सम्भावना को सशक्त बनाने के लिए यथेष्ट सार हमे दिखलाई पडता है।[२] और 'मालविका०' मे भास, सौमिल्लक तथा कविपुत्र के साथ शूद्रक का कथन नही होने से हमारा जो यह अनुमान है कि कालिदास के लिए शूद्रक अपरिचित था, उसकी इससे पुष्टि होती है। इस प्रकार 'मृच्छ०' कालिदास की परवर्ती रचना माना जाना चाहिए।

पुनः एक बात और भी लक्षणीय है। 'मृच्छ०' भास रचित 'चारुदत्त' का परिवर्धित सस्करण है जैसा पहले दिखाया जा चुका है। कोई भी नाटककार—अतिरिक्त उसके जो बिलकुल तृतीय श्रेणी का हो—हाल मे लिखे गये ऐसे नाटक का नवीन सस्करण प्रस्तुत करने की योजना नही बनाता जिसकी रगमचीय लोकप्रियता अभी बनी हुई हो अथवा जिसके विषय मे लोगो की स्मृति अभी बिलकुल हरी तथा ताजी हो। फिर, 'मृच्छ०' मे तो 'चारु०' की पूरी-की पूरी पक्तियाँ एव श्लोक गृहीत किये गये हैं। इससे भी जान पडता है कि भास तथा शूद्रक के समयो मे शताब्दियो का व्यवधान रहा होगा। अतएव, शूद्रक कालिदास का परवर्ती ही माना जाना चाहिए। कालिदास का आविर्भावकाल हमने ईसा की चौथी शताब्दी के उत्तरार्ध तथा पाँचवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के बीच माना है।[३] अतएव शूद्रक का समय पाँचवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से आगे माना जाना चाहिए।

अतएव, उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हमारा निष्कर्ष निम्नलिखित है —

(क) 'मृच्छ०' के रचयिता शूद्रक ने दक्षिण भारत मे राजसत्ता का उपभोग उस अवधि मे किया होगा जो गुप्त-साम्राज्य के पतन (५०० ईसवी) से आरम्भ होती है और थानेश्वर के महाराज हर्षवर्धन के उदय काल (६०६

---

१ जागीरदार ने अर्थ किया है—"यह (उद्यान) दुष्टो के हृदय के समान है, यह एक ऐसे राज्य के समान है जहाँ गुप्त लोग अब नहीं हैं, और नये राजा अपना आधिपत्य स्थापित नही कर सके हैं।" (विट का कथन है।)

२ दे० प्रो० जागीरदार की पुस्तक 'Drama In Sanskrit Literature' (1947), chap XIV

३ डॉ० रमाशकर तिवारी 'महाकवि कालिदास' (चौखम्बा), पृ० १४।

ईसवी) से समाप्त होती है। यह युग भारतीय इतिहास में विकेन्द्रीकरण का काल रहा है जब देश अनेक छोटे छोटे स्वाधीन राज्यों में बँटा हुआ था जिनमें हूणों द्वारा संस्थापित राज्य भी था जो विदेशी आक्रान्ता थे। शूद्रक ऐसे ही छोटे छोटे नरेशों में था जिसको या तो सत्ता-प्राप्ति के लिए स्वयं कोई छोटा-मोटा संघर्ष करना पड़ा था या फिर, किसी सत्तापहरण वाले काण्ड में उसकी गहरी दिलचस्पी थी।

(ख) शूद्रक का व्यक्तित्व रोमांटिक था। गुप्तकाल में जिस वैदिकी संस्कृति का विकास हुआ था, उसके प्रति उसका सहज आकर्षण था। संस्कृत नाटक की परिनिष्ठित परम्परा से पृथक् नाटक रचना का उसने चुनाव किया क्योंकि तभी वह अपने पिछले यौवन में देखे तथा भोगे गये जीवन-पटलों का परिचित्रण कर सकता था। उसे यह चिन्ता नहीं थी कि वह कोई मौलिक प्रणयन करे। भास की रचना उसे मिली और कुछ नवीन तत्त्वों को जोड़ कर, उसने 'मिट्टी की गाड़ी' रच दी क्योंकि वह साधारण मिट्टी का मनुष्य था, मिट्टी के जीवन के धूमिल तथ्यों से परिचित था और उन्हीं तथ्यों में से आदर्श की खोज एवं स्थापना की लगन से अनुप्राणित था। प्रथम पंक्ति का राजा नहीं था, प्रथम पंक्ति का नाटककार बनने की उसे अभिलाषा नहीं थी अन्यथा एक पुरानी रचना को ही थोड़े बहुत परिष्करण के साथ पुनर्जीवित करने का प्रयास नहीं करता। उसने क्या सोचा था कि भविष्य में कभी काव्य रुचि बदल जायगी और उसे भी पांक्तेय नाटककारों में स्थान मिल सकेगा! नाटक में संस्कृत भी रहे और प्राकृत भी रहे, पाणिनि का पालन भी हो और उल्लंघन भी हो मनु की दुहाई भी दी जाय और मनु की अवमानना भी की जाय! विचित्र था उस नरेश का व्यक्तित्व जिसने राजाओं की मालिका में ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त नहीं किया, किन्तु जिसे अयाचित ही आज निराले नाटक प्रणेता का सम्मान मिल गया।

(ग) 'मृच्छ०' का प्रणयन काल ईसा की छठी शताब्दी का पूर्वान्तराल रहा होगा।

(ख)

(४) मृच्छकटिक की कथ्यवस्तु

प्रथम अंक

प्रस्तावना में नटी ने 'अभिरूपपति' नामक व्रत का अनुष्ठान किया है और इसके निमित्त सुस्वादु भोज्य पदार्थों का ज्योनार रचाया है जिसके लिए किसी अनुकूल योग्य ब्राह्मण की खोज सूत्रधार-द्वारा की जाने लगी है। इसी बीच चारुदत्त (नाटक का नायक) का विदूषक मित्र मैत्रेय दृष्टिगोचर होता है और सूत्रधार उसे भोजन के निमित्त निमन्त्रण देता है। मैत्रेय निमन्त्रण अस्वीकार कर देता है, और तब सूत्रधार किसी अन्य ब्राह्मण की खोज में चला जाता है। प्रस्तावना इसी स्थल पर समाप्त हो गई है।

मैत्रेय के कथन से जान पडता है कि आर्य चारुदत्त के प्रिय वयस्य चूर्णवृद्ध ने चमेली के फूलो से सुगंधित उत्तरीय को देव कार्य सम्पादित करनेवाले चारुदत्त के पास ले जाने का उसे निर्देश किया है। चारुदत्त गृह देवो की पूजा करते हुए उसी ओर आ रहा है।

चारुदत्त के प्रथम परिचय मे हम उसे अपनी निर्धनता पर शोक प्रकट करते देखते हैं। कुछ दिन पूर्व उसके द्वार पर पूजा के समय गिराई हुई वस्तुओ को हम और सारस पक्षी खाया करते थे, किन्तु आज उस स्थल पर घास उग आई है क्योकि अब लोगों ने वहाँ आना-जाना भी छोड दिया है। चारुदत्त इसी भाग्य विपर्यय पर चिन्ता कर रहा है जब विदूषक (मैत्रेय) उसे वह सौरभित उत्तरीय प्रदान करता है। चारुदत्त की चिन्तित मुद्रा और भी गाढी बन जाती है। तब दोनो वार्तालाप करने लगते हैं और वार्ता विनिमय का विषय होता है चारुदत्त की नवोपपन्न दरिद्रता। चारुदत्त का कथन है कि जो व्यक्ति सुख भोगने के बाद दरिद्र हो जाता है, वह शरीर धारण करते हुए भी मृतक के समान है। विदूषक सान्त्वना देता है कि दुखी होना व्यर्थ है "माँगनेवाले को दान दे देकर आपका वैभव वैसे ही अधिक मनोरम लगने लगा है जैसे देवताओ के पी लेने पर प्रतिपदा की अवशिष्ट क्षीण चन्द्रकला।" किन्तु, चारुदत्त को विभव विनाश का दुख नही है, उसे दुख इस बात का खा रहा है कि निर्धन समझ कर, अतिथियो ने उसके घर आना बन्द कर दिया है तथा मित्रों ने उसकी अवहेलना आरम्भ कर दी है। निर्धनता के परिणामो का

अत्यन्त विशद कथन चारुदत्त ने किया है जिससे ज्ञात होता है कि वह दरिद्रता की अनुभूति से एक दम दीन, दुर्बल एवं विपण्ण बन गया है। 'दरिद्रता हृदय के भीतर बसी हुई वह शोक की आग है जो एक ही बार जला कर समाप्त नहीं कर देती, बल्कि घुला घुला कर मारती है"—इस प्रतीति से वह विह्वल दिखाई पड़ता है।

मैत्रेय से चारुदत्त अनुरोध करता है कि वह चौराहे पर जाकर, मातृ-देवियों को बलि चढ़ा आए। मैत्रेय यह निर्देश मानने में आना-कानी करता है। इसी बीच, विट, शकार तथा चेट द्वारा पीछा की जाती हुई गणिका वसन्तसेना (नायिका) प्रवेश करती है। वह अतीव भयभीत होकर भागती जा रही है और ये तीनों उसे पकड़ने की चेष्टा कर रहे हैं। वे उसे नाना प्रकार से फुसलाते-पुचकारते हैं कि वह डरे नहीं और खड़ी हो जाय। शकार राजा पालक का साला है और वह वसन्तसेना में कामासक्त है। जब वह देखता है कि वसन्तसेना उसके मधुर प्रलोभनों की अवमानना कर रही है, तब वह उसे डरवाने लगा है और उसे जान से मार डालने की धमकी देने लगा है। अन्ततः वसन्तसेना स्थित हो जाती और पूछती है कि उन लोगों को उसके किस आभूषण की कामना है? विट उत्तर में कहता है कि वे लोग आभूषण नहीं चाहते क्योंकि सुकुमार लता फूलों का मोक्षण सहन नहीं कर सकती। यह सुनकर, वसन्तसेना उनका मन्तव्य जानना चाहती है जिस पर शकार कहता है, "मुझ देव पुरुष, मुझ मनुष्य-वासुदेव की कामना करो।" वसन्तसेना यह वाक्य सुनकर क्रुद्ध हो जाती है और तीव्र स्वरों में डांटती है—"चुप रहो। दूर हट जाओ। अनार्य्य वाक्य बोल रहे हो।" उसकी इस कुपित प्रतिक्रिया को देखकर, विट उसे समझाता है कि उसने वेश्याओं के प्रतिकूल भाषा का प्रयोग किया है। उसका शरीर बाजार में धन से खरीदी जाने वाली वस्तु के समान है और उसे रसिक-अरसिक दोनों से उसी प्रकार समान व्यवहार करना चाहिए जिस प्रकार तलैया में विद्वान् ब्राह्मण भी स्नान करता है और नीचवर्ण का मूर्ख भी, फूलों से लदी लता को मोर भी झुकाता है और काक भी। तब वसन्तसेना कहती है कि प्रेम का कारण गुण होता है, बलात्कार नहीं।

प्रस्तुत प्रसंग में शकार का प्रत्येक कथन उसकी वज्र मूर्खता का विज्ञापन करता है। वह कहता है वसन्तसेना कामदेवायतन उद्यान से ही दरिद्र चारुदत्त पर अनुरक्त है, उसका घर यहीं बाईं ओर है, कहीं ऐसा न हो कि वह उनके हाथों से बच कर भाग जाय। इस कथन से वसन्तसेना समझ जाती है कि अब उस अँधेरी रात में प्रिय चारुदत्त का मिलन उसके लिए सम्भव हो सकेगा और देखते-देखते अदृश्य हो जाती है। किन्तु, अदृश्य होने पर भी,

उसकी माला की सुगन्ध तथा उसके नूपुरों की झनकार से उसकी गति का बोध हो रहा है और शकार इन संकेतो की सहायता से उसे पकडना चाहता है। विट, ऐसा भासित होता है उसको छिपने भागने में सहायता करना चाहता है और इसी लिए, वह वसन्तसेना को उसकी माला की सुरभि तथा नूपुरों के क्वणन की धीरे से याद दिला देता है। वसन्तसेना अब यह संकेत समझकर, मालाओं को फेंक देती और आभूषणों को समेट लेती है तथा टटोलते-टटोलते चारुदत्त के भवन के पार्श्व-द्वार के निकट पहुँच जाती है। दरवाजा बन्द है। इधर चारुदत्त सान्ध्योपासना समाप्त कर, विदूषक से मातृ-देवियों को बलि चढ़ा आने का अनुरोध पुनः दुहराता है। विदूषक बडी अनिच्छा के साथ, रदनिका (चारुदत्त की दासी) को साथ लेकर, बाहर जाने के लिए तैयार होता है। रदनिका को वह बलि-दीप देता है और स्वयं किवाड़ें खोलता है। इसी अवसर से लाभ उठाकर, वसन्तसेना जो पहले से ही दरवाजे पर चिपकी हुई है, आँचल से दीपक बुझा देती और चारुदत्त के घर के भीतर अदृश्यरूपेण प्रवेश कर जाती है। मैत्रेय दरवाजे पर से ही लौटता और अन्तःपुर में दीपक फिर से जलाने चला जाता है और रदनिका बाहर खड़ी हो जाती है।

इधर विट, शकार इत्यादि वसन्तसेना की खोज कर ही रहे थे। शकार ने रदनिका को वसन्तसेना समझ कर, उसके केश पकड़ लिये। रदनिका संत्रस्त हो गई और पूछा, 'क्या यही आर्यों का-सा व्यवहार है ?" विट ने कहा कि वह स्वर वसन्तसेना का नहीं, किसी अन्य स्त्री का मालूम पड़ता है। लेकिन, फिर तत्काल विट और शकार दोनों ने निश्चय किया कि रंगशाला में कलाओं की शिक्षा में कुशलता प्राप्त करने से, वसन्तसेना ने अपना स्वर बदल दिया है। उसी समय विदूषक दीपक लेकर, घर से बाहर आया और रदनिका के प्रति वह अन्यायपूर्ण अभद्र आचरण देखकर, शकार को डाँट-फटकार सुनाई—'अरे राजा के साले संस्थानक ! दुष्ट ! अविनयी ! क्या यह उचित है ? भले ही आर्य चारुदत्त दरिद्र हो गए हैं, फिर भी, उनके गुणों से उज्जयिनी नगरी क्या सुशोभित नहीं जो आप उनके घर में घुसकर, उनके परिजनों को ताड़ित कर रहे हैं ?" विट ने विदूषक को पहचान लिया और उस अशोभन व्यवहार के लिए उसने विनम्र क्षमा याचना की तथा यह अनुरोध किया कि विदूषक उस घटना के सम्बन्ध में आर्य चारुदत्त से कोई चर्चा नहीं करे।

शकार अपनी दुष्टता में यह नहीं समझ पा सका है कि विट उस ब्राह्मण के प्रति इतना विनीत होकर वह निवेदन क्यों कर रहा है ? पूछता है, "तुम क्यों भयालु बन गए हो ?" विट उत्तर देता है, "चारुदत्त के गुणों से।" शकार कहता है, "चारुदत्त नितान्त दरिद्र है, उसमें कौन से गुण उत्पन्न हो

गए ?" इस पर विट ने चारुदत्त की दानशीलता एवं उदारता का वर्णन किया है और कहा है कि अनेक गुणों से सम्पन्न चारुदत्त का ही जीवन प्रशंसनीय है जब कि और लोगों का जीवन व्यर्थ है। तब, शकार और विदूषक में द्वन्द्व प्रारम्भ होता है और अन्त में शकार विदूषक को निर्देश करता है कि वह घर जाकर चारुदत्त को चेतावनी दे दे कि वसन्तसेना उसे लौटा दी जाय अन्यथा वह चारुदत्त का 'आमरण शत्रु' बन जाएगा। इसके बाद विट, चेट तथा शकार तीनों निकल जाते हैं। विदूषक रदनिका से अनुरोध करता है कि वह उस घटना के विषय में आप चारुदत्त से कुछ भी चर्चा न करे क्योंकि ऐसा करने से उन्हें व्यर्थ का कष्ट होगा। रदनिका ऐसा नहीं करने का आश्वासन देती है।

इसी बीच, चारुदत्त ने वसन्तसेना को देख लिया है और समझता है कि रदनिका वापस लौट आई। वह उससे कहता है, "रदनिके! रोहसेन (उसका छोटा पुत्र) को इस उत्तरीय में लपेट कर भीतर ले जाओ क्योंकि सायंकालीन शीतल वायु से वह पीड़ित हो गया है।" वसन्तसेना समझ जाती है कि चारुदत्त उसे अपनी चेटी रदनिका समझ रहे हैं। वह उत्तरीय ग्रहण कर लेती है और उसकी सुगंध से प्रसन्न होकर, अनुमान करती है कि अभी चारुदत्त का यौवन निष्प्रभता के कारण उदासीन नहीं बन पाया है। वह अपना मुँह फेर लेती है और चारुदत्त पुनः दुहराता है कि वह शिशु को लेकर भीतर चली जाय। वसन्तसेना के कुछ भी उत्तर न देने पर चारुदत्त दुखी होता है और समझता है कि रदनिका (वसन्तसेना को वह रदनिका ही समझता है) का उसके आदेश का उल्लंघन करने वाला यह व्यवहार उसकी दरिद्रता का ही परिणाम है। इसी बीच, रदनिका एवं मैत्रेय भी भीतर चले आए हैं और मैत्रेय बताता है कि यह (वसन्तसेना) अन्य महिला है, रदनिका नहीं। चारुदत्त यह जानकर दुखी होता है कि उसने अनजान में पराई स्त्री से बात करके लज्जित करा कर अनुचित कार्य किया है। लेकिन, विदूषक तत्काल चारुदत्त की शंकाओं को शान्त करता है और बताता है कि वह नारी तो वसन्तसेना है जो कामदेवायतन उद्यान से ही उस पर अनुरक्त हो गई है। साथ ही, वह शकार की धमकी भी सुनाता है कि वसन्तसेना वापस लौटा दी जाय अन्यथा जीवन पर्यन्त शत्रुता का मूल्य चारुदत्त को चुकाना पड़ेगा। वसन्तसेना और चारुदत्त परस्पर शिष्टाचार प्रदर्शित करते हुए, एक-दूसरे से अपने अपने व्यवहार के लिए क्षमा माँगते हैं। वसन्तसेना यह सोच कर कि अभी उसका चारुदत्त के भवन में ठहर रहना उचित नहीं होगा, प्रस्ताव करती है कि वह अपने अलंकार उन्हीं के घर में रख छोड़, जाना चाहती है क्योंकि शकार

इत्यादि पापी उन आभूषणों के कारण ही उसका पीछा कर रहे हैं। थोड़ी हिचकिचाहट के बाद, चारुदत्त अलकारो को रख लेना स्वीकार कर लेता है और मैत्रेय को समझाता है कि ये आभूषण उनकी विशेष धरोहर होंगे तथा इसी लिए, विशेष रक्षणीय। वसन्तसेना मैत्रेय के साथ रात मे घर लौटना चाहती है, किन्तु वह चारुदत्त के ही उसके साथ जाने का औचित्य बताना है। तेल के अभाव मे दीपक जलाने की चर्चा बद हो जाती है और चारुदत्त निर्मल ज्योत्स्ना के रजत आलोक मे वसतसेना को उसके घर पहुँचा देता है। इसके बाद, चारुदत्त विदूषक के साथ अपने घर लौट आता है और उस अलकार-न्यास के सबध मे आदेश देता है कि रात मे उस स्वर्णाभरण की रक्षा मैत्रेय करेगा और दिन मे चेट वर्धमानक करेगा। यही प्रथम अक समाप्त हो जाता है। आभूषणों की धरोहर के कारण, यह अक 'अलकारन्यास' की अभिधा से आख्यायित है।

द्वितीय अक

दूसरे अक की अभिधा पड़ी है 'द्यूतकरसवाहक' अक अर्थात् 'जुआरी सवाहक' अक। इस अक मे एक नये प्रमुख पात्र सवाहक की अवतारणा कराई गई है जिसने नाटकीय वस्तु-सघर्ष के समाधान मे महत्व की भूमिका सम्पन्न की है।

आरभ मे वसन्तसेना चारुदत्त के विषय मे चिन्तामग्न दिखाई गई है। माता की यह आज्ञा कि वह स्नान करके देवताओ की पूजा सम्पन्न कर ले, वसन्तसेना अस्वीकार कर देती है। मदनिका उसकी प्रिय विश्वस्त दासी है। वह वसन्तसेना से उसके प्रेमास्पद व्यक्ति के विषय मे पूछ ताछ करती है जिसके क्रम मे यह प्रकट होता है कि वह व्यक्ति श्रेष्ठिचत्वर मे रहने वाला चारुदत्त है। यह जानते हुए भी कि वह अत्यत दरिद्र है, वसन्तसेना उसे प्यार करती है क्योंकि 'दरिद्र व्यक्ति से प्रेम करने वाली गणिका की दुनिया निन्दा नही करती'। वसन्तसेना स्वीकार करती है कि चारुदत्त से मिलने की योजना के सम्पादनार्थ ही, उसने अपने आभूषण उसके हाथों सौंप दिये हैं। यहीं अक का पहला भाग समाप्त होता है।

इसी समय रगमच पर सवाहक, द्यूताध्यक्ष माथुर तथा एक जुआरी का लगभग एक साथ प्रवेश होता है। उनके वार्तालाप से ज्ञात होता है कि सवाहक जूए मे माथुर से पराजित हो गया है और उसे माथुर को दस सुवर्ण देने हैं। माथुर इसी देय स्वर्ण राशि की माँग कर रहा है और सवाहक के तत्काल वह धन चुकाने की असमर्थता व्यक्त करने पर, उसे जमीन पर घसीटता है। सवाहक त्रस्त होकर रक्षा की पुकार मचाता है। इसी समय दर्दुरक नामक

एक दूसरा जुआरी वहाँ आ पहुँचता है। दर्दुरक संवाहक का पक्ष लेकर, माथुर से झगड पडता है. दोनों में मार पीट होती है, संवाहक भी बुरी तरह से आहत होता है और दर्दुरक की सहायता से भाग जाता है। वह वसन्तसेना के घर में प्रवेश करता है।

संवाहक ने वहाँ अपना परिचय दिया है। उससे ज्ञात होता है कि उसका जन्म-स्थान पाटलिपुत्र है, वह गृह-पति का पुत्र है, और 'संवाहक' की उसकी वृत्ति है जिससे वह जीविकोपार्जन करता रहा है। [संवाहक' का अर्थ है शरीर का सम्मर्दन करने वाला, देह दबा-दबा कर मालिश करने वाला।] उज्जयिनी की प्रशंसा सुनकर वह यहाँ आया और अत्यन्त उदार एवं परोपकार प्रिय चारुदत्त की सेवा में लग गया। किन्तु, दुर्दैव से उसका स्वामी दरिद्र हो गया, और तब वह जुआरी बन गया तथा जुआ खेल कर, जीविका अर्जन करने लगा। अभी वह जूए में जूए की मडली के अध्यक्ष माथुर से पराजित होकर, उसका दस सुवर्ण से ऋणी बन गया है और उसके भय से वसन्तसेना के घर में शरण ली है।

चारुदत्त के नाम पर संवाहक को वहाँ आशातीत सम्मान मिला है। वसन्तसेना अपना कङ्कण उतार कर चेटी को देती है और चेटी बाहर जाकर, वह आभूषण माथुर को, संवाहक की ओर से, दे देती है। इस पर वह सन्तुष्ट होकर, अपने साथी जुआरी के साथ चला जाता है। संवाहक वसन्तसेना से अपना नवीन संकल्प प्रकट करता है कि अब वह उस निन्द्य जीवन से छुट्टी लेकर बौद्ध सन्यासी बन जाएगा।

अङ्क के अन्तिम भाग में एक बौद्ध सन्यासी के वसन्तसेना के दुष्ट, मतवाले हाथी-द्वारा आक्रान्त होने तथा कर्णपूरक द्वारा बचाये जाने की सूचना दी गई है। कर्णपूरक वसन्तसेना का स्वस्थ शरीर वाला नौकर है। उसी ने बड़ी घबराहट में आकर, अपनी स्वामिनी को यह सूचना दी है और यह भी बताया है कि उसके अद्भुत साहस से मुग्ध होकर, किसी व्यक्ति ने उसे अपना उत्तरीय पुरस्कार रूप में प्रदान किया है। उत्तरीय पर चारुदत्त का नाम अंकित है जिससे उसके उदार स्वामी का विज्ञापन होता है। वसन्तसेना हर्षित होकर वह बस्त्र ले लेती और अपने ऊपर ओढ़ लेती है तथा कर्णपूरक को पुरस्कार-रूप में अपना एक आभूषण प्रदान करती है। अनन्तर, वसन्तसेना तथा चेटी दोनों द्वार पर के अलिन्द में चढ़ कर, घर जाते हुए चारुदत्त को देखने लगती हैं।

तृतीय अङ्क

तीसरा अंक 'सन्धिच्छेद' नाम से नियोजित है। इसमें चारुदत्त के घर में शर्विलक द्वारा सेंध लगाई जाने का वर्णन हुआ है।

चारुदत्त मैत्रेय के साथ रेभिल का गाना सुनने रात को घर से बाहर गया है। आधी रात बीतने के बाद वे दोनों घर लौटते हैं। चारुदत्त रेभिल के कुशल एवं मनोहर संगीत की भूरिश: प्रशंसा करता है। चेट वर्धमानक चारुदत्त के पैर धोता और मैत्रेय के पैर धुलाता है। तब, वह मैत्रेय को वसन्तसेना की धरोहर वाला आभूषण यह कहते हुए देता है कि "मैंने दिन-भर इस आभूषण की रक्षा की है, अब रात को आपकी बारी है।" अलंकार देकर, चेट सोने चला जाता है।

मैत्रेय यह प्रस्ताव करता है कि वह आभूषण चोरों के भय से अन्तःपुर में भिजवा दिया जाय, लेकिन चारुदत्त यह कहकर वह प्रस्ताव अस्वीकार कर देता है कि वेश्या की धरोहर को भीतर भेजना उचित नहीं होगा और मैत्रेय को ही उसकी रक्षा का भार सौंप देता है। अब दोनों सो जाते हैं।

इसी समय शर्विलक का प्रवेश हुआ है। वह ब्राह्मण है और वसन्तसेना की दासी मदनिका के प्रेम में पड़ा है तथा उसी के कारण, चारुदत्त के घर में बहुमूल्य धन की प्राप्ति की आशा में सेंध तोड़ने आया है। वह बाग में सेंध लगाकर, बहार-दीवारी में घुस आया है और अब अन्तःपुर में प्रवेश पाने के लिए सेंध लगाने की योजना बना रहा है। उसने लम्बे कथन में सेंध फोड़ने की चतुराई एवं सावधानी तथा विभिन्न प्रकार की सेंधों का वर्णन किया है। जनेऊ से नाप कर वह सेंध फोड़ता और भीतर प्रवेश करता है। वहाँ घुमने पर वह मृदंग, पणव, वीणा, पुस्तकें इत्यादि ही देखता है और सोचता है कि उसने गलत घर में सेंध लगाई है क्योंकि उस घर का स्वामी निर्धन प्रतीत होता है।

शर्विलक वहाँ से जाने का विचार करता है कि विदूषक स्वप्न देखता है कि घर में चोर ने सेंध लगाई है और इसलिए, नींद में ही वह चारुदत्त को वसन्तसेना वाला आभूषण देने लगता है। चारुदत्त गाढ़ी निद्रा में है तथा उसे इस बात का बिलकुल भान नहीं होता। शर्विलक मैत्रेय के हाथ से आभूषण ले लेता है और बड़ी सावधानी के साथ घर से बाहर निकल जाता है। प्रातःकाल सेंध का पता चलता है और यह ज्ञात होता है कि विदूषक ने स्वप्नभरी नींद में आभूषण चारुदत्त को नहीं, अपितु चोर को ही दे दिया। धरोहर के चोरी चले जाने से चारुदत्त को अत्यधिक सन्ताप होता है क्योंकि अलंकार की चोरी से उसका चरित्र कलंकित हो जाएगा। उसकी पत्नी धूता को जब इस चोरी का पता चलता है, तब वह भी इस विचार से दुःखी होती है कि लोग गरीबी के कारण 'आर्य चारुदत्त' पर ही आरोप लगायेंगे। अतएव

वह मैत्रेय को बुलाकर, अपने नैहर की बची एक बहुमूल्य रत्नावली उसे देती है और प्रकट न करते हुए भी यह संकेत देती है कि चारुदत्त उस रत्नावली का यथोचित उपयोग करे। मैत्रेय रत्नावली चारुदत्त को जाकर दे देता है। चारुदत्त पत्नी के उस उदारतापूर्ण त्याग से अभिभूत हो जाता है और अपनी गरीबी में भी वैसी पति निष्ठ पत्नी तथा मैत्रेय जैसा मित्र पाने पर अपने सौभाग्य की सराहना करता है। वह मैत्रेय को आदेश देता है कि वह वसन्तसेना के घर जाकर, वह रत्नावली उसे दे आए और यह कह दे कि चारुदत्त भ्रमवश उसके सुवर्णालंकार को जूए में हार गया है, अतएव वह यह रत्नावली बदले में स्वीकार करे।

चतुर्थ अंक

चौथे अङ्क में शर्विलक द्वारा चुराया गया स्वर्णाभरण वसन्तसेना को समर्पित हो गया है और चारुदत्त ने अपनी पत्नी की रत्नावली भी विदूषक-द्वारा वसन्तसेना को भिजवा दी है। मदनिका और शर्विलक वसन्तसेना की उदारता के फलस्वरूप पति पत्नी के रूप में संयुक्त हो गए हैं। इसी कारण इस अंक का नाम रखा है 'मदनिकाशर्विलक' अंक।

आरम्भ में वसन्तसेना मदनिका के साथ चारुदत्त की चित्राकृति स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखते दिखाई पड़ती है। इसी समय चेटी प्रवेश कर वसन्तसेना को उसकी माता का आदेश सुनाती है कि वह द्वार पर खड़ी बैलगाड़ी में घूंघट करके चढ़ जाय। जब वसन्तसेना सुनती है कि वह बैलगाड़ी चारुदत्त की नहीं, संस्थानक (शकार) की है, तब वह क्रुद्ध हो जाती है और चेटी से कहती है कि वह जाकर माता से कह दे कि 'यदि वे मुझे जीवित देखना चाहती हैं, तो फिर ऐसी आज्ञा न दिया करें।' चेटी चली जाती है।

शर्विलक सूर्योदय होने पर रात में चुराये गए आभूषण लेकर, वसन्तसेना के घर में प्रवेश करता है। तभी उसकी प्रेयसी मदनिका भी वहाँ चली आती है। शर्विलक सशंक भाव बनाये हुए है। वह मदनिका से बताता है कि उसने रात में साहस कर, एक अलंकार चुराया है और चाहता है कि वह अलंकार वसन्तसेना को देकर मदनिका दासीत्व से मुक्त हो जाय। जब मदनिका वह आभूषण देखती है तब उसे सन्देह होता है और वह शर्विलक से पूछती है कि उसने यह आभूषण कहाँ पाया? शर्विलक बताता है कि लोगों के कथनानुसार यह आभूषण श्रेष्ठिचत्वर में रहने वाले आर्य चारुदत्त का है। वसन्तसेना छिपकर, खिड़की से यह सब कुछ देख-सुन रही थी। यह जानकर कि शर्विलक ने चारुदत्त के घर में चोरी की है, वसन्तसेना और मदनिका दोनों मूर्च्छित सी हो जाती हैं, इस आशंका से कि शर्विलक ने वहाँ कोई

हिंसापूर्ण कार्य तो नही किया। शर्विलक आश्वासन देता है कि उसने कोई ऐसा कार्य नही किया है और आवेश मे एक तनिक लम्बी वक्तृता झाड देता है जिसमे यह सफाई देते हुए कि उसने वह निन्द्य कर्म मदनिका की मुक्ति के लिए ही किया है, स्त्रियो तथा वेश्याओ के प्रति तीव्र टिप्पणियाँ कर बैठता है। मदनिका उसे शान्त करती है और चुपके से सही स्थिति का परिज्ञान शर्विलक को कराती है। पहले वह प्रस्ताव करती है कि शर्विलक वह आभूषण चारुदत्त को वापस कर दे, लेकिन इससे सहमत नही होने पर, मदनिका यह विकल्प उपस्थित करती है कि तब वह आर्य चारुदत्त का कुटुम्बी बन कर, उस आभूषण का आर्या वसन्तसेना के पास ही ले जाए। वह स्वय भीतर जाकर वसन्तसेना को सूचना देती है और शर्विलक उदास भाव से प्रवेश कर, यह कहते हुए वह आभूषण देकर चलने लगता है कि सार्थवाह चारुदत्त ने वह अलकार उसे इस लिए वापस लौटाया है कि जीर्णशीर्ण घर होने के कारण उस स्वर्णाभरण की रक्षा करना बहुत कठिन बन गया है।

लेकिन, वसन्तसेना ने छिपकर, मदनिका और शर्विलक का समस्त प्रपच देखा है। इस लिए, अतीव उदारता-पूर्ण भाव से वह शर्विलक से अनुरोध करती है कि वह मदनिका को पत्नी-भाव से ग्रहण करे क्योंकि आर्य चारुदत्त का निर्देश है कि जो कोई उस आभूषण को लाकर दे, उसे मदनिका समर्पित कर दी जाय। शर्विलक समझ जाता है कि वसन्तसेना ने सारी बातें जान ली हैं और कृतज्ञता के भाव से भरित होकर, आर्य चारुदत्त के गुणों का कथन करता है। वसन्तसेना के आदेश से गाडी तैयार की जाती है और मदनिका तथा शर्विलक बडे स्नेह-पूर्ण वातावरण मे गाडी पर चढने के लिए तैयार होते हैं। किन्तु, इसी समय नेपथ्य से यह आवाज आती है कि किसी सिद्ध पुरुष की इस भविष्य-वाणी से त्रस्त होकर कि गोप-पुत्र आर्यक राजा बनेगा, राजा पालक ने आर्यक को बन्दीगृह मे डाल दिया है। शर्विलक आर्यक का घनिष्ठ मित्र है और वह गाडीवान को यह निर्देश कर कि वह उसकी वल्लभा को रेभिल सार्थवाह के घर पहुँचा दे, प्रस्थान कर जाता है और जाते समय यह घोषणा करता है कि वह अपने प्रियमित्र के उद्धार के लिए राजा के परिवार के सदस्यो, धूर्तों, वीरों, राज-कर्मचारियो तथा पालक द्वारा अपमानित व्यक्तियो को भडकाएगा।

प्रस्तुत अक का प्रथम भाग यहीं समाप्त और दूसरा भाग आरम्भ होता है। विदूषक मैत्रेय धूता की बहुमूल्य रत्नावली लेकर, चारुदत्त के आदेश से वसन्तसेना के घर आया है। चेटी वसन्तसेना से अनुमति लेकर, विदूषक को महल के अन्तरग कक्ष मे ले आती है। मैत्रेय को वसन्तसेना तक पहुँचने के

लिए उस महल के आठ भव्य एवं ऐश्वर्य पूर्ण प्रकोष्ठ पार करने पड़े हैं और इन प्रकोष्ठों की सजावट से प्रभावित होकर, वह कह उठा है—"अब मुझे विश्वास है कि मैंने एक ही जगह स्वर्ग, मर्त्य तथा पाताल तीनों लोकों को देख लिया है। मेरे पास इसकी प्रशंसा करने योग्य शब्द कहाँ हैं ? क्या यह गणिका का घर है अथवा कुबेर का भवन ही उतर आया है।" वसंतसेना स्वयं नाना कुसुमों से मंडित उद्यान में बैठी हुई है। वह विदूषक का स्नेह पूर्ण स्वागत करती है। सामान्य कुशल प्रश्न के बाद विदूषक चारुदत्त का नम्र निवेदन सुनाता है—"अपना समझ कर, मैं उस सोने के गहने को जुए में हार गया हूँ; जुए का अध्यक्ष वह राजदूत न मालूम कहाँ चला गया है, उसके बदले में वसंतसेना यह रत्नावली स्वीकार करे।" वसन्तसेना को सचाई मालूम ही है। हँसते हुए सहर्ष वह रत्नावली ग्रहण कर लेती है और विदूषक से कहती है कि वह उसकी ओर से उन 'जुआरी' से कह देगा कि वह सूर्यास्त के बाद उनसे मिलने आएगी। मैत्रेय वसंतसेना की स्वार्थपूर्ण लोलुपता की मन ही मन निन्दा करता हुआ, प्रस्थान कर जाता है। उसी समय आकाश मेघाच्छन्न हो गया है, लेकिन वसंतसेना प्रिय मिलन के संकल्प में दृढ़ है और चेटी को वह हार देकर, उसे शीघ्र लौटने का आदेश देती है क्योंकि वह उस विषम परिस्थिति में भी अभिसार अवश्य करेगी।

पञ्चम अङ्क

इस अङ्क में वसंतसेना ने चारुदत्त के घर अभिसार सम्पन्न किया है। मेघाच्छन्न आकाश से जलधारा के गिरने तथा बिजली चमकने की प्रतिकूल भौतिक परिस्थितियों के कारण इस अंक की 'दुर्दिन' आख्या पड़ी है।

अङ्कारम्भ में चारुदत्त उस सूर्यास्त के विकट मौसम पर चिन्ता करते हुए प्रदर्शित किया गया है और सोचता है कि वसन्तसेना के पास मैत्रेय को गए बहुत विलम्ब हुआ, किन्तु वह लौटा नहीं। तभी मैत्रेय प्रवेश करता है और वसन्तसेना-द्वारा अपने प्रति दिखाए गए सत्कार के अभाव की आलोचना करता है। वसन्तसेना ने मैत्रेय से यह भी नहीं कहा कि 'थोड़ा विश्राम कर लो, पानी पी लो इत्यादि।' चारुदत्त से मिलने पर मैत्रेय वसन्तसेना के लोलुप आचरण की तथा सामान्य वेश्याओं की स्वार्थपूर्ण प्रीति की तीव्र टीका करता है और उससे अनुरोध करता है कि वह गणिका स्नेह से विमुख हो जाय। वह यह सूचना भी देता है कि वसन्तसेना सूर्यास्त के बाद उससे मिलने आएगी।

इसी बीच वसन्तसेना ने अपने दास कुम्भीलक को आदेश दिया है कि वह जाकर आर्य चारुदत्त से उसके आगमन की सूचना दे दे। कुम्भीलक चारुदत्त के घर आ कर, वसन्तसेना के आगमन की बात बताता है और चारुदत्त

प्रसन्न होकर, पारितोषिक रूप मे उसे अपना उत्तरीय देता है। [यह स्मरणीय है कि चारुदत्त ने अपना जातीकुसुम-वासित उत्तरीय वसंतसेना के दूसरे नौकर कर्णपूरक को पहले दे दिया था और वह उत्तरीय उससे वसंतसेना ने स्वयं ले लिया था। अतएव, यह दूसरा उत्तरीय है।] चेट वसंतसेना से कहने चला जाता है।

इस स्थल पर नाटककार ने शुक्लाभिसारिका वसंतसेना के अभिसार का वर्णन किया है। वसन्तसेना के संग मे छत्रधारिणी दासी तथा विट भी हैं। इस प्रसंग मे विट और वसन्तसेना का वार्तालाप नियोजित है जिसमे वर्षा, बादल, बिजली, मयूर इत्यादि का सुन्दर चित्रण हुआ है यद्यपि चित्रण की ध्वनि मूलत उद्दीपनात्मक ही है जो प्रसंग सिद्ध है। चारुदत्त के घर पहुँचने पर विट वापस लौट गया है। लौटने के पूर्व उसने वसन्तसेना को तनिक उपदेश भी दिया है कि वह चारुदत्त के पास जाकर कैसा आचरण करेगी।

वसन्तसेना विदूषक द्वारा आमंत्रित होकर, घर के भीतर प्रवेश करती है और बड़े विनोदपूर्ण ढंग से आनन्द भरित मनोमुद्रा मे वे दोनो मिलते हैं। वसन्तसेना के वस्त्र वर्षा से भीग गये हैं, अतएव चारुदत्त की आज्ञा से उसके लिए दूसरी साड़ी और ओढ़नी लाई जाती है। चेटी कहती है कि चारुदत्त द्वारा भिजवाई गई रत्नावली का मूल्य जानने के लिए ही, वसन्तसेना यहाँ आई है क्योंकि रत्नावली को अपना समझ कर वह उसे जूए मे हार गई और जूए का समाध्यक्ष राजदूत कहीं चला गया। यह कह कर, चेटी सुवर्णाभूषण विदूषक को प्रदान करती है और अनुरोध करती है कि तब तक रत्नावली के बदले मे उसे रखा जाय।

अब वसंतसेना का विनोद विज्ञात हो जाता है और चारुदत्त तथा विदूषक जान जाते हैं कि यह आभूषण वही है जिसे वसन्तसेना ने धरोहर रूप मे चारुदत्त के यहाँ रखा था और जो चोर द्वारा सेंध लगाकर, चुरा लिया गया था। समस्त वातावरण हर्ष एवं आमोद से पूर्ण हो जाता है और चारुदत्ततनिक लज्जा के साथ वसन्तसेना से इस बात की सफाई देता है कि उसने उस अलंकार के बदले वह रत्नावली क्यो भेजी। विदूषक प्रेमी प्रेमिका से थोड़ा विनोद करता है तथा वर्षा को देखते हुए संकेत करता है कि उन्हें घर के भीतर चलना चाहिए। चारुदत्त उस मौसम की उद्दीपकता का कथन करता है जिस पर वसन्तसेना शृंगार-भाव से उसका आलिंगन करती है। तब, प्रियतमा वसन्तसेना के दुर्लभ आलिंगन के लिए उस दुर्दिन के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए, चारुदत्त ने भीतर चलने का प्रस्ताव किया है और सभी भीतर चले गए हैं जबकि बाहर धारासार वृष्टि जारी है।

षष्ठ अंक

यह अंक कथावस्तु में जटिलताएँ उत्पन्न करने वाला अंक है। वसन्तसेना पुष्पकरण्डक उद्यान में चारुदत्त से मिलने जाते समय प्रमाद से राजश्याल संस्थानक की गाड़ी पर चढ़ जाती है और बन्दीगृह तोड़कर पलायित होने वाला आर्यक संयोग से उस गाड़ी पर चढ़ जाता है जो आर्य चारुदत्त की है और पुष्पकरण्डक उद्यान में उसके पास जा रही है जिस पर वसन्तसेना जाने वाली है। इस प्रकार, गाड़ियों की अदला बदली घटित हो गई है जिससे प्रस्तुत अंक 'प्रवहणविपर्यय' नाम से आख्यापित हुआ है।

रात चारुदत्त के साथ व्यतीत करने के बाद, प्रातःकाल वसन्तसेना चेटी से जगाई जाती है। चेटी उसे सूचना देती है कि आर्य चारुदत्त पुष्पकरण्डक नामक जीर्णोद्यान में गए हैं और उसे भी वहीं बुला गए हैं जिसके लिए बैलगाड़ी की व्यवस्था कर दी गई है। चेटी को वसन्तसेना रत्नावली प्रदान करती है और आदेश देती है कि वह उसे 'मेरी बहन आर्या धूता" को दे आए। धूता वह रत्नावली लेने से इनकार कर देती है, यह कह कर कि आर्यपुत्र ने प्रसन्न होकर रत्नावली उसे दी है, अतएव उसका उसे वापस लेना उचित नहीं है क्योंकि उसके एकमात्र आभूषण 'आर्यपुत्र' ही हैं। इसी समय रदनिका रोहसेन को लेकर प्रवेश करती है और उसे मिट्टी की गाड़ी से खेलने के हेतु फुसलाती है। किन्तु रोहसेन मचलते स्वरों में कहता है कि वह मिट्टी की गाड़ी से नहीं खेलेगा, अपितु उसे सोने की गाड़ी चाहिए। चेटी बालक को लेकर वसन्तसेना के पास जाती है जो यह जानने पर कि वह चारुदत्त का पुत्र है, प्रसन्नतापूर्वक उसे गोद में बैठा लेती है और पूछती है कि वह बालक रोता क्यों है? रदनिका बताती है कि अभी वह पड़ोसी गृहपति के लड़के की सोने की गाड़ी से खेल चुका है, उस सोने की गाड़ी को वह लड़का लेकर चला गया तब रदनिका ने उसकी जगह मिट्टी की गाड़ी बना दी है, लेकिन वह हठ कर रहा है कि वह सोने की गाड़ी ही लेगा। वसन्तसेना भोले बालक के हठ से द्रवित हो जाती है, अपने सोने के आभूषण उतार कर, मिट्टी की गाड़ी में रख देती है और प्यार-भरे शब्दों में बालक से कहती है कि वह उन आभूषणों से सोने की गाड़ी बनवा ले। बालक को लेकर रदनिका चली जाती है।

तब तक, पूर्वयोजना के अनुसार, चेट वर्धमानक बैलगाड़ी लेकर, पार्श्व-द्वार पर उपस्थित हो गया है, किन्तु गाड़ी हाँकने वाला कपड़ा लाना भूल गया है, जिसे लाने वह गाड़ी लेकर चला जाता है।[1] वसन्तसेना को भी शृंगार-

[1] गाड़ी लेकर चले जाना इसलिए आवश्यक है कि उसके बैल चपल हैं और वहाँ स्थिर नहीं रहते।

प्रसाधनों से सज्जित होने के लिए थोड़ा समय मिल गया है। लेकिन, इसी समय चेट स्थावरक (शकार का दास) अपनी बैलगाड़ी लेकर पहुँचता है और विज्ञापित करता है कि संस्थानक (शकार) ने गाड़ी लेकर, पुष्पकरंडक नामक पुराने उपवन में आने के लिए उसे आज्ञा दी है। अन्य गाड़ियों से मार्ग अवरुद्ध देखकर, स्थावरक अपनी गाड़ी चारुदत्त के उद्यान के द्वार पर रोक देता है और कहीं चला जाता है। इस बीच, वसन्तसेना ने तैयारी पूरी कर ली है और वह घर से बाहर निकल कर, भूल से स्थावरक की गाड़ी पर ही चढ़ जाती है। उसकी दाहिनी आँख फड़कती है, किन्तु उस अपशकुन की चिन्ता वह यह कह कर निरस्त कर लेती है कि आर्य चारुदत्त के दर्शन से सभी कुछ मंगलमय बन जायगा। स्थावरक आता है, गाड़ी में कुछ भारीपन मालूम करता है, किन्तु उसे अपनी थकावट से परिणमित जान कर, गाड़ी आगे बढ़ाता चल पड़ता है।

इसी समय, गोप पुत्र आर्यक राजा पालक के बंदीगृह से अपने बंधन काट कर पलायित वहाँ पहुँचता है और कहता है कि उसके प्रिय मित्र शर्विलक ने उसे मुक्ति दिलाई है। वह बचाव के लिए चारुदत्त के जीर्णगृह में पार्श्व द्वार से घुस जाता है। तभी वर्धमानक बैलगाड़ी लेकर वहाँ पहुँचता है और आवाज देता है कि रदनिका आर्या वसंतसेना से कह दे कि वह निकल कर पुष्पकरंडक जीर्णोद्यान में चलने के हेतु गाड़ी में सवार हो जाए। आर्यक समझता है कि वह गणिका की गाड़ी है और बाहर जाएगी। यह सोचकर, वह उस गाड़ी में चढ़ जाता है। उसके पाँवों में लगी जंजीरें बजती हैं तो वर्धमानक समझता है कि वह वसन्तसेना के नूपुरों की झनकार है। बैलों को आगे बढ़ाने, वह गाड़ी में आर्यक को बिठाये चल पड़ता है।

आर्यक की खोज में पालक के दो सेनापति चंदनक और वीरक जो नगर-रक्षक भी हैं, नगर के मार्गों पर निकल पड़े हैं। उनकी बात चीत से पता चलता है कि आर्यक थोड़ी ही देर पहले, लगभग सूर्योदय के समय, किसी व्यक्ति के द्वारा बेड़ियाँ काट कर, बन्दीगृह से भगाया गया है। वे उसे पकड़ने के लिए इसलिए सचेष्ट हैं कि कहीं क्षत्रिय-नरेश पालक की राज्य लक्ष्मी गोप पुत्र आर्यक के हाथों न चली जाय। वर्धमानक की गाड़ी आती देख कर, वे उसे रोकते हैं और पूछते हैं, गाड़ी किसकी है और कहाँ जाएगी? वर्धमानक उत्तर देता है कि वह चारुदत्त की गाड़ी है और वसन्तसेना को लेकर पुष्पकरंडक जीर्णोद्यान में चारुदत्त के पास जा रही है। वीरक गाड़ी का निरीक्षण करना चाहता है, किन्तु चन्दनक इस विचार का प्रतिवाद करता है, यह कहते हुए कि इस नगर में दो ही अच्छे व्यक्ति हैं, एक आर्या वसन्तसेना और दूसरे धर्म निधि चारुदत्त।

लेकिन, वीरक के आग्रह पर चन्दनक गाड़ी का निरीक्षण करना स्वीकार कर लेता है, गाड़ी में चढ़कर वह देखता है कि वहाँ वसन्तसेना नहीं, आर्यक है। आर्यक भयभीत होकर कहता है 'मैं शरणागत हूँ।' चन्दनक जो उसका पुराना मित्र है, संस्कृत में उत्तर देता है, 'शरणागत को अभय दान देता हूँ।' वह सोच विचार कर, निर्णय करता है कि आर्यक की रक्षा अवश्य होनी चाहिए। वह तनिक भयरहित गाड़ी से नीचे उतरता है और वीरक को बताता है कि गाड़ी में बैठी आर्या वसन्तसेना आर्य चारुदत्त से मिलने जा रही है और उसने इस बात का प्रतिवाद किया है कि उसे इस प्रकार सड़क पर रोक लिया गया है।

लेकिन, चन्दनक की आकृति घबराई हुई है और उसने बोलने में एक अशुद्धि कर दी है—पहले उसके मुंह से 'आर्य' निकल गया जिसे संभाल कर उसने झटिति 'आर्या' शब्द का प्रयोग किया। इन सब कारणों से, वीरक को सन्देह होता है और वह गाड़ी को स्वयं देखने की चेष्टा करता है। चन्दनक अपने अशुद्ध प्रयोग की सफाई यह कह कर देता है कि वह दक्षिण का निवासी है और दाक्षिणात्य अस्पष्ट तथा अशुद्ध प्रयोग करते ही हैं। किन्तु, वीरक गाड़ी देखने के हठ पर आरूढ़ हो जाता है जिस पर वे दोनों झगड़ पड़ते हैं। चन्दनक वीरक को धरती पर पटकता और ठोकरें मारता है। वीरक यह धमकी देते चला जाता है कि वह उसे न्यायालय में दण्ड दिलाएगा। तब चन्दनक ने आर्यक को अपनी तलवार दे दी है और उससे अनुरोध किया है कि वह उसे विश्वस्त मन से स्मरण रखे। आर्यक ने चन्दनक के प्रति कृतज्ञता प्रकट की है और आश्वासन दिया है कि यदि सिद्धों का कथन सत्य प्रमाणित हुआ, तो वह उसे अवश्य याद रखेगा। चेट गाड़ी लेकर आगे बढ़ गया है। तब, चन्दनक भी यह कहते चला जाता है—"मेरा प्रिय मित्र शर्विलक आर्यक के पीछे ही गया है। मैंने राजा के विश्वस्त प्रधान सेनापति वीरक को भी क्रुद्ध कर दिया है। अब मैं पुत्र, भाई तथा समस्त परिवार के साथ आर्यक के पास ही जाता हूँ।'

सप्तम अङ्क

सातवें अंक में आर्यक पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में चारुदत्त के पास पहुँच गया है। अतएव, इसकी संज्ञा पड़ी है 'आर्यकापहरण'।

चारुदत्त और विदूषक जीर्णोद्यान की शोभा का अवलोकन कर रहे हैं। वसन्तसेना के आगमन में विलम्ब से चारुदत्त तनिक चिन्तित सा होता है। किन्तु तत्काल वर्धमानक देखो को आगे बढ़ाता गाड़ी लिये पहुँच जाता है। चारुदत्त और विदूषक समझते हैं कि वसन्तसेना आ गई। चारुदत्त के अनुरोध पर वर्धा-

सेना को उतारने के लिए विदूषक पर्दा हटा कर देखना है तो कह उठता है—"यहाँ तो वसंतसेना नहीं, वसंतसेन है !" चारुदत्त इस कथन को परिहास समझता है और स्वयं वसंतसेना को उतारने के लिए गाडी मे देखता है तो आर्यक दिखाई पडता है। आर्यक तथा चारुदत्त दोनो एक दूसरे से अभी तक अपरिचित थे यद्यपि दोनो ने एक दूसरे का संवाद सुना था। आर्यक कहता है—"मैं शरणागत हूँ, मैं गोप पुत्र आर्यक हूँ।" चारुदत्त पूछता है—"क्या वही जिसे राजा पालक ने घर से पकडवा कर बन्दी गृह मे डाल दिया था ?" आर्यक को वह आश्वासन देता है कि वह शरणागत की रक्षा अवश्य करेगा। उसके आदेश से वर्धमानक आर्यक के पैरो की लौह शृंखलाएँ काटता है। आर्यक उसकी गाडी पर कौतुक से चढ जाने के लिए चारुदत्त से क्षमा माँगता है। चारुदत्त, किन्तु, उसे अपना शृंगार समझता है—"अलकृतोऽस्मि स्वयंग्राह-प्रणयेन भवता।" और सलाह देता है कि आर्यक गाडी पर चढ कर ही, अपने परिवार के पास चला जाय क्योंकि उस मार्ग पर राजपुरुष प्राय भ्रमण किया करते हैं। चारुदत्त कहता है—"समय मिले तो मेरी भी याद कीजिएगा।" आर्यक वैसा करने का आश्वासन देता है और यह कामना व्यक्त करता है कि वह उसके दर्शन पुनः प्राप्त कर सके। आर्यक तब प्रस्थान करता है। लेकिन वसंतसेना को नहीं पाकर चारुदत्त दुःखी एवं चिन्तित है। उसकी बाईं आँख फडकने लगी है जिससे अ-कारण ही उसका हृदय पीडित हो रहा है। तभी, उसे मुण्डित बौद्ध श्रमणक का दर्शन हो जाता है जिसे वह अमंगल-मूलक समझता है। सभी आगे पीछे निकल जाते हैं।

अष्टम अंक

छठे अंक मे घटित प्रवहण-विपर्यय के परिणामो मे से एक सातवें अंक मे घटित हुआ अभी देखा गया है और आठवें अंक मे दूसरा परिणाम चित्रित हुआ है। वसंतसेना संस्थानक की गाडी मे बैठकर, पुष्पकरडक उद्यान मे शकार के पास पहुँचती है और उसकी वासनाओ की तुष्टि करने से उसके इनकार करने पर, शकार-द्वारा उसका गला घोंट दिया जाता है। इस महत्त्वपूर्ण घटना के कारण, प्रस्तुत अंक 'वसन्तसेनामोटन' अंक कहलाया है।

आरंभ मे, एक बौद्ध श्रमण तालाब मे अपने वसन धोता हुआ दिखाई पडता है। शकार विट के साथ तलवार लिए प्रवेश करता है और तालाब का पानी गन्दा करने का अपराध लगा कर, उसे मारता पीटता है। बातचीत मे पता चलता है कि वह श्रमण नया ही भिक्षु बना है। उसके चले जाने पर शकार विट के साथ प्रस्तर खंड पर बैठता है और वसंतसेना-विषयिणी अपनी आसक्ति की चर्चा चलाता है। चेट स्थावरक गाडी लेकर अभी तक क्यों नहीं

पहुंचा, इस विषय पर दोनो तर्क वितर्क करते हैं कि इसी बीच स्थावरक आ जाता है। शकार गाडी मे चढ कर देखता है तो चिल्ला उठता है कि गाडी मे कोई राक्षसी अथवा चोर बैठा है। विट तब गाडी मे देखता और वसन्तसेना को पहचान कर, दुःख के साथ कहता है कि धन के लोभ मे पड कर तथा माता से अनुप्रेरित हो उस क्रूर शकार के पास आकर उसने शायद उचित नही किया है। वसन्तसेना उसके अनुमान का प्रतिवाद करती हुई, सच्ची बात बताती है कि गाडियो की अदला बदली से वह वहाँ पहुँच गई है, और विट से रक्षा की भीख माँगती है। विट थोडा देर तक वसन्तसेना को छिपाने की चेष्टा करता है, किन्तु शकार के आग्रह पर वह सचाई तनिक विकृत कर, यो विज्ञापित करता है—"यह वसन्तसेना आपसे रमण करने गुरुरीति से आई हुई है।" वसन्तसेना "शान्तं पापं शान्तं पापम्" कहती हुई इस कथन का प्रतिवाद करती है। शकार कामान्ध है। वह मूर्खता-पूर्ण लम्पट शब्दावली मे वसन्तसेना से काम भोग की प्रार्थना करता है। वसन्तसेना कुपित होकर उसके सिर पर लात से ठोकर मारती है। स्थावरक अतीव क्रुद्ध हो जाता है और जब उसे ज्ञात होता है कि वह चारुदत्त से रमण करने जा रही थी तब उसे अपनी गाडी पर से तत्काल उतार देता है।

अब शकार, विट तथा चेट, दोनों से पृथक्-पृ प्रार्थनाएँ करता है कि वे वसन्तसेना को मार डालें। लेकिन, वे दोनो वह जघन्य कृत्य करने से इनकार कर देते हैं। चेट भाग जाता है और विट से शकार स्वयं चले जाने का अनुरोध करता है, यह कहते हुए कि उसकी उपस्थिति मे वसन्तसेना उसकी वासनाओं की तुष्टि करने मे लजाती है। वसन्तसेना के भयभीत हो जाने पर, विट उसे एक धरोहर के रूप मे शकार के हाथो सौंपता है और निर्जन स्थान मे जाकर छिप जाता है। शकार को सन्देह है कि शायद वह बुड्ढा 'धूर्त ब्राह्मण' (विट) उसका कुकृत्य देखने के लिए कही छिपा हो। इसलिए, वह फूल चुन चुन कर, अपने अंगो का शृंगार करता है और कामुकता पूर्ण शब्दों से वसन्तसेना को फुसलाता देता है। विट अनुमान करता है कि शकार का मन्तव्य कामुक ही है हिंसात्मक नही, और तब वह चला जाता है।

शकार वसन्तसेना को रमणार्थ तैयार करने के लिए प्रलोभन तथा धमकियाँ देता है। जब वह किसी प्रकार उसका गर्हित अनुरोध स्वीकार नहीं करती, तब वह अतीव निर्ममता पूर्वक उसका गला घोंट देता है जिससे वह मूर्छित एवं निश्चेष्ट हो, धरती पर गिर पडती है। कुछ समय के बाद, विट चेट का साथ लेकर जब वहाँ आ रहा है तब रास्ते मे देखता है कि एक पेड गिर पडा है और उसके नीचे एक स्त्री कुचली हुई पडी है। वसन्त को

भावना से व्याकुल होकर, वह आगे बढ़ता है और देखता है कि वसंतसेना मरी पड़ी है। शकार उस जगह से थोड़ा हट गया है। विट चेट के साथ शकार के पास जाकर कहता है 'मेरी धरोहर लाओ।' कुछ बहानाबाजी करने के बाद, शकार स्वीकार करता है कि उसने वसंतसेना को मार डाला है और बड़ा वीरता-पूर्ण कार्य सम्पन्न किया है। वह विट को ले जाकर, मरी पड़ी वसंतसेना को दिखाता है। विट वहाँ शोक विह्वल हो उठता है और शकार को उस उज्जयिनी लक्ष्मी की हत्या करने के लिए भूरिश धिक्कारता है। शकार स्वर्ण का प्रलोभन देकर, विट से अनुरोध करता है कि वह वसंतसेना की हत्या का आरोप किसी अन्य साधारण व्यक्ति पर लगा दे। जब विट ऐसा करने से इनकार करता है, तब शकार उस हत्या का आरोप उसी पर मढ़ता है और धमकी देता है कि उसे राजा पालक के सामने उस अपराध का उत्तर देना पड़ेगा। विट उसे नीच कहता हुआ तथा तलवार खींच कर डरवाता हुआ, चला गया है। शकार चेट को भी प्रलोभन देता है और चेट भी उसके पाप कर्म का अनुमोदन नहीं करता। तब, शकार उसे आदेश देता है कि वह बैलों को लेकर उसके महल की नव निर्मित सुन्दर वीथिका में ठहरे जब तक वह वहाँ न आ जाय। चेट चला जाता है।

अब शकार अकेला है। उस हत्या के रहस्य को छिपाने के निमित्त उसने सङ्कल्प किया है कि वह चेट को उस 'अग्रप्रतोलिका' में पैरों में जंजीरें डाल कर रख देगा और न्यायालय में जाकर यह अभियोग लिखा देगा कि धन के लोभ से आर्य चारुदत्त ने पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में वसंतसेना को ले जाकर, उसकी हत्या कर दी है। उसी रास्ते वह परिचित बौद्ध भिक्षु आता दिखाई पड़ा है जिससे बचकर, शकार निकल जाता है।

भिक्षु वही पुराना संवाहक है। वह उस स्थल पर पहुँचता है जहाँ वसन्तसेना शकार द्वारा मोटन के बाद पेड़ के पत्तों में ढक दी गई थी। पत्तों में से साँस निकल रही है और होश में आकर वसन्तसेना हाथ हिलाकर, पत्तों का सङ्केत करती है। संवाहक पत्ते हटाकर देखता और अपनी पहले की उपकारिणी वसंतसेना को पहचान जाता है। बावड़ी दूर होने से, वह अपने चीवर निचोड़ कर, पानी वसन्तसेना के मुख में डालता है और वह संज्ञा युक्त होकर उठ बैठती है। तब, भिक्षु अपना परिचय देता है कि कैसे वसन्तसेना ने उसे दस सुवर्ण देकर, जुआरियों से परित्राण दिलाया था। वसन्तसेना पास की लता पकड़ कर उठती है और संवाहक श्रमण उसे उस विहार में रहने वाली अपनी 'धर्मभगिनी' एक बुद्धोपासिका के घर पहुँचा देता है।

नवम अंक

नवम अंक में वसन्तसेना की हत्या के आरोप में न्यायालय में चारुदत्त पर संस्थानक द्वारा अभियोग लगाये जाने का वर्णन हुआ है। अतएव, इस अंक की अभिधा 'व्यवहार' पड़ी है। 'व्यवहार' का अर्थ है 'अभियोग' या 'मुकदमा'।

पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में वसन्तसेना की हत्या (कण्ठनिपीडन-मात्र जिससे शकार समझ बैठा है कि वसन्तसेना मर गई) करने के बाद, संस्थानक ने यह योजना बना ली थी कि वह उस हत्या का आरोप चारुदत्त पर लगायेगा और न्यायालय में अभियोग समर्पित करेगा। प्रस्तुत अंक के आरंभ में न्यायालय का कर्मचारी शोधनक न्यायमण्डप की सफाई करता दिखाई पड़ता है जब कि शकार अपनी कामुक लम्पटता की विडम्बना करते हुए प्रवेश करता है और चारुदत्त के विरुद्ध अभियोग लिखाने की तैयारी का कथन करता है। तभी श्रेष्ठि-कायस्थ तथा न्यायाधीश मंडप में आते हैं और न्यायाधीश शोधनक को आदेश देता है कि वह बाहर जाकर, मालूम करे कि आज के विचार-प्रार्थी कौन कौन हैं। शोधनक के इस प्रश्न की घोषणा करने पर, शकार सबसे पहले आगे बढ़ता है। शोधनक घबराता है और न्यायाधीश से इसकी सूचना देता है जिस पर न्यायाधीश भी शकार के अभियोग की भीषणता का अनुमान कर विचलित हो जाता है। वह शोधनक से कहता है कि वह शकार से जाकर कह दे कि उसके अभियोग पर आज विचार नहीं होगा। किन्तु, यह विज्ञापित किये जाने पर जब शकार क्रुद्ध हो जाता और न्यायाधीश को राजा से दंडित कराने की धमकी देता है, तब न्यायाधीश उसके अभियोग पर विचार करना स्वीकार कर लेता है।

शकार मंडप में प्रवेश करता है और न्यायाधीश के समुख निवेदन करता है कि उसने पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में एक स्त्री का मृतक शरीर देखा है। न्यायाधीश के पूछने पर वह बताता है कि वह शरीर उज्जयिनी की शृंगार-भूत, अनेक आभूषणों को धारण करने वाली वसन्तसेना का है जिसे किसी ने उसके सुवर्णाभरणों के लोभ से मार डाला है। न्यायाधीश के यह पूछने पर कि उसे कैसे जान पड़ा कि धन के लिए उसकी हत्या की गई है, शकार उत्तर देता है 'आभूषण-विहीन होने से, गले में हारसूत्रावली नहीं होने से और प्रत्येक स्थल का गहना उतरा होने से।' श्रेष्ठि कायस्थ यह निर्देश करते हैं कि इस विवाद का निर्णय करने के हेतु वसन्तसेना की माता का बुलाया जाना आवश्यक है। तब वसन्तसेना की माता न्यायाधीश के आदेश से मंडप में बुलाई गई है और बताया है कि वसन्तसेना श्रेष्ठिचत्वर में रहने वाले

आर्य चारुदत्त के पास अपने यौवन का सुख प्राप्त करने गई है। इस कथन से शकार को अपने अभियोग के समर्थन में एक प्रमाण मिल गया है, और अब चारुदत्त न्यायालय में बुलाया गया है।

चारुदत्त के प्रवेश करने पर न्यायाधीश उसे आदर पूर्वक आसन दिलाता है और मन में सोचता है कि ऐसे भव्य स्वरूप वाला व्यक्ति ऐसे जघन्य कृत्य का अपराधी नहीं हो सकता। शकार चारुदत्त के प्रति प्रदर्शित उस सम्मान-पूर्ण व्यवहार के लिए क्रुद्ध होता है। तब न्यायाधीश चारुदत्त से पूछता है कि क्या वसंतसेना उनकी प्रेमिका है? चारुदत्त लज्जित होता हुआ, परोक्ष रीति से इस प्रश्न का स्वीकारात्मक उत्तर देता है और यह जोड देता है—"इस विषय में केवल यौवन अपराधी है, चरित्र नहीं।"[१] न्यायाधीश चारुदत्त से स्पष्ट बातें कहने के लिए निर्देश करता है क्योंकि उस प्रश्न का न्याय-निर्णय होना अपेक्षित है। शकार भी बिगड़ता है और चारुदत्त को 'हत्यारा' सम्बोधित करते हुए, उसकी ताडना-भर्त्सना करता है। न्यायाधीश के यह पूछने पर कि वसंतसेना कहाँ है, चारुदत्त बताता है कि वह घर चली गई, किन्तु कब और कैसे गई, इस प्रश्न का समुचित उत्तर नहीं दे पाता है। शकार का अनुमान है कि न्यायाधीश जल्दी नहीं कर, चारुदत्त के प्रति पक्ष-पात कर रहा है। इस कथन पर न्यायाधीश उसकी भर्त्सना करता है और कहता है कि चारुदत्त जैसे दानशील व्यक्ति पर वह असत्य अभियोग लगाया गया है। वसंतसेना की वृद्ध माता भी इस भाव का अनुमोदन करती हुई, अपना विश्वास प्रकट करती है कि धरोहर वाले सुवर्णाभूषणों के चोरी चले जाने पर जिस चारुदत्त ने अपनी बहुमूल्य रत्नावली भिजवा दी थी, वह क्षण-भंगुर वैभव के हेतु वैसा गर्हित कार्य नहीं कर सकता। इसी बीच, नगर-रक्षक वीरक वहाँ पहुँच जाता है और न्यायाधीश से निवेदन करता है "आर्यक बंधन तोड़कर भाग निकला, उसे खोजते हुए पर्दे से ढकी एक गाडी का मैं निरीक्षण करना चाहता था जिस पर चन्दनक ने मुझे लात मारी, मैं इस सबंध में न्याय का अभिलाषी हूँ।" वीरक आगे कहता है कि वह गाडी चारुदत्त की थी और गाडीवान ने उसे बताया कि उस पर वसंतसेना चढी है और विश्राम करने के निमित्त पुष्पकरण्डक उद्यान में जा रही है। शकार के समर्थन में अब यह दूसरा प्रमाण मिल जाता है और न्यायाधीश बड़े खेद के साथ वीरक को आदेश देता है कि वह न्यायालय के द्वार पर अवस्थित घोड़े पर चढ़ कर, उस उद्यान में जाय और देखे कि वहाँ कोई स्त्री मरी पडी

१. "अथवा यौवनमत्रापराध्यति न चारित्रम्।"

है अथवा नहीं। वीरक प्रस्थान करता और पुन प्रवेश कर विज्ञापित करता है कि उसने स्त्री की मृत देह देखी है और उस देह को जन्तु खा रहे थे। न्यायाधीश स्वतः हतबुद्धि हो गया है और वह चारुदत्त से सत्य कथन का अनुरोध करता है। चारुदत्त निवेदन करता है कि वह तो फूल चुनने के लिए प्रफुल्ल लता को भी नहीं झुकाता, तब वह नीले केश वाली कामिनी की हत्या कैसे कर सकता है ?[१] लेकिन शकार अब धैर्य-हीन होता जा रहा है और न्यायाधीश पर पक्षपात का आरोप लगाता है। उसकी मांग पर चारुदत्त को आसन से नीचे उतार दिया जाता है। चारुदत्त जमीन पर बैठ जाता है और अपनी पत्नी धूता तथा पुत्र रोहसेन को पुकारते हुए दुःख से विह्वल हो उठता है और यह सोचकर चिन्ता व्यक्त करता है कि मैत्रेय जो रोहसेन को दिए गए स्वर्णाभूषण वसन्तसेना को लौटाने भेजा गया था, अभी तक वापस क्यों नहीं आया ?

इसी बीच दुर्दैव से, मैत्रेय आभूषणों को छिपाये न्यायालय में पहुँच जाता है और यह जान कर कि उसके मित्र चारुदत्त पर वसन्तसेना की हत्या का शकार द्वारा झूठा अभियोग लगाया गया है, क्रोधित हो जाता है और शकार से मार-पीट कर बैठता है। संयोग से, इस हाथा-बाँहीं में उसकी काँख में स्वर्णाभूषणों की पोटली जमीन पर गिर जाती है। शकार को अब अपने अभियोग के समर्थन में तीसरा प्रमाण मिल गया है और न्यायाधीश का मानसिक संकट और बढ़ गया है। चारुदत्त स्वयं स्वीकार करता है कि वे आभूषण वसन्तसेना के ही हैं, किन्तु इस प्रश्न का कोई संतोष-जनक उत्तर नहीं दे सका है कि ये गहने वसन्तसेना के शरीर से अलग कैसे हुए ? अब न्यायाधीश को यह निर्णय करना पड़ा है कि चारुदत्त वस्तुतः अपराधी है और राजपुरुषों को आज्ञा दी है कि वे चारुदत्त को पकड़ लें। वसन्तसेना की माता इस निर्णय का नम्रतापूर्वक विरोध करती है, किन्तु वह रोती हुई न्याय-मंडप से बाहर निकाल दी जाती है।

न्यायाधीश कहता है कि चारुदत्त के दण्ड के विषय में राजा पालक की सम्मति ले लेनी चाहिए क्योंकि मनु के अनुसार पापी ब्राह्मण भी मारा नहीं जा सकता (चारुदत्त ब्राह्मण है)। शोधनक राजा के पास जाता है और लौट

---

१ "योऽहं लतां कुसुमितामपि पुष्पहेतो- राकृष्य नैव कुसुमावचयं करोमि।
सोऽहं कथं भ्रमरपक्षरुचौ सुदीर्घे केशे प्रगृह्य रुदतीं प्रमदां निहन्मि॥"
(९।२८)

कर सूचना देता है कि राजा ने आज्ञा दी है कि चारुदत्त को गले में वसन्तसेना का आभूषण बाँध कर नगाडा पीट कर, श्मशान मे ले जाकर शूली पर लटका दिया जाय। चारुदत्त पालक की इस आज्ञा की भर्त्सना करता हुआ, मैत्रेय से अनुरोध करता है कि वह घर जाकर उसकी माता को उसका अभिवादन सुना दे और रोहसेन को वहाँ ले जाकर उसे तनिक दिखा दे और उसका स्नेह के सहित लालन पालन करे। न्यायाधीश की आज्ञा से चाण्डाल चारुदत्त को हटा लेते हैं। चारुदत्त के करुण कथन से जान पडता है कि शकार के कहने से उसके शरीर पर चाण्डालो का आरा चलेगा क्योंकि अन्य प्रकार से उसके प्राण हरण का उसका अनुरोध उनके-द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया है।

दशम अङ्क

यह नाटक का अन्तिम अक है जिसमे वक्तव्य वस्तु का समावर्तन हुआ है। अतएव इस अक का नाम पडा है 'सहार अक।'

दो चाण्डाल चारुदत्त के साथ प्रवेश करते हैं। उसके सारे शरीर पर लाल चन्दन के छापे मारे गए हैं तथा तिल, चावल एव कुकुम का लेप लगा है जिससे वह वध्य पशु जैसा प्रतिभासित हो रहा है। वह दक्षिणी श्मशान मे वध स्थान को ले जाया जा रहा है। नगरी के लोग, विशेषतया स्त्रियाँ उसे देखकर रो रही हैं। राज निर्णय की घोषणा करने के लिए चाण्डालो को आदेश हुआ है जिसके पाँच घोषणा स्थल निश्चित हैं। प्रथम घोषणा-स्थल पर पहुँच कर, चाण्डाल नगाडे की ध्वनि के साथ यह घोषणा करते हैं कि चारुदत्त ने गणिका वसन्तसेना को पुष्पकरडक उद्यान मे ले जाकर, उसके आभूषणो के लोभ मे उसकी हत्या कर डाली है तथा आभूषणों के साथ पकडा भी गया है। अतएव, राजा पालक ने उसे मारने की आज्ञा दी है जिससे पुनः कोई ऐसा लोक-विरोधी कार्य न कर सके। चारुदत्त देखता है कि उस आपत्ति काल मे उसके मित्र भी वस्त्र से मुख ढक कर, उससे दूर हटते जा रहे हैं। चारुदत्त मरने के पूर्व, पुत्र का मुँह देखना चाहता है। उसी समय रोहसेन को लेकर, मैत्रेय वहाँ पहुँचता है। अत्यन्त विह्वल होकर, चारुदत्त अपना यज्ञोपवीत पुत्र को देता है क्योंकि अन्य कोई वस्तु उसे देने के लिए चारुदत्त के पास शेष नही रह गई है। बालक यह जानकर कि उसके पिता को राजाज्ञा से मारने के लिए चाण्डाल वध्य-स्थान में ले जा रहे हैं, उनसे निवेदन करता है कि वे उसे ही मार डालें और उसके पिता को छोड दें। चाण्डाल बालक के पितृ प्रेम की सराहना करते हैं। थोडी देर के बाद वे दूसरे घोषणा-स्थल पर पहुँचते और घोषणा दुहराते हैं। घोषणा को सुन कर, शकार का वृद्ध चेट स्थावरक जो प्रासाद की नव निर्मित अट्टालिका मे बन्दी बनाया गया था, खिडकी से नीचे कूद पडता है और

घोषणा-स्थल पर जल्दी जल्दी पहुँच कर यह विज्ञापित करता है कि गाड़ी बदल जाने से वह वसन्तसेना को पुष्पकरंडक उद्यान में ले गया था जहाँ शकार ने उसकी हत्या कर डाली क्योंकि वह उससे प्रेम नहीं करती थी। स्थावरक अपने बन्दी बनाये जाने की बात भी चाण्डालों से वह सुनाता है। किंतु इसी समय शकार को मालूम हो जाता है कि स्थावरक वहाँ से भाग गया है और वह चिन्तित होकर, उसे खोजते हुए घोषणा-स्थल पर पहुँचता है। स्थावरक उसके सामने दुहराता है कि उसने ही वसन्तसेना की हत्या की है और अब आप चारुदत्त के भी वध का उपक्रम किया है। शकार चेट को सोने का कंगन जुम्हन से देकर, प्रार्थना करता है कि वह उसे निर्दोष प्रमाणित कर दे, और जब स्थावरक उसकी यह बात भी खोल देता है, तब शकार उल्टे उस पर आरोप लगाता है कि स्थावरक जो उसके सुवर्ण-भांडार में नियुक्त था सोने की चोरी कर भाग आया है। स्थावरक के कथन पर विश्वास नहीं किया जाता और वह मारकर वहाँ से निकाल दिया जाता है।

शकार तब चाण्डालों से निर्देश करता है कि वे चारुदत्त को अविलम्ब मार डालें और जब रोहसेन प्रार्थना करता है कि वे पिता को छोड़कर उसे ही मार डालें, तब शकार आदेश देता है कि पिता पुत्र दोनों साथ मारे जायँ। चारुदत्त डर जाता है कि वह मूर्ख सभी प्रकार के अनर्थ कर सकता है और मैत्रेय से अनुरोध करता है कि वह बालक को घर ले जाय। मैत्रेय रोहसेन को साथ लेकर चला जाता है। तीसरे घोषणा-स्थल पर पहुँच कर, शकार के निर्देश पर चांडाल पीटने का भय दिखा कर चारुदत्त से यह घोषणा स्वयं कराते हैं—'हे नगरवासियो ! मैंने ही वसन्तसेना को मारा है।" एक चांडाल कहता है कि वध्यपुरुष को सहसा मारना ठीक नहीं क्योंकि अनेक दशाओं में उनके प्राण बच जाते हैं, और इन अवस्थाओं में एक अवस्था राज्य-परिवर्तन की भी होती है जब सभी बन्दी मुक्त कर दिये जाते हैं। शकार राज्य-परिवर्तन की बात सुन कर तनिक घबराता है और चारुदत्त का वध अविलम्ब करने की आज्ञा देता है। चांडाल चारुदत्त से कहते हैं कि वे राजाज्ञा से उसे मारने जा रहे हैं तथा वे उस अपराध के लिए उत्तरदायी नहीं हैं और वह जो कुछ स्मरण करना चाहे, कर ले। इस पर चारुदत्त कहता है कि यदि उसके धर्म में कुछ प्रभाव हो, तो वसंतसेना जहाँ हो, वहाँ से तत्काल चली आवे। शकार ने निश्चय किया है कि वह चारुदत्त का वध अपनी आँखों से देखकर ही घर जाएगा। इसी बीच घोषणा का चौथा स्थान भी आ गया है और चाण्डालों ने घोषणा पुनः दुहराई है कि स्त्री-हत्या के कारण चारुदत्त का वध किया जायगा।

उसी समय व्याकुल वसन्तसेना के साथ बौद्ध श्रमण वहाँ पहुँच जाता है और वसन्तसेना घोर कोलाहल सुन कर, उससे वस्तु स्थिति का पता लगाने की प्रार्थना करती है। तब तक पाँचवां घोषणा स्थल आ जाता है और चाडाल अपनी घोषणा पुन दुहराते हैं। घोषणा सुन कर, श्रमण और वसनसेना दोनो अत्यन्त घबरा उठते हैं और जल्दी-जल्दी उस स्थान की ओर बढते हैं। इसी बीच, चारुदत्त को जमीन पर लिटा कर, चाडालों ने उसके वक्ष पर तलवार से प्रहार किया है, किन्तु तलवार हाथ से छूटकर नीचे गिर पडी है और अब चाडाल चारुदत्त को शूली पर चढाने का उपक्रम करने लगे हैं। तभी श्रमण तथा वसनसेना वहाँ पहुँच जाते हैं और वसन्तसेना चारुदत्त के वक्ष पर गिर पडती है और भिक्षु उसके चरणो पर गिर पडता है। चाडालो को अब वस्तु स्थिति का परिज्ञान होता है और वे यज्ञ शाला मे उपस्थित राजा से इसकी सूचना देने चले जाते हैं। बडे विस्मय के वातावरण मे चारुदत्त वसतसेना को पहचानता है और शकार द्वारा उसे कलकित करने की योजना कार्यान्वित किये जाने का हाल बताता है। चारुदत्त के पूछने पर श्रमण अपना परिचय देता है और जीर्णोद्यान मे वसनसेना के मोटन का सवाद उसे सुनाता है।

तभी नेपथ्य मे कोलाहल मचता है और सुनाई पडता है कि आर्यक ने पालक को मार डाला है। इसी बीच, शर्विलक सहसा प्रवेश करता है और पालक के आर्यक द्वारा मारे जाने का सवाद सुनाता है और चिन्तित होकर चारुदत्त को खोजता है जिससे आर्यक का राज्यारभ चारुदत्त की प्राण-रक्षा के साथ होवे। ऐसा स्पष्ट भासित है कि शर्विलक को चारुदत्त वाले अभियोग-कांड की पूरी जानकारी थी। वह श्मशान मे पहुँच कर, चारुदत्त और वसतसेना को देखता है और बडे आदर के साथ उनके निकट पहुँच कर, राज्य-परिवर्तन वाला पूर्ण समाचार सुनाता है तथा अपना परिचय भी बताता है। चारुदत्त इस सवाद का स्वागत करता है। शर्विलक उसे यह भी सूचना देता है कि उज्जयिनी मे सत्ता प्राप्त करते ही, आर्यक ने कुशावती नगरी का राज्य उसे सौंप दिया है। उसी समय शर्विलक के अनुचरों द्वारा भुजाएँ पीछे बाँध कर शकार वहाँ लाया जाता है और प्राण-रक्षा की भीख माँगता चारुदत्त के चरणो पर गिर पडता है। चारुदत्त के निर्देश पर शकार छोड दिया जाता है।

उसी समय नेपथ्य मे पुन कोलाहल मचता है और सुनाई पडता है कि आर्या धूता (चारुदत्त की धर्म-पत्नी) जलती चिता मे प्रवेश करने जा रही है। चदनक प्रवेश कर इस समाचार की पुष्टि करता है। चारुदत्त यह अनर्थ सुन कर शोक से मूर्च्छित हो जाता है। फिर स्वस्थ होकर चारुदत्त सहसा

उठता है और सभी एक साथ चिता-स्थल पहुँचते हैं। धूता को वस्तु-स्थिति का परिज्ञान होता है और वह अग्नि प्रवेश करने से रुक जाती है। सभी परस्पर प्रेम एवं हर्ष के वातावरण में मिलते हैं। धूता और वसन्तसेना परस्पर स्नेह-पूर्वक आलिंगन करती हैं। शर्विलक इस आनंद-मय अवसर का लाभ उठा कर, वसन्तसेना को आर्यक के नाम पर वधू-रूप में चारुदत्त को सौंपता है तथा उसका घूँघट खींच देता है। उस मंगल घड़ी में, संवाहक श्रमण चारुदत्त के निर्देश से पृथ्वी के समस्त विहारों का 'कुलपति' बना दिया जाता है, स्थावरक दासत्व से मुक्त कर दिया जाता है, दोनों चाण्डाल सारे चाण्डालों के अधिपति बना दिये जाते हैं, चन्दनक प्रधान सेनापति बना दिया जाता है और शरणागत शकार को दिये गए क्षमा दान की फिर से पुष्टि कर दी जाती है। इसी प्रमोद-मय वातावरण में नाटक, भरत वाक्य के साथ, समाप्त हो गया है।

(५) वस्तु-संघटन की समीक्षा

प्रथम अंक

प्रस्तावना को मिला कर इस अंक मे नाटक के सम्पूर्ण द्वन्द्व एव सघर्ष के सूत्र अनुस्यूत हो गए हैं। एक तरफ मन तथा हृदय को तोडने वाली दु ख-दायिनी दरिद्रता से ग्रस्त चारुदत्त, दूसरी तरफ स्वर्णाभूषणों से सज्जित वैभव-विहारिणी युवती वेश्या वसतसेना और तीसरी तरफ राज श्यालक दुष्ट-दम्भी शकार जो उस वेश्या-दारिका मे अधभाव से आसक्त है। यह सघर्ष त्रिकोणात्मक है और इसके घटक तत्त्व हैं दरिद्रता, ऐश्वर्य तथा सत्तानुमोदित क्रूर लम्पटता। दरिद्रता एव ऐश्वर्य का सघर्ष मानसिक तथा मनोवैज्ञानिक है, ऐश्वर्य एव लम्पटता का सघर्ष भी मुख्यत मानसिक है, किन्तु दरिद्रता एव लम्पटता का सघर्ष मूलत स्थूल एव वस्तुनिष्ठ है। नायक दरिद्र है, नायिका ऐश्वर्यशालिनी है और प्रति नायक क्रूर एव दुराचारी है तथा अपने कुकृत्यो के पीछे राजसत्ता का अनुमोदन प्राप्त किये है। प्रथम अक मे इस त्रिकोणीय सघर्ष का उपस्थापन नितान्त कुशल रीति से सम्पन्न हुआ है।

दरिद्रता की ध्वनि से ही नाटक आरभ होता है। सूत्रधार मूलत गरीब है। 'अभिरूपपति' वाला आयोजन उसके सामान्य जीवन का परिमापण नही करता, अपितु वह एक अ सामान्य घटना है जब पकवानो की सुगध उसके घर के वायुमडल को सुरभित बना रही है। ज्योनार की वह व्यवस्था इतनी असाधारण एव अप्रत्याशित है कि सूत्रधार को भासित होता है जैसे कही पूर्वजो का पृथ्वी के भीतर गाडा हुआ धन अकस्मात् मिल गया हो। अथवा पकवानो की उस लुभावनी सुगध ने सूत्रधार की भूख की धार इतनी तेज कर दी है कि समस्त ससार ही उसे ओदन मय दिखाई पड रहा है—"तत् कि पूर्वविहित निधान उपपन्नम् भवेत्। अथवा अहमेव बुभुक्षात ओदनमय जीवलोक प्रेक्षे।" वास्तविकता यही है कि उसके घर मे प्रात कालीन भोजन प्राय वर्तमान नही रहता है और उसे नित्य भूख सताती ही रहती है—"नास्ति किल प्रातराशोऽस्माक गृहे, प्राणात्यय बाधते मा बुभुक्षा।"

नायक की दरिद्रता का कथन पहले पहल उसके मित्र मैत्रेय द्वारा हुआ है। मैत्रेय ने सूत्रधार का भोजन-विषयक निमत्रण इसी कारण अस्वीकृत कर दिया है कि उसे निर्धन समझ कर ही सूत्रधार-जैसे साधारण वित्त वाले व्यक्ति ने भोजन का आमत्रण दिया है। निमत्रण पर भोज्य वस्तुओं के भक्षण का

विचार ही उसे अपमान जनक प्रतीत होता है। एक दिन चारुदत्त की सम्पत्ति से सुगंधित एवं मनोरम मोदक खा-खा कर, नगर चौक के सांड की भाँति पागुर करता रहता था, और अब वही चारुदत्त की गरीबी के कारण, इधर-उधर से दाने चुगकर खाने वाले पालतू कबूतर की भाँति घूम रहा है। चारुदत्त स्वयं अपनी निर्धनता की निविड अनुभूति से नितान्त दीन एवं विपण्ण दिखाई पड़ता है। ऐसा जान पड़ता है जैसे उस नवोत्पन्न दरिद्रता से उसकी मानसिक रीढ एकदम टूट गई है। मैत्रेय से वह कहता है—"मित्र ! शोक के उदय से बुद्धि भी क्षीण हो जाती है और बुद्धि के क्षीण हो जाने पर सर्वनाश की ही अवस्था प्राप्त हो जाती है। यह दरिद्रता नही, यह तो सारी मुसीबतो की जड है।"[१]

अतएव, यह स्पष्ट है कि नायक की दरिद्रता का प्रतिपादन अत्यंत गहन भाव मे नाटककार ने आरंभ मे ही कर दिया है। इतना निधन व्यक्ति वेश्या-युवती के प्रेम का अधिकारी कैसे बनेगा ? ऐसा भासित होता है जैसे नाटककार की अघटन घटना पटीयसी कल्पना कोई असभव चमत्कार घटित कराने की योजना बना रही है। लेकिन, उसकी कुशल कला चौंकाने वाले चमत्कार को प्रश्रय नही देती। विदूषक का साक्ष्य है कि चारुदत्त का वैभव नष्ट हुआ है किसी दुर्व्यसन के अभ्यास मे नही, अपितु याचको को दान दे देकर "अलं सन्तापेन । प्रणयिजनसंक्रमितविभवस्य सुरपीतावशेषस्येव प्रतिपच्चन्द्रस्य परिक्षयोऽपि ते अधिकतर रमणीय ।" अर्थात् जो व्यक्ति अपना विभव क्षयग्रस्त बना चुका है प्रणयिजनो की सहायता मे, उसमे ऐसे गुण वर्तमान होंगे, जो नारी हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर सकें। वसंतसेना गणिका है अवश्य, किन्तु नारी भी तो है, थोडी संभावना है ही कि वह चारुदत्त जैसे उदार एवं कोमल हृदयवाले व्यक्ति पर, उसकी दरिद्रता के बावजूद, अनुरक्त हो जाय।

दूसरा सहायक तत्त्व निर्दिष्ट है, चारुदत्त की रसिकता। चूर्णवृद्ध-द्वारा भिजवाया गया उत्तरीय चमेली के कुसुमो से सौरभित है "जातीकुसुमवासित प्रावारक अनुप्रेषित ।" कुसुमों के सुवास में अनुराग रखनेवाला व्यक्ति वास्तव मे जीवन के रस का अभिलाषी है। वह जब मृत्यु और दरिद्रता में मृत्यु को वरेण्य बताता है,[२] तब हमें स्वभावत सन्देह होता है और लगता है

१ 'निर्विण्ण शुचमेति शोकपिहितो बुद्धया परित्यज्यते ।
निर्बुद्धि क्षयमत्यहो निर्धनता सर्वापदामास्पदम् ॥"

(१।१४)

२. १।११।

जैसे वह किसी अतीव दुर्बल क्षण की प्रतिक्रिया हो। वह वस्तुतः फूलों के सौरभ और इसीलिए, जीवन के रस का आस्वादयिता है, और इसीलिए, उत्फुल्ल यौवन के सस्पर्श से वह तत्काल द्रवित हो सकता है। वसन्तसेना ने ठीक ही उस प्रावारक को सूँघ कर, चारुदत्त के प्रकृत शील का यों परिमापण किया : "अहो ! जातीकुसुमवासित प्रावारक, अनुदासीनमस्य यौवन प्रतिभासते।"

तो, दरिद्र चारुदत्त मे ऐसी सम्भावनाएँ छिपी हैं जो वसन्तसेना को उस पर अनुरक्त बना सकें। लेकिन, यह वेश्या दारिका भी सामान्य पण्यभूत गणिका नही है जो केवल धन से खरीदी जा सके अथवा सत्ता के भय से दर्पोले दुराचारियों के हाथो आत्म-समर्पण कर दे। उसने विट से कहा है, प्रेम का कारण गुण होता है न कि बलात्कार "गुण खलु अनुरागस्य कारणम् न पुनर्बलात्कार।" अतएव, वसन्तसेना गुण की अनुरागिणी है और वह गुण निधान निर्धन नायक की नायिका बनने के योग्य हो सकती है। और, जब शकार ने स्वत प्रमाण दे दिया कि वसन्तसेना कामदेवायतन उद्यान से ही चारुदत्त मे अनुरक्त है, तब तो इसमे तनिक भी सन्देह का अवकाश नहीं कि दरिद्रता और ऐश्वर्य की सगाई सम्पन्न हो सकती है। चारुदत्त की वचन-रचना पर वह मुग्ध हो गई है "चतुरो मधुरश्चायमुपन्यास।"

स्वय चारुदत्त भी वसन्तसेना की आकृति एवं व्यवहार से प्रभावित हो गया है। अभी जब वह यह नही जानता था कि वह अचानक आई नारी वसन्तसेना है, तब भी वह उसके रूप पर आकर्षित था शरत्कालीन मेघ से ढकी चन्द्रकला के समान वह उसे दिखाई पड़ी थी—"छादितो-शरदभ्रेण चन्द्रलेखेव दृश्यते।" और जब यह जान गया कि वह वसन्तसेना ही है, तब तो वह उसे देवता के समान उपासना-योग्य प्रतीत हुई—"अये ! देवतोपस्थानयोग्या युवतिरियम्।"

अनन्तर वसन्तसेना अपने बहुमूल्य अलकारो का न्यास चारुदत्त को सौंप कर, एक ओर भविष्य मे अपने वहाँ के गमनागमन का मार्ग प्रशस्त बना देती है और दूसरी ओर चारुदत्त विषयक अपनी अनुरक्ति की सचाई का विज्ञापन भी कर देती है। चारुदत्त यह समझते हुए भी कि उसका जीर्णशीर्ण गृह स्वर्ण-न्यास रखने के योग्य नहीं है—"अयोग्यमिद न्यासस्य गृहम्।"—वसन्तसेना की एक मधुर तर्कना पर[1] वह

[1] "आर्य ! अलीकम्। पुरुषेषु न्यासा निक्षिप्यन्ते न पुनर्गेहेषु।" (यह असत्य है, आर्य ! योग्य पुरुष के पास धरोहर रखी जाती है, न कि योग्य घर मे।)

मूल्यवान् न्यास स्वीकार कर लेता है। अन्त मे चारुदत्त वसतसेना को उसके घर पहुँचा भी आया है। इस प्रकार, अक की समाप्ति तक इस बात की सम्भावनाएँ नितान्त पुष्ट हो गई हैं कि दरिद्र चारुदत्त और वैभव-विहारिणी वसन्तसेना का प्रणयबन्धन सम्पन्न हो सकेगा।

शकार की लम्पटता एव क्रूरता का चित्रण इसी अक मे नितान्त स्थूल ढग से सम्पादित है। वसतसेना के बच निकलने पर और यह जान कर कि वह चारुदत्त के भवन मे प्रवेश कर गई है, शकार जिस प्रकार खिन्न एव कुपित हो गया है तथा उसने जो यह धमकी दी है कि यदि चारदत्त ने वसतसेना को वापस नही लौटाया, तो उन दोनो मे 'आमरण शत्रुता' हो जाएगी, उससे यह सभावना पुष्ट हो जाती है कि क्रूर शासन सत्ता का शिकार दरिद्र किन्तु रसिक नायक को होना पडे। वसतसेना ने लम्पट शकार को तिरस्कृत कर, यह तो सिद्ध ही कर दिया है कि उसका ऐश्वर्य क्रूर दुराचारिता के समुख घुटने नही टेक सकता—यदि वह कोई साधारण वार-वनिता होती, तो शायद सभावित सुख विलास के प्रलोभनो मे पड कर, शकार की वल्लभा बनना स्वीकार कर लेती। विट ने यही तो तर्कना की थी "वहसि हि धनहार्यं पण्यभूत शरीरम्।" चेट ने कहा था "हे वसन्तसेने! तुम राजवल्लभ शकार के साथ रमण करो। ऐसा करने से तुम्हे खाने के लिए प्रचुर मछली का मांस मिलेगा, इनके घर इसकी इतनी प्रचुरता है कि कुत्ते भी उसे छोड कर किसी मृतक पर नहीं टूटते।"[1]

अतएव, एक ओर यदि यहाँ यह प्रतीति मिल जाती है कि दरिद्र नायक 'राजवल्लभ' दुष्ट दम्भी प्रति-नायक-द्वारा सताया जा सकता है तो दूसरी ओर यह संभावना भी पुष्ट हो जाती है कि वसतसेना क्रूर लम्पटता से समझौता नही कर सकती।

इस प्रकार, उपयुक्त त्रिकोणीय सघर्ष का स्पष्ट उपस्थापन पहले अक मे सम्पन्न हुआ है और उन रेखाओं अथवा सरणियों का भी सबल निर्देश हो गया है जिनके अनुरूप यह सघर्ष आगे विकसित हो सकता है—अर्थात्, वसतसेना एव चारुदत्त का प्रणय परिपाक सभव होगा, लेकिन उस फलागम के मार्ग मे शकार की क्रूरता एव सत्तानुमोदित दुराचारिता के कारण भयकर अवरोध उत्पन्न हो सकेंगे।

लेकिन, इन अवरोधो की अन्तिम सफलता अथवा विफलता की सम्भव-

१ "रमय च राजवल्लभ तत खादिष्यसि मत्स्यमांसकम्।
एताभ्यां मत्स्यमांसाभ्यां श्वानो मृतक न सेवन्ते॥" (१।२६)

नीचता की हलकी रेखायें भी इस अंक में भासित हो गई हैं। विट ने अन्धकार में भागती हुई वसन्तसेना को संकेत दिया कि वह अपने आभूषणों को समेट ले और मालाओं को तोड़ कर फेंक दे। इससे जान पड़ता है कि विट, शकार का सहचर होते हुए भी, शायद उसकी क्रूरताओं में अन्तिम बिन्दु तक उसका साथ न दे। पुनः रदनिका वाले प्रसंग में विट ने चारुदत्त की भूरिशः परिशंसना की है। उसने शकार की दम्भपूर्ण मूर्खता का प्रतिवाद करते हुए कहा—"चारुदत्त दीनों के लिए कल्पवृक्ष है। वह अपने गुणों से ही विनीत है, सज्जनों का कुटुम्बी है, शिक्षितों का आदर्श है सच्चरित्र की कसौटी है, शील सदाचार का सागर है, मानवों गुणों का निधान है, उदार एवं सरल-चित्त है तथा किसी की अवमानना करना नहीं सीखा। इसीसे, उसका ही जीवन श्लाघ्य है और अन्यों का निष्फल एवं निरर्थक।"[1] चारुदत्त के इन्हीं गुणों से विट भयभीत है—

"विट —भीतोऽस्मि।

शकार —कस्मात् त्वं भीतः।

विट —तस्य चारुदत्तस्य गुणेभ्यः।"

अतएव, चारुदत्त के चारित्र्य गत गुणों की गम्भीरता ऐसी है जो शकार के घनिष्ठ सहचरों के मानस में भी आदर मिश्रित भय का उपलालन कर रही है। गुणों का यह भय एक ऐसा तत्व है जो घटनाओं की अन्तिम परिणति में थोड़ा-बहुत प्रभाव डाल सकता है। ऐसा प्रतिभासित होता है जैसे नाटक की दो प्रमुख शक्तियाँ, अच्छाई तथा बुराई (good and evil), एक दूसरे के विरुद्ध लगभग समान सामर्थ्य एवं सम्भावना के साथ श्रेणी-बद्ध हो गयी हैं। वस्तुतः नाटक की मौलिक संघर्षभूमि यही है और इसका सुस्पष्ट उपन्यास इस अङ्क में हुआ है।

लगभग सभी महत्त्वपूर्ण पात्रों का सन्निवेश भी प्रथम अंक की विशेषता है। विट और चेट शकार के अन्यतम सहचर तथा परिजन समझे जाएंगे जो वसन्तसेना की हत्या वाले प्रसंग में भी वर्तमान रहे हैं। वैसे ही, मैत्रेय चारुदत्त की सम्पूर्ण परिस्थितियों में साथ रहने वाला मित्र तथा अनुचर है। नवें अङ्क में असावधानी से, उसकी काँख से वसंतसेना के आभूषण गिर पड़े हैं और चारु-

१ "दीनानां कल्पवृक्षः स्वगुणफलनतः सज्जनानां कुटुम्बी
आदर्शः शिक्षितानां सुचरितनिकषः शीलवेलासमुद्रः।
सत्कर्ता नावमन्ता पुरुषगुणनिधिर्दक्षिणोदारसत्त्वो
ह्येकः श्लाघ्यः स जीवत्यधिकगुणतया चोच्छ्वसन्तीव चान्ये॥"

(१।४८)

दत्त के विरुद्ध लगाये गए आरोप मे सत्य का आभास प्रस्फुट हो गया है। प्रथम आकस्मिक मिलन के समय वसन्तसेना ने जो अलङ्कारों का न्यास चारुदत्त को सौंपा, उसकी रक्षा का मुख्य भार विदूषक को ही दिया गया। उसकी असावधानी से ये आभूषण रात को चुरा लिये गए और अन्त में उसकी असावधानी से ही, न्यायालय के समक्ष वे प्रकटित हो गए जिससे चारुदत्त की विपत्ति पराकाष्ठा को पहुँच गई। यह विदूषक अपने प्रकृत स्वरूप मे—निश्छल, क्रोधी तथा असावधान—पहले अङ्क मे उपस्थित हो गया है। इसके द्वारा भावी घटना-चक्र की दिशा का भी सङ्केत किया गया है। चारुदत्त ने जब अलङ्कारों का वह न्यास स्वीकार कर लिया, तब विदूषक ने कहा—"यद्येवम् तत् चौरैरपहृियताम्।"

अतएव, उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि नाटक के वस्तु-विन्यास में प्रथम अङ्क का नियोजन, क्या कथा-विकास, क्या चरित्र चित्रण, क्या संघर्ष की तीव्रता एवं उपसंहार, सभी दृष्टियों से कलात्मक कौशल का परिचायक है।

द्वितीय अङ्क

इस अङ्क का महत्त्व दो दृष्टियों से ठहरता है—प्रथम कि इसमें जुआरी संवाहक की अवतारणा कराई गई है जो नाटकीय वस्तु संघर्ष में समाधान मे महत्त्व की भूमिका सम्पन्न करता है और द्वितीय कि इसमे वसन्तसेना के चारुदत्त विषयक अनुराग का विकसित स्वरूप चित्रित हुआ है। सबसे महत्त्व की योजना यह है कि ये दोनों दृष्टियाँ परस्पर अनुस्यूत हैं। मेरा अभिप्राय स्पष्ट शब्दों में यह है कि संवाहक के अवतरण से वसन्तसेना की चारुदत्त-विषयिणी आसक्ति अधिक गहरी तथा अधिक प्रस्फुट बन गई है। साथ ही, वही संवाहक वित्त वृत्ति के परिवर्तन से प्रव्रजित हो कर, अन्त मे वसन्तसेना की प्राण-रक्षा मे सहायक सिद्ध हुआ है। अतएव, वसन्तसेना के प्रणय विकास में परोक्ष रूप से सहयोग देकर संवाहक प्रत्यक्ष रूप से उसकी प्राण-रक्षा मे भी कारण बना है। नाटककार की प्रवीण कला, अतएव, इस बात मे सावधान रही है कि संवाहक का अवतरण किसी पृथक् अकेले उद्देश्य (Isolated purpose) की सिद्धि के निमित्त न होकर समग्र कथा वस्तु को गति एवं नियमन प्रदान करने के लिए किया जाय।

अङ्क के आरम्भ में वसन्तसेना अपने नवीन प्रणय के विषय मे चिन्तामग्न दिखाई पड़ती है। "माताजी से कहो कि आज मैं स्नान नहीं करूँगी, अतएव, ब्राह्मण ही पूजा कर दें"—चेटी से कहा गया यह वाक्य उसकी अनुरक्ति के नवीन आयाम को विज्ञप्ति करता है। मदनिका ने जब उससे उसके प्रेमास्पद

के विषय में पूछा है, तब उसने स्पष्ट कहा है कि वह किसी राजा, राजवल्लभ, ब्राह्मण अथवा व्यापारी में अनुरक्त नहीं है, अपितु दरिद्र चारुदत्त उसकी आसक्ति का भाजन है क्योंकि निर्धन पुरुष में आसक्त होनेवाली गणिका संसार में निन्दनीय नहीं होती—"दरिद्रपुरुषसङ्क्रान्तमना खलु गणिका लोके अवचनीया भवति।" इस कथन से वसन्तसेना की सचाई का पूर्ण विज्ञापन हो जाता है। उसने आभूषणों की धरोहर के पीछे सन्निहित अपने उद्देश्य को कि चारुदत्त के घर आने का उसे कोई बहाना मिल जाय, मदनिका से स्वीकार भी कर लिया है।

जुआरियों वाला दृश्य आपाततः एक असम्बद्ध दिशान्तरण (digression) प्रतीत होता है। किन्तु जुआरियों के दुर्व्यसन का जो सजीव चित्र इसमें अंकित हो गया है, उससे नाटक की यथार्थवादी भूमिका को प्रस्फुट करने में यथेष्ट सहायता मिली है। पुनः दर्दुरक जो जुआरियों में से एक है, शर्विलक-द्वारा कथित सिद्धों की इस भविष्यवाणी की विज्ञप्ति करता है कि गोप-बालक आर्यक राजा बनेगा, और स्वयं उसी के पास जाने की बात कहता है क्योंकि उसके—जैसे सभी व्यक्ति आर्यक का अनुसरण करते हैं "सर्वश्च अस्मद्विधो जनस्तमनुसरति। तदहमपि तत्समीपमेव गच्छामि।" इस कथन से कथा-विकास की सम्भावित सरणि के सम्बन्ध में एक नवीन संकेत मिलता है—यह कि राजा पालक की जगह आर्यक के हाथों राज्य सत्ता संक्रमित हो सकती है और कि निम्नस्तरीय लोग सत्ता-परिवर्तन की चेष्टा कर रहे हैं। दर्दुरक का यह कथन प्रकृत प्रसंग से संबद्ध अथवा प्रसूत नहीं है, किन्तु नाटककार को पर्दे के पीछे खौलते जन विद्रोह की सूचना देना अभीष्ट था और अलंकार-न्यास-वाले प्रकरण के उपरान्त, उसने जितनी शीघ्रता सम्भव थी, उतनी शीघ्रता से यह सूचना सामाजिकों को दी है तथा दर्दुरक के मुँह से एवं शर्विलक का उल्लेख कर, यह सूचना देने में उस सम्भावित विप्लव की जनवादी प्रकृति का द्योतन भी कर दिया है।

एक अन्य दृष्टि से भी जुआरियों वाला दृश्य मनोरंजक दिशान्तरण नहीं समझा जाकर, एक आवश्यक मन्तव्य की पूर्ति करता दिखाई पड़ता है। संवाहक को नाटककार ने प्रव्रजित होते प्रदर्शित किया है। इस प्रव्रज्या ग्रहण के लिए संवाहक के मुख से यह कहला देना भर कि अब वह सन्यासी बन जाएगा जैसा 'चारुदत्त' में हुआ है, सामाजिकों के निकट विश्वासोत्पादक (convincing) नहीं होता। इसके लिए उन परिस्थितियों का तनिक प्रदर्शन भी आहूत एवं अपेक्षणीय था जिनसे प्रेरित अथवा प्रचोदित होकर, संवाहक बौद्ध श्रमण बन गया। माथुर तथा जुआरी को उपस्थित कर और

उनके द्वारा संवाहक का बुरी तरह पीटा एवं सताया जाना चित्रित कर, नाटककार ने संवाहक के मनःपरिवर्तन तथा विरक्ति ग्रहण को विश्वसनीय स्वरूप प्रदान किया है ।

संवाहक ने अपना इतिवृत्त कथन कर, वसंतसेना के मानस में चारुदत्त के उदार गुणों की छाप अधिक सघन भाव से अङ्कित कर दी है । जब संवाहक ने अपने भूतपूर्व स्वामी के गुणों का व्याख्यान कर उसका नाम 'आर्य चारुदत्त' बताया तब वसंतसेना प्रसन्नता पूर्वक आसन से उतर कर कहती है—"आर्य ! यह आपका अपना घर है । दासी ! इन्हें बैठने के लिए आसन दो । पंखा ले लो । आपको श्रम पीडित कर रहा है ।" चारुदत्त से उसका सम्बन्ध जानकर, वसन्तसेना ने जो संवाहक का सम्मान एवं साहाय्य किया है, वह यह स्पष्ट सूचित करता है कि गुणों पर लुब्ध होने वाली उस गणिका को अपनी आसक्ति की औचित्यानुभूति के लिए एक अन्य नवीन आधार मिल गया है ।

कर्णपूरक वाला प्रसंग वसंतसेना की आसक्ति को और भी गहरी बनाने में सहायक सिद्ध हुआ है । चारुदत्त ने अपना सौरभित उत्तरीय कर्णपूरक को उस संन्यासी की प्राण रक्षा के उपलक्ष में पुरस्कार रूप प्रदान किया है, यह जान कर वसंतसेना की चित्तवृत्तियाँ उसकी ओर और भी तत्परतापूर्वक उन्मुख हो गई हैं तभी तो, वह मदनिका के साथ दरवाजे के ऊपर चढ़कर, उस मार्ग से घर जाते हुए चारुदत्त का दर्शन करने लगी है ।

प्रथम अङ्क का 'जातीकुसुमवासित प्रावारक' अब वसंतसेना के पास चला आया है और उसकी अनुरक्ति को भी सुवासित बनाने लगा है ।

तृतीय अंक

नाटकीय वस्तु विधान में तीसरे अंक का महत्व मुख्यतः चरित्र चित्रण को लेकर ही समझा जाएगा । अभी दूसरे अङ्क में शर्विलक का उल्लेख हुआ है जिससे संकेत मिला है कि संभावित राज्य विप्लव में उसकी अभिरुचि होगी । प्रस्तुत अङ्क में उसके चरित्र के ऊपर आलोक पड़ा है । यह ज्ञात हुआ है कि वह वसन्तसेना की दासी मदनिका के प्रेम में उलझा हुआ है और अपनी प्रेयसी को दासीत्व के बन्धन से विमुक्त करने के लिए धन की खोज में है । सेंध लगाकर, उसे प्रसन्नता नहीं हुई है । वह वेदों के ज्ञाता और दान न लेने वाले ब्राह्मण का पुत्र है, किन्तु वेश्या मदनिका के लिए वह अनुचित कार्य कर रहा है ।[१] अगले अङ्क में उसने मदनिका को वधू रूप में प्राप्त किया है और उसे विदा कराकर, स्वयं राज्य विप्लव में सहयोग देने चला गया है ।

---

१ "अहं हि चतुर्वेदविदोऽप्रतिग्राहकस्य पुत्रः शर्विलको नाम ब्राह्मणो गणिकामदनिकार्थमकार्यमनुतिष्ठामि ।"

अतएव, उसके चरित्र की पद्धति जिसमे प्रेम, प्रेम प्रेरित चौय तथा अत्याचारी शासन-सत्ता के दमनार्थ नव प्राप्त प्रेमिका की अवहेलना के जटिल तत्व परस्पर मिले हुए हैं, इस तथा अगले अङ्क मे स्थापित हुई है।

किन्तु, यदि एक ओर मदनिका और शर्विलक के प्रेम की सुखद परिणति की समावनाएँ इस अक मे प्रशस्त हुई हैं, तो दूसरी ओर मुख्य प्रणय कथा के सुखद विकास की समावनाएँ बाधित होने की आशका उपपन्न हुई है। अलकारो की चोरी से चारुदत्त की प्रतिष्ठा को आघात पहुँचेगा, स्वय वसन-सेना भी उसके सबध मे क्या सोचेगी ? उसने तो अलकार का न्यास चारुदत्त को सौंपा, इस उद्देश्य से कि उसी के बहाने वह चारुदत्त के घर दुबारा आ सकेगी। इधर आभूषण चोरी चले गए। चारुदत्त की सामाजिक प्रतिष्ठा पर चाहे जो आघात पहुँचे, वसतसेना की उसके प्रति आसक्ति भी खण्डित हो जाएगी। किन्तु, नाटककार का मुख्य उद्देश्य चारुदत्त को न केवल सामाजिको की दृष्टि मे, अपितु उससे भी बढ कर, वसतसेना की दृष्टि मे ऊँचा उठाना है। मदनिका की मुक्ति और शर्विलक की उसका वधू बन जाना, इसका मेरी दृष्टि मे कोई महत्व नहीं है क्योंकि उससे शर्विलक के चरित्र पर थोडा प्रकाश पडने के अतिरिक्त, नाटय-वस्तु के नियोजन से कोई घनिष्ठ सबध नहीं दिखाई पडता। मुख्य बिन्दु हैं · वसतसेना की धरोहर का चोरी चला जाना (चोर कोई भी हो और उसका चोरी करने का प्रयोजन कुछ भी रहा हो), चारुदत्त की गरीबी मे उसकी निजी नैतिक भावना को चोट पहुँचना, वसन्तसेना की तद्विषयक अनुरक्ति के शिथिल होने की समावना का उदय, चारुदत्त के प्रणय सिद्ध दाक्षिण्य के लिए गहरी चुनौती का उपस्थित होना, उसका वह कठोर चुनौती स्वीकार कर लेना अथच उसकी प्रेमिका वसतसेना की आसक्ति को एक नवीन चेतना का मधुर आघात लगना तथा उससे उस आसक्ति के आयाम का विकसित होना। नाटककार ने एक अत्यन्त कलात्मक अवसर प्रदान किया है चारुदत्त को, वसतसेना की दृष्टि मे अपनी 'योग्यता' प्रतिपादित करने के लिए—वसतसेना ने यही तो कहा था कि "धरोहर योग्य पुरुष के पास रखी जाती है।" इस तीसरे अक मे चारुदत्त की योग्यता की स्थापना बडे कौशल के साथ नाटककार ने सम्पन्न की है। चारुदत्त ने अपनी पत्नी की बहुमूल्य रत्नावली वसतसेना के पास भेजते हुए कहा है "वसतसेना ने हमारे जिस विश्वास के सहारे हमारे पास वह धरोहर रखी थी, उसी विश्वास की रक्षा के हेतु यह मूल्यवान् रत्नावली उसे दी जा रही है, न कि उस सुवर्ण-भाण्ड के लिए।"[१]

१ "यं समालम्ब्य विश्वास न्यासोऽस्मासु तया कृत ।
तस्यैतन्महतो मूल्य प्रत्ययस्यैव दीयते ॥" (३।२९)

पति निष्ठ नारी उसकी अतिरिक्त प्रेम-लीला मे कोई विघ्न उपस्थित नही करना चाहती थी। डा० भाट का उक्त प्रश्न कि चारुदत्त ने उन अलकारो को अपने अधिकार म क्यो नही लिया, यदि उन आभूषणो के अतःपुर मे भेजे जाने मे सबद्ध है, तो उसका समाधान यही मिल जाता है। और यदि उसका यह अर्थ लिया जाय कि चारुदत्त ने सोते समय स्वत उन गहनो को अपने पास क्यो नही रख लिया, तो नाटककार ने इसका उत्तर पहले ही प्रथम अक के अन्त मे दे दिया है जब चारुदत्त ने वसनसेना को उसके घर पहुँचाने के बाद लौटते समय यह आदेश दिया कि रात मे मैत्रेय उन आभूषणो की रक्षा करेगा और दिन मे वधमानक। पुन: प्रस्तुत प्रसग मे मैत्रेय ने यह अनुरोध तो किया नही है कि चारुदत्त उन आभूषणो को अपने पास रख ले, चोरी के भय से वह शकित भले हो। अतएव, डा० भाट का प्रश्न अनावश्यक रीति से उठाया गया है, उसके उठाये जाने की कोई आवश्यकता नही थी। नाटककार की ओर से यह कहा जा सकता है कि यदि चारुदत्त ने स्वत आभूषणों को रख लिया होता, तो शायद उनके चोरी चले जाने की सम्भावना थोडी बाधित हो जाती क्यो कि वह मैत्रेय की भाँति भयग्रस्त नही था और स्वप्न की घबराहट मे शायद उसने वे आभूषण चोर शर्विलक को नही दिये होते।

चतुर्थ अंक

तीसरे अक की घटना के परिणाम चौथे अक मे घटित होते चित्रित किये गए हैं। शर्विलक ने जिस उद्देश्य की सिद्धि के निमित्त सन्धिच्छेद का साहसपूर्ण कुकृत्य किया है, वह इस अक मे सिद्ध हो गया है। मदनिका को वसतसेना ने बडी उदारता के साथ शर्विलक की वधू के रूप मे सौंप दिया है और शर्विलक ने स्वय वसनसेना के प्रति गहरी कृतज्ञता के भाव से परिपूर्ण होकर अपनी वल्लभा से कहा है—"मदनिके! वसतसेना को भरपूर निहार लो और इन्हें सिर झुकाकर, प्रणाम करो। इन्ही के कारण, तुमने दुर्लभ 'वधू' शब्द का घूंघट पा लिया है।"[1] अतएव, मदनिका शर्विलक के गुप्त प्रेम की यह आनन्दमयी परिणति राज्य विप्लव के प्रमुख आयोजक शर्विलक को नाटक के नायक-नायिका के प्रति प्रगाढ आदर एव कृतज्ञता की रज्जुओ मे बाँध देती है चारुदत्त के प्रति भी उसने यो साधुवाद प्रकट किया है—"धन्य हो, आर्य चारुदत्त! मनुष्य को सदा गुण प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए

---

१ "हृष्टा भिवतामेव शिरसा वदना जन।
यत्र ते दुर्लभ प्राप्त वधूशब्दावगुण्ठनम्॥" (४।२४)

क्योंकि गुणवान् दरिद्र भी गुण विहीन धनिकों से बढ कर है ।।"[१]

नाटक के अन्त मे जब चारुदत्त-वसतसेना की विपत्तियों पर पटाक्षेप हो गया है, इस शर्विलक ने इन दोनो के प्रति अपनी ऋण भावना का जैसे आशोधन करते हुए, वसतसेना और चारुदत्त को पति पत्नी-रूप मे मिलाया है तथा चारुदत्त के जीवन मे सुख वैभव का एक नवीन अध्याय ही उद्घाटित करने मे सहायक हुआ है। इस दृष्टि से, मदनिका-शर्विलक का प्रस्तुत पाणि-ग्रहण सपूर्ण वस्तु विधान से घनिष्ठतया अनुस्यूत है। वसतसेना स्वत इस मिलन से प्रसन्न हो गई है। वह भी तो इसी अभिलाषा से अनुप्राणित है कि आर्य चारुदत्त की वह वधू बन जाय। नाटककार, लेकिन, उसके प्रणय पथ को इतना सरल एव ऋजुता पूर्ण बनाना नहीं चाहता। वह शनै-शनैः उसे प्रशस्त करता जा रहा है। वस्तुत उसका मन्तव्य है वसतसेना और चारुदत्त की मानसिक एव भौतिक दोनो स्थितियों को एक साथ, उनके मिलन के लिए, तैयार करना—शायद मानसिक परिस्थिति के पोषण की उसे अधिक चिन्ता है। इस उद्देश्य की सिद्धि के निमित्त, इस अक मे दो तथ्य सनिविष्ट किये गये हैं—पहला, वसंतसेना का राजश्याल सस्थानक के दूसरे निमत्रण को अत्यन्त अवमानना पूर्वक तिरस्कृत कर देना और दूसरा, चारुदत्त-द्वारा भेजी गई रत्नावली को उसका अविचलित भाव से स्वीकार कर लेना।

अङ्क के आरम्भ मे वसन्तसेना चारुदत्त की चित्राकृति स्नेहपूर्ण भाव से देखती चित्रित की गई है। वह इस बात का प्रमाण है कि उसका अनुराग काफी गहराई को पहुँच गया है। चेटी विज्ञापित करती है कि जिस सस्थानक ने दस हजार का स्वर्णाभूषण उसके लिए भेजा है, उसी की बैलगाडी उसे ले जाने के लिए द्वार पर उपस्थित है और माता ने वहाँ अभिसार करने के लिए उसे आदेश भी दिया है। वसन्तसेना ने इस सूचना पर जो तीव्र रोष प्रकट किया है और शकार के प्रयत्नों को जिस प्रकार अन्तिम रूप से ठुकरा दिया है, वह उसके प्रणय की उस प्रस्द्धावस्था की विज्ञप्ति करता है जिसे शास्त्रो मे 'मञ्जिष्ठाराग' कहा गया है। और, अन्तत मेघाच्छन्न आकाश से ढके होकर उसने जो चारुदत्त के घर अभिसार करने का निश्चय किया है, वह उसके अनुराग की सशक्त प्रेरणाओं का उन्मीलन करता है।

लेकिन, रत्नावली को स्वीकार कर, वसतसेना ने जैसे विदूषक की वैसे ही सामाजिकों की दृष्टि मे भी अपने प्रकृत निर्लोभ एव उदार धरातल से

---

१ 'साधु आर्यचारुदत्त ! साधु !
गुणेष्वेव हि कर्तव्य प्रयत्न पुरुषै सदा।
गुणयुक्तो दरिद्रोऽपि नेश्वरैरगुणैः सम ।।" (४।२२)

नीचे खिसकती हुई समझे जाने का खतरा मोल लिया है। विदूषक की प्रतिक्रिया रत्नावली ग्रहण कर वसन्तसेना के यह कहने पर कि वह सूर्यास्त के बाद आज आर्य को देखने आएगी, यों देखी जा सकती है—

"(मन में) और क्या हो सकता है ? आर्य चारुदत्त के पास जाकर कुछ और लेगी। (प्रकट) कह दूँगा। (मन में) कह दूँगा कि आप वेश्या का संसर्ग छोड़ दें।"[१]

किन्तु, वसन्तसेना का वास्तविक उद्देश्य ऐसा करने में रहा है, उदार एवं उदात्त स्वभाववाले अपने प्रेमास्पद को उस उद्वेगपूर्ण मानसिक स्थिति में से निकालना जिसमें उसके दिये आभूषणों के अपहरण से वह पड़ गया था। वह जानता था कि वह गरीब है, किन्तु वह कभी यह नहीं पसंद करता कि उसकी नव-वल्लभा वेश्या यह सोचे कि वह अपने वैभव तथा ऐश्वर्य के धरातल से नीचे उतर कर चारुदत्त जैसे निर्धन व्यक्ति को अपने प्रणय का प्रसाद प्रदान कर रही है। वसन्तसेना स्वयं चारुदत्त की मान रक्षा के निमित्त सतर्क है। यदि वह उस रत्नावली को स्वीकार नहीं करती, तो चारुदत्त के हृदय में यह कचोट रह जाती कि वसन्तसेना ने शायद अपने को धनाढ्य समझ कर उसको रत्नावली लौटा दी है। वैसी अवस्था में उसकी प्रणय धारा का प्रवाह वसन्तसेना की ओर उन्मुक्त भाव से उन्मुख नहीं होता। रत्नावली स्वीकार कर, चतुर नायिका ने सकोची नायक को यह समझने का अवसर प्रदान किया है कि उसने चोरी चले गए उसके आभूषणों का प्रतिदान लौटा कर तथा अपने प्रकृत उदार, उदात्त एवं शालीन धरातल से नीचे उतर कर वसन्तसेना को अपने प्यार का प्रसाद दिया है और उपकृत किया है। रत्नावली स्वीकार कर, वेश्या प्रेयसी ने अपनी विनम्रता प्रदर्शित की है और अपने दरिद्र प्रणयी को उसके स्वाभिमान की रक्षा करने का अवसर प्रदान किया है। इस प्रकार, अलंकार न्यास के चोरी चले जाने से उत्पन्न चारुदत्त की मानसिक विडंबना का निरास कर, नाटककार ने नायक नायिका मिलन में समागत एक महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक अवरोध को मिटा दिया है।

रत्नावली भेज कर, चारुदत्त ने अपनी शालीनता की रक्षा ही नहीं की है, अपितु वसन्तसेना की प्रेमोन्मुख प्रवृत्तियों के उद्दीपन के निमित्त एक नवीन 'स्टिमुलस' (उत्तेजन) भी प्रदान किया है। वसन्तसेना यह सुनकर कि चारुदत्त जुए में उसके आभूषण हार गया है, कहती है—"चोरों से भी

१ "(स्वगतम्) किमन्यत्। अस्मिन् गत्वा प्रार्थयिष्यति। (प्रकाशम्) भवति ! भणामि। (स्वगतम्) निवर्तितामस्मात् गणिकाप्रसंगात् इति।"

चुराये गए आभूषण को उदारता के कारण वे कहते हैं कि जुए में हार गए। इसीलिए तो मैं उन्हें चाहती हूँ।"[1] विदूषक के पूछने पर कि वह रत्नावली लेगी अथवा नहीं, वसन्तसेना उसे ग्रहण करने की तत्परता दिखाती है और उसे लेकर बगल में रखती हुई, मन-ही-मन सोचती है—"क्या मञ्जरियों से रहित आम्र के वृक्ष से भी मकरन्द की बूँदें चूती हैं?"[2] अतएव, यहाँ भी नाटककार का कलात्मक कौशल परिलक्षित है नायक-नायिका के प्रणय परिपोष में उनकी मानसिक स्थितियों को अनुकूल बनाने के लिए ही उसने प्रत्येक विवरण, प्रत्येक 'डीटेल' का नियोजन एवं सम्प्रथन किया है। जैसा मैंने प्रस्तुत प्रकरण के आरंभ में ही कहा है, वैभव एवं दारिद्र्य की सगाई सम्पादित करने की कठिनाइयाँ मुख्यतया मनोवैज्ञानिक समझी जाएँगी, और 'मृच्छकटिक' के रचयिता ने इस संबंध में यथेष्ट समझदारी, सहानुभूति तथा कलात्मक नैपुण्य का परिचय दिया है। उचित मानसिक तैयारी के बाद, गणिका प्रेमिका ने दरिद्र किन्तु शालीन प्रेमिक के पास, "अकालदुर्दिन" की अवहेलना करते हुए, अभिसार करने का निश्चय किया है—

"उदयन्तु नाम मेघा भवतु निशा वर्षमविरलं पततु।

गणयामि नैव सर्वं दयिताभिमुखेन हृदयेन ॥"

(५।१२)

—'काली घटाएँ भले ही घिर आएँ, रात हो जाय, अविरत वर्षा होती रहे, तो भी प्राणप्यारे के प्रति उत्कंठित हृदय वाली मैं इन बाधाओं की कुछ भी चिन्ता नहीं करती।'

नायिका का यह भौतिक किंवा शारीरिक अभिसार आरंभ होने के पूर्व, नाटककार नायक-नायिका दोनों के मानसिक मिलन की प्रक्रिया पूर्ण कर चुका है। यदि उसने चारुदत्त से अभिसार न करा कर, वसन्तसेना से अभिसार कराया है, तो उसका मन्तव्य स्पष्ट है गणिका 'कुलवधू' का पद पाने के लिए लालायित है, अतएव, उसे ही अपने वैभव की मानसिक ग्रंथि को खोल कर, शिष्ट सम्भ्रान्त (भले ही अभी याचकों को मुँह-माँगा दान देने के कारण वह निर्धन हो गया हो) उच्चकुलोत्पन्न सार्थवाह-पुत्र के पास, अनामंत्रित, अभिसरण करना पड़ेगा अन्यथा गणिका सुन्दरी अपनी सच्चाई का असंदिग्ध प्रमाण और कैसे प्रस्तुत कर सकती?

---

१ "कथं चोरेणापहृतमपि शौण्डीरतया द्यूते हारितमिति भणति। अत एव काम्यते।"

२ "कथं हीनकुसुमादपि सहकारपादपात् मकरन्दबिन्दवो निपतन्ति।"

एक अन्य तथ्य का भी उन्मीलन इसी स्थल पर आवश्यक जान पड़ता है। एक ही समय थोड़े-बहुत अन्तराल के साथ, वसन्तसेना के भवन में दो 'अतिथियों' का आगमन हुआ है—शर्विलक और मैत्रेय। पहला स्वयं प्रेमी है और अपनी प्रेमिका से मिलने तथा यदि सम्भव हो सका तो उसे पत्नी-रूप में अपने साथ ले जाने के लिए आया है, दूसरा एक प्रेमी का दूत है और उसकी प्रेमिका को एक धरोहर के प्रतिदान रूप में बहुमूल्य रत्नावली देने आया है। किन्तु, शर्विलक की प्रिया 'परिचारिका' है जब कि मैत्रेय के मित्र की वल्लभा 'स्वामिनी' है। शर्विलक का उद्देश्य गोपनीय है; इस कारण, वह चुपके से अपनी प्रेयसी से मिलता है और तत्काल, किसी प्रच्छन्न मार्ग से, वसंतसेना तक पहुँचाया जाता है। मैत्रेय का उद्देश्य गोपनीय नहीं, स्पष्ट एवं विज्ञाप्य है क्योंकि वह रत्नावली देने आया है। वह उस प्रत्यक्ष मार्ग से नहीं जाकर, किसी ऐसे अन्तरंग मार्ग से वसन्तसेना की उपस्थिति में लाया गया है जिसके अनुसरण से वह गणिका के वैभवशाली प्रासाद के समस्त प्रकोष्ठों का ऐश्वर्य अपनी आँखों से निहार सके। कदाचित् गण्यमान्य अतिथियों के लिए गणिकाओं के अन्तःपुर में प्रवेश हेतु वही मार्ग अपनाए जाने की प्रथा उस वेश्यावास में प्रचलित रही होगी। वसन्तसेना को जब चेटी ने संवाद सुनाया कि आर्य चारुदत्त के यहाँ से कोई ब्राह्मण आया है, तब वसन्तसेना ने प्रसन्नता-पूर्वक आदेश दिया—"चेटी, दन्धुल के साथ सादर उन्हें अन्दर ले आओ।"[१] अर्थात्, प्रवेश मार्ग का कोई स्पष्ट कथन न कर, वसन्तसेना ने केवल 'सादर' शब्द का प्रयोग किया अतएव, यह अनुमान सगत प्रतीत होता है कि सम्भ्रान्त आगन्तुकों को 'सादर' भीतर ले आने के लिए शायद प्रकोष्ठों को प्रदक्षिणा करने वाला मार्ग ही अपनाया जाता था क्योंकि किसी भी माननीय अतिथि को, अपनी आतिथेया तक पहुँचने के पूर्व, उसके वैभव तथा ऐश्वर्य के प्रत्यक्ष दर्शन से मनसा प्रभावित होना आवश्यक था। विदूषक मैत्रेय इसी मार्ग से वसन्तसेना तक ले जाया गया है। प्रस्तुत प्रसंग में नाटककार ने विभिन्न प्रकोष्ठों की विलास एवं वैभव से पूर्ण सजावट का सजीव वर्णन किया है और मैत्रेय की प्रतिक्रिया यों व्यक्त की है—"क्या यह वेश्या का गृह है अथवा कुबेर के भवन का परिच्छेद है।"[२]

प्रश्न उठता है : मैत्रेय को वसंतसेना का यह सम्पूर्ण ऐश्वर्य दिखाने की क्या आवश्यकता पड़ी? वह उस विलास के उपभोग की अभिलाषा करने

---

१ "तद् हञ्जे! सादर बन्धुलेन सम प्रवेशय एनम्।"

२ "किं तावद् गणिकागृहम्? अथवा कुबेरभवनपरिच्छेदः?"

वाला कोई आगन्तुक तो नहीं था। वह केवल एक सन्देश-वाहक था और उसके स्वामी ने उस वेशवास में पधारने की कोई योजना नहीं बनाई थी। अतएव, उसे प्रकोष्ठों के प्रदर्शन की क्या आवश्यकता अथवा उपयोगिता थी? नाटककार ने इस जिज्ञासा का कोई समाधान नहीं प्रस्तुत किया है। अगले अंक में मैत्रेय ने वसन्तसेना के वैभव का वर्णन भी चारुदत्त से नहीं किया और न चारुदत्त ने ही उस संबंध में कोई जिज्ञासा व्यक्त की। तब, सोचा जा सकता है कि विदूषक के मानस पर यह छाप अंकित करना ही नाटककार का उद्देश्य था कि उसके मित्र तथा स्वामी की प्रेमिका कितनी सम्पत्तिशालिनी है और यह कि चारुदत्त के प्रणय की अभिलाषिणी वसन्तसेना को धन की आकांक्षा नहीं है। लेकिन, वसन्तसेना ने रत्नावली तो ग्रहण कर ही ली, शिष्टाचार में भी एक प्रमाद किया, यह कि उसने मैत्रेय से विश्राम, जल-पान इत्यादि करने के लिए अनुरोध नहीं किया जिस कारण मैत्रेय की उसके प्रति भावना में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।[1] इसी कारण, उसने अगले अंक में वेश्याओं की प्रचुर निन्दा की है और चारुदत्त से, वसन्तसेना से संसर्ग-त्याग का अनुरोध किया है। निन्दा-वाक्यों की सराहना न करते हुए भी, चारुदत्त को यह कहना पड़ा—"जिसके पास धन है, उसकी वसन्तसेना है क्योंकि वेश्या धन से ही वश में की जाती है॥"[2]

अतएव, वसन्तसेना की अतुल सम्पत्ति का विज्ञापन उसके प्रणय की संभावनाओं को परिपोषित न कर, परोक्ष रूप से, विघ्नित करता दिखाई पड़ता है। और इसका समाधान यों किया जा सकता है कि उस प्रणय-मिलन के वास्तविक अवघटन तक शायद नायक की मानसिक तैयारी जो विश्वास की ही प्रसूति होनी चाहिए, शत प्रतिशत पूरी नहीं हो पाई थी, शत-प्रतिशत पूरी हो गई नहीं समझी जानी चाहिए थी। इसी लिए, चारुदत्त को उपर्युद्धृत कथन करना पड़ा "जिसके पास धन है, वसन्तसेना उसकी है," यद्यपि मन में वह सोच रहा था कि वह गुण के वशीभूत हो सकती है "न, गुणहार्यो ह्यसौ जन।" वेश्या की सम्पत्ति उसके प्रणय परिपाक में अन्तिम घड़ी तक विघ्न की छाया, भले ही वह नितान्त क्षीण हो, प्रसारित करती हुई दिखाई पड़ी है। शायद नाटककार विदूषक को वसन्तसेना के अतुल ऐश्वर्य का प्रत्यक्ष परिज्ञान करा कर द्विविध उद्देश्य की सिद्धि करना चाहता था—प्रथम यह कि, जैसा ऊपर कहा

---

१. "एतावत्या श्रद्धया न तया अहं भणित, आर्य मैत्रेय ! विश्रम्यताम् मल्लकेन पानीयमपि पीत्वा गम्यतामिति।" (पंचम अंक)

२ यस्यार्थास्तस्य सा कान्ता, धनहार्यो ह्यसौ जन।" (५।९)

गया है, वसन्तसेना अपनी आसक्ति की सचाई एवं निर्लोभता का प्रमाण मैत्रेय को दे सके और द्वितीय यह कि वसन्तसेना से उसके उचित स्वागत सत्कार मे त्रुटि हो जाने के फलस्वरूप, मैत्रेय उसके प्रणय परिपाक की सभावनाओ को बाधित कर सके। वस्तुत, शायद मैत्रेय कभी भी वसन्तसेना की सच्चाई (bona fides) मे सौ पैसे विश्वास नही कर सका है।

कथा-विकास की दृष्टि से इस अङ्क का मुख्य महत्त्व यह है कि वसन्तसेना ने चारुदत्त के पास अभिसार करने का अविचलायमान संकल्प कर लिया है क्योंकि अपने आभूषणो तथा चारुदत्त की भेजी रत्नावली को भी प्राप्त कर, वह अपने शालीन एव शौण्डीर प्रेमास्पद के सकोच पर समर्थ प्रहार करने के योग्य हो गई है, और दूसरा परोक्ष महत्त्व यह है कि हमे इस बात का पता चल गया है कि आर्यक राजा पालक द्वारा बन्दी बनाया गया है जिसके फलस्वरूप शर्विलक पालक के विरुद्ध विद्रोह की योजना बनाने मे क्रियाशील हो गया है।

पचम अक

पाँचवाँ अङ्क नायक-नायिका के प्रणय मिलन की सुगध से सुवासित है। इसमे वसन्तसेना ने चारुदत्त के घर मे दुर्दिन मयी रात बिताई है जबकि धारासार वर्षा हो रही है और सौदामिनी आकाश मे चमक रही है। नाटक के पूर्वार्ध मे वसन्तसेना तथा चारुदत्त के सयोग सुख की जो योजना अनेक मनोवैज्ञानिक अवरोधो तथा आश्वासनो के बीच नाटककार द्वारा बनाई जाती रही है वह प्रस्तुत अङ्क मे पूर्णत्व को प्राप्त हुई है। किन्तु, मैत्रेय ने वसन्तसेना को रत्नावली देकर लौटने के बाद, वसन्तसेना की लोलुपता का जो वर्णन किया है और वेश्याओ के स्वार्थपूर्ण स्नेह के विरुद्ध जो चारुदत्त को चेतावनी दी है, शायद उसका प्रभाव चारुदत्त के ऊपर पडे बिना नहीं रह पाया है यद्यपि वह प्रभाव वास्तविक नही, ऊपरी ही है। गणिका प्रेम की शिकायतों के उत्तर मे चारुदत्त कहता है—"मित्र! इन निन्दा-वाक्यो का कथन व्यर्थ है, दरिद्रता के कारण मैं ऐसे ही गणिकाओ से विमुख हूँ।"[१] लेकिन, अब तक चारुदत्त का मन वसन्तसेना के प्रेम मे इतना ढल गया है, और उसे इतना मनोवैज्ञानिक आश्वासन मिल चुका है कि अब वह सोचने लगा है कि वसन्तसेना धन की जगह गुण से भी वशीकृत हो सकती है—"न, गुणहार्यो ह्यसौ जन।"

नाटककार ने चारुदत्त के औदार्य को आरम्भ से ही स्थापित करने का प्रयत्न किया है। चारुदत्त उदार है, याचको को तो मुँह माँगा दान देता ही है,

---

१ "वयस्य, अलमिदानी सर्वं परिवादमुक्त्वा अवस्थयैवास्मि निवारित ।"

परोपकार करने वालो को भी अथवा कोई शुभ सुखद सवाद लाने वालो को भी बिना मागे उपहार देता है। प्रस्तुत अक मे उसके चरित्र के इस दाक्षिण्य को चमकाने की ओर भी चेष्टा की गई है। जब विदूषक ने वसन्तसेना के सभावित आगमन की सूचना देकर, यह कहा कि रत्नावली मात्र से सन्तुष्ट न होकर वह वेश्या कुछ और भी मांगने आएगी,[1] तब चारुदत्त ने उत्तर दिया—"मित्र आने दो, सन्तुष्ट होकर जाएगी।"[2] चारुदत्त, ऐसा प्रतीत होता है, वसन्तसेना के सभावित अथवा आसन्न आगमन को अपनी उदारता एव दाक्षिण्य (gallantry) के प्रति एक 'चैलेंज', एक चुनौती समझता है और इसी लिए, उसने विश्वास के साथ कहा कि वह सन्तुष्ट होकर वापस आएगी। प्रश्न है, अब उसके पास क्या सम्पत्ति रह गई है जिससे वह उस गणिका की माँग पूरी करेगा? रत्नावली तो उसने पहले ही उसे भिजवा दी है। कदाचित्, उसका वतमान कथन उसकी उस मानसिक पद्धति का परिचायक है जो गरीबी की गर्दन तोड अनुभूति के बीच भी, याचको के अनुरोध पर वैसे ही दीप्त हो उठती है जैसे राख की ढेर के नीचे पड़ी आग में से कुरेदने पर कोई चमकती चिनगारी हवा मे अकस्मात् उड जाती है। अथवा क्या वह कथन चारुदत्त के इस भीतरी विश्वास की अभिव्यक्ति है कि अब वसतसेना सो-पैसे उसकी हो गई है और उसकी परितुष्टि का प्रश्न ही निरर्थक है?

षष्ठ अंक

छठे अक मे नाटकीय वस्तु विधान की जटिलताओ का अवतरण हुआ है। पाँचवें अङ्क मे नायक नायिका के मिलनोपभोग के बाद ऐसा प्रतिभास होने लगा है जैसे कथा का विकास अब अपेक्षित नही रह गया हो। पर्दे की आड मे परोक्ष रूप से घटित हो रहे राज्य विप्लव के जो सकेत पूर्व के अङ्को मे प्रक्षिप्त हो चुके हैं, उन्हें यदि भुला दिया जाय, तो शायद पाठक अथवा सामाजिक नायक नायिका के शारीरिक मिलन के बाद किसी अन्य फलावाप्ति की कामना नही करता। छठे अक मे पूर्व प्रक्षिप्त सकेतो को किसी परिणाम तक पहुँचाने मे सहायक सिद्ध होने वाले अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्यों का सगुफन किया गया है और प्रधान प्रणय कथा को सत्ता-परिवर्तन वाली अप्रधान कथा के साथ जोडने की सुन्दर योजना की गई है। साथ ही वह छोटी घटना भी यहीं सन्निविष्ट हुई है जो नाटक के वर्तमान अभिधान के लिए कारण बनी है।

वसन्तसेना दूसरे दिन प्रात काल चारुदत्त द्वारा पुष्पकरडक उद्यान मे

---

१ "तद् तर्कयामि रत्नावल्या अपरितुष्टा अपर मार्गयितुमागमिष्यतीति।"

२ "वयस्य! आगच्छतु, परितुष्टा यास्यति।"

बुलाई गई है। वह भी यह जानकर प्रसन्न होती है क्योंकि रात मे वह चारुदत्त को भली-भाँति देख नही सकी है जब कि दिन मे अच्छी तरह उसे देख सकेगी "हञ्जे सुष्ठु न निध्यातो रात्रौ तदद्य, प्रत्यक्ष प्रेक्षिष्ये।" प्रथम अङ्क मे जो अपने को अन्त पुर-प्रवेश के लिए अयोग्य समझती थी,[1] वही अब न केवल सचमुच अन्त पुर मे प्रतिष्ठित है, बल्कि सभी जनो के हृदय मदिर मे भी प्रविष्ट हो गई है।[2] अतएव, वसन्तसेना के मनोरथ फल-प्रसू हो गए हैं। वह स्वय भी अपनी सौभाग्यशालिता की अनुभूति से अनुप्राणित है। रत्नावली दे आने के लिए चेटी को निर्देश करते समय, वह धूता को अपनी बहन बताती है और अपने को उसके वशीभूत विज्ञापित करती है।[3] बालक रोहसेन के सलोने रूप को देख वह आकृष्ट हो गई है और मातृत्व के भाव से अनुप्राणित होकर, उसने अपने सुवर्णालकार से बालक की मिट्टी की गाडी भर दी है। अतएव, पाँचवें अक मे अपने प्रणय वल्लभ के साथ शारीरिक सयोग सुख का आस्वादन तो वह कर चुकी है, किन्तु उसके फलस्वरूप उसकी मानसिक परिस्थिति मे शान्ति, सतुष्टि एव आश्वस्ति विश्रब्धि के जो नवीन तत्व उत्पन्न हो गए हैं, उनकी विज्ञप्ति हमें इसी अक मे मिलती है। अब तक उसने स्वत प्रिय समागम के निमित्त प्रयत्न किया है, दुर्दिन में अनामन्त्रित अभिसार किया है और जैसे पकड से खिसकते हुए सार्थवाह पुत्र को अपने उद्वेगशील यौवन का दान देकर, स्वायत्त करने का उपक्रम किया है। छठे अक मे उसकी अभिलाषाओ की पूर्ति के नवीन आयाम दृष्टिगोचर होते हैं वह अब सबके हृदयो मे प्रविष्ट हो गई है और रोहसेन को अपना पुत्र समझने का सतोष एव गौरव प्राप्त कर चुकी है। और, उसकी इस उपलब्धि का प्रत्यक्ष प्रमाण यह मिला है कि वह चारुदत्त-द्वारा दिन मे विहार के हेतु पुष्पकरण्डक उद्यान मे बुलाई गई है।

किन्तु वसन्तसेना का प्रणय पथ सुकुमार कुसुमों से आकीर्ण मार्ग नहीं बनना चाहिए शकार की लम्पटता का शिकार उसे होना ही है। चारुदत्त ने जीर्णोद्यान की यात्रा के निमित्त बैलगाडी की व्यवस्था कर दी है और दिन में उसके सताये जाने की सभावना ऐसे ही प्रस्तावीत है। नाटककार ने अपनी

---

१ "अभागिनी खल्वहं तव अभ्यन्तरस्य।" (प्रथम अक)

२ "न केवलमभ्यन्तरचतु शालकम् सर्वजनस्यापि हृदय प्रविष्टा।" (पञ्चम अक)

३ "हञ्जे ! गृहाण एतां रत्नावलीम् मम भगिन्यै आर्याधूतायै गत्वा समर्पय वक्तव्यञ्च • इय श्रीचारुदत्तस्य गुणनिर्जिता दासी तदा युष्माकमपि तदेषा तवैव कण्ठाभरणं भवतु रत्नावली।"

प्रवीण कला से इस स्थल को सभाला है और वस्तु विधान मे जटिलताए उत्पन्न कर दी हैं। गाडी पार्श्व द्वार पर आती है, लेकिन वसतसेना शृंगार-सजावट के लिए थोडा समय चाहती है। गाडीवान स्वय प्रवहण का आच्छादन लाना भूल गया है तथा गाडी लेकर, उसे लाने चला जाता है। शकार का चेट स्थावरक तब तक अपनी गाडी लेकर पहुँचता है और वसन्तसेना उसी पर चढ जाती है। उसकी दाहिनी आँख फडकती है जो अशुभ का सूचक है। किन्तु अभी सभी परिस्थियया अनुकूल हैं—सबसे बडी बात यह है कि रात के सयोग-सुख के आस्वादन के बाद वह प्रिय द्वारा आहूत की गई है। इस लिए, वह क्यो रुके? "चारुदत्त के दर्शन से ही सारा अशुभ शकुन दूर हो जाएगा।"[१] उसका यह निश्चय अत्यन्त स्वाभाविक है। इस गलत गाडी पर चढने से वह मृत्यु के मदिर मे प्रवेश कर गई है जबकि प्रिय-समागम की इस व्यवस्थित योजना मे कोई व्यवधान नही पडना चाहिए था। पहले अक मे अकस्मात् वह रात्रि के अन्धकार मे शकार की पकड से बच कर, चारुदत्त के घर मे रक्षित हो गई थी जब कि प्रस्तुत अक मे निश्चित योजना के अनुसार दिन मे चारुदत्त के पास जाती हुई, वह शकार की पकड मे चली गई है।

इसी प्रकार, आर्यक के बन्दीगृह से पलायित हो जाने की घटना अत्यन्त स्वाभाविक रीति से यहाँ नायक नायिका के भाग्य-नृत्य के साथ जुड गई है। शर्विलक द्वारा मुक्त, आतकित तथा असहाय आयक नगर-रक्षको से बचने के लिए सयोगात् चारुदत्त की गाडी पर चढ जाता है जो वसन्तसेना को जीर्णोद्यान में उसके प्रणय-वल्लभ के पास पहुँचाने वाली थी। गाडियो की यह अदला-बदली इस ढग से घटित होती है कि कही कोई सन्देह उत्पन्न नहीं होता। गाडीवान इतने भोले-भाले आदमी हैं कि उनमे से एक (स्थावरक) गाडी के भारीपन को यह समझ कर टाल देता है कि वह उसकी थकावट से परिणमित एक अनुभूति है तथा उसकी गाडी मे कोई व्यक्ति बैठा नहीं है,[२] और दूसरा आयक की जजीरों की ध्वनि को वसतसेना के नूपुरों का अनुरणन समझ लेता है।[३] इस प्रवहण विपर्यय से नायिका तथा नायक का भी भाग्याकाश तिमिरावृत बन जाता है जब कि गोपपुत्र आर्यक का भाग्य-चन्द्र मेघ-पटल का भेदन कर चमकने का आश्वासन प्राप्त कर लेता है। अक के अन्त तक राज्य-विप्लव की ध्वनि स्पष्ट हो गई है। चन्दनक तथा वीरक दो सेनापतियों मे

---

१ "अथवा चारुदत्तस्यैव दर्शनमनिमित्त प्रमार्जयिष्यति।"

२ "अथवा चक्रपरिवृत्तिकया परिश्रान्तस्य भारिक प्रवहण प्रतिभासते।"

३ "कथ नूपुरशब्दः? तदागता खलु आर्या।"

से एक (चन्दनक) दूसरे (वीरक) से आयक के लिए शत्रुता मोल ले लेता है और परिवार समेत विद्रोही नेता के नव-विकसित दल की शक्ति को पृथुल बना देता है। हमें यह भी सूचना मिल जाती है कि विद्रोह का प्रमुख आयोजक शर्विलक भी आयक के पीछे हो लिया है। चन्दनक ने स्पष्टरूप से यह मगल-कामना व्यक्त की है कि आयक अपने शत्रु राजा पालक पर विजय प्राप्त करे—

"अभय तव ददातु हरो विष्णुर्ब्रह्मा रविश्च ।

हत्वा शत्रुपक्ष शुम्भनिशुम्भौ यथा देवी ॥" (६।२७)

अतएव, प्रवहण विपर्यय की घटना ने नाटक के प्रधान वक्तव्य चारुदत्त-वसन्तसेना की प्रणय कथा को परोक्ष कथितव्य राज्य विप्लव के साथ अत्यत स्वाभाविक रीति से शृङ्खलित कर दिया है। वर्धमानक द्वारा इन नगर-रक्षकों को जो यह सूचना दी गई है कि वह गाडी चारुदत्त की है और उसमे वसन्तसेना पुष्पकरडक उद्यान मे चारुदत्त के साथ विहार करने जा रही है वह अभी एक अत्यन्त साधारण-सी बात प्रतीत होती है, किन्तु आगे चलकर नवें अक मे यह सूचना नायक के भाग्य निर्णय मे घातक महत्त्व वाली सिद्ध हुई है।

शिशु रोहसेन की मिट्टी की गाडी को अपने स्वर्णाभूषणो से भरित कर भी, वसन्तसेना अनायास अपने प्रियतम के भाग्य के ऊपर कठोर प्रहार कर गई है। ये आभूषण एक बार चारुदत्त के घर मे धरोहर-रूप में आकर, दैवात् मदनिका-मुक्ति के मूल्य रूप मे वसतसेना के हाथो पहुँच गए थे और अब पुनः वे वसन्तसेना की वात्सल्य-विज्ञप्ति के रूप मे चारुदत्त के घर वापस आ गए हैं। वे रखे जाते हैं मिट्टी की गाडी मे। कदाचित् मिट्टी का सस्पर्श सोने को नही होना चाहिए या और सोने का सस्पर्श मिट्टी को नही होना चाहिए था। वाधा, मिट्टी मिट्टी रह गई होती और सोना सोना रह गया होता ! किन्तु बालक रोहसेन मिट्टी तथा सोने का विरोध समझ नहीं सकता था। इतना अवश्य था कि वह अपनी माता बनने वाली महिला के अगो को भूषणो से सज्जित नही देखना चाहता था। जब रदनिका ने बताया कि आर्या वसतसेना उसकी माता होती है, तब अत्यन्त सरल निश्छल भाव से उसने पूछा था—'रदनिके ! तुम झूठ कहती हो, यदि आर्या हमारी माता हैं तो किस कारण से ये अलकृत हैं ?'[1] मिट्टी और सोने के अन्तविरोध की प्रतीति की क्षीण छाया बालक की इस भोली जिज्ञासा में मुखरित हुई है। तथापि, मचलता तो है

---

१ "रदनिके ! अलीक त्व भणसि, यद्यस्माकमार्या जननी, तत् केन अलङ्कृता ?"

वह सोने की गाडी के लिए ही—"रदनिके ! किं मम एनया मृत्तिकाशकटिकया, तामेव सौवर्णशकटिकां देहि ।" और, वसनसेना मिट्टी के साथ नवस्थापित सबंध को जैसे दृढ बनाने के लिए, वह स्वर्ण-राशि मिट्टी की गाडी मे बलात् भर देती है—'(अलङ्कारैम् ‍र्‍त्‍शकटिका पूरयित्वा) जात ! न रोदिष्यामि, गच्छ, क्रीड । जात ! कारय सौवर्णशकटिकाम् ।"

यही सुवर्ण नवें अक मे चारुदत्त की विपत्ति का मूल कारण बना है जब कि स्वर्णाभूषणो की पोटली न्यायालय के समुख ही मैत्रेय की काँख से नीचे गिर गई है । गरीबी की मिट्टी को, ऐश्वय के सोने के साथ सगाई के सूत्रो मे बँधने के लिए, कदाचित् यह मूल्य चुकाना आवश्यक था ।

सप्तम अक

सातवाँ अक विद्रोही नायक आर्यक को नाटक के प्रधान नायक चारुदत्त से प्रत्यक्ष मिलाने के लिए नियोजित है । यह उन दोनो का प्रथम मिलन है मानो शूरता एव शालीनता, अग्नि एव पानी का मिलन है । नाटककार ने आर्यक के चारुदत्त विषयक मनोभावो का कथन कर, चारुदत्त के गौरव एव लोक-प्रतिष्ठा को स्थापित करने का सुन्दर उद्योग किया है । वधमानक की गाडी तेजी से उद्यान की ओर बढती जा रही है और आयक 'साधु' चारुदत्त के सुने गए गुणों का विचार कर रहा है—'लोग कहते हैं, आर्य चारुदत्त शरणागत-वत्सल हैं । उनसे मिल कर ही घर जाना उचित होगा । वे मुझे विपत्ति सागर से निकला हुआ देखकर प्रसन्न होगे । ऐसी सकटमयी परिस्थिति मे पडी मेरी देह साधु चारुदत्त के गुणो के कारण ही बच पाई है ।" चारुदत्त ने भी सुन रखा था कि गोप पुत्र आर्यक अन्यायपूर्ण रीति से पालक द्वारा बन्दीगृह मे डाल दिया गया है । उसी आयक को अब प्रत्यक्ष देख कर, चारुदत्त प्रसन्न है और उसने प्रेम तथा उदारता के साथ, आयक को अपनी गाडी में उसके घर भिजवा दिया है और यह अनुरोध किया है कि "समय मिले तो मेरी भी याद कीजियेगा ।"[१] इस कथन का उत्तर आर्यक ने यह कहकर दिया है—'क्या अपनी आत्मा को भी कोई भूल सकता है ?"[२] आर्यक चारुदत्त के पुन दर्शन की कामना प्रकट करते चला जाता है—"एव पुनर्दर्शनाय ।'

अतएव, यहाँ नाटक के दोनो नायक मिले हैं और विद्रोही नेता आर्यक चारुदत्त के प्रति गहरी कृतज्ञता के भावो से भरित होकर, प्रस्थान कर गया

१ "स्मर्तव्योऽस्मि कथान्तरेषु भवता ।"
२ "स्वात्मापि विस्मयते ।"

है। पाठकों को, इस प्रकार, नाटककार ने इस बात के लिए मनसा तैयार कर दिया है कि भविष्य में आर्यक विजयी होकर, चारुदत्त के कल्याण में सहायक हो सकेगा। किन्तु, वसन्तसेना के नहीं आने पर वाम नेत्र के स्फुरण से चारुदत्त अप-शकुन से आशङ्कित हो गया है। उसी समय मुंडित श्रमण वहाँ दिखाई पड गया है जिससे चारुदत्त अमंगल घटन की भावना से भयभीत एवं पीडित हो उठता है। चारुदत्त की हृदयगत चचलता से परिचित होने का अवसर प्रदान कर, नाटककार ने वसन्तसेना के भविष्यत् प्राण मोचन वाले प्रकरण के लिए भी सामाजिकों को मनसा तैयार कर दिया है।

इस अंक के सबंध में एक-दो बातें स्मरणीय हैं। चारुदत्त को इस बात की प्रतीति रही है कि आर्यक की रक्षा कर, वह खतरा मोल ले रहा है। आर्यक को गाडी में भिजवा कर, वह राजा के दूतों के भय से उद्विग्न हो गया है। मैत्रेय से वह कहता है—'राजा पालक का महान् अनय कर, इस जगह क्षण भर भी ठहरना उचित नहीं है। हे मित्र! इस बेडी को पुराने कूप में गिरा दो क्योंकि राजा दूत रूपी दृष्टि से कहीं देख न ले।'[1] तथापि, वह आर्यक की रक्षा करने की अपनी नैसर्गिक प्रेरणा का दमन नहीं कर सका, और नवें अङ्क में जब एक एक करके प्रमाण उसके विरुद्ध एकत्र हो रहे थे, जान बूझ कर उसे मौन रह जाना और मृत्यु दण्ड का आस्पद बन जाना पडा।

दूसरी बात सबधित है आर्यक के चारुदत्त द्वारा बचाये जाने की घटना के लिए एक पृथक् अंक की योजना से। आचार्यों का विधान है कि वस्तु संघटन में जो अंश नीरस तथा रंगमंच के लिए अनुचित हो, वह केवल 'सूच्य' है, अर्थात्, उसकी केवल सूचना दे देनी चाहिए। सूच्य वस्तु को पाँच 'अर्थोपक्षेपकों' द्वारा प्रतिपादित करने की व्यवस्था की गई है जिनमें एक 'प्रवेशक' है।[2] यह दो अङ्कों के बीच में होता है और शेष अर्थ की सूचना देता है।[3]

१ "कृत्वैवं मनुजपतेर्महद्व्यलीकं,
स्थातुं हि क्षणमपि न प्रशस्तमस्मिन् ।
मैत्रेय क्षिप निगडं पुराणकूपे
पश्येयुः क्षितिपतयो हि चारदृष्ट्या ॥" (७।८)

२ "नीरसोऽनुचितस्तत्र संसूच्यो वस्तुविस्तरः ।
× × ×
अर्थोपक्षेपकैः सूच्यं पञ्चभिः प्रतिपादयेत् ।
विष्कम्भचूलिकाङ्कास्याङ्कावतारप्रवेशकैः ॥"
(दशरूपक, १।५७।५८)

३ "प्रवेशोऽङ्कद्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः ।" (वही, १।६१)

स्पष्ट है कि प्रस्तुत घटना नीरस नहीं है और उसे 'प्रवेशक' की वस्तु नहीं बनाया जा सकता । पुन, न तो छठे अङ्क मे और न आठवें अक मे ही उसे सम्मिलित किया जा सकता है। छठे अक मे उसे इस कारण नही रखा जा सकता कि यहाँ घटना का दृश्य बदल गया है क्योकि छठे अक मे कार्य स्थल चारुदत्त के घर से सटी सडक है जब कि यहाँ वह पुष्पकरडक जीर्णोद्यान है। इसी प्रकार, आठवें अक मे भी प्रस्तुत वस्तु सम्मिलित नही की जा सकती क्योंकि वसन्तसेना के मोटन जैसे व्यापार से वह सर्वथा भिन्न है। अतएव, इस घटना को प्रमुखता देने के लिए, एक पृथक् अक की योजना आवश्यक थी क्योकि यह नीरस एव सूच्य नहीं है। नाटक के अन्त तक चारुदत्त तथा आर्यक दोनो महत्त्व के नायक, पुन नहीं मिल पाये हैं और इस प्रथम, आकस्मिक मिलन को अलग अक मे रगमच पर प्रदर्शित करना इसलिए अपेक्षणीय था कि सामाजिको के मानस पटल पर चारुदत्त के द्वारा आर्यक के उपकृत होने की भावना स्पष्ट रूप से अकित हो जाय क्योंकि सभी वे भली भाँति, नाटकान्त में, सत्तारूढ आर्यक द्वारा चारुदत्त को कुशावती का राज्य समर्पित किये जाने के मर्म को पूरी तरह समझ सकते थे। पुन यह कथन भी सगत नहीं है कि प्रस्तुत छोटे-मे कथाश को पृथक् अक में नियोजित करना इस लिए आवश्यक था कि नाटककार अपनी रचना को 'प्रकरण' का शास्त्र-सम्मत स्वरूप देना चाहता था। इस सम्बन्ध मे स्मरणीय यह है कि वह नाटक को 'प्रकरण' अथवा अन्य कोई अभिधा प्रदान करने में स्वतन्त्र था और यह कि भरत मुनि के अनुसार, यह आवश्यक नही कि 'प्रकरण' म दस अक रहें ही, पाँच और दस के बीच 'प्रकरण' की रचना के लिए कोई भी अक सख्या गृहीतव्य है।[१]

अतएव, निष्कर्षत यही ठहरता है कि आर्यकापहरण वाली घटना, छोटी होती हुई भी, मूलत एव वस्तुत इतनी महत्त्व-पूर्ण है कि उसे पृथक् अक में उपन्यस्त करना ही स्पृहणीय था।

अष्टम अक

प्रवहण-विपर्यय का एक परिणाम सातवें अक मे चित्रित हुआ है, और दूसरा महत्त्वपूर्ण परिणाम आठवें अक में उपनिबद्ध हुआ है। वसन्तसेना ने क्रूर शकार के पास पहुँच कर मानो अपने को मृत्यु के मुख मे डाल दिया है। शकार की क्रूरता एव लम्पटता का परिचय हमे प्रथम अक मे मिल ही चुका

---

१ "प्रकरणविषये पश्चाद्या दशपरास्तथा चैव।
अङ्काः कर्तव्या स्युर्नानारसभावसयुक्ता ॥" (नाट्यशास्त्र, १८।२८)

है, और अब उसकी प्रत्यक्ष पकड़ मे आकर जब वसतसेना ने उसके सिर पर लात मारी है, तब हमें लगता है जैसे वह मौत को निश्चित न्योता देकर बुला रही है। पहले अक मे जब वह शकार की पकड मे आ गई थी, तब रात के अधकार मे थोडी चालाकी कर, उसका बच निकलना सभव हो गया था। किन्तु, प्रस्तुत प्रसग मे वसतसेना का व्यवहार चालाकी का न होकर स्पष्ट निर्भीकता एव तनिक उद्दण्डता का भी हो गया है। इसका कारण कदाचित् यही है कि अब वह चारुदत्त के प्रणय की अधिकारिणी बन गई है और उसके प्रति अपनी आसक्ति की सचाई की रक्षा के हेतु प्राणो का विसर्जन भी करने के लिए सन्नद्ध है। अतिम क्षणो तक जब मृत्यु का पजा उसे दबोचता है, वह अपनी आसक्ति की पवित्रता एव भव्यता बनाये रह जाती है और गला दबाये जाते समय आर्य चारुदत्त को नमस्कार करती है—'नम आर्यचारुदत्ताय।" डॉ० भाट का कथन है कि इस परिस्थिति मे वसतसेना को, प्रथम अक की अपेक्षा, अधिक चतुरता दिखानी चाहिए थी क्योकि अब वह नितान्त असहाय थी।[१] लेकिन, प्रश्न उठेगा कि वह क्या चतुरता ऐसी पूर्णत प्रतिकूल परिस्थिति मे बरत सकती थी जब विट तथा चेट दोनो उसे शकार की मर्जी पर छोड कर चले गए थे? शकार वासनान्ध था और वसन्तसेना की कोई भी वाक्-चातुरी उसे उसकी कामुकता का आखेट बनने से बचा नही सकती थी। वसन्तसेना इसे समझ गई थी, इसीलिए उसने स्पष्ट कहा—"मैं आम्र-वृक्ष की सेवा कर क्या पलाश को पसन्द कर सकती हूँ?"[२] वह अधूरे मनोरथ लेकर मर रही थी। एक बार मन मे आया कि वह चिल्ला कर रोए। किन्तु, सद्य उसने वह दुर्बल भाव दबा लिया क्योंकि वैसा करना उसके लिए लज्जा का विषय होता।[३] चारुदत्त के प्रणय को विजित करनेवाली वसन्तसेना अब शकार से पराजित होकर चिल्लाने तक में लज्जा का अनुभव कर रही थी। ऐसी पवित्र प्रणयोपासिका कौन सी चतुरता दिखा सकती थी?

---

१ 'Here in the old park when she was completely helpless, there was greater reason for using tact"—'Preface to Mrcchakatika' (1953), पृ० ६२।

२ 'सहकारपादप सेवित्वा न पलाशपादपमङ्गीकरिष्यामि।"

३ "हा आर्यचारुदत्त! एष जन असम्पूर्णमनोरथ एव विपद्यते। तदूर्ध्वमाक्रन्दिष्यामि। अथवा वसन्तसेना ऊर्ध्वमाक्रन्दतीति लज्जनीयमेतत्।"

विट ने वसन्तसेना को शकार की अकेली मर्जी पर छोड कर, निश्चित ही प्रमाद किया है। किन्तु, इस भूल का परिमार्जन यों हो जाता है कि वह सोचता था कि कदाचित् एकान्त पाकर, वसन्तसेना मे काम का वेग उद्दीपित हो जाय और वह शकार की वासना तुष्टि के लिए तत्पर हो जाय।[१] इसी कारण वसन्तसेना को नही डरने के लिए प्रोत्साहित करते हुए, उसने उसे शकार के हाथो धरोहर रूप मे सौंप दिया—"वसन्तसेने ! न भेतव्य न भेतव्यम्। काणेलीमात ! वसन्तसेना तव हस्ते न्यास।" सचाई यह है कि अपनी सम्पूर्ण भलमनसी और नेकनीयती के बावजूद, वह यह तो सोचता ही था कि वसन्तसेना शकार की आसक्ति का प्रत्युत्तर देकर उचित ही करेगी यद्यपि वह सयोग बहुत वरेण्य नही होगा, योग्य से योग्य का मिलन नहीं बनेगा। इसीलिए, जब शकार फूलो से अपने अगो का शृगार करने लगा और कामुकतापूर्ण सबोधनों से वसन्तसेना को बुलाने लगा, तब विट ने यह समझ कर सतोष कर लिया कि शकार कामी है और कोई हिंसा नही करेगा—"अये ! कामी सवृत्त। हृत ! निर्वृत्तोऽस्मि। गच्छामि !" पुन, विट ने शकार के हाथों वसन्तसेना को धरोहर रूप मे छोडकर भी अपने को आश्वस्त कर लिया था। गलती उसने यह कर दी कि वह यह समझ नही सका कि वसन्तसेना वह गणिका नही रह गई थी जिसे रसिक और अरसिक के साथ समान व्यवहार करने की सलाह, उसके द्वारा न केवल पहले अङ्क मे, अपितु इस प्रसङ्ग मे भी, विश्वास के साथ दी जा सके। अतएव, डॉ० भाट का यह कथन कि विट के प्रस्तुत आचरण की सफाई नहीं दी जा सकती, उचित एव सगत नही है।[२]

वसन्तसेना के मोटन के साथ, नाटककार ने आर्यक वाले विद्रोह काण्ड का भी हम स्मरण करा दिया है, और उस गुप्त रीति से नियोजित षड्यन्त्र के सफल विस्फोट की सम्भावनाओं की हमारी प्रतीति अधिक पुष्ट बनती जा रही है। विट वसन्तसेना की हत्या के कारण शकार से झगड पडा है और जाते समय कहता गया है—"अब यहाँ ठहरना उचित नही, जहाँ आर्य

---

१ "तस्मात् करोम्येष विविक्तमस्या विविक्तविश्रम्भरसो हि काम.।" (८।३०)

२ "What is difficult to explain in this episode is the part of the Vita. He is either a fool or probably he did not imagine the depth of Sakara's wickedness"—'Preface To Mrccha, (1953) पृ० ६३।

शर्विलक, चन्दनक इत्यादि गए हैं, वहीं चलूँ ।"[१] राज-कर्मचारियों में भी असन्तोष फैलाने और उन्हें अपने पक्ष में करने की जिस योजना की ओर से शर्विलक ने चौथे अंक में हमें सतर्क कर दिया था, उसकी एक परिणति हम छठे अङ्क के अन्त में देख चुके थे जब चन्दनक ने अपना यह संकल्प प्रकट किया था कि वह पुत्र, भाई तथा समस्त परिवार के सहित आर्यक के पास जाएगा, और यह दूसरी स्पष्ट परिणति अब मिली है जब शकार का परम विश्वस्त सहचर विट यह संकल्प व्यक्त करता है कि वह विद्रोहियों के शिविर में जा मिलेगा ।

इसी प्रकार, नवें अंक की मध्य वस्तु का भी परिज्ञान प्रस्तुत अंक में हो जाता है जब शकार ने यह निश्चय किया है कि वह न्यायालय में जाकर वसन्तसेना की हत्या का आरोप चारुदत्त के विरुद्ध प्रस्तुत करेगा । चेट स्थावरक को अपने प्रासाद की नवनिर्मित वीथिका में बन्दी बनाने की योजना का कथन कर, शकार ने जहाँ अपने प्रस्तावित अभियोग की सचाई प्रकट होने की सम्भावना को निराकृत किया है, वहीं हमें सन्देह ग्रस्त भी कर दिया है कि क्या वह चारुदत्त को दण्डित कराने में अन्तिमरूपेण सफलता प्राप्त कर लेगा जब कि उसके विश्वस्त सहचर तथा उसकी सेवा में रहनेवाले परिचारक इत्यादि उसके गर्हित कुकृत्य का अनुमोदन नहीं कर सके हैं ?

यत प्रवहण विपर्यय के परिणामस्वरूप ही वसन्तसेना के मोटनवाली घटना घटित हुई है, अत एक प्रश्न स्वभावतः यहाँ उत्पन्न होता है—यह कि जब वर्धमानक की गाड़ी जो चारुदत्त के घर से विलम्ब से खुली थी और जिसे नगर रक्षकों द्वारा निरीक्षणार्थ रास्ते में रोक लिया गया था, जीर्णोद्यान में कम से कम आधा घण्टा पहले पहुँच गई तब स्थावरक की गाड़ी जो पहले खुली थी और जो रास्ते में कहीं रोकी नहीं गई, क्यों उसी स्थान पर देर से पहुँची ?

इतना तो निश्चित जान पड़ता है कि दोनों गाड़ियाँ पुष्पकरण्डक उद्यान में देर से पहुँची हैं, जितना समय सामान्यतया लगना चाहिए, उससे अधिक समय लगा है । सातवें अंक के आरम्भ में चारुदत्त वर्धमानक के आने में हुई देर से तनिक चिन्तित-सा हो गया है । गाड़ी का आच्छादन लाना वर्धमानक भूल गया था, यह हम देख ही चुके हैं । चारुदत्त ने अपनी ओर से उस विलम्ब के कारणों का यों अनुमान किया है—"सम्भवतः उसकी गाड़ी

१ "न युक्तमवस्थातुम् । भवतु, यत्र आर्यशर्विलकचन्दनकप्रमुखाः सन्ति, तत्र गच्छामि ।"

के आगे कोई मन्द गति से चलनेवाली गाडी आ रही होगी और वह आगे निकलने का अवसर नहीं पा रहा होगा, पहिया टूट गया होगा जिसे बदलने मे समय लगा होगा, रास टूट गई होगी, मार्ग काटी हुई लकडी की ढेर से अवरुद्ध हो गया होगा, कोई दूसरा रास्ता उसने पकड लिया होगा या चिन्ता छोड कर वह मौज से बैलो को धीरे-धीरे हाँकता होगा ।"[१] छठे अक मे स्थावरक ने भी कहा था कि मार्ग गाँव की अन्य गाडियो से अवरुद्ध था ।[२] अतएव, ऐसा जान पडता है कि वह दिन उस नगरी के लिए बडा व्यस्त और भीड भडक्कम का दिन था तथा इन दोनों गाडियो की यात्रा मे पर्याप्त बाधा पहुँच रही थी । अर्थात् , स्थावरक और वर्धमानक दोनो को समान अवरोधो का सामना करना पडा होगा जब कि वर्धमानक के विलम्ब मे यान का आच्छादन भूल जाने तथा नगर रक्षको के निरीक्षण वाले दो कारण अतिरिक्त समझे जायेंगे । ऐसी अवस्था में, वर्धमानक की गाडी के पहले और स्थावरक की गाडी के पीछे पहुँचने का कारण हो सकता है, इन दोनो चेटो का व्यक्तिगत स्वभाव । इस सम्बन्ध मे डा० भाट का यह अनुमान अतीव सगत प्रतीत होता है कि वर्धमानक अधिक कर्तव्य-परायण होगा और बैलो को पूरी तेजी के साथ हाँकते हुए, किसी ऐसे परोक्ष मार्ग से गया होगा जो आर्यक के बन्दीगृह से पलायित होने के कारण उत्पन्न हलचलो तथा अवरोधो से मुक्त होगा ।[३] स्थावरक का स्वभाव भिन्न होगा । यद्यपि वह बुरा आदमी नहीं

१ "कि यातस्य पुर यानँ प्रवहण तस्यान्तर मार्गते,
भग्नेऽस्ते परिवर्तन प्रकुरुते छिन्नोऽथवा प्रग्रह ।
वर्त्मान्तोज्झितदारुवारितगतिर्मार्गान्तर याचते,
स्वैर प्रेरितगोयुग किमथवा स्वच्छन्दमागच्छति ।।" (७।२)

२ "वध ग्रामशकटै रुद्ध मार्गः ।" (छठा अक)

३ "When the psychology of Vardhamanaka and all these other factors, calculated to detain the car, are taken into consideration, it compels the belief that the dutiful Vardha manaka must have driven the bulls in full speed and in addition, must have found out a short cut to make up for the loss of time as well as to avoid the disturbance likely to be caused by the commotion in the city at Aryaka's escape from the prison. This should explain why Vardhamanaka arrives earlier than Sthavaraka in the old garden"

'Preface To Mrccha ' (1953), पृ० ६१

था, तथापि राजश्यालक का चेट होने के कारण, वह कुछ घमण्डी था जो सड़क पर एकत्र ग्रामीणों को हटाने के हेतु उसके उद्दण्डता-पूर्वक चिल्लाने से प्रत्यक्ष होता है। उसे शायद कोई जल्दी भी नहीं थी। जैसा विट ने कहा है, सम्भव है, वह कहीं छाया में सूर्य के उत्ताप से बचने के लिए ठहर गया हो।[१] उद्यान में पहुँचने पर ही वह यह समझ सका कि उसे प्रचुर विलम्ब हो चुका है जब वह बैलों को त्वरा पूर्वक हाँकने लगा—"भीत खल्वहम्। माध्याह्निक सूर्यः। मा दाणीं कुविदो राजश्यालसस्थानो भविष्यति। तत् त्वरितं वहामि। यातम्, गावौ यातम्।" स्थावरक सस्थानक से भयभीत अवश्य है, लेकिन उसने वहाँ पहुँचने में विलम्ब तो कर ही दिया है और वह विलम्ब उसकी लापरवाही का परिणाम समझा जाएगा यद्यपि नाटककार ने इस प्रकार की कोई स्पष्ट सफाई नहीं दी है। वह स्वभावतः चाहता था कि स्थावरक से पहले वर्धमानक जीर्णोद्यान में पहुँच जाय जिससे आर्यक सुरक्षित होकर, राजा पालक के पतन की योजना को गतिमान् बना सकने में कुछ अधिक समय पा सके। पुनः स्थावरक को विलम्ब से पहुँचाना इसलिए भी वाछनीय था कि प्रस्तुत अंक में वसन्तसेना की हत्या घटित होने वाली थी और उस सम्बन्ध में स्थावरक की उपस्थिति आवश्यक समझी गई। इस प्रसङ्ग में विट तथा स्थावरक के सस्थानक के साथ हुए सवादों का चित्रण भी आवश्यक था जिनसे विट तथा चेट दोनों के चरित्रों के यद्यपि अप्रत्यक्ष अङ्गों पर भी प्रकाश पड़ सके। अन्त में, सवाहक-श्रमण-द्वारा वसन्तसेना के स्वस्थ एवं सुरक्षित होने में पहुँचाई गई सहायता का प्रदर्शन भी अपेक्षणीय था। इन सभी कारणों से, नाटककार तनिक अधिक समय तथा अवकाश चाहता था, और इसीलिए, आर्यक को वर्धमानक की गाड़ी में चारुदत्त के पास पहले पहुँचा कर तथा उसे अपने परिवार एवं विद्रोही सहयोगियों से पर्दे की आड़ में मिलने के लिए सुरक्षित बना कर, वह फुर्सत पा गया। अतएव नाटककार की अपनी सुविन्तित योजना ही थी कि प्रवहण-विपर्यय में वर्धमानक की गाड़ी पहले और स्थावरक की गाड़ी पीछे जीर्णोद्यान में पहुँचे।

तथापि, एक जिज्ञासा बनी रह गई है—यह कि पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में ही चारुदत्त दूसरे दिन अपनी वल्लभा को क्यों मनोरञ्जनार्थ बुलाता? सस्थानक का वहाँ मनबहलाव के हेतु जाना तो समझ में आता है क्योंकि उसे राजा पालक ने यह उद्यान पुरस्कार रूप

१ "सन्तापादतिशयितैर्नगरीमार्गो नरैः शून्यते।
तस्मां भूमिमपास्य च प्रवहणं मन्ये क्वचित् संस्थितम्॥" (८।११)

मे प्रदान किया था।[१] किन्तु, चारुदत्त अपने नवअर्जित प्रणय के उपलालन के निमित्त वहाँ क्यों गया जब वह यह बहुत पहले ही जान गया था कि उसकी वल्लभा क्रूर शकार द्वारा भी याचित एव अभिलषित है? इस सम्बन्ध मे दो समाधेय तथ्य प्रस्तुत किये जा सकते हैं—प्रथम, वह उद्यान बडा विस्तीर्ण था और शकार को दिये जाने पर भी, वह सार्वजनिक आवागमन के लिए प्रतिषिद्ध नहीं हुआ था, इसी से बौद्ध भिक्षु भी वहाँ बावडी मे अपने चीवरो के प्रक्षालनार्थ गया था, द्वितीय, चारुदत्त उस सार्वजनिक उद्यान मे प्रेमिका मिलन की योजना बनाते समय शकार के शत्रु भाव को बिल्कुल भूल ही गया था। किन्तु सबसे बढकर बात यह है कि नाटककार की निजी योजना ही थी—जैसे प्रवहणों के आगे-पीछे पहुँचाने के सम्बन्ध मे वैसे यहाँ भी—कि चारुदत्त वसन्तसेना को उसी उद्यान मे बुलाये जहाँ शकार प्राय मनोविनोद के हेतु आया-जाया करता था क्योकि तभी वसन्तसेना उसकी पकड मे पडती और उसके कठनिपीडन की घटना घटित होती जिसका नायक के निमम भाग्य नृत्य मे इतना महत्वपूर्ण स्थान है।

अतएव, प्रवहण विपर्यय का प्रत्येक विवरण, आठवें अङ्क तक आते-आते अपनी छोटी-मोटी प्रतिभासित होनेवाली असगतियो के बावजूद, अन्तिम विश्लेषण मे सु विचारित एव सु नियोजित सिद्ध होता है।

प्रस्तुत अङ्क के एक नितान्त नगण्य जैसे उल्लेख की ओर हमारा ध्यान आकर्षित होना वाछनीय है। वसन्तसेना के कठनिपीडन के बाद जब विट, चेट को साथ लेकर, लौट रहा था, तब उसने देखा कि रास्ते मे एक पेड गिरा पडा था और उसके नीचे एक स्त्री कुचल कर मरी पडी थी। विट ने उसे अपशकुन समझा और वसन्तसेना की सुरक्षा के विषय मे उसका मन शकित हो उठा—"अनिमित्तमेतत्। यत्सत्य वसन्तसेनां प्रति शकित मे मन।" किन्तु, आगे चलकर, यह छोटी सी घटना चारुदत्त के विरुद्ध वसतसेना की हत्या के आरोप के महत्वपूर्ण प्रमाण-रूप में नियोजित हुई है जब नगर-रक्षक वीरक ने उद्यान से लौटकर न्यायाधीश को बताया कि उसने वहाँ एक मरी हुई स्त्री का शव देखा है।[२] दूसरी महत्व की बात यह लक्षित होती है कि इस अक के प्रारम्भ में सवाहक श्रमण शकार का कोप-भाजन हुआ है और अन्त मे जब वसन्तसेना का मोटन हो गया है, तब वह शकार के लिए भय का कारण

१ "एतन्मम भगिनीपतिना सर्वोद्यानाना प्रवर पुष्पकरडकोद्यान दत्तम्।"
२ "गतोऽस्मि तत्र। दृष्ट च मया स्त्रीकलेवर श्वापदैर्विलुप्यमानम्।"
(अक ९)

बना है उद्यान छोड़ते समय श्रमण को देखने से घबरा कर, उसने कहा है—"अरे मयोशादक ! जिस-जिस रास्ते से मैं जाता हूँ, उसी-उसी रास्ते से यह दुष्ट सन्यासी भी आता दिखाई देता है।"[१] शकार को क्या मालूम था कि यही श्रमण, वसन्तसेना के प्राण-रक्षण मे सहायक होकर, अन्ततोगत्वा चारुदत्त को भी मृत्यु के मुख से बचाने मे कारण बनेगा ! प्रस्तुत अंक मे नाटककार का नियोजनात्मक कौशल बड़ी बारीकी से प्रतिबिम्बित हुआ है। नायिका की (सभव) हत्या, नायक की निश्चित प्राय मृत्यु तथा अनन्त बुराई के बादलो के फट जाने की सभावना—ये समस्त तथ्य यहाँ एक साथ संकेतित एव विज्ञापित हुए हैं।

नवम अंक

छठे अक के बाद से ही प्रत्येक अक किसी न किसी चिन्ता-जनक असमजस अथवा अनिश्चय (Suspense) की स्थिति से पूर्ण है। छठे अक मे गाड़ियो की अदला-बदली से जो चिन्ता उत्पन्न हो जाती है और चारुदत्त की गाड़ी के नगर-रक्षको द्वारा रोके जाने पर तीव्र बन जाती है, वह उस समय तनिक निरस्त हो गई है जब चन्दनक ने गाड़ी को आगे बढ़ने की अनुमति प्रदान कर दी है। सातवें अक मे चारुदत्त जो आर्यक को घर जाने के लिए अपनी गाड़ी दे देता है, वह भी एक चिन्ता-पूर्ण असमजस की स्थिति उत्पन्न कर देता है और अक के अन्त तक ही वह स्थिति तनिक सुलझ पाई है। आठवें अक मे यह चिन्ता की स्थिति अत्यन्त उद्वेग-जनक बन जाती है जब वसन्तसेना का कण्ठ निपीडन होता है और शकार यह वक्तव्य व्यक्त करता है कि वह उस हत्या का आरोप चारुदत्त के ऊपर थोप देगा। लेकिन, सवाहक श्रमण के समय से वहाँ पहुँच जाने तथा वसन्तसेना को स्वस्थ एव सुरक्षित कर देने से, सामाजिक की उद्विग्नता कम हो जाती है और वह सोच लेता है कि शायद शकार का दुष्ट मन्तव्य अन्तत सिद्ध न हो। नवम अक मे शकार की योजना पूर्णत प्रतिफलित दिखाई पड़ती है और हमारी अनिश्चय-पूर्ण चिन्ता क्रमश चरमसीमा को प्राप्त कर गयी है।

न्यायाधीश पहले ही न्याय की कठिनाइयों का वर्णन करता है और न्यायाधीश के गुणो का कथन करते हुए, उसके कर्तव्य का यो परिमापण करता है—"निबलो को पालने वाले, धूर्तो को दण्ड देने वाले तथा धर्म मे ही पूर्ण आसक्ति रखने वाले न्यायाधीश को सत्य की खोज करने तथा राजा का कोप दूर करने मे

---

१ "अविदमादिके ! येन येन गच्छामि मार्गेण, तेनैव एष दुष्ट श्रमणकः शृगालवरापायोदक चीवर गृहीत्वा आगच्छति।"

व्यस्त रहना चाहिए।[1] न्यायाधीश का यह कथन नाटकीय व्यंग्य के आस्वाद से परिपूर्ण है क्योंकि वह स्वतः चारुदत्त के अपराध का सही-सही निर्णय नहीं कर सका है। सामाजिक जानते हैं कि चारुदत्त निर्दोष है यद्यपि शकार की दुष्टता एवं प्रभावशालिता के सम्बन्ध में भी उन्हें जानकारी प्राप्त है। न्यायाधीश पहले शकार का अभियोग उस दिन सुनने से इनकार करता है, लेकिन फिर उसकी धमकी से भयभीत होकर, उसने शकार के अभियोग पर विचार करना स्वीकार कर लिया है। सामाजिक की चिन्ता यहाँ बढ़ जाती है, यह देखकर कि न्यायाधीश के ऊपर शकार का प्रभाव है। वसन्तसेना की माता न्याय-मंडप में आकर जब यह बताती है कि उसकी पुत्री श्रेष्ठिचत्वर में निवास करने वाले आर्य चारुदत्त के पास अपने यौवन का सुख प्राप्त करने गई है, तब शकार की योजना अपने आप ही सफल होती दिखाई पड़ने लग जाती है। शकार कहता है कि—"मेरा विवाद चारुदत्त के साथ है।" चारुदत्त के बुलाये जाने तथा भीतर प्रवेश करने पर, न्यायाधीश उसकी सौम्य आकृति से प्रभावित हो जाता है और यह टिप्पणी करता है कि वैसा रूपवान् व्यक्ति किसी अपराध का भाजन नहीं हो सकता।[2] ऐसा प्रतिभासित होता है जैसे न्यायाधीश सत्य का पता लगाने में सफल हो सकेगा क्योंकि चारुदत्त के प्रति उसकी भावनाएं पहले से ही अनुकूल जान पड़ती हैं। जब चारुदत्त को सम्मानपूर्वक आसन दिया जाता है, तब सामाजिक की प्रतीति थोड़ी स्पष्ट बन जाती है कि चारुदत्त के साथ अन्याय नहीं होने पाएगा। न्यायाधीश स्वतः धर्म संकट में पड़ा है क्योंकि उसे न्याय के लिए चारुदत्त से पूछ ताछ करनी है जब कि भीतर से वह चारुदत्त की भद्रता एवं सज्जनता की प्रतीति से भी अनुप्राणित है। वह कहता है कि आर्य चारुदत्त वह अकार्य कृत्य नहीं कर सकता। शकार जब आरोप लगाता है कि चारुदत्त के साथ पक्षपात हो रहा है, तब न्यायाधीश शकार की ताडना भर्त्सना करता हुआ, चारुदत्त के गुणों के व्याख्यान में एक लम्बी और तनिक आवेशपूर्ण वक्तृता झाड बैठता है—"जिसने इतना दान दिया कि अपने लिए कुछ भी शेष नहीं छोड़ा, वह कल्याण का आश्रय महात्मा चारुदत्त धन के लिए ऐसा कुकर्म कैसे कर सकता है।"[3] अतएव,

---

१ "क्लीबान् पालयिता शठान् व्यथयिता धर्म्योऽतिलोमाविनो द्वाभवि परतत्त्ववद्धहृदयो राज्ञश्च कोपापहः॥" (९।५)

२ "घोणोन्नतं मुखमपाङ्गविशालनेत्रं नैतद्धि भाजनमकारणदूषणानाम्।" (९।१६)

३ "स श्रेयसां कथमिवैकनिधिर्महात्मा पापं करिष्यति धनार्थमवैरिजुष्टम्।" (९।२२)

न्यायाधीश के इस कथन से हमें तनिक यह विश्वास होने लगा है कि चारुदत्त अन्ततः अभियोग से मुक्ति लाभ कर लेगा।

लेकिन, इसी अवसर पर वीरक के प्रवेश करने और चन्दनक के विरुद्ध न्याय की माँग करने की घटना से स्थिति की जटिलता बढ़ जाती है और हमारी चिन्ता गहरी हो जाती है। वीरक बताता है कि बन्दीगृह से बंधन तोड़ कर पलायित होने वाले आर्यक की खोज करते समय, उन्हें एक पर्दे से ढकी गाड़ी मिली जिसके ऊपर वसन्तसेना चढ़ी थी और चारुदत्त के साथ रमण करने के निमित्त पुष्पकरंडक जीर्णोद्यान में जा रही थी। वीरक का यह कथन शकार के अभियोग का अनुमोदन करता है और जब वीरक उद्यान से लौट कर बताता है कि वहाँ एक स्त्री मरी पड़ी थी, तब स्थिति और भी जटिल बन जाती है और न्यायाधीश का धर्म सकट गहरा बन जाता है। उसका कथन है—"अरे! लोक-व्यवहार कितना विषम है। उसे धिक्कार है! जितनी ही सूक्ष्मता से देखता हूँ उतना ही संकट बढ़ता जाता है। मेरी बुद्धि कीचड़ में फँसे बैल के समान पंगु बन गई है।"[१] अब बाध्य होकर, उसे शकार की यह माँग स्वीकार करनी पड़ती है कि चारुदत्त आसन से उतार दिया जाय। जब मैत्रेय वसन्तसेना का सुवर्ण-भांड लेकर वहाँ आता है और शकार के साथ मार-पीट में उसकी काँख से वह भांड नीचे गिर पड़ता है, तब न्यायाधीश को न्याय की रक्षा के निमित्त बाध्यतः यह निर्णय करना पड़ता है कि चारुदत्त अपराधी है। सामाजिक की चिन्ता अब अतीव गहरी बन जाती है और चारुदत्त भी समझ जाता है कि ये सुवर्णाभूषण उसे और भी गहरी विपत्ति में डाल देंगे।[२]

अतएव, नाटककार ने इस अभियोग प्रकरण को बड़े कलात्मक कौशल के सहित सँभाला है। हम यह जानते हैं कि निरपराध नायक झूठ ही उस विपत्ति का आखेट बन रहा है, किन्तु हम ऐसा नहीं सोचते कि न्यायाधीश ने, प्रमाणों को देखते हुए, 'टेकनिकल' रीति से चारुदत्त के प्रति न्याय नहीं किया है। वस्तुतः न्याय की कुर्सी पर बैठ कर, कोई भी ईमानदार व्यक्ति वैसी परिस्थिति में वही करता जो इस न्यायाधीश ने किया है। उसे चारुदत्त-विषयक अपनी भावनाओं का कितना दमन करना पड़ा, यह देखा ही जा चुका

---

१ "यथा यथेदं निपुणं विचार्यते तथा तथा संकटमेव दृश्यते।
अहो! सुसन्ना व्यवहारनीतयो मतिस्तु गौः पङ्कगतेव सीदति॥"
(९।२५)

२ "अयमेवंविधे काले दृष्टो भूषणविस्तरः।
अस्माकं भाग्यवैषम्यात् पतितः पातयिष्यति॥" (९।३१)

है। यह कितना बडा और कितना कठोर व्यग्य है कि चारुदत्त के साथ न्याय के नाम पर, न्याय के अनुरोधो की रक्षा के निमित्त, इतना बडा अन्याय घटित हो गया है।

इस सदर्भ में कतिपय प्रश्न स्वभावतः उत्पन्न होते हैं। पहला प्रश्न यह है कि चारुदत्त ने वसन्तसेना के सबध में वास्तविक स्थिति न्यायालय के समक्ष क्यों नही विज्ञापित कर दी ? दूसरा प्रश्न यह है कि न्यायाधीश का पूरा व्यवहार क्या अनुचित, पक्षपातपूर्ण और इसी लिए, न्याय-निर्णय के महान् आसन के प्रतिकूल नही समझा जाएगा ? तीसरा प्रश्न यह है कि क्या चारुदत्त की, अन्त मे राजा पालक के विरुद्ध, तीव्र निन्दात्मक टिप्पणियाँ उचित कही जाएगी ?

पहले प्रश्न का समाधान नाटककार ने सकेत-पूर्ण रीति से कर दिया है। न्यायालय मे बुलाये जाने पर, चारुदत्त ने मन मे तर्क कर यह सोच लिया कि आर्यक के उसकी गाडी पर पुष्पकरडक उद्यान मे उसके पास आने तथा उसी की गाडी पर घर जानेवाली घटना को शायद राजा पालक ने स्वय देख लिया अथवा किसी दूत ने यह सब समाचार उसे सूचित कर दिया जिस कारण वह न्यायालय मे अपराधी की भाँति बुलाया जा रहा है।[1] अतएव, पूर्ण-प्रसग में चारुदत्त को इस लिए मौन रहना पडा कि सच्ची स्थिति का विज्ञापन करते समय, उसे प्रवहण विपर्यय तथा आर्यक वाली घटना को खोल देना पडता और उस अवस्था में वह राजद्रोह का तथा स्वय आर्यक के प्रति विश्वास-घात का अपराधी बनता। पुन वसन्तसेना के स्वर्णाभरणों के विषय में वह तथ्य का उन्मीलन इस कारण नहीं कर सका कि ऐसा करने से केवल उसकी दीनता ही प्रकट होती। अतएव, उसका स्वाभिमान यहाँ बाधक बन गया। फिर, वह यह भी समझने लगा था कि सत्य का कथन भी न्यायाधिकारियों की असलियत को देखने वाली आँखें नहीं खोल सकेगा।[2] अतएव, चारुदत्त के मौन के लिए पर्याप्त औचित्य नाटककार ने प्रस्तुत किया है।

दूसरे प्रश्न को कतिपय विद्वानो ने बडे तर्क के साथ उपस्थित किया है। उनकी तर्कना के बिन्दु ये हैं—"न्यायाधीश के व्यवहार का अनुमोदन किसी भी प्रकार कर सकना असभव है। यह स्पष्ट है कि लेखक चारुदत्त के प्रति

---

१ चारेक्षणस्य नृपते श्रुतिमागतो वा
येनाहमेवमभियुक्त इव प्रयामि।" (९।९)

२ "दुर्बल नृपतेश्चक्षुर्नैतत् तत्त्व निरीक्षते।
केवल वदतो दैन्यमश्लाघ्य मरण भवेत्॥" (९।३२)

सहानुभूति उत्पन्न करना चाहता था। लेकिन, शकार के अभियोग पर विचार करने से पहले इनकार करना, शकार की धमकी से फिर प्रभावित हो जाना, चारुदत्त के प्रति उसका पक्षपात तथा गुण-गान अथच प्रमाण-विमर्श में उसका हस्तक्षेप—ये सभी बातें विचित्र जान पड़ती हैं, विशेषतया तब जब हम न्यायाधीश द्वारा न्यायाधीश के गुणों की परिगणना का स्मरण करते हैं। उपदेश एवं आचरण में सामञ्जस्य प्राप्त संबन्ध का सुन्दर दृष्टान्त न्यायाधीश ने स्वतः प्रस्तुत किया है।'[1]

इन तर्क बिन्दुओं पर विचार करना आवश्यक है। शकार के अभियोग को विचारार्थ स्वीकार करने से इनकार देने में तथा फिर पीछे स्वीकार कर लेने में शकार के प्रति सामान्य जन-भावना ही मुखरित हुई है। शोधनक शकार को देखकर ही उद्विग्न-सा हो उठता है क्योंकि वह भीतर से समझता है कि शकार का अभियोग मिथ्या दुष्टता पूर्ण तथा अन्याय-मूलक होगा और इसी लिए सबसे पहले ही उसका कार्यार्थी बनकर उपस्थित होना अशुभ का द्योतक है—'हन्त ! प्रथममेव राष्ट्रियश्यालः कार्यार्थी।" न्यायाधीश को जब इस बात की सूचना मिलती है, तब उसकी भी प्राथमिक प्रतिक्रिया ऐसी ही होती है। वह कहता है—'सबसे पहले वही है? जैसे सूर्योदय के समय ग्रहण पड़ने से किसी बड़े आदमी की मृत्यु की आशंका उत्पन्न होती है, वैसे ही आज प्रतिभासित होता है। आज न्याय विचार में व्याकुलता छा जायगी।'[2] इस प्रतीति का परिणाम रहा है न्यायाधीश का यह कथन, "भद्र ! निष्क्रम्य उच्यताम्, गच्छ, अद्य न दृश्यते तव व्यवहार इति।" अतएव, न्यायाधीश का शकार का अभियोग विचारार्थ स्वीकार करने से इनकार कर देना विचित्र' ('Strange') नहीं कहा जा सकता। आज भी न्यायालयों में अभियोगों के सुनने अथवा न सुनने के विषय में न्यायाधीश का निजी निर्णय मात्र होता है और उस निर्णय में उसकी व्यक्तिगत इच्छाएँ तथा भावनाएँ भी अपना प्रभाव डालती हैं। ऐसे ही, शकार की धमकी से प्रभावित हो जाने की बात भी 'विचित्र' नहीं कही जा सकती। न्यायाधीश ने शकार के अभियोग पर विचार करना ही तो स्वीकार किया, ऐसा नहीं कि शकार के भय से वह न्याय विचार में प्रभावित अथवा विचलित हुआ हो। पुनः नाटककार का मन्तव्य यहाँ यह प्रदर्शित करना भी हो सकता है कि

---

१ Dr G K. Bhat. 'Preface to Mrcchakatika', पृ० ६४ ।

२ "कथं प्रथममेव राष्ट्रियश्यालः कार्यार्थी। यथा सूर्योदये उपरागो महापुरुषविनिपातमेव कथयति। शोधनक ! व्याकुलेनाद्य व्यवहारेण भवितव्यम्।"

राजा पालक के शासन मे उसके सगे-सबधी न्याय-कार्य मे भी अनुचित प्रभाव डालने का प्रयत्न किया करते थे जिससे प्रजाजन को समुचित न्याय मिलने की सभावनाएँ बाधित हो जाती थीं। न्यायाधीश की यह अभ्युक्ति कि 'वह मूर्ख सब कुछ कर सकता है",[१] निरर्थक नही समझी जानी चाहिए।

तीसरी तर्कना है, न्यायाधीश द्वारा चारुदत्त के प्रति पक्षपात का प्रदर्शन तथा प्रमाण विमर्श मे हस्तक्षेप ('Intervention in the discussion of evidence') यह सही है कि न्यायाधीश का व्यवहार आरभ मे चारुदत्त के प्रति पक्षपात पूर्ण रहा है। इसका कारण है चारुदत्त का लोक में स्थापित सम्मान। जैसे उज्जयिनी के सकल नागरिक वैसे ही न्यायाधीश भी चारुदत्त के व्यक्तिगत चारित्र के प्रति असीम आदर एव विश्वास का भाव रखते हैं। इसी कारण, न्याय मडप मे प्रवेश करने पर, चारुदत्त को बैठने के लिए आसन दिया गया है जो ऐसा सम्मान है जो सामान्य कार्यार्थियों को न्यायालय मे नही मिला करता। किन्तु, इसे 'विचित्र' अथवा अनुचित भी नहीं कहा जा सकता : आज भी विशिष्ट अभियुक्तों के साथ न्यायालयों मे विशिष्ट व्यवहार होता दिखाई देता है। न्यायाधीश प्रस्तुत मामले मे जानता है कि चारुदत्त सामान्य जाति का अभियुक्त नही है, उसके पीछे चारित्रिक श्रेष्ठता एवं शौण्डीरता की एक परम्परा है जो लोकविश्रुत है। पुन उसकी सौम्य, भव्य रूपाकृति भी उसके-द्वारा हत्या-जैसा अपराध किये जाने की सभावना का निराकरण कर देती है—यह भिन्न बात है कि मुखाकृति मनुष्य के चरित्र का कितना सही एव यथार्थ विज्ञापन करती है।[२] अतएव, न्यायाधीश का चारुदत्त के प्रति ऐसा सम्मान प्रदर्शित करना जो शकार की दृष्टि मे[३] और वैसे ही कतिपय समालोचकों की दृष्टि मे भी पक्षपात जान पडता है आपत्तिजनक अथवा 'विचित्र' नही कहा जाएगा। यह अवश्य कहा जाएगा कि जब शकार ने *न्यायाधीश पर पक्षपात का आरोप लगाया, तब न्यायाधीश* ने तनिक आवेश पूर्ण रीति से चारुदत्त के चरित्रगत गुणों का व्याख्यान किया— धिक् मूर्ख! अधम व्यक्ति होते हुए भी तुम वेदार्थ बोलते हो। तो भी, तुम्हारी जीभ नही गिरती। दुपहरी का तेज सूरज देखते हो और फिर भी तुम्हारी आँखें चौंधिया नहीं जाती? धधकती आग मे हाथ डालते हो और फिर भी वह भस्म नही हो जाता! चारुदत्त पर झूठा अभियोग लगा कर, तुम अपना

---

१ "सर्वमस्य मूर्खस्य सम्भाव्यते।"

२ मिलाइये—'Face is the index of man'

३ 'किं पक्षपातेन व्यवहारो दृश्यते।"

चरित्र दूषित करते हो और-तो भी पृथिवी तुम्हारी देह को अपने भीतर निगल नहीं जाती।"[1] लेकिन, ध्यातव्य यह है कि न्यायाधीश का ऐसा प्रकट, स्पष्ट एवं आवेशमय उद्‌गार तभी हुआ है जब शकार ने उसके ऊपर पक्षपात का आरोप लगाया है। सम्पूर्ण न्याय विचार प्रसंग में यह एक ही स्थल है जब न्यायाधीश ने स्पष्ट ढंग से शकार की ताड़ना की है। शकार ने इस ताड़ना के बाद भी अपना पक्षपात वाला आरोप दुहराया है। किन्तु, तब न्यायाधीश ने उस आरोप का प्रतिवाद नहीं किया है और चारुदत्त से सद्भावमय प्रश्न पूछा है—"आर्य चारुदत्त! क्या वह पैदल गई थी या गाड़ी पर गई थी?"[2] पुनः वीरक के आ जाने और चारुदत्त की गाड़ी वाली बात विदित करने के बाद से न्यायाधीश ने कभी कोई ऐसा कथन नहीं किया जिससे यह ध्वनि निकले कि वह चारुदत्त का पक्षपात कर रहा है। यह सुनने पर कि चारुदत्त की गाड़ी वसन्तसेना को लेकर पुष्पकरंडक जीर्णोद्यान में जा रही थी, न्यायाधीश ने केवल इतना कहा, "चाँदनी वाला यह चन्द्रमा राहु की चपेट में आ गया है, शुद्ध जल करार के गिरने से गदला हो रहा है।"[3] इस कथन में अधिक-से अधिक चारुदत्त के प्रति सहानुभूति का भाव ही खोजा जा सकता है, न कि पक्षपात। वीरक जब उद्यान से लौट कर बताता है कि उसने स्त्री की लाश देखी है, तब न्यायाधीश ने अभियोग की जटिलता एवं अपनी बुद्धि की दडती पंगुता का ही कथन किया है और शकार की नई आपत्ति पर चारुदत्त को आसन से नीचे उतरवा दिया है। मैत्रेय-द्वारा लाये आभूषणों के संबंध में जब चारुदत्त स्पष्ट उत्तर नहीं देता है, तब न्यायाधीश ने अतीव कठोरता पूर्वक उसके शरीर पर बेंत पड़ने की धमकी दी है।[4] अतएव, जैसे जैसे चारुदत्त के विरुद्ध निश्चित प्रतीत होने वाले प्रमाण मिलते गए हैं, वैसे वैसे न्यायाधीश का रुख कड़ा तथा कठोर होता गया है। वीरक को जीर्णोद्यान में जाकर मरी स्त्री का शव देखने का आदेश देना इस बात का सबूत है कि न्यायाधीश सत्य की शोध एवं जानकारी के लिए चिन्तित है। ऐसी अवस्था में यह आरोप कि उसने प्रमाणों के विचार-विमर्श में हस्तक्षेप किया है, धूलिसात् हो जाता

---

१ ९।२१।

२ "आर्यचारुदत्त! किमसौ पद्भ्यां गता उत प्रवहणेनेति?"

३ "एष भो! निर्मलज्योत्स्नो राहुणा ग्रस्यते शशी।
कूलावपातेन प्रसन्नं कलुषायते॥" (९।२४)

४ "इदानीं सुकुमारेऽस्मिन् निःशङ्कं कर्कशा कशाः।
तव गात्रे पतिष्यन्ति सहास्माकं मनोरथैः॥" (९।३६)

है। 'न्यायाधीश के गुणों की परिगणना' जो न्यायाधीश ने यहां कराई है, वह इतनी संतुलित एव व्यापक है कि उसके आधार पर उसके आचरण को दोषार्ह नहीं ठहराया जा सकता। उलटे, जैसा ऊपर कहा गया है, सत्य की शोध मे तत्परता की प्रतिज्ञा करता हुआ भी, न्यायाधीश न्याय के टैकनिकल (औपचारिक) स्वरूप की रक्षा करने मे ही सावधान बन गया है। चारुदत्त के प्रति पक्षपात करने तथा न्याय की स्वाभाविक सरणि मे हस्तक्षेप करने के आधार पर तो यह आरोप कथमपि लगाया ही नही जा सकता कि न्यायाधीश ने उपदेश एव आचरण मे सामान्यत प्राप्त वैषम्य का दृष्टान्त प्रस्तुत किया है।

न्यायाधीश का आचरण यदि आलोच्य होगा तो विपरीत दृष्टि से—अर्थात् इस दृष्टि से कि उसने परिस्थिति जन्य साक्ष्य (Circumstantial evidence) के आधार पर ही चारुदत्त को अपराधी ठहरा दिया है और सत्य का पता लगाने के लिए जो सूक्ष्म विचारणा एव धैर्य आवश्यक था, उसका परिचय नहीं दिया है। चारुदत्त ने कभी स्पष्ट यह स्वीकार नही किया कि उसने वसतसेना की हत्या की है। जब न्यायाधीश ने उसके शरीर पर कशाएँ बरसाये जाने की धमकी दी, तब चारुदत्त ने अत्यत खिन्न तथा क्षुब्ध होकर, यह देखते हुए कि परिस्थितियाँ उसके विरुद्ध चली गई हैं निराशा एव निस्सहायता की मनोभगी मे कहा—'लोक परलोक से अनभिज्ञ मैंने स्त्री या विशेष रति को, शेष शकार कहेगा।"[१] इसी अपूर्ण वाक्य को शकार ने यह जोड कर पूरा कर दिया, "मार डाला" तथा आगे कहा—"अरे! तुम भी कहो कि मैंने वसतसेना की हत्या कर दी।"[२] तब, चारुदत्त ने कहा—"तुमने तो कह ही दिया।"[३] चारुदत्त के इन कथनों से न्यायाधीश ने निश्चय कर लिया कि चारुदत्त ने अपराध स्वीकार कर लिया है। दूसरी बात यह उल्लेखनीय है कि आभूषणों के सम्बन्ध में चारुदत्त ने जो सत्य कथन किये, उनका कोई प्रभाव न्यायाधीश के निर्णय पर नही पड़ा। मुकदमे की सुनवाई के अन्तिम चरणो में जब सभी अधिकारीगण उन अलकारों को चारुदत्त का समझ रहे हैं, तब चारुदत्त ने स्वत स्वीकार किया कि वे आभूषण उसके नहीं, वसतसेना के हैं।[४] पुन उसने यह भी स्वीकार किया कि वे आभूषण

१ 'मया किल नृशसेन लोकद्वयमजानता।
स्त्री रतिश्च विशेषेण शेषमेषोऽभिधास्यति ॥" (९।३८)

२ 'व्यापादिता। अरे! त्वमपि भण मया व्यापादिता इति।"

३ "त्वयैवोक्तम्।"

४ "श्रेष्ठिकायस्थौ—आर्यचारुदत्तीयान्येतानि।
चारुदत्त—न खलु न खलु।

उसके घर से आए है।"[1] ऐसी अवस्था मे, न्यायाधीश को रुक कर विचार करना चाहिए था कि परिणाम को समझते हुए भी चारुदत्त ने जब सत्य-वचन किया है, तब वस्तु-स्थिति कुछ भिन्न ही होगी—कोई कारण होगा जिससे चारुदत्त सही सही बातें बोलने से घबराता होगा। वस्तुत चारुदत्त ने कई बार वह आरोप परोक्षत अस्वीकार भी किया था।[2] अतएव, न्यायाधीश, अपनी सम्पूर्ण सहानुभूति के बावजूद, वसन्तसेना की हत्या के विषय मे लगाये गए आरोप से चारुदत्त को मुक्त नही कर सका। डॉ० देवस्थली का कथन है कि न्यायाधीश स्पष्ट ही यह महसूस करता था कि चारुदत्त आभूषणो के विषय मे कुछ कारणो से सचाई छिपा रहा है और इसीलिए, उसने चारुदत्त को कशाघात का भय दिखाकर सच बोलने के लिए अनुप्रेरित किया।[3] मेरा अपना अभिमत है कि न्यायाधीश यह स्पष्ट महसूस ही नही कर सका कि सचाई उसके समक्ष उपस्थित नही हो रही है कि चारुदत्त जान बूझ कर सत्य का प्रकाशन नही कर रहा है। वह पहले अवश्य यह सोचता था कि चारुदत्त-जैसा उदार एव दानशील महानुभाव वह अकार्य नही कर सकता, किन्तु बाद को स्थिति की जटिलता बढ़ती गई और उसकी बुद्धि घबराने लगी जिससे सत्य का पता लगाना उसके लिए असम्भव हो गया।[4] अतएव, डॉ० देवस्थली का प्रस्तुत कथन स्वीकार नही किया जा सकता। वास्तविकता यह है कि परिस्थिति-जन्य साक्ष्य इतना सबल बन गया कि उसकी लपेट मे न्यायाधीश की नीर क्षीर विमर्शिनी प्रज्ञा कुण्ठित हो गई और अपनी समस्त सद्भावनाओ तथा सहानुभूतियो के बावजूद, वह चारुदत्त को आरोप से मुक्ति नही दिला सका। डॉ० देवस्थली की तकना का अभिप्राय यह है कि न्यायाधीश को कशाघात का भय न दिखाकर, चारुदत्त को सम्पूर्ण वस्तु स्थिति के सम्बन्ध मे वक्तव्य देने के लिए निर्देश करना चाहिए था और ऐसा न करके, न्यायाधीश ने प्रमाद

श्रेष्ठिकायस्थौ—तत् कस्य ?

चारुदत्त—इहात्रभवत्या दुहितु ।"

१ 'आभरणानि आभरणानीति न जाने, किन्त्वस्मद्गृहादानीतानीति जाने।"

२ असम्बद्ध खल्वसि।" (पृ० ४८४), ९।१९; ९।२७-२८, ९।३७।

३ Dr G V. Devasthali Introduction To the Study of Mrcchakatika' (1951), पृ० ८१

४ "अहो ! सुसमा व्यवहारनीतयो मतिस्तु गौः पङ्कगतेव सीदति।"

किया ।[१] लेकिन, सचाई दूसरी ओर है । न्यायाधीश समझ ही नहीं सका कि उसके सामने स्वतः उपस्थित होने वाले प्रमाणों के अतिरिक्त, उनको अतिक्रान्त कर भी, सत्य की अवस्थिति हो सकती है । अतएव, "शास्त्रज्ञ" होते हुए भी (शास्त्रज्ञ तो वह था ही, तभी तो उसने राजा से यह सिफारिश की थी कि मनु के अनुसार पातकी विप्र भी मारा नहीं जा सकता), यह न्यायाधीश न्यायाधिकारियों के लिए आवश्यक अपनी "कपटानुसारकुशली" प्रतिभा की धार को कुण्ठित होने से बचा नहीं सका[२], और यही उसका सबसे बड़ा दोष है ।

उपर्युक्त प्रश्नों मे से तीसरा यह था कि चारुदत्त की राजा के विरुद्ध की गई निन्दात्मक टिप्पणियाँ क्या उचित कही जाएँगी ? विद्वानों ने इन टिप्पणियों को बहुधा नायक के चरित्र के लिए अपकर्ष मूलक बताया है ।[३] लेकिन, जब हम यह विचार करते हैं कि चारुदत्त के साथ यथार्थ न्याय नहीं हो सका, उसके सत्य कथनों का संकेत पकड़ कर मूल सत्य की शोध नहीं की गई, तब हम उसकी भावनाओं पर लगी गहरी चोट का अनुमान कर सकते हैं । राजा पालक ने पुनः न्यायाधीश द्वारा निर्दिष्ट मनु की व्यवस्था को जब अस्वीकृत कर दिया तथा अत्यन्त अपमानपूर्ण रीति से चारुदत्त के शूली पर चढ़ाये जाने की आज्ञा दे दी और अन्ततः उसकी इस उचित प्रार्थना को भी अस्वीकृत कर दिया कि उसे विष खिलाकर या जल मे डुबा कर या यन्त्र अथवा अग्नि के अवलम्ब से मार डाला जाय, तब सात्त्विक वृत्तिवाले, उदार मना तथा धर्म निष्ठ चारुदत्त का धैर्य यदि टूट गया और उसने पालक की क्रूर एवं विवेक विहीन शासन-नीति की निन्दा मे कुछ वाक्य कहे, तो इसमे कोई अनौचित्य नहीं और न इससे उसके चरित्र की शुभ्रता पर कोई कलंक की टीका ही लिपत हो जाती है । यह विस्मरणीय नहीं होना चाहिए कि नाटककार, आदर्श के

---

१ "He should have rather asked him to make a statement on the whole matter" (Devasthali)

२ न्यायाधीश ने न्यायाधिकारियों के गुणों का वर्णन करते हुए कहा था—
"शास्त्रज्ञः कपटानुसारकुशलो वक्ता न च क्रोधनस्तुल्यो मित्रपरस्वकेषु चरितं दृष्ट्वैव दत्तोत्तरः ।।" (९।५)

३ द्रष्टव्य करमरकर द्वारा सम्पादित 'मृच्छ०' की भूमिका, पृ० २६ तथा टिप्पणियाँ, पृ० ४८५, काले द्वारा सम्पादित 'मृच्छ०' की भूमिका, पृ० ६१ तथा टिप्पणियाँ, पृ० १५१, पराजपे-द्वारा सम्पादित 'मृच्छ०' की भूमिका, पृ० ५३, भाट की ' Preface To Mrccha.' पृ० ६४ ६५ ।

प्रकाश वृत्त में अपने नायक को परिवेष्टित करते हुए भी, उसकी मौलिक मानवीयता की रक्षा करना चाहता था और नायक के मुख से दुर्बल प्रतीत होनेवाले एतादृश वाक्यों को रखकर, उसने यही अभीष्ट सम्पन्न किया है। चारुदत्त को कौवे तथा सर्प के दर्शनादि से शंकित दिखाकर भी, नाटककार ने अपने इसी अभीष्ट का उपपालन किया है।[१] अतएव यह टिप्पणी उचित नहीं कि अन्धविश्वास-मूलक अपशकुनों के प्रदर्शन से नाटक के यथार्थवादी परिचित्रण का मेल नहीं बैठता।[२]

नाटकीय वस्तु संघटन में प्रस्तुत अंक का मुख्य महत्त्व नायक की विपत्ति की पराकाष्ठा-प्राप्ति ही है, लेकिन राज्य विप्लव वाले कथानक के सूत्रों का संकेत भी नाटककार ने कलात्मक सौन्दर्य तथा नियोजनात्मक कौशल के साथ कर दिया है। चारुदत्त न्यायालय में बुलाये जाने पर यह सोचता प्रदर्शित किया गया है कि शायद आर्यक वाली घटना का पता राजा को लग गया हो और उसी के सम्बन्ध में वह अपराधी की भाँति वहाँ आहूत किया गया हो। पुन, वीरक को चन्दनक के विरुद्ध न्याय की माँग करते हुए न्यायालय में उपस्थित कर, उसके-द्वारा चारुदत्त के अभियोग की पुष्टि के लिए, चारुदत्त की गाड़ी में वसन्तसेना की उद्यान-यात्रा का संवाद विज्ञापित कराया गया है। इन उल्लेखों से पाठक न केवल यह नहीं भूलने पाया है (जिसकी सम्भावना न्याय विचार के चिन्तापूर्ण भाव-बोझिल वातावरण में अत्यन्त सबल है) अपितु निश्चितरूप से उसे स्मरण करा दिया गया है, कि राज्य विप्लव की प्रकृतियाँ शक्ति एवं आयाम ग्रहण कर रही होंगी। विशेषतः वीरक की आकस्मिक, अप्रत्याशित उपस्थिति नाटककार की सूक्ष्म नियोजन-प्रतिभा का प्रकाशक समझी जाएगी।

दशम अंक

सामाजिक को यद्यपि सम्भावित राज्य परिवर्तन का स्मरण करा दिया गया है, तथापि नवें अंक की समाप्ति तक सम्पूर्ण वातावरण दुःख एवं शोक से आर्द्र बन गया है—यह भिन्न बात है कि आठवें अङ्क में वसन्तसेना के जीवित बच जाने की विज्ञप्ति से प्रकाश की एक किरण भी पहले विकीर्ण कर दी गई है। इसी नैराश्य एवं अनिश्चय की अवस्था में, दसवें अङ्क के प्रारम्भ में चारुदत्त 'वध्य'

---

१ ९।११-१२।

२ 'The display of superstitious omens, especially the presence of a Serpent and a Crow is rather incongruous with the realistic treatment of the author" (Dr G K. Bhat, पृ० ६४)।

की वेश भूषा में चाण्डालों के द्वारा उज्जयिनी की सड़कों पर जुलूस में ले जाया जाता दिखाई पड़ता है। सम्पूर्ण नगरी शोक से विह्वल हो उठी है और नर-नारियों के नयनों से आँसुओं की धाराएँ प्रवाहित हो रही हैं जिससे बादलों के अभाव में ही वर्षा का दृश्य उपस्थित हो गया है।[1] सम्पूर्ण दृश्य अत्यन्त कारुणिक बन गया है, शनैः-शनैः कारुणिक से कारुणिकतर बनता जा रहा है। चारुदत्त के प्रति लोगों की सहानुभूति गहरी होती जा रही है, यह देख कर कि ऐसे पवित्र तथा धर्म-निष्ठ व्यक्ति का कैसा दुःखद अन्त हो रहा है,[2] चाण्डालों से उसे एक 'दान' माँगना पड़ रहा है,[3] अपने पुत्र रोहसेन को देने के लिए उसके पास यज्ञोपवीत के अतिरिक्त कुछ अन्य वस्तु नहीं बच गई है।[4] और सबसे बढ़कर उसे अपने ही मुख से चाण्डालों की घोषणा दुहरानी पड़ रही है कि उसने ही वसन्तसेना को मारा है।[5]

नाटककार के कलात्मक कौशल का दूसरा द्रष्टव्य बिन्दु है, उसकी अनिश्चय अथवा असमञ्जस (Suspense) के तत्त्व की रक्षा की सुन्दर चेष्टा। विविध विवरणों अथवा तथ्यों को उसने इस रीति से नियोजित किया है कि सामाजिक का अनिश्चय क्रमशः घटता बढ़ता रहता है। जब चारुदत्त अपने पुत्र को गले से लगाता है और रोहसेन तथा मैत्रेय दोनों चाण्डालों से प्रार्थना करते हैं कि वे उसके बदले उन्हीं को मार डालें, तब यह अनिश्चय चरम-बिन्दु को प्राप्त हो जाता है। किन्तु, जब इसी समय शकार का भृत्य स्थावरक वहाँ पहुँच जाता और वसन्तसेना की हत्या के सम्बन्ध में सत्य का कथन करता

---

१ "नगरीप्रधानभूते वध्यमाने कृतान्ताज्ञया।
किं रोदिति अन्तरिक्षम् अथवा अनभ्रं पतति वज्रम्॥" (१०।८)
'न च रोदित्यन्तरिक्षं नैवानभ्रं पतति वज्रम्।
महिलासमूहमेघात् निपतति नयनाम्बुधाराभिः॥" (१०।९)

२ "मखशतपरिपूतं गोत्रमुद्भासितं मे सदसि निबिडचैत्यब्रह्मघोषैः पुरस्तात्।
मम मरणदशायां वर्त्तमानस्य पापैस्तदसदृशमनुष्यैर्घुष्यते घोषणायाम्।"
(१०।१२)

३ भो स्वजातिमहत्तर ! इच्छाम्यहं भवतः सकाशात् प्रतिग्रहं कर्त्तुम्।"

४ "किं पुत्राय प्रयच्छामि ? (आत्मानमवलोक्य यज्ञोपवीतं दृष्ट्वा) आ, इदं तावदस्ति मम च"

५ "चारु०—भो भो पौराः ! मया खलु नृशंसेन .
शकारः—व्यापादिता।
चारु०—एवमस्तु।"

है, तब स्थिति थोड़ी सुधरती दिखाई पड़ती है, लगता है जैसे चारुदत्त के प्राण बच जायँ और पाठक की चिन्ता तनिक कम हो जाती है। किन्तु, यह आशा की उगती नई किरण सद्य विलुप्त हो जाती है और पूरा वातावरण पुन तिमिराच्छन्न बन जाता है जब शकार वहाँ आ जाता और अपनी धूर्तता से स्थावरक पर ही अपने स्वर्णभाडार से सोने की चोरी का आरोप मढ़ता है तथा उसमे सफल हो जाता है। शकार ने तब चाण्डालों से यह निर्देश किया है कि वे चारुदत्त और उसके पुत्र दोनों का एक साथ बध कर डालें। उस क्षण हमारी चिन्ता और तीव्र बन गई है। लेकिन, जब चाण्डाल शकार के इस कथन का यह कहते प्रतिवाद करते हैं कि पुत्र के सहित चारुदत्त को मारने की राजाज्ञा उन्हें नही मिली है, तब वह चिन्ता तनिक घट जाती है। और, जब एक चांडाल यह कहता है कि वध्य पुरुष को सहसा नही मारना चाहिए क्योंकि "कभी कोई साधु पुरुष धन देकर वध्य व्यक्ति को छुड़ा लेता है, कभी राजा के पुत्र उत्पन्न हो जाता और महोत्सव के साथ सभी बध्य पुरुषों को मुक्त कर दिया जाता है, कभी बधन स्तम्भ तोड कर हाथी निकल पड़ता है जिसकी घबराहट मे वध्य व्यक्ति मुक्त हो जाता है और कभी राज्य परिवर्तन घटित हो जाता है जिससे सभी बध्य पुरुष मुक्त कर दिये जाते हैं"[1] तब हम यह सोचने और आशा करने लगते हैं कि इनमें से कोई भी बात घटित हो जाती और चारुदत्त बच जाता। जब चारुदत्त यह कहता है कि 'यदि आज राज पुरुषो के वाक्यों से कलकित मेरे धर्म में कुछ प्रभाव हो, तो वसतसेना, जहाँ कही भी स्थित हो, अपने स्वभाव से मेरे कलक को दूर करे"[2] तब हमारी तीव्र अभिलाषा होती है कि वसतसेना वहाँ किसी प्रकार प्रकट हो जाती और चारुदत्त को मृत्यु-मुख से बचा लेती। लेकिन, जब श्मशान का बीभत्स एव भयावना दृश्य उपस्थित हो जाता है,[3] तब हम नितान्त निराश हो जाते हैं—चारुदत्त का यह कथन, "हाय! मैं अभागा मारा गया"

---

१. 'मृच्छ०' (चौखबा, वाराणसी) पृ० ५५९।

२ 'प्रभवति यदि धर्मो दूषितस्यापि मेऽद्य
प्रबलपुरुषवाक्यैर्भाग्यदोषात् कथञ्चित्।
सुरपतिभवनस्था यत्र तत्र स्थिता वा
व्यपनयतु कलङ्कं स्वस्वभावेन सैव ॥" (१०।३४)

३ "अर्द्धकलेवर प्रतिवृत्त कर्षति दीर्घगोमायव।
अडमपि शूलस्य वेन स्वाट्टहासस्य॥" (१०।३१)

हमे त्रस्त एव एक-दम दु ख-विह्वल बना देना है।[१] इस स्थल पर हमारी अनिश्चय पूर्ण चिन्ता अत्यन्त गहरी बन गई है।

लेकिन, ठीक तभी श्रमण एव वसतसेना का प्रवेश होता है जिससे चिन्ता कुछ घट जाती है यद्यपि यह अनिश्चय बना ही रहता है कि वे श्मशान मे ऐसे समय से पहुँच जाएँगे कि चारुदत्त के प्राणों की वलि नही चढाई जा सके। यहाँ चाण्डालो के हाथ से तलवार सहसा गिर गई है और उनके साथ हम भी इस आशा से अनुप्राणित हो उठे हैं कि शायद दैवी हस्तक्षेप से चारुदत्त मृत्यु मुख से मुक्त हो जाय[२] किन्तु, श्रमण तथा वसतसेना के वहाँ तत्काल पहुँच जाने से पाठक असीम तोष एव आनन्द की साँस लेता है—यद्यपि नाटककार ने वहाँ भी एक छोटा मोटा चिन्ता-तत्त्व सन्निविष्ट कर दिया है और वह है, चाडालो का राजा को यह संपूर्ण सवाद सुनाने के लिए जाना तथा साथ ही शकार का वहाँ से चम्पत हो जाना। हमें फिर थोडी चिन्ता हो जाती है कि राजा की प्रतिक्रिया अब क्या होगी अथवा अब ये सब क्या नया कौतुक रचायेंगे? लेकिन, जब चाण्डाल लौट कर विज्ञापित करता है कि राजा ने आज्ञा दी है कि जिसने वसन्तसेना की हत्या की है, उसी को मारा जाय,[३] तब हमारी निविड चिन्ता पूर्णतया निवृत्त हो गई है। उसी समय, राज्य-विप्लव की योजना सफल हो गई है, इस बात की सूचना शर्विलक ने दी और यह भी विज्ञापित कर दिया कि आर्यक ने सिंहासनस्थ हो, कुशावती का राज्य चारुदत्त को सौंप दिया है। अब सवत्र आनन्द एव उल्लास का वातावरण व्याप्त हो गया है। शकार पकड कर चारुदत्त के सामने बन्दी-रूप मे लाया गया है और चारुदत्त की उदारता के फलस्वरूप अनन्त मुक्त कर दिया गया है, उपकार के द्वारा मृत-प्राय बना दिया गया है—"नहि। उपकारहतस्तु कर्तव्य ।"

तथापि, इस व्यापक मोद-मंगल की पृष्ठभूमि मे यह सवाद सुनाई पडता है कि आर्याधूता पति की मृत्यु निश्चित समझकर, जलती चिता मे प्रवेश करने जा रही है। चारुदत्त इस सवाद से मूच्छित हो गिर पडता है। यह नवीन तथ्य पुन हमारी चिन्ता को अत्यन्त गहरी बना देता है। लेकिन, थोडी ही देर में *यह अनिश्चय की अवस्था भी समाप्त हो* जाती है। धूता के प्राण भी

---

१ "हा! हतोऽस्मि मन्दभाग्य ।"

२ "यथैतत्सदृत्तम् तथा तर्कयामि न विपद्यत आर्य चारुदत्त इति। भगवति सह्यवासिनि! प्रसीद प्रसीद। अपि नाम चारुदत्तस्य मोक्षो भवेत् तदानुगृहीत त्वया चाण्डालकुल भवेत् ।"

३. "अरे, नन्वस्माकमीदृशी राजाज्ञप्ति येन सा व्यापादिता त मारयतेति। तदाप्रियसयालमेवाविष्यात ।"

बच जाते हैं और वह तथा वसंतसेना भगिनी के समान गले मिलती हैं। पालिस्क राजा आर्यक के प्रतिनिधि-रूप में वसंतसेना को 'वधू' (कुलकामिनी) का गौरव प्रदान करता है।[१] चारुदत्त की इच्छाओं के अनुरूप चन्दनक, संवाहक तथा चांडाल भी यथा-योग्य पुरस्कार प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार, चिन्ता, असमंजस, उद्विग्नता एवं जटिलता से आकीर्ण रंगमंच अन्ततोगत्वा व्यापक संतोष, कृतज्ञता, मंगल एवं आनन्द के मधुमय आलोक में परिप्लावित हो गया है।

तथापि, नाटक के पर्यवसान के संबंध में कतिपय आपत्तियाँ उठाई गई हैं। डॉ० भाट का कथन है कि अंतिम अंक की प्रभाव-पूर्णता इन बातों से विघ्नित हो गई है—(क) कारुणिकता के अंश का अत्यधिक चित्रण, (ख) थकाने वाली पुनरुक्तियां, (ग) विशेषतया चाण्डाल के हाथ से तलवार के गिर जाने जैसी भावोद्रेक ध्वनि तथा (घ) बिखरे सूत्रों को एकत्र कर सम्पूर्ण नाट्य-व्यापार को समाहृत करने की शीघ्रता।[२] इन आपत्तियों में से प्रत्येक के ऊपर पृथक् पृथक् विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

(क) कारुणिकता के अंश का परिचित्रण अधिक हुआ है, इसमें वैमत्य का अवकाश नहीं है। किन्तु क्या इससे नाटकीय प्रभाव की समग्रता पर आघात पहुँचा है। यही प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। हम अभी दिखा आये हैं कि नाटककार ने इतने कलात्मक कौशल के साथ विविध विवरणों (details) को सगुम्फित किया है कि सामाजिक की चिन्ता पूर्ण असमंजस की मानसिक स्थिति अन्त तक बनी रह जाती है और वह, जैसे सांस रोककर, नायक की मृत्यु का नृत्य रंगमंच पर देखता रह जाता है—अभी कोई घटना ऐसी घटित हो जाती है जिससे ज्ञात होता है कि अब उसके प्राण नहीं बच सकेंगे और अभी कुछ ऐसा घटित हो जाता है जिससे काले मेघ पटल में से कुछ क्षीण प्रकाश रश्मियाँ चमक पड़ती हैं। वस्तुतः नवम अंक के बाद, अब दसवें अंक में चारुदत्त के मृत्यु दण्ड के कार्यान्वयन का प्रकरण परिचित्रित हुआ है। नाटककार को

---

१ "आर्ये ! वसन्तसेने ! परितुष्टो राजा भवतीं वधूशब्देनानुगृह्णाति।"

२ "But the total effect is spoiled by the over doing of pathos, the tiresome repetitions, the melodramatic tone in the act, especially the dropping of the sword from the executioner's hand, and the hurry of winding up the total action by gathering all the scattered threads together" ('Preface To Mrcchakatika' (1953), पृ० ६५)

अन्ततोगत्वा अपनी रचना कर दु खपूर्ण पर्यवसान करना तो अभीष्ट था नही। यहा उसे एक सुन्दर अवसर मिला जब वह सामाजिको की अनिश्चय पूर्ण चिन्ता के चढ़ाव-उतार के लिए बारीकी के साथ अपनी कला का नियोजन कर सकता था। शिथिल मनोवैज्ञानिक पकड वाला तथा पूर्व प्रक्षिप्त संकेत-सूत्रों को भूल जाने वाला नाटककार शायद बध्य नायक को उज्जयिनी की सड़को पर नागरिकों के जुलूस मे घुमाता ही नही, उसने चाण्डालो के साथ चारुदत्त को सीधे दक्षिण श्मशान मे पहुँचा दिया होता और वही श्रमण के समेत वसतसेना को भी समय मे उपस्थित कर देता जिससे चारुदत्त के प्राण रक्षण की हमारी प्रतीक्षा इतनी दारुण एव कष्टदायक नही सिद्ध हुई रहती। किन्तु, तब हमारे नाटकीय आस्वाद मे निश्चितरूपेण कमी हो गई होती। पुन वह अङ्क जिसमे चारुदत्त जैसे उदार, धर्म-निष्ठ एव शील-सकोची नायक की सभावित मृत्यु का चित्रण हुआ हो, कारुणिक नही होता तो और क्या होता? और, कारुणिकता की अनिवार्यता का प्रश्न भी आत्यंतिक नहीं, सापेक्षिक ही माना जाएगा। पाठक-पाठक और भावक-भावक के साथ वह घट बढ सकता है। दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य यह भी ध्यातव्य है कि इस कारुणिकता का उपलालन हुआ है, उदार-नायक की एकान्त निर्दोषता एव सज्जनता, शकार संस्थानक की एकान्त क्रूरता एव लम्पटता और न्याय-चक्र की सत्य-शोधन मे एकान्त विडम्बनीय विफलता की मार्मिक पृष्ठभूमि मे। अतएव, यह अतिशय कारुणिकता मूलत आहूत एव आवश्यक ठहरती है और इसे बिना भित्ति के शून्य लिखित-चित्र की कोटि मे नही डाला जा सकता। 'प्रभाव की समग्रता' (total effect) कारुणिकता के परिपोष से, इस प्रकार, उपलालित ही हुई है, न कि बाधित। अन्याय एव अनाचार के हृदय विदारक परिणामों की निर्मम सभावनाओं की पीठिका मे जब चरम मगल की परिणति होती है, तब प्रभाव निश्चितरूपेण पूर्ण तथा समृद्ध हुआ समझना चाहिए।

एक-दो बातो की ओर इस सबध मे हमारा ध्यान आकर्षित हुआ है। उनमे प्रथम महत्त्व की बात है धूता के चितारोहण की योजना का सन्निवेश। इस प्रसग के प्रश्रय से भी कारुणिकता के तत्त्व के सान्द्र एव निविड बनने मे सहयोग मिला है। धूता के पातिव्रत का प्रकर्ष प्रदर्शित करने के निमित्त चितारोहण की योजना आवश्यक थी। पीठ नीचे करके लेटे हुए चारुदत्त के वक्ष के ऊपर चाण्डाल की तलवार गिरने की प्रतीक्षा वाला दृश्य जितना कारुणिक होगा, उससे थोड़ा-ही कारुणिक दृश्य धूता के, बालक रोहसेन को हटाते हुए चितारोहण की उतावली का होगा। किन्तु, चितारोहण वाला दृश्य यहाँ तनिक बाहर से घुमाया जैसा प्रतीत होता है और हमारा ध्यान वह उस

महत्त्वपूर्ण परिणति के प्रसंग से अनावश्यकरूपेण सम्बन्ध खींच लेता है जहाँ उसे जम कर स्थिर हो जाना चाहिए था। हमारी विवक्षा यह है कि जब नायक नायिका का सुखद मिलन सम्पन्न हो गया है, राज्य-विप्लव को गौरवमयी सफलता मिल चुकी है, कुशावती का राज्य चारुदत्त को सौंपा जा चुका है और शर्विलक अन्याय व्यक्तियों में भी विजय के उपहार बाँट रहा है, तब हमारी मनोधारा का प्रवाह उसी स्थल पर रुक जाना चाहता था और बिना किसी अतिरिक्त विघ्न अथवा अवान्तर प्रक्षेप के, उस मंगलमन्दाकिनी में डूब डूब हो जाना चाहता था।

एक टीकाकार का अभिमत है कि 'मृच्छकटिक' में यह अंश बाद को नीलकण्ठ नामक किसी पंडित ने अपनी ओर से जोड़ दिया और उसे 'उचितपात्रमेलन" का जो अभाव खटक रहा था, उसे पूरा कर दिया।[1] नीलकण्ठ ने प्रस्तुत प्रसंग को नितान्त रोचक बनाया है, इसमें दो मतों का अवकाश नहीं है। धूता की पति भक्ति का संकेत तो पहले भी हो चुका था जब उसने अपनी बहुमूल्य मुक्तावली वसंतसेना के लिए दे दी थी। वसन्तसेना ने भी धूता से बहन का सम्बन्ध जोड़ लिया था[2] अतएव चितारोहण की योजना वाले वर्तमान अंश से, जब इन दोनों नारियों में भगिनी के अनुरूप कण्ठालिंगन घटित होता[3] तथा धूता के उपस्थित जैसे प्रतीत होने वाले पातिव्रत के निदर्शन की विज्ञप्ति होती है तब ऐसा भासित होता है जैसे नीलकण्ठ ने सचमुच ही एक अभाव की पूर्ति की। किन्तु, 'उचितपात्रमेलन' वाली तर्कना की विशेष संगति नहीं दीखती क्योंकि यह आवश्यक नहीं कि नाट्य वस्तु में समय समय पर कोई-न-कोई भूमिका सम्पन्न करने वाले समस्त पात्रों का, फलागम की वेला में, सम्मेलन सम्पन्न करा ही दिया जाय। शायद मूल रचयिता की योजना में चिता-रोहण वाला दृश्य सन्निविष्ट नहीं था, यही मानना उचित प्रतीत होता है। इसके दो कारण दिखाई पड़ते हैं पहला यह कि इन भावाकुल तथा विशेष

१ 'यत्सूर्योदयमयत कविनोचितपात्रमेलनं न कृतम्।
सूत्रधारयुक्तिभिररचयदाचन्द्रकीर्ति नीलकण्ठस्तत्॥"
—डॉ० देवस्थली-द्वारा उद्धृत 'Introduction To the Study of Mrccha' (1951) पृ० १६९।

२ 'हञ्जे! गृहाण एतां रत्नावलीम्, मम भगिन्यै आर्यधूतायै गत्वा समर्पय।" (छठा अंक)

३. "धूता—(वसन्तसेनां दृष्ट्वा) दिष्ट्या कुशलिनी भगिनी?
वसन्त—(इत्यन्योन्यमालिङ्गत) अधुना कुशलिनी संवृत्तास्मि।"
(दसवाँ अंक)

चिन्ता-जनक घड़ियों में जब चारुदत्त मृत्यु के मुख में शनैं-शनैं प्रवेश करता दिखाई पड़ता है, *वह एक बार भी धूता को स्मरण नहीं करता, बल्कि वसन्तसेना* की याद ही उसे सताती रही है,[१] दूसरा यह कि चारुदत्त ने अन्त में जो उपलब्ध मांगलिक फलों की परिगणना कराई है, उसमें धूता-मिलन का कोई उल्लेख नहीं है, यथा—

"हमारे चरित्र में वसन्तसेना की हत्या का जो कलंक लगा था, वह प्रक्षालित हो गया है। चरणों पर गिरा शत्रु शकार मेरे द्वारा रक्षित हो गया है। शत्रुओं का मूलोच्छेद कर प्रिय मित्र आर्यक पृथिवी का शासन कर रहा है। मेरी प्राण प्रिया वसन्तसेना प्राप्त हो गई है। और, मेरे मित्र शर्विलक प्रियवयस्य आर्यक से मिल गए हैं। अब इससे अधिक प्रार्थ्य वस्तु और क्या हो सकती है ?" (१०।५८)

अर्थात्, 'मृच्छ०' की मूल योजना में आर्या धूता के प्रति कोई विशेष महानुभूति अथवा सतर्कता का सन्निवेश नहीं था और इसी लिए, चितारोहण वाले दृश्य का वहाँ विधान नहीं हुआ होगा। डा० देवस्थली जैसे पंडितों की भी यही धारणा है।[२]

(ख) थकाने वाली पुनरुक्तियों का आरोप सही हो सकता है। मैंने एक अन्य प्रकरण में बताया है कि 'मृच्छकटिक' का दुर्बलतम अंश उसकी पुनरुक्तियाँ तथा ऐसा विस्तार है जिस पर सरल की कैंची चलाई जा सकती थी। किन्तु, नाटककार 'व्यास शैली' का अनुरागी प्रतीत होता है और प्रत्येक प्रसंग में विस्तार की सृष्टि कर देता है जिसके लिए, जाने अनजाने, पुनरुक्तियों को प्रश्रय मिल जाता है। प्रस्तुत अङ्क में, किन्तु, पुनरुक्तियों के समावेश में कारुणिकता के उद्रेक में भी सहायता ली गई है। इस दृष्टि से, ये पुनरुक्तियाँ परिमार्जनीय बन जाती हैं। लेकिन, एक-दो स्थल पुनरुक्तियों के कारण दुर्बल तथा कृत्रिम-से प्रतिभासित होते हैं। उदाहरणार्थ शकार को दिये गए क्षमा-दान से संबंधित कथोपकथन नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

"शकार—असहायों के रक्षक ! मुझे बचाओ !

चारुदत्त—शरणागत का भय दूर हो !

शर्विलक—(चारुदत्त से) कहिये इस पापी को क्या दण्ड दें ? × ×

चारुदत्त—क्या जो मैं कहूँगा, वही माना जाएगा !

---

१ "हा प्रिये वसन्तसेने ! (दसवाँ अङ्क)

शशिविमलमयूखशुभ्रदन्ति ! सुरुचिरविद्रुमसन्निभाधरोष्ठि !

तव वदनभवामृतं निपीय कथमवशो ह्ययशोविषं पिबामि ॥" (१०।१३)

२ द्रष्टव्य : 'Introduction To the Study of Mrccha', पृ० ८५-८६

शर्विलक—निश्चय ! निस्सन्देह !

× × × ×

शकार—गर्भदासी पुत्र ! प्रसन्न हो। प्रसन्न हो। फिर कभी नहीं मारूँगा रक्षा करो ! मेरी रक्षा करो !

शर्विलक—× × × आर्य चारुदत्त ! आज्ञा दीजिए। इस पापी के साथ क्या व्यवहार किया जाय ?

चारुदत्त—जो कहूँगा, वही होगा ?

शर्विलक—निस्सन्देह।

चारुदत्त—सच ?

शर्विलक—सच।" ('मृच्छ०', पृ० ५८६-८८)

ऐसी पुनरुक्तियाँ कदाचित् कथोपकथन को नाटकीय बनाने की दृष्टि से समाविष्ट हुई हैं, लेकिन इनमें कृत्रिमता की गंध आ गई है।

(ग) तीसरा आरोप 'मावोद्रेलक ध्वनि' (Melo-dramatic tone) से सम्बन्धित है। 'मावोद्रेलक तत्व' पाश्चात्य नाट्य-शास्त्र की पदावली से गृहीत हुआ है, और उसका अर्थ होता है, सनसनी उत्पन्न करने वाला तत्व जो पाठक अथवा प्रेक्षक के भावों को सहसा एवं शक्ति-पूर्वक हिला देता है—(Sensational element with violent appeals of emotion)। चाण्डाल के हाथ से तलवार का गिर जाना ऐसा ही तत्त्व है। वस्तुत जहाँ अति लौकिक (Supernatural) का प्रवेश होगा, वहाँ इस प्रकार के भावोद्रेलक तत्त्वों की प्राय संभावना बनी रहेगी। आधुनिक मनोदृष्टि हाथ से छूट कर तलवार के नीचे गिर पड़ने में कोई तर्क-संगत कारण नहीं देख पा सकती है यद्यपि मनोवैज्ञानिक स्तर पर इसका समाधान खोज लेना कठिन नहीं है। प्रस्तुत नाटक तो लिखा गया ही था ऐसे समाज के लिए जिसे देवी-देवताओं तथा अदृश्य शक्तियों में अटूट विश्वास था। तलवार के गिर जाने से नाटककार के इस प्रधान अभीष्ट की सिद्धि हुई है कि सामाजिकों की अनिश्चय भय-पूर्ण चिन्ता एवं निराशा कम हो जाय और वे इस प्रतीति से अनुप्राणित हो उठें कि निर्दोष चारुदत्त का वध सम्भव नहीं होगा क्योंकि अदृश्य, अति प्राकृत शक्तियाँ उसे अपाप समझती हैं। इसी प्रकार अन्य अनेक विवरणों में भी मावोद्रेलन का तत्व वर्तमान हो सकता है और है भी, लेकिन इनके संप्रदन से कारुण्य के उद्रेक का उपलालन हुआ है और पाठक के चिन्तापूर्ण असमंजस की आद्योपान्त रक्षा हुई है जिसमें नाटकीयता की आत्मा का परितोष हुआ है। वास्तव में सामान्य भारतीय दृष्टि से मावोद्रेलक तत्त्वों के सन्निवेश में कोई विशेष खटकने वाली बात नहीं देखी जाती, और प्रस्तुत

सदर्भ में यह सोचना कि इसके कारण प्रभाव की समग्रता मे ह्रास हुआ है, एक पाश्चात्य विचार विन्दु को असगत महत्त्व देना समझा जाएगा।

(४) चौथी आपत्ति का आधार है, बिखरे सूत्रों को एकत्र कर, सम्पूर्ण नाट्य-व्यापार को उपसहृत करने की शीघ्रता। तनिक स्वस्थ मन से विचार किया जाय तो यह आरोप 'मृच्छ०' के रचयिता पर लगाया ही नही जा सकता क्योंकि वह जल्दी करना जानता नही, उसे प्रचुर अवकाश है एक-एक सूक्ष्म विवरण को सजाने तथा सुस्फीत बनाने के लिए। 'बिखरे सूत्रों' के सबध मे स्मरणीय यह है कि चारुदत्त को वध-स्थल पर पहुँचा देने के बाद, एक महत्त्व का सूत्र शेष रह जाता है, वसन्तसेना को सवाहक श्रमण के साथ वहाँ पहुँचा देना। प्रश्न यह है कि चारुदत्त की सभावित मृत्यु की योजना कब तक और क्योकर टाली जा सकती थी ? उत्पन्न परिस्थितियो के बीच नाटककार सभी सभव उपक्रम कर चुका और इसका उसे मूल्य चुकाना पड़ा, कारुण्य के अतिशय उद्रेक के रूप मे जिसके लिए उसकी आलोचना की गई है। तब यदि उसने वसन्तसेना को शीघ्रता से श्मशान मे पहुँचा दिया जिससे चारुदत्त के ऊपर मे मृत्यु की लटकती छाया का अविलब अपनयन हो गया, तो इसमे कौन सी सगत आपत्ति उठाई जा सकती है ? पुन, चारुदत्त-वसन्तसेना के मिलन के बाद, ठीक उसी आनन्द की नवोपपन्न शुभ घडी मे राज्य-परिवर्तन की सूचना नही मिलती तो और क्या सगत विकल्प सभव था ? प्रधान कथानक के समाहार के साथ इस गौण कथानक का समाहार भी आवश्यक था। फिर, राज्य-विप्लव का पूरा काण्ड पर्दे के भीतर ही तो सम्पन्न हो रहा था। तो, अब, जब वसन्तसेना एव चारुदत्त मिल गए, राज्य-परिवर्तन को अधिक समय तक टाला नहीं जा सकता था क्योंकि शर्विलक तथा आर्यक दोनों के लिए वसन्तसेना एव चारुदत्त के प्रति शीघ्रातिशीघ्र अपने पुराने ऋण का परिशोधन करना आवश्यक था, और इस मिलनानन्द के आरम्भिक मुहूर्त्त को छोडकर, अन्य अवसर खोजा नहीं जा सकता था जब कुशावती नगरी के राज्य के चारुदत्त को समर्पित किये जाने का सुखद सवाद विज्ञापित किया जाता। जहाँ तक धूता के अग्नि प्रवेश वाले दृश्य का सबध है, हम अभी दिखा चुके हैं कि यह दृश्य अनावश्यक रूप से यहाँ ठुसाया-जैसा प्रतीत होता है और इस सूत्र को समेटने की वाछनीयता असन्दिग्ध नहीं समझी जाएगी। इसलिए, हम भी यही मानते हैं कि नीलकठ अथवा किसी अन्य प्रक्षेपक ने धूता के पातिव्रत को स्फुट प्रकाश में लाने के निमित्त यह प्रसग अपनी कुशल लेखनी से इसमे जोड दिया होगा।

---

(६) मृच्छकटिक की स्थापत्य-कला

'मृच्छकटिक' के वस्तु-सङ्घटन की विस्तृत समीक्षा पिछले प्रकरण में प्रस्तुत की गई है। वर्तमान परिच्छेद में उसके सविधानक शिल्प के सम्बन्ध में, समग्ररूप से, कतिपय प्रश्नों पर विचार-विमर्श किया गया है।

(१)

संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् डॉ० राइडर ने 'मृच्छ०' के अपने अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में नाटक की सूक्ष्म, सुन्दर समीक्षा भी प्रस्तुत की थी।[१] इसी सिलसिले में उन्होंने 'मृच्छ०' के स्थापत्य के विषय में भी एक-दो महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाये हैं। सबसे पहली आपत्ति उनकी यह है कि नाटक बहुत लम्बा हो गया है जिससे वस्तु-निर्माण में शैथिल्य आ गया है। नाटक की लम्बाई अवश्य अधिक है और इसमें वैमत्य का अवकाश नहीं है। नाटककार 'प्रकरण' की रचना करना चाहता था, इसलिए, रचना की लम्बाई कुछ स्वभावतः बढ़ गई। पुनः, कालिदास ने 'अभिज्ञानशाकुन्तल' को सात अंकों में समाप्त कर, शायद शूद्रक को ज्ञात-अज्ञात प्रेरणा प्रदान की थी कि उनका एकमात्र 'प्रकरण' उससे लम्बा होना ही चाहिए क्योंकि उसमें नानाविध चित्रों तथा पहलों का समावेश होना नियोजित था। तथापि, 'मृच्छ' का विस्तार खटकता अवश्य है क्योंकि कई स्थलों पर वह अनावश्यक एवं अना-काङ्क्षित प्रतीत होता है जिसकी चर्चा मैंने प्रथम दो परिच्छेदों में की है। ऐसा विश्वास करने की प्रेरणा होती है कि नाटक के पाठ में प्रक्षेप भी किये जाते रहे और इस कारण भी, उसका कलेवर स्थूल बन गया। नाटयवस्तु सामान्य नागरी जीवन से सबद्ध होने के कारण लोकप्रिय थी तथा इस लोक-प्रियता ने प्रक्षेपाओं को अपनी पंक्तियाँ अथवा अवतरण प्राप्त प्रति में जोड़ देने के लिए प्रोत्साहित किया जिससे नाटक उनके मनोनुकूल सिद्ध हो सके। लोकप्रिय रचनाओं में प्रक्षेपों का समावेश प्रायः पाया गया है। जहाँ विस्तार अनाहूत एवं अनावश्यक हो गया है, वहाँ नाटक में शिथिलता अवश्य आ गई है। रंगमंचीय अभिनय की दृष्टि से 'मृच्छ०' की सबसे प्रधान त्रुटि यही है कि एक बैठक में इसका अभिनय समाप्त नहीं हो सकता, अपितु दो बैठकें इसके लिए आवश्यक हो जाएँगी। किन्तु, संस्कृत के अन्य प्रसिद्ध सनाटकीय

---

१ Dr A. W Ryder: 'The Little clay Cart', Harvard Oriental Series, Volume 9

नाटकों के विषय में भी यही स्थिति है और इसका एक मुख्य कारण यह रहा है कि नाटक भी वहाँ 'काव्य' माना गया जिसमें 'वर्णन' की प्रवृत्ति को प्रश्रय मिला तथा रङ्गमञ्चीय अभिनय के अनुरोधों की अवहेलना हुई (यद्यपि 'मृच्छ०' में तो घटना-बाहुल्य से वर्णन की शिथिलता कुछ कम अवश्य हुई है)।

लेकिन, मूल प्रश्न यह है कि क्या प्रस्तुत विस्तार से 'मृच्छ०' के नाटकीय निर्माण को आघात पहुँचा है ? डॉ० राइडर का कथन है कि "दूसरे से पाचवें अंक तक नाटक का मुख्य कार्य रुकता चला जाता है और हम लगभग भूल-से जाते हैं कि चारुदत्त एवं वसन्तसेना का प्रणय ही मूल कथानक है। × × यद्यपि दूसरा अंक चातुर्यपूर्ण है, तथापि मुख्य कथा अथवा आभूषणों वाली कहानी से इसका कोई वास्तविक सम्बन्ध नहीं है।"[1]

पंडितों ने इस आपत्ति का निराकरण किया है यह प्रदर्शित करते हुए कि दूसरे से पाँचवें अंक तक की वस्तु परस्पर सबद्ध है। उदाहरणत, यह दिखलाया गया है कि चारुदत्त के घर में तोड़ी गई सेंध मदनिका शर्विलक वाली दूसरी प्रेम कथा से सबधित है, आभूषण की चोरी चारुदत्त तथा वसन्तसेना के प्रेम सबध को और भी गाढ़ा बनाने में सहायक होती है, पहले अंक में अलकार की जो धरोहर रखी गई थी, वही तीसरे अंक में चोरी चली गई, चुराये हुए आभूषण के ही बदले में चौथे अंक में रत्नावली (धूता की) वसन्तसेना को लौटाई गई और तब उसी से, पाचवें अंक में, वसन्तसेना के चारुदत्त के घर दुर्दिनमयी सध्या में अभिसार करने की प्रेरणा मिली। इसी प्रकार, यह भी दिखाया गया है कि इन समस्त दृश्यों के मूल में निश्चित प्रयोजन या उद्देश्य रहा है, यथा—वसन्तसेना ने चारुदत्त के पास अलकार का न्यास मुख्यत- इसलिए रखा कि चारुदत्त के घर पुन जाने का उसे बहाना मिल जाय, शर्विलक ने सेंध इसलिए तोड़ी कि वह अपनी प्रेयसी मदनिका की मुक्ति के लिए धन प्राप्त करना चाहता था, चारुदत्त ने रत्नावली वसन्तसेना के पास इसलिए भेजी कि उसे अपनी ईमानदारी का सबूत देना जरूरी था।[2]

पिछले परिच्छेद में हमने स्वय उपर्युक्त अंकों का औचित्य प्रदर्शित किया है। किन्तु राइडर की आपत्ति दूसरी है, और हमारी समझ में वह उचित एव सारपूर्ण है। राइडर की आपत्ति यह नहीं है कि इन अंकों की वस्तु बिल्कुल असबद्ध अथवा असगत है, अपितु यह है कि वसन्तसेना तथा चारुदत्त

---

१ राइडर वही, पृ० xxvii

२ Dr G K. Bhat 'Preface To Mrcch (1953) पृ० १५४–५५।

के प्रणय की मूल कथा की प्रगति मे इससे ठहराव उत्पन्न हो जाता है "The main action halts through acts II to V, and × × × we almost forget that the main plot concerns the love of Vasantasena and Carudatta" राइडर का यह कथन सही है। जुआरियो वाला पूरा दृश्य ठहराव उत्पन्न करता है। हमने पहले कहा है कि इस दृश्य से नाटक के यथार्थवादी वातावरण का रग उभरता है, सवाहक की दुर्गति से उसके श्रमण बनने के स्वरूप को उचित आधार मिल जाता है और दर्दुरक की एक उक्ति से पता चलता है कि राज विद्रोह की धुधुआती आग मे निम्न वर्ग के लोगो का सहयोग मिल रहा है। तथापि, मुख्य प्रेम कहानी की प्रगति मे ठहराव तो आ ही गया है और यथार्थवादी रग मे गहराई के लिए शूद्रक को यह अनिवार्य मूल्य चुकाना पडा है। आभूषणो की कहानी मे भी इस अंक का कोई प्रकृत सबध नही है। वैसे ही, कर्णपूरक वाली कहानी भी मूल कथा प्रवाह से विच्छिन्न है—भले चारुदत्त के द्वारा दिये गये उत्तरीय का थोडा महत्त्व वसतसेना की आसक्ति के लिए रेखाकित किया जा सके। यह सही है कि इस अक मे सवाहक का प्रवेश आवश्यक था क्योंकि आठवे अक मे इसी सवाहक सन्यासी ने वसतसेना के प्राणो की रक्षा की, उसका उपकृत होकर। किन्तु, तब उसको समाविष्ट कर भी, अक का विस्तार बचाया जा सकता था।

इसी प्रकार, तीसरे तथा चौथे अकों मे भी मुख्य कथा प्रवाह रुकता ठहरता आगे बढ़ पाया है। सधिच्छेद से मदनिका शर्विलक वाली प्रेम कहानी को आधार मिला है और चारुदत्त का सत्यनिष्ठ चरित्र आलोकित हुआ है। किन्तु, जैसा हमने पूर्व परिच्छेद मे कहा है, यह सपूर्ण वस्तु 'प्रदर्शित' न होकर 'सूचित' की जा सकती थी और नाटक का विस्तार बचाया जा सकता था। यहाँ भी वातावरण के निर्माण के लिए प्रकृत कथा प्रवाह के ठहराव का मूल्य नाटककार को चुकाना पड़ा। चौथे अक मे वसतसेना के महल का वर्णन विशुद्ध कथा दृष्टि से आहूत एव आवश्यक नही था, और जो भी औचित्य उसका रहा हो जैसा हमने यथास्थान दिखाया भी है। सस्कृत नाटककार काव्यात्मक वर्णनों के अनुरागी थे और शूद्रक भी, अपने सम्पूर्ण नाटकीय तथा वैविध्य के बावजूद, इस लोभ का सवरण नही कर सका। राइडर या कोई भी पाश्चात्य विद्वान् जो नाटकीय गठन के विषय मे भिन्न प्रतिमान रखता है, यह टिप्पणी करने के लिए मजबूर होगा कि इन अकों मे नाटय कार्य का प्रवाह मद तथा ठहराव पूर्ण बन गया है, और वह अपनी जगह पर नितान्त सही एव समर्थनीय माना जाएगा।

डॉ० राइडर की दूसरी टिप्पणी यह है कि 'मृच्छ०' मे दो नाटकों की सामग्री सन्निविष्ट है पहले अङ्क का अधिकाश भाग, छठवें से दसवें अक तक मिलाकर, एक सगत एव चातुरीपूर्ण कथानक बन सकता है जब कि पहले अङ्क के शेषाश को तीसरे से पांचवें अक तक के साथ मिलाकर, एक हल्के ढग के मनोरजक सुखान्तकी की रचना की जा सकती है।[१] स्पष्ट है कि राइडर के मतानुसार, शकार के कारण उत्पन्न होनेवाली उलझनो को मिलाकर, एक जटिल नाटक की सृष्टि की जा सकती है जिसमे चारुदत्त के प्राण जाते जाते बच जायें और आभूषण की धरोहर, उसकी चोरी तथा पुन प्राप्ति एव चारुदत्त वसन्तसेना के मिलन को मिलाकर, एक हलके-फुल्के मनोरञ्जक नाटक की रचना हो सकती है। राइडर का यह कथन अपने ढग से सगत जान पडता है क्योंकि 'मृच्छ०' के प्रस्तुत वस्तु सघटन मे जो जटिलताएं अवतीर्ण हो गई हैं और जिनके कारण नाटककार के रचना-कौशल को कठिन परीक्षा की आंच मे तपना पडा है, उनके निराकरण के लिए सम्पूर्ण सामग्री को, कुछ इन्ही रेखाओं के आधार पर, दो पृथक् कथानको मे बांटना ही उचित एव स्पृहणीय होता। नाटक अभी जैसे उपलब्ध है, उस रूप मे पांचवें अङ्क की समाप्ति तक एक ठहराव आ ही जाता है क्योंकि तब तक नायक-नायिका का शारीरिक मिलन सम्पन्न हो गया है। और इसी कारण, छठे अक के आरम्भ मे जब यह सूचना मिलती है कि चारुदत्त पुष्पकरडक उद्यान मे चला गया है तथा वसन्त-सेना को भी वहीं बुला गया है जिसके लिए गाडी ठीक की जा रही है, तब सामान्य पाठक अथवा प्रेक्षक को लगता है जैसे वह उद्यान यात्रा कृत्रिम ढग से कराई जा रही है। कथा-प्रवाह को जो एक निश्चित ठहराव पर पहुँच गया है, जान-बूझ कर किसी परोक्ष प्रयोजन से

---

१ "Indeed, we have in the Little clay Cart the material for two plays The larger part of act I forms with acts VI to X a consistent and ingenious plot, while the remainder of act I migth be combined with acts III to V to make a pleasing comedy of lighter tone." (Ryder)

एक दूसरे अमेरिकन समीक्षक का भी कथन है कि 'मृच्छ०' में दो नाटकों का समावेश है—

'Historically speaking, it comes extremely close to being two plays" (*Henry W Wells* - 'The classical Drama of India'–1963–पृ० १३२)

आगे बढाया जा रहा है। किन्तु, 'परोक्ष प्रयोजन' तनिक विचार करने से प्रत्यक्ष हो जाता है। शकार की दुष्टतापूर्ण प्रतिस्पर्धा को चरमबिन्दु तक पहुँचा कर, चारुदत्त तथा वसन्तसेना के प्रणय परिपाक को शारीरिक धरातल से ऊँचा उठाकर गहरे भावात्मक धरातल पर प्रतिष्ठित करना जहाँ वसन्तसेना केवल पूर्णकामा प्रेयसी न रहे, अपितु वैध 'वधू' का पद प्राप्त कर ले—यही वह प्रयोजन था जो पाँचवें अङ्क तक उभार में नहीं आ सका था। यदि शकार की लम्पटता तथा दुष्टता का चित्र पहले अङ्क मे नही समाविष्ट हुआ होता, तो शायद पाँचवे अंक के बाद कथानक बिलकुल ही आगे नहीं बढ पाया होता। राजनीतिक विप्लव के सकेत प्रकीर्ण कर भी, नाटककार कथानक को आगे बढाने के लिए मजबूर था—यह भिन्न बात है कि वह ऐसा करना चाहता ही था। और इसी कारण, जब पाँचवें अङ्क के बाद कहानी बढी है एक स्पष्ट ठहराव के बाद, तब हमे ऐसा लगता है जैसे यह ठहराव पैदा कर, नाटककार ने अपनी कुशल प्रतिभा के प्रति न्याय नहीं किया। दसवें अंक तक पहुँच कर ही, उसके वास्तविक प्रयोजन की सिद्धि हो सकती थी। तब, जिस ढग से पाचवाँ अक समाप्त हुआ है—'अहा! इन्द्रधनुष! प्रिये! देखो तो! बिजली जैसी जीभ हिलाकर, इन्द्रधनुष जैसी विशाल भुजाएँ फैलाकर, काले सघन बादलों जैसी दाढी फहराकर, आकाश ने मुँह खोलकर जँभाई ली है। आओ, अब भीतर चलें।''—उस ढग से उसे समाप्त नहीं होना चाहिए था। अगले अक की स्पष्ट अपेक्षा अथवा कामना वहाँ सूचित अथवा द्योतित होनी चाहिए थी। अतएव, विशुद्ध स्थापत्य दृष्टि से, वस्तु विन्यास के सौष्ठव की पूर्ण रक्षा की दृष्टि से शूद्रक की कला यहाँ चूक गई है।

तथापि, नाटक की समग्र सम्पूर्णता पर विचार करने से जान पड़ता है कि इसके विभिन्न अङ्क अथवा दृश्य एक सुनिश्चित योजना मे परस्पर बँधे हुए हैं तथा उनमे से किसी को काट कर बाहर निकाला नहीं जा सकता। एक वर्तमान अमेरिकन समीक्षक ने ठीक ही कहा है—'सम्पूर्ण नाटक अपने घटक अवयवों के योगफल से बहुत अधिक, एक सुसगतिपूर्ण रचना है। तब, यद्यपि पहला भाग दूसरे भाग की निरपेक्षता में भी रगमच पर प्रस्तुत किया जा सकता है, तथापि दूसरा भाग पहले भाग से स्वतन्त्र रूप मे उपस्थित नहीं किया जा सकता। नाटक से उत्पन्न होने वाला प्रभाव पृथक्शः नहीं समग्रत, विभिन्न दृश्यों के सयोगरूप मे परिणमित होता है। अत, इन दोनों भागों का सम्बन्ध किसी प्रतिमा और उसके आधार का नहीं है, अपितु यह क्रमश विकसित होने वाले किसी जीव पिण्ड का सबध है तने से अनेक शाखाएं उगी हैं और उनमें,

फिर, पत्तियों का प्रचुर प्रादुर्भाव हो गया है जो अपनी समृद्धि से हमें विस्मय में डाल देता है।"[१]

अर्थात्, नाटक की लम्बाई तथा उसके पूर्वार्ध में पाई जाने वाली शिथिलता के बावजूद, समग्र प्रभाव की दृष्टि से कथानक के किसी विशेष स्थल या प्रसङ्ग को एकदम काट कर हटाया नहीं जा सकता क्योंकि वैसा करने से नाटक की मूल 'स्पिरिट' अव्याहत नहीं रह पायेगी। पंडितों ने ठीक ही कहा है कि अभिनय की सुविधा के लिए कथानक को लगभग तीस प्रतिशत घटा देना चाहिए, किन्तु तब, इसमें कोई अंश ऐसा नहीं जो व्यर्थ अथवा प्रभावहीन हो।[२]

वस्तु-स्थिति यह है कि 'मृच्छ०' पाश्चात्य नाट्यकला के आदर्श से सर्वथा भिन्न आदर्शों पर निर्मित हुआ है। पश्चिमी नाटक यूनानी नाट्यकला की त्रिविध 'अन्वितियों' (three unities) के आधार पर निर्मित एक सुगठित एवं सु-विन्यस्त रचना है, और उस मानदण्ड पर 'मृच्छ०' अथवा किसी भी संस्कृत नाटक को नहीं कसा जा सकता। संस्कृत नाटक, जैसा पहले कहा गया है, काव्य का अंग था और उसमें प्रगीतात्मक सौन्दर्य तथा शिल्प शैली के लालित्य के प्रदर्शन की परम्परा स्थापित हो गई थी जो रंगमञ्च की अपेक्षित सजावट की कमी की पूर्ति तो करती ही थी, उससे आगे बढ़ कर, वह रचयिता को अपनी साहित्यिक प्रतिभा के प्रदर्शन का सुन्दर अवसर प्रदान करती थी जिससे वह प्रवीण रसज्ञ सामाजिकों के सम्मान का आस्पद बन जाता था। 'मृच्छ०' के प्रणेता ने कतिपय घटनात्मक दृश्यों का समावेश केवल साहित्यिक सृष्टि के आकर्षण से अनुप्रेरित होकर किया है। साथ ही, यह भी स्मरणीय है कि 'मृच्छ०' का कथानक केवल एक विषय के प्रतिपादनार्थ नियोजित नहीं

---

१ "The whole is very much of a piece and far more than the sum of its constituent parts Although Part One, then, may conceivably be given without Part Two, tha latter cannot be given, without Part One Effects are to a remarkable degree accumulative The relation is not that of a pedestal to its statue, it is that of a growing organism from the trunk spring the many *branches* with their surprisingly abundant foliage "

—Henry W Wells 'The Classical Drama of India' (1963) पृ० १३३

२ वही, पृ० १३२।

हुआ है। उसका प्रतिपाद्य बहुवचनात्मक है। नाना विषयों तथा प्रयोजनों की पूर्ति का सकुल प्रयास उसमें किया गया है जैसा प्रस्तावना में स्पष्टतया कथित हैं।[१] वहाँ समसामयिक समाज तथा शासन और भाग्य की अनियंत्रित अठखेलियों के जीवन्त चित्रों की अवतारणा कराई गई है। अतएव, नाटककार के इसी सकुल बहुवचनात्मक प्रयोजन की पृष्ठभूमि में उसके स्थापत्य-कौशल की परीक्षा होनी चाहिए और तब, 'मृच्छ०' का वस्तु विधान प्रभावकारी सिद्ध होगा। कुछ ऐसे ही अनुभव के कारण, डॉ० राइडर को भी लिखना पड़ा कि नाटक में से किसी भी दृश्य को छोड़ा नहीं जा सकता—"In the Little Clay Cart at any rate we could ill-afford to spare a single scene"

शूद्रक की वस्तुविन्यास-कला अपने ढंग की निराली है। इसमें मूल कथ्य को समझने के लिये हमें भीतर से बाहर जाने के बदले, बाहर से भीतर आना पड़ता है। वनस्पति-संसार से एक दृष्टान्त लेकर स्थिति यों समझी जा सकती है 'किसी वृक्ष की बनावट हम हृदयगम करना चाहते हैं। सामान्य प्रत्यक्ष तरीका यहाँ यह होगा कि हम उसके अधोभाग (तने) पर दृष्टिपात करें और तब उससे निकलने वाली शाखाओं एवं टहनियों को देखते हुए हमारी आँखें पत्तियों तक जायें। किन्तु एक दूसरा अ सामान्य परोक्ष तरीका यह भी हो सकता है कि प्रेक्षक शाखाओं के अग्रबिन्दुओं से आरम्भ करे और वहाँ से नीचे भीतर की ओर उतरती हुई उसकी आँखें उन शाखाओं का अवलोकन करती अधोभाग तक पहुँचें जहाँ ये शाखाएं उससे मिली जुटी सिद्ध होती हैं।' 'मृच्छ' के वस्तु विधान में पहली प्रत्यक्ष प्रणाली का परित्याग कर, दूसरी परोक्ष प्रणाली अपनाई गई है जिससे उसके पूर्ण स्थापत्य को समझने के लिए पाठक अथवा प्रेक्षक को बाहर से भीतर की ओर आना पड़ता है असबद्ध प्रतीत होनेवाली घटनाओं अथवा व्यापारों के सहारे उसे धैर्यपूर्वक उस स्थल या बिन्दु पर पहुँचना पड़ा है जहाँ वे मूल कथ्य से सबद्ध अथवा सलग्न दिखाई पड़ती है।[२]

---

१ "अवन्तिपुर्यां द्विजसार्थवाहो युवा दरिद्रः किल चारुदत्तः ।
गुणानुरक्ता गणिका च यस्य वसन्तशोभेव वसन्तसेना ॥
तयोरिदं सत्सुरतोत्सवाश्रयं नयप्रचारं व्यवहारदुष्टताम् ।
खलस्वभावं भवितव्यतां तथा चकार सर्वं किल शूद्रको नृपः ॥
(१।६।७)

२ "To use an arborial metaphor, the eye of an audience is led to realise the construction of the tree not by proceeding from the stem outwards but by proceeding

वस्तु विन्यास की यही परोक्ष पद्धति शूद्रक द्वारा स्वीकार की गई है।[१]

नाटक के सम्पूर्ण पात्र तथा व्यापार मुख्य प्रतिपाद्य, चारुदत्त तथा वसन्तसेना के प्रणि बधन, का ही परिपोष करते हैं। किन्तु ये पात्र एव व्यापार आपाततः दूर एव असबद्ध प्रतीत होते हैं और नायक-नायिका के मित्रो एव परिचारको के पूरी लम्बाई वाले चित्र इस प्रकार अकित हुए हैं कि वे पृथकशः उभार मे आ गये हैं। लेकिन, जब उन पात्रो के साथ घटित होनेवाले नायक नायिका के सबधो को हम भीतर की ओर समेटते हैं और उनके मित्रो तथा सहचरो के प्रस्फुट चित्रो को वृहत् समन्वित चित्र के भीतर समाविष्ट करते हैं, तब चारुदत्त एव वसतसेना के अपने निजी सम्बन्ध की पूरी शक्ति एव गहराई का हमे परिचय मिलता है। नायक और नायिका दोनो के चरित्र मे अनेक प्रशस्य गुणो का चित्रण हुआ है तथा उन्हें उनके पारस्परिक आकर्षण का विश्वसनीय आधार बनाया गया है, और यह आकर्षण केवल शारीरिक एव सौन्दर्य-निष्ठ ही नहीं, अपितु नैतिक एव आध्यात्मिक भी समझा जाएगा क्योंकि व्यग्य विनोद के बावजूद, नाटक की आधार-भूत भावना आदर्शवादी है। विघ्नोत्पादक तत्त्वो का समावेश उसी अनुपात मे हुआ है जिससे इस मौलिक भावना पर आघात नही पहुँचे। सन्देह उत्पन्न होते हैं जब छिद्रान्वेषिणी बुद्धि को सोच विचार का अवसर मिल जाता है, किन्तु उनसे विश्वास विचलित नही होता। नाटक के पूर्वार्ध मे ऐसे जटिल अशो को प्राधान्य मिला है। किन्तु, कथानक के शृखलित सूत्र शनै-शनै परस्पर लिपटते जाते हैं और प्रधान प्रतिपाद्य के उपलालन मे सहयोग करते जाते है। इस विषय मे अंग्रेजी के शास्त्रीय सुखान्तकी के वस्तु-विन्यास से भारतीय नाटकीय रचनाओं का अन्तर स्पष्ट झलक जाता है। वहाँ प्रथम अक मे उन सभी समस्याओं अथवा तथ्यो का सन्निवेश हो जाता है जिन पर नाटक स्थापित हुआ है। शेष उसी उत्पन्न विषय का विस्तार होना है और अन्त मे ग्रथि खुल जाती है जिसे यूरोपीय शास्त्रीय शब्दावली मे 'डेनूमान' (Denouement) कहा गया है। लेकिन, संस्कृत के नाटको मे

---

from the tips of the branches inwards"—Henry Wells 'The Classical Drama of India' (1963) पृ० १५१

१ "It is the sophisticated manner of indirection" (वही, पृ० १५१)

एक एक करके सूत्रों का संकलन किया जाता है और क्रमशः उनका एकत्रीकरण सम्पन्न होता है जिससे अन्त में ही यहाँ गाँठ बंधती है।[1]

'मृच्छकटिक' की इस विन्यास कला के निदर्शनार्थ कतिपय दृष्टान्त दिये जा सकते हैं। दूसरे अंक में तीन जुआरी सड़क पर झगड़ते दिखाई देते हैं। उनकी लड़ाई प्रथमतः मूल कथा से बिल्कुल असम्बद्ध जान पड़ती है। किन्तु शीघ्र ही उनमें से एक वसन्तसेना के पार्श्व-द्वार से भीतर घुस जाता है और हमें ज्ञात होता है कि वह (संवाहक) चारुदत्त का स्वामिभक्त भृत्य रहा है तथा उसकी उदारता का आनन्द उठाने के बाद अब उनकी गरीबी के कारण उस गर्हित जीविकोपार्जन की परिपाटी को अपना लिया है। चारुदत्त का नामोल्लेख-मात्र वसन्तसेना के ऊपर जादू का काम करता है और वह उसे सुनते ही अपने आसन से उठ जाती है तथा फिर तब तक बैठना नहीं चाहती जब तक चारुदत्त के विषय में संलाप चलता रहता है। चारुदत्त की दरिद्रता ने संवाहक का चरित्र भ्रष्ट कर दिया है जबकि वसन्तसेना की प्रेमपूर्ण उदारता उसे द्यूत-जीवन का परित्याग करने तथा बौद्ध श्रमण की वृत्ति स्वीकार करने के लिए प्रवृत्त कर देती है। अपने परिभ्रमण के क्रम में वह शकटनिपीडित वसन्तसेना को संयोग से देखता है और अन्ततः उसके तथा चारुदत्त के भी प्राणों की रक्षा में सहायक बनता है। पुनः वसन्तसेना का भृत्य कर्णपूरक सहसा प्रवेश करता है और दुष्ट मतवाले हाथी के आतंक एवं दमन की कहानी आत्म-विकत्थना की मनोवृत्ति से सुनाता है। ऐसा मालूम पड़ता है जैसे यह घटना एक-दम ऊपर से थोपी हुई तथा अनावश्यक है। किन्तु, शीघ्र ही कर्णपूरक बताता है कि उसने उस दुष्ट दन्ती की लपेट से एक बौद्ध भिक्षु को बचाया है। इस बिन्दु तक उस घटना का मर्म समझ में नहीं आता, लेकिन जब कर्णपूरक यह बताता है कि दर्शकों की भीड़ में से एक व्यक्ति ने उसे पुरस्कार-रूप में अपना उत्तरीय दिया है, तब झटिति यह सूत्र मुख्य वृत्तान्त के साथ सम्बन्धित हो जाता है। वसन्तसेना उत्तरीय को पहले पहचानती नहीं, किन्तु वह अनुमान करती है कि वह उदार व्यक्ति चारुदत्त ही होगा। तब, वह उस उत्तरीय की सुगंध से खिल पड़ती है और सड़क पर जाते हुए चारुदत्त के दर्शनार्थ महल के अलिन्द पर चढ़ जाती है। इस प्रकार यह सूत्र बाहर से भीतर की ओर खिंच गया है और तब उसमें कोई असंगति दृष्टि-गोचर नहीं होती।

वसन्तसेना के आभूषणों का मुख्य कथानक के चढ़ाव-उतार में सार्थक महत्त्व रहा है। लेकिन, कभी इन आभूषणों की अवस्थिति से अंतिम परिणाम

---

१ वही, पृ० ११२।

का सकेत नही मिलता । उलटे, वस्तु विन्यास इस रीति से सम्पन्न हुआ है कि घटनाएँ अतिम परिणाम की ओर उन्मुख नहीं, अपितु उससे पराङ्मुख होती दिखाई पडती हैं । उदाहरणत सन्धिच्छेद वाला प्रकरण लिया जा सकता है । तीसरे अक का अधिकाश भाग सेंध फोडने की शर्विलक की कुशल कला का विज्ञापन करता है । जैसे शर्विलक वैसे ही सामाजिक भी उस टेकनीक की बारीकी एव प्रवीणता के कथन एव अनुभवन मे तल्लीन दिखाई पडते हैं । शर्विलक के कथन से जान पडता है कि वह सधिविच्छेद का कार्य जितना किसी प्रयोजनपूर्ति की दृष्टि से उतना ही विशुद्ध भावात्मक आनन्द एव परितृप्ति की दृष्टि से भी सम्पन्न कर रहा है । उस दृश्य के अन्त मे ही जाकर, वह अपनी प्रेमिका मदनिका का उल्लेख करता है । सामाजिक स्वभावत इस बात को नहीं समझ पाते कि कि सधिच्छेद का वह व्यापार मुख्य कथितव्य के साथ क्योकर सबद्ध है । एतद्विषयक एक-मात्र सकेत मैत्रेय के विनोदपूर्ण एव विट से भरे हुए इस कथन मे मिलता है कि क्या वे आभूषण चोरो द्वारा चुराये नही जा सकते हैं ।[1] आभूषणो की वास्तविक चोरी सभाव्य वस्तु विकास को आगे बढाने के बजाय बाधित करती प्रतीत होती है । पुन सयोग से ही, वे गहने वसन्तसेना के घर मे पहुँच जाते हैं । इस प्रकार मृच्छकटिक' का कथानक चक्करदार मार्ग मे गन्तव्य तक पहुँचता है जिसमे घटनाएँ मनमाने ढग से एक दूसरी को काटती पीटती चली गई हैं ।[2]

वसन्तसेना के आभूषणो के साथ घटनाएँ आगे भी इसी रीति से घटती गई हैं । ये गहने जो एक बालक के प्रीत्यर्थ उसकी खेलने की गाडी मे रख दिए गए हैं, नवम अक मे न्यायाधिकारियो के समुख मैत्रेय की काँख से नीचे गिर पडते हैं जिससे सभी लोग चकित रह जाते हैं । इन्ही आभरणो को गले मे बाँधकर, चारुदत्त अपनी मृत्यु के स्थल तक पहुँचता है । इस प्रकार, कथानक की सम्पूर्ण विकास रेखा पर ये आभूषण लिपटे हुए हैं और नाटक के पात्र एक विचित्र नियति के हाथो मे पडे, कठपुतलियों के समान हैं । केवल दूसरे अक मे इन आभूषणो का कोई उल्लेख नही है, किन्तु, इस अक का

---

१ "यद्यपि एतत् तिष्ठति । किमत्र उज्जयिन्या चोरोऽपि नास्ति ?"

२ "The plot of the Little clay Cart rejoices in bringing indirection to a goal, criss crossing the incidents with the utmost caprice"—Henry Wells (The classical Drama of India' पृ० १५४)

उद्देश्य मूलत: वसन्तसेना का चित्रण है जैसे पहले अंक का उद्देश्य है चारुदत्त तथा उसके प्रति-नायक संस्थानक का चित्रण। वसन्तसेना को भी उदारता में चारुदत्त का प्रतिस्पर्धी प्रतिभासित होना चाहिए। आभूषणों से विहीन, केवल एक रोती हुई नारी (वसन्तसेना) ही, जो मृत्यु स्थल पर तैयार लेटे हुए दुर्भाग्य विताडित नायक के वक्ष पर गिर पड़ती है, इस दुःखद कहानी का अन्त कर पाती है जिसमें अतिशय दानशीलता एवं उदारता के परिणाम स्वरूप उत्पन्न दरिद्रता का आखेट मनुष्य-जीवन को होना पड़ा है। प्रवहण-विपर्यय वाली घटना भी शुद्ध संयोग तथा मनमाने विकास प्रवाह का निदर्शन है।

वस्तु संघटन का सबसे सुदृढ़ एवं तर्कसंगत विषय राजनीतिक षड्यन्त्र वाला उप-कथानक है। संस्थानक को छोड़कर अन्य सभी नाटकीय पात्र राजा पालक के नृशंसता-पूर्ण शासन से घृणा करते हैं और आर्यक के राज्यारोहण का अनुमोदन करते हैं। घर की दीवालों को तोड़ने वाला शर्विलक बन्दीगृह की दीवालों को भी तोड़कर, आर्यक को मुक्त करने के लिए नितान्त उपयुक्त व्यक्ति है। भिन्न भिन्न जाति के पात्रों तथा घटनाओं का एक साथ संगुम्फन शर्विलक के द्वारा ही सम्पन्न होता है और नाटकीय व्यवस्था की रक्षा होती है। नाटक के पूर्वार्ध में यों राजनीतिक विद्रोह के संकेत मिलते हैं, लेकिन छठे अंक से ही यह कथानक सबल रूप में विकसित होता दिखाई पड़ता है। आर्यक की अपनी भूमिका तो सातवें अंक में ही लक्षित होती है। यहां वह चारुदत्त की उदारता में उपकृत होता है। लेकिन, रंगमंच पर प्रधानता चारुदत्त की ही रहती है उसीने बन्दीगृह से पलायित आर्यक को मैत्री का प्रसाद अर्पित किया है तथा उसे सुरक्षा देते हुए, उसकी सफलता की मंगल कामना की है, आर्यक ने तो केवल कृतज्ञता ज्ञापन किया है। अतएव, 'मित्र' चारुदत्त भावी राज्याधिकारी से अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुआ है। केवल पर्दे की आड़ में सत्तारूढ़ आर्यक ने चारुदत्त को दण्डमुक्त किया है, उसे कुशावती का राज्य सौंपकर, वैभव एवं प्रतिष्ठा प्रदान की है और गणिका वसन्तसेना को उसकी वधू के रूप में सम्मानित किया है। इस प्रकार, राजनीतिक कथा सूत्र का नाटकीय वस्तु संघटन में निश्चितनया द्वितीयकोटीय महत्त्व है। तथापि, उसका उपन्यास बड़ी निपुणता एवं सजगता के साथ हुआ है और उसके अभाव में पूरा ढांचा ही ढह जाएगा।[1]

जैसा हम पहले दिखा चुके हैं राज्य परिवर्तन वाली घटना के सूत्र आरंभ से ही पर्दे की आड़ में प्रवर्तित होते रहे हैं और मुख्य प्रणय कथानक के विकास

---

१. वही, पृ० १५५-५६।

के बीच-बीच मे हमे स्पष्ट सकेत मिलते रहे हैं कि विद्रोह की अग्नि सुलगती जा रही है और यह भी कि नायक-नायिका की प्रेम लीला मे यह "राज वल्लभ" संस्थानक का प्रति-नायकत्व गहरे विघ्न उत्पन्न कर सकता है, अत सम्भावित विद्रोह की प्रगति मे चारुदत्त-वसन्तसेना के भाग्य की ग्रन्थि विद्रोह के आयोजक व्यक्तियो के भाग्य के साथ बँध सकती है क्योंकि चारुदत्त प्राय' लोक-व्यापी आदर एव सम्भ्रम का आस्पद है और सस्थानक का "भगिनी पति" लोकव्यापी घृणा एव असन्तोष का भाजन है। वस्तुत कार्य की अन्विति' (unity of action) का अक्षरानुयायी अनुपालन तो नाटककारो ने कभी किया नही है। मृच्छकटिक' के दो कथानको मे द्रष्टव्य यही है कि प्रधान प्रणय कथा परोक्ष राज विद्रोह वाली उप कथा के साथ किस प्रकार सगुम्फित हुई है। कार्य की अन्विति की जगह विचारणीय यह है कि प्रभाव की अन्विति, अन्तिम विश्लेषण मे, सुरक्षित रह सकी है या नही ? इसके लिए दो बातें आवश्यक हैं—प्रथम यह कि प्रधान कथा को गौण कथा ढक तो नही देती उसका महत्त्व विच्छिन्न तो नही कर देती, द्वितीय यह कि उप कथा प्रधान कथा में इस प्रकार विलीन हो जाय कि उसकी परिणति स्वतन्त्र रूप से पाठक का ध्यान आकर्षित न करे। 'मृच्छकटिक' मे प्रधान तथा गौण कथाएँ इसी ढग से परस्पर अनुस्यूत हुई हैं। नाटक के पूर्वार्ध मे, जैसा अभी कहा गया है राजनीतिक उप-कथानक कभी धरातल पर नही आता और उत्तरार्ध मे जहाँ उसे तनिक मुखर महत्त्व मिला है, वह सर्वदैव मुख्य कथानक के चिन्ताकीर्ण विकास क्रम के समक्ष परोक्ष रीति से ही हमारा ध्यान आकर्षित करता है। नाटककार ने सातवें अक मे दोनो कथाओ के नायको को परस्पर पहली बार रगमच पर मिलाकर फिर आर्यक को पर्दे के पीछे ही छोड दिया है जहाँ वह राज्य सत्ता को स्वायत्त करता है और उस महत्त्व पूर्ण मुहूर्त्त मे चारुदत्त द्वारा किये गए उपकार का सुन्दर प्रति-दान उद्घोषित करता है। लेकिन, अन्तिम विश्लेषण मे, सामाजिक का अनुभव जो नाना परिस्थितियों से सक्रमण करने के कारण नाना पर्तों एव स्तरों को समाहित करता हुआ नितान्त विपुल एव समृद्ध हो गया है चारुदत्त के भाग्य-नृत्य की धुरी पर ही स्थित प्रतीत होता है अभियोग वाले प्रकरण मे हम चारुदत्त के दुर्भाग्य ग्रस्त होने पर जितने दुख विह्वल थे उतने ही हर्ष विह्वल अत मे होते हैं यह देख कर कि कूप-यन्त्र की क्षुद्र-घटिकाओं का अनुसरण करने वाले दैव ने दीन वत्सल चारुदत्त को पुन वैभव एव सम्मान से मडित कर दिया है।[१] पालक का पतन और आर्यक

१ 'अन्योन्यप्रतिपक्षसहतिमिमा लोकस्थितिं बोधयन्
नेष क्रीडति कूपयन्त्रघटिकान्यायप्रसक्तो विधि ।" (१०।५६)

का उत्थान हमें परोक्ष रीति से ही प्रभावित करते हैं। नाटककार ने प्रभाव की अन्विति की रक्षा के निमित्त और प्रधान प्रतिपाद्य को जैसे प्रेक्षकों के मानस-पटल पर स्पष्टतया उत्कीर्ण करने के उद्देश्य से, चारुदत्त के द्वारा, उसी के आदेश अथवा निर्देश से, नाटकीय पात्रों में यथोचित उपहार वितरण कराया है। आर्यक सत्तारूढ होने पर भी हमारे सामने राजा के रूप में उपस्थित नहीं हुआ है और इसी कारण, हमारी सम्पूर्ण ममता चारुदत्त के ऊपर ही लिपट गई है। इस संबंध में यह भी ध्यातव्य है कि न तो वसन्तसेना की प्राण-रक्षा में और न ही चारुदत्त की प्राणरक्षा में राजनीतिक विप्लव किसी भी प्रकार से सहायक सिद्ध हुआ है। वसन्तसेना संवाहक के द्वारा रक्षित हुई है जिसे वह स्वतः पहले उपकृत कर चुकी है और चारुदत्त वसन्तसेना के समय से पहुँच जाने के फल-स्वरूप, शूली पर लटकाये जाने से बच गया है। अतएव, राज्य विप्लव प्रधान कथानक के विकास तथा परिणति में कोई विशेष उल्लेखनीय योग दान नहीं दे सका है, उलटे, वही चारुदत्त की निर्भीक उदारता की छाप से अंकित है क्योंकि आर्यकापहरण वाले संदर्भ में चारुदत्त सत्ता-परिवर्तन की सम्पूर्ण योजना को ही विनष्ट कर सकता था। ऐसी अवस्था में, यह स्पष्ट है कि 'मृच्छकटिक' की दोनों कथाएँ बड़े कलात्मक नैपुण्य के साथ अनुपात एवं औचित्य की रक्षा करती हुई परस्पर सगुम्फित हैं और प्रधान कथानक में परोक्ष उप-कथानक सुन्दर ढंग से विलीन हो गया है। अतएव, डॉ० कीथ–जैसे विद्वानों का यह कथन कि इन दोनों कथाओं के परिपोष के कारण, नाटक में अन्विति का ह्रास हुआ है, उचित नहीं कहा जायगा।[१] राज्य विप्लव वाली कहानी वस्तुतः पृष्ठभूमि के रूप में सम्पूर्ण नाटक को ओत प्रोत कर रही है और, नाटककार की उद्भावनशील मौलिकता इस बात में उद्भासित है कि उसने दो प्रेमियों के व्यक्तिगत प्रणय

१ "These merits and the wealth of incidents of the drama more than compensate for the over-luxuriance of the double intrigue and the lack of unity, which is unquestionable "—
—'*The Sanskrit Drama*' (1959), पृ० १३१

कतिपय अन्य देशी तथा विदेशी विद्वानों का यही विचार है कि पालक की कहानी बाहर से घुमाई हुई तथा मुख्य कथा के साथ ढीले ढाले ढंग से ही सम्बन्धित है। किन्तु, मुख्य बिन्दु वे भूल जाते हैं कि प्रस्तुत उपकथा न तो सर्वथा पृथक् है और न उसका स्वतंत्र रूप में वैसा विकास हुआ है जो प्रधान कथा के महत्व को आच्छादित कर ले।

सम्बन्ध को एक राजधानी तथा सम्पूर्ण राज्य के भाग्य-परिवर्तन के साथ जोड़ दिया है और उसे, इस प्रकार, किसी हलके धरातल पर लोटने के लिए न छोड़ कर, उच्चतर एवं गम्भीरतर धरातल पर प्रतिष्ठित कर दिया है। नाटककार ने मंगल-सिद्धियों के परिगणन के समय, चारुदत्त के द्वारा वल्लभा वसन्तसेना की प्राप्ति के साथ 'प्रियसुहृद्' आर्यक के राज्यारोहण की फलोपलब्धि को व्यर्थ नहीं जोड़ दिया है—

"प्रोत्खातारातिमूलः प्रियसुहृदचलामार्यकः शास्ति राजा।
प्राप्ता भूय प्रियेयं प्रियसुहृदि भवान् सगतो मे वयस्यो
लभ्यं किञ्चातिरिक्तं यदपरमधुना प्रार्थयेऽहं भवन्तम् ॥"[१] (१०।५८)

(४)

कथाओं के उपयान की औचित्यपूर्ण पद्धति का दिग्दर्शन कराने के बाद, 'मृच्छकटिक' की स्थापत्य-कला के संबंध में कतिपय आवश्यक बिन्दुओं का उल्लेख वाञ्छनीय प्रतीत होता है।

वस्तु-विन्यास का एक आधारभूत सिद्धान्त यहाँ नियति का निरंकुश शासन दिखाई पड़ता है। छोटी मोटी घटनाएँ आकस्मिक रीति से घटित होती

---

१. डॉ० कीथ ने भी इस मर्म को स्वीकार किया है—

"the hints given in the 'Cārudutta here appear in full and harmonious development aided and heightened by the introduction of the intrigue, which combines the private affairs of the hero with the fate of the city and Kingdom"

—'The Sanskrit Drama (1959), पृ० १३४

डॉ० सुशील कुमार डे ने राजनीतिक पृष्ठभूमि के सन्निवेश को एक अन्य दृष्टि से भी संगत एवं समीचीन बताया है, यह कि इससे उस विचित्र, अस्त-व्यस्त और सनक-भरे समाज के वातावरण पर प्रकाश पड़ता है जिसमें दुर्विनीत, दुर्ललित तथा दुष्ट वृत्ति वाले व्यक्ति स्वर्ण-भाण्ड की चोरी से लेकर राज्य क्रान्ति-जैसे महत्त्व-पूर्ण कार्य सम्पन्न करने में प्रवृत्त हो सकते हैं—

"What is more important is that the episode is necessary to create the general atmosphere of the bizarre society in which the whole host of rascals are capable at any moment of all kinds of acts, ranging from stealing a gem-casket to starting a revolution.' —

'History of Sanskrit literature (1947), foot-notes, पृ० २४२

हैं और विकास के नैसर्गिक प्रवाह को बाधित करती हैं। आरम्भ से ही इसे लक्ष्य किया जा सकता है। अंधेरे में नगर की गलियों में शकार तथा उसके अनुचरों के द्वारा अनुगम्यमान वसन्तसेना, जान पड़ता है, अब पकड़ ली जाएगी किन्तु अकस्मात् बिल्कुल संयोग से, वह चारुदत्त के घर के पार्श्व-द्वार के पास पहुँच जाती है और अकस्मात् ही, मैत्रेय द्वारा दरवाजा खोल दिया जाता है और वसन्तसेना, बिना किसी पूर्व योजना के, अपने वल्लभ की उपस्थिति में पहुँच जाती है। जुआरियों वाले दृश्य में संवाहक संयोग से ही *वसन्तसेना के घर में प्रवेश कर जाता है और सभिक (द्यूताध्यक्ष) के अत्याचार* से मुक्त होता है। प्रवहण विपर्यय वाला सम्पूर्ण काण्ड नियति के व्यंग्य से उत्पन्न होता है। आर्यक बन्दीगृह के प्राचीरों को तोड़ कर पलायित होता हुआ चारुदत्त के घर में ही शरण लेता है और उसी की गाड़ी में चढ़ कर, जीर्णोद्यान में पहुँचता है। आखिर, ऐसी स्थितियों की निष्पत्ति के लिए कोई तर्कसंगत आधार नहीं खोजा जा सकता। द्रष्टव्य यह है कि संकट के अवसर ही नहीं ऐसी आकस्मिक घटनाओं के कारण निवृत्त हुए हैं। चित्र का दूसरा पहलू भी महत्त्वपूर्ण है। न्याय विचार का सम्पूर्ण प्रकरण नियन्त्रणातीत आकस्मिक स्थितियों से आकीर्ण है। वीरक अचानक न्याय-मण्डप में पहुँचता और चन्दनक के विरुद्ध आरोप प्रस्तुत करते हुए चारुदत्त की गाड़ी में वसन्तसेना के उसके साथ रमणार्थ जीर्णोद्यान में जाने का संवाद सुनाता है। पेड़ के नीचे किसी स्त्री का कुचला हुआ शरीर भी केवल संयोग की सृष्टि है। सबसे बढ़कर, मैत्रेय का स्वर्णाभरणों की पोटली काँख में दबाये न्याय-मंडप में पहुँच जाना और उस पोटली का खिसक कर भूमि पर गिर पड़ना—यह घटना विशुद्ध नियति की निर्मम देन ही समझी जाएगी। नाटकीय व्यंग्य की कठोरता तब हृदयंगम होती है जब हम देखते हैं कि चारुदत्त-जैसा नेक सज्जन एवं निरपराध व्यक्ति स्त्री-हत्या के आरोप में फाँसी के फंदे पर लटकाया जा रहा है जब कि न केवल नागरिकों की आत्मा इस अन्याय-पूर्ण शासनादेश से दुःख-*विह्वल हो उठी है, अपितु न्यायाधीश भी, अपनी सम्पूर्ण सद्भावनाओं तथा* सहानुभूतियों के बावजूद चारुदत्त को मृत्यु-मुख से बचाने में असमर्थ सिद्ध हो गया है और राज्य की साख की प्रतिष्ठा करता हुआ भी, पथराई दृष्टि के प्रश्रय में केवल परिस्थिति-जन्य प्रमाणों के आधार पर ही सद्गुणसम्पन्न नायक को अपराधी ठहरा कर, उसके साथ गहन अन्याय कर बैठा है। आभूषणों की वसन्तसेना तथा चारुदत्त के घरों के बीच, यात्रा भी बड़ी बेतुकी और दुर्भाग्य-पूर्ण रही है—इसे अभी ऊपर दिखाया जा चुका है।

किन्तु, हिन्दू दर्शन सज्जनता की अन्तिम विजय तथा दुर्जनता की अन्तिम पराजय मे आस्था रखता है। और, इस आनन्दमयी परिणति के लिए उसे अधिक तक वितर्क की अपेक्षा नहीं होती। यहाँ भी भाग्य अपने चमत्कार दिखाता है और अप्रत्याशित रीति से विपत्ति के बादल फट जाते हैं तथा सुख-समृद्धि का सूर्य हँसता निकल पडता है। वसन्तसेना के प्राणो की रक्षा भी इसी न्याय से हुई है। सवाहक श्रमण तो अचानक ही वहाँ पहुँच जाता है और पुराने उपकार का सुन्दर प्रतिदान देता है, किन्तु, सबसे बडी बात यह है कि दुष्ट शकार ने कैसे यह समझ लिया कि कण्ठ निपीडन से वसन्तसेना की हत्या पूरी हो गई? नाटक की अन्तिम परिणति विशुद्ध भाग्य का वरदान है। चाडाल के हाथ से तलवार अचानक गिर जाती है और सवाहक श्रमण वसन्तसेना को लिये तत्काल ही वहाँ पहुँच जाता है। फाँसी के पट्टे से चारुदत्त सहसा नीचे उतर आता है और अपनी मधुर कामनाओ की आशातीत परितृप्ति मे विह्वल हो उठता है। भाग्य के इस व्यग्य का मार्मिक कथन स्वय चारुदत्त ने यो किया है—

"त्वदर्थमेतद्विनिपात्यमान देह त्वयैव प्रतिमोचित मे।
अहो प्रभाव प्रियसगमस्य मृतोऽपि को नाम पुनर्ध्रियेत ॥
अपि च प्रिये! पश्य,
रक्त तदेव वरवस्त्रमिय च माला
कान्तागमेन हि वरस्य यथा विभाति।
एते च वध्यपटहध्वनयस्तथैव
जाता विवाहपटहध्वनिभि समाना ॥" (१०।४३-४४)

—'हे प्रिये! तुम्हारे ही कारण मारी जाती हुई यह मेरी देह तुम्हारे ही द्वारा रक्षित भी हुई है। अहो! प्रिय समागम का कैसा प्रभाव है! मर कर भी कौन जी उठा है!

और भी प्रिये!

प्रियतमा की प्राप्ति के समय अर्थात्, विवाह के समय जिस प्रकार वर की सजावट होती है उसी प्रकार का यह रक्त-वर्ण वसन है और यह माला है। वध के समय की नगाडे की ध्वनियाँ विवाह-कालीन नगाडे की ध्वनियो के समान मोहक बन गई हैं।'

नियति-नटी के क्रूर अट्टहास और मधुर मसृण मुसकान की हृदयग्राही व्यजना प्रधान नायक के निजी कथन-द्वारा यहाँ हुई है, और 'मृच्छकटिक'

की उपन्यास पद्धति में सनातन भारतीय दृष्टि भंगी का असंदिग्ध महत्त्व उतर आया है। इसी कारण, अपनी सम्पूर्ण नवीनता के बावजूद, प्रस्तुत प्रकरण भारतीय परम्परा से पृथक् नहीं किया जा सकता।[१]

---

१ "The real Indian character of the drama reveals itself in the demand for conventional happy ending, which shows us every person in a condition of happiness, with the Solitary exception of the evil King."

—Dr A B Keith 'The Sans Drama (1959), पृ० १४०

"In the broader outlook, the 'Little Clay Cart' belongs to the same category—their highest category, as 'Shakuntala', 'Vikramorvaci', 'Rama's Later History', 'the Vision of Vasavadatta', and all the most serious and poetic of Indian dramas, the relatively naturalistic setting and ample humor in Sudraka's work notwithstanding, the simplest and truest statement is that a rough road leads to human felicity."

—Henry W Wells 'The Classical Drama of India', पृ० १५४

(७) मृच्छकटिक और शास्त्रीय विधान

सामान्य भाषा में हम जिसे 'नाटक' कहते हैं उसे संस्कृत के आचार्यों ने 'रूपक' कहा है। उसे इतना विशिष्ट महत्त्व प्रदान किया गया है कि काव्य का भेद निरूपण करते समय, उसके लिए एक पृथक् वर्ग ही 'दृश्यकाव्य' के नाम से स्थापित हो गया है। 'रूपक' अभिधा का कारण यह है कि उसके रंगमंचीय प्रदर्शन में नट (अर्थात् अभिनेता) राम, सीता, लक्ष्मण इत्यादि पात्रों का रूप धारण करता है और सामाजिकों को उसमें 'अयं रामः' (यह राम है') इत्यादि की आरोपात्मक प्रतीति होती है। रूप का आरोप होने के कारण, दृश्यकाव्य रूपक कहा गया है।[1]

रूपक के दस भेद किये गये हैं, यथा—नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंक, वीथी और प्रहसन।[2] इस प्रकार, शास्त्रीय दृष्टि से 'नाटक' रूपक का एक प्रमुख भेद है। शास्त्र में व्यवस्था दी गई है कि नाटक का वृत्त ख्यात, अर्थात्, रामायणादि इतिहास में प्रसिद्ध होना चाहिए। जो कथा केवल कवि-कल्पित है, इतिहासप्रसिद्ध नहीं, वह नाटक नहीं हो सकती, नाटक में विलास, समृद्धि, इत्यादि गुणों का अभिनिवेश तथा नाना ऐश्वर्यों का वर्णन होना चाहिए। पुराणादि प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न धीरोदात्त तथा प्रतापी कोई राजर्षि अथवा दिव्य या दिव्यादिव्य पुरुष नाटक का नायक होता है और शृंगार एवं वीर में से कोई रस इसमें अङ्गी या प्रधान रहता है। इसमें पाँच से लेकर दस अंक तक हो सकते हैं।[3]

इस प्रकार, 'मृच्छ०' को 'नाटक' नहीं कहा जा सकेगा क्योंकि इसका वृत्त (कथानक) ख्यात अथवा इतिहासप्रसिद्ध नहीं है तथा इसका नायक (चारुदत्त) राजर्षि अथवा दिव्य या दिव्यादिव्य पुरुष नहीं है। शास्त्रीय विधान में इसे 'प्रकरण' कहा गया है। 'प्रकरण' में कथा लौकिक, कविकल्पित होती है, इतिहासप्रसिद्ध नहीं। इसमें प्रधान रस शृंगार होता है। नायक ब्राह्मण, मन्त्री अथवा वणिक् रहता है। वह धर्म, अर्थ और काम में तत्पर, धीरप्रशान्त होता है। नायिका कहीं कुल-कन्या होती है, कहीं वेश्या होती है और कहीं दोनों

---

१ 'तद्रूपारोपात्तु रूपकम्।' (साहित्यदर्पण, ६।१)

२ साहित्यदर्पण, ६·३

३ वही, ६।७–१०

होती है। इस प्रकार, प्रकरण के नायिकानुरूप तीन भेद हो जाते हैं, और तीसरे प्रकार के प्रकरण में, जहा नायिका कुल कन्या तथा वेश्या दोनो होती है, धूर्त, जुआरी विट, चेट इत्यादि व्याप्त होते हैं।[१] अतएव, यह प्रत्यक्ष है कि 'मृच्छ०' तीसरी कोटि का 'संकीर्ण' प्रकरण[२] सिद्ध होता है। क्योंकि नायक चारुदत्त धीरप्रशान्त विप्र सार्थवाह है तथा दरिद्र होने पर भी धर्म, अर्थ एवं काम की साधना में तत्पर है, नायिका वसन्तसेना वेश्या है, किन्तु दूसरी नायिका धूता कुल-वधू है और इसमें धूर्तों, जुआरियों, विटों तथा चेटों का सघन संसार व्याप्त है। प्रकरण के शेष तत्त्व नाटक के समान ही बताये गये हैं।[३] 'मृच्छ०' में इन तत्त्वों के अभिनिवेश का विवेचन किया जा सकता है।

(१) नाट्यवस्तु

नाट्यवस्तु दो प्रकार की होती है, एक आधिकारिक और दूसरी प्रासंगिक। नाटक के प्रधान फल का स्वामित्व 'अधिकार' कहा जाता है और उस फल का स्वामी अर्थात् भोक्ता 'अधिकारी' कहलाता है। उसी अधिकारी व्यक्ति की कथा को 'आधिकारिक' वस्तु कहा गया है। इस प्रधान वस्तु का साधक अथवा उपकारक इतिवृत्त 'प्रासंगिक' वस्तु कहा जाता है। प्रासंगिक इतिवृत्त के भी दो प्रकार बताये गये हैं, यथा, 'पताका' और 'प्रकरी'। प्रधान वृत्त के साथ दूर तक चलने वाले वृत्त को 'पताका' और एक प्रदेश में ही सीमित रहनेवाले वृत्त को 'प्रकरी' कहा जाता है।[४]

---

१ "भवेत्प्रकरणे वृत्तं लौकिकं कविकल्पितम् ॥
शृङ्गारोऽङ्गी नायकस्तु विप्रोऽमात्योऽथवा वणिक्।
सापायधर्मकामार्थपरो धीरप्रशान्तकः ॥
नायिका कुलजा क्वापि वेश्या क्वापि द्वयं क्वचित्।
तेन भेदास्त्रयस्तस्य तत्र भेदस्तृतीयकः ॥
कितवद्यूतकारादिविटचेटकसंकुलः।" (सा० द०, ६।२२४-२५)

२. प्रथम प्रकार की नायिका होने पर प्रकरण 'शुद्ध', दूसरे प्रकार की नायिका होने पर 'विकृत' तथा दोनों प्रकार की नायिकाओं की वर्तमानता में 'संकीर्ण' कहलाता है।

३ "शेषं नाटकवत्सन्धिप्रवेशकरसादिकम्।" (द० रू०, ३।४०)

४ 'तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्गं प्रासङ्गिकं विदुः ॥
अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः।
तन्निर्वृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम् ॥

'मृच्छ०' में चारुदत्त और वसन्तसेना की प्रेम कथा आधिकारिक अथवा प्रधान वस्तु है क्योंकि फल का अधिकारी चारुदत्त और वसन्तसेना ही हैं। प्रासंगिक अथवा गौण वस्तु के रूप में तीन छोटी बड़ी सहायक कथाएँ उपनिबद्ध हुई हैं। पहली कथा है मदनिका और शर्विलक के प्रणय की। दूसरी कथा है राजा पालक की हत्या तथा आर्यक के राज्यारोहण की। तीसरी छोटी कथा निर्दिष्ट की जा सकती है संवाहक श्रमण की। इनमें मदनिका-शर्विलक वाली कहानी तथा राज्यक्रान्ति वाली कहानी को 'पताका' कहा जा सकता है क्योंकि ये कहानियाँ प्रायः आरम्भ से अन्त तक मुख्य कथानक के साथ लिपटी हुई चली गई हैं। संवाहक श्रमण का महत्त्व मुख्यतः वसन्तसेना की प्राणरक्षा के संदर्भ में परिलक्षित होता है यद्यपि अन्त में भी समस्त विहारों का अधिपति बनकर, वह प्रकाश में आ गया है और दूसरे अङ्क में ही उसका प्रवेश हो चुका है। अतएव, संवाहक वाली कहानी को 'प्रकरी' कहा जा सकता है किन्तु वह पताका' का भी महत्त्व ग्रहण कर सकती है।

इन प्रासंगिक वृत्तों पर तनिक सूक्ष्म दृष्टि से विचार कर लिया जाय। प्रासंगिक वस्तु की परिभाषा में दो बातों का निर्देश किया गया है पहली यह कि वह प्रधान कथा की साधक अथवा उपकारक होवे और दूसरी यह कि प्रधान कथा के प्रसंग से ही उसके स्वार्थ' (निजी अर्थ) की सिद्धि होवे।[1] इस दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि उपर्युक्त तीनों कहानियाँ पूर्णतः 'प्रासंगिक वस्तु' बन गई हैं। मदनिका शर्विलक वाली उप-कथा में मदनिका और शर्विलक दोनों ही मुख्य कथानक के नायक-नायिका के पारस्परिक संबंधों के उपलालन में सहयोग देते हैं। मदनिका आरम्भ में ही वसन्तसेना के प्रणय की विश्वस्त सखी रही है और शर्विलक की वधू बन कर, उसकी भी चारुदत्त की वधू बनने की लालसा को चुपके में उद्दीप्त कर गई है—यह दूसरी बात है कि चौथे अंक के बाद से वह नाटककार-द्वारा सदा के लिए पर्दे के पीछे कर दी गई है। शर्विलक ने भी धरोहर वाला अलंकार चुरा कर और उसे वसन्तसेना को प्रदान कर, वसन्तसेना के प्रणय को नवीन गति-मत्ता प्रदान की है। नाटकान्त में तो वह नायक-नायिका के भाग्य-परिपोष के चरम उपक्रम के गौरव से अभिमण्डित हो गया है। अतएव मदनिका-शर्विलक वाला

प्रासङ्गिक परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसङ्गतः।
सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक्॥"
(दशरूपक, १।११ १३)

१ "अस्योपकरणार्थं तु प्रासङ्गिकमितीष्यते।" (साहित्यदर्पण, ६।४४)
'प्रासङ्गिक परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसङ्गतः।" (दशरूपक, १।१३)

'पताका वृत्त' मुख्य वृत्त का सर्वथा उपकारक सिद्ध हुआ है। साथ ही, यह भी द्रष्टव्य है कि मुख्य वृत्त के प्रसंग में ही वह भी सिद्ध हो सका है, इसका 'स्वार्थ' भी सम्पन्न हो पाया है। चारुदत्त-वसन्तसेना के प्रधान इतिवृत्त से विच्छिन्न हो जाने पर उसका आधार ही नष्ट हो जाता है और मुख्य वस्तु की नायिका की उदारता के ही फलस्वरूप, वह सहायक उपप्रेमकथा अभीष्ट फल की प्राप्ति कर सकी है। अतएव, इस दृष्टि से भी मदनिका-शर्विलक वाली कहानी 'प्रासंगिक वस्तु' बनने की योग्यता रखती है। संवाहक श्रमण वाला इतिवृत्त भी घनिष्ठ भाव से प्रधान वक्तव्य के साथ लिपटा हुआ है। संवाहक दूसरे अंक में आकर तथा अपनी पहली कहानी सुनाकर, वसन्तसेना की चारुदत्त विषयिणी अनुरक्ति की धार को तीक्ष्ण बना गया है। वसन्तसेना की प्राण रक्षा के लिए उसका कर्तृत्व वृत्तान्त महत्व रखता है और मुख्य वस्तु की फलसिद्धि में अपरिहार्य भूमिका सम्पन्न करता है। पुनः संवाहक-कथा का 'स्वार्थ' भी मुख्य कथा के प्रसंग में सिद्ध हुआ है संवाहक जुआरियों से पीडित एवं संत्रस्त होकर वसन्तसेना की शरण में गया है और दस सुवर्ण के प्रदेय की भुगतान में उससे उपकृत होकर, बौद्ध भिक्षु बन गया है, फिर, नाटकावसान पर वह अपने सत्कृत्य के पुरस्कार स्वरूप, बौद्ध विहारों का कुलपति भी बनाया गया है। अतएव, संवाहक वाली उपकथा भी पूर्ण अर्थों में 'प्रासंगिक वस्तु' कही जा सकती है।

अब, राज्य विप्लव वाले उपकथानक पर भी इसी प्रकार विचार किया जा सकता है। यह कहानी प्रधान कथानक के साथ—जैसा पूर्व प्रकरणों में दिखाया गया है—कलात्मक रीति से गुम्फित हुई है। ऐसा आभास नहीं मिलता कि वह ऊपर से थोपी गई है अथवा मुख्य कथ्य की साधना में कोई व्याघात पहुँचाती है। राज्यक्रान्ति का मुख्य मस्तिष्क शर्विलक रहा है, वह किस प्रकार प्रधान वस्तु के परिपोष में सक्रिय सहायक सिद्ध हुआ है, इसका उल्लेख अभी ऊपर किया जा चुका है। आर्यकापहरण वाली घटना ने चारुदत्त के चरित्र को अभूतपूर्व औदार्य की सुरभि से सौरभित कर दिया है चारुदत्त ने विद्रोही आर्यक को अपनी गाडी में छिपाकर सुरक्षित गन्तव्य तक भेज दिया और अभियोग प्रकरण में न्यायाधीश के सामने गाड़ियों की अदला-बदली का रहस्य इस कारण नहीं खोल सका कि वैसा करने में आर्यक के पलायन की बात भी उसे कहनी पड़ती, अन्यथा अपने ऊपर लगाये गये हत्या के आरोप की संदिग्धता पर वह एक विश्वसनीय रंग चढा देता। राजा पालक ने चारुदत्त के मृत्यु-दंड का प्रसारण करने में इनकार कर तथा इस प्रकार ब्राह्मण के सम्बन्ध में विहित मनु वचन का उल्लंघन कर भी, राज्य विप्लव वाले कथानक को मुख्य

वन्त्य वस्तु के साथ सुन्दर ढग से जोड दिया है। पालक के अत्याचारों से प्रजा पीड़ित थी ही। उनकी एक प्रत्यक्ष सूचना यह मिली थी कि उसने आर्यक को केवल ज्योतिषी की भविष्यवाणी पर बन्दीगृह मे डाल दिया है, शकार के धमकी-भरे वचनो मे भी पालक के आतक का परिचय मिला है। और, जब पालक मनु के विधान की भी अवमानना कर बैठता है विशेषत चारुदत्त जैसे सज्जन ब्राह्मण के सबध मे, तब हमारी प्रतीति उसकी नृशमता के विषय मे पुष्ट और पक्की बन जाती है। यही पालक राज्यक्रांति का रूप है। सुतरा, कथानक के इस बिन्दु पर पहुँच कर आधिकारिक कथा और यह राजनीतिक उप कथा एक-दूसरे से अत्यत घनिष्ठ रीति से मिल जाती हैं। यह उपकथा मुख्य कथा का ही उपकार नही करती, प्रत्युत उसके प्रसग मे अपना 'स्वार्थ' भी सिद्ध करती है। चारुदत्त ने आर्यक के प्राण बचाये हैं जो पालक की हत्या के अनन्तर स्वय सत्तारूढ हुआ है—आर्यक के पुन बन्दी बना लिये जाने पर उसकी मृत्यु निश्चित थी और तब सत्तापरिवर्तन की पूरी योजना ही धराशायी हो जाती। पुन चारुदत्त का मृत्यु दण्ड क्षमा न कर पालक ने मानो विद्रोहियों के पक्ष को नवीन औचित्य प्रदान किया है और राज्यक्रान्ति की सभाव्यता को सशक्त बनाया है। इस प्रकार, इस राजनीतिक उपकथा की 'स्वार्थ सिद्धि' भी मुख्य कथा के प्रसग मे हुई है।

अतएव, 'मृच्छ०' की सम्पूर्ण प्रासगिक वस्तु आधिकारिक वस्तु के साथ निपुणता-पूर्वक गुम्फित हुई है और यह कलात्मक गुम्फन शास्त्रीयता की कसौटी पर सटीक उतरता है।

(७) अर्थ-प्रकृतियाँ

प्रयोजन सिद्धि के हेतुओं अर्थात् साधनोपायों को 'अर्थ प्रकृतियां' कहा गया है।[१] अतएव आधिकारिक कथा वस्तु के निर्वाह मे जिन तत्वों से सहायता ली जाती है, उन्हें 'अर्थ-प्रकृति' कहा जाता है। इस प्रकार, वस्तु नियोजन के ही आवश्यक तत्त्व ये अर्थ-प्रकृतियाँ हैं। 'बीज', 'बिन्दु', 'पताका', 'प्रकरी' तथा 'कार्य' नाम से पाँच अर्थ प्रकृतियाँ बताई गई हैं।[२] 'बीज' उसे कहते हैं जिसका पहले अत्यल्प कथन किया जाय, किन्तु जिसका विस्तार अनेक रूपो से हो। यह फल सिद्धि का प्रथम हेतु होता है। अवान्तर कथा के समावेश से मूल कथा मे जब विच्छेद उपस्थित हो जाय, तब प्रधान कथा को आगे बढाने मे जो सहा-

---

१ "अर्थप्रकृतयः प्रयोजनसिद्धिहेतवः।" (साहित्यदर्पण)

२ 'बीजबिन्दुपताकाख्यप्रकरीकार्यलक्षणा।
अर्थप्रकृतयः पञ्च ता एता परिकीर्तिताः॥" (दश०, १।१८)

यक अथवा हेतु होता है, वह 'बिन्दु' कहलाता है। जो प्रधान साध्य है, जिसकी सिद्धि के लिए सभी उपायो का आरभ तथा सभी उपकरणो का ('समापन') समागम किया गया है, उसे ही 'कार्य' कहते हैं।[1] पताका तथा प्रकरी का उल्लेख पहले हो किया जा चुका है।

'मृच्छ०' के प्रथम अक मे वसन्तसेना का पीछा करते हुए शकार कहता है—"भाव ! भाव ! एषा गर्भदासी कामदेवायतनोद्यानात् प्रभृति तस्य दरिद्र-चारुदत्तस्य अनुरक्ता, न मा कामयति ।"[2] वह नीच वसन्तसेना कामदेवमदिर के उद्यान से ही दरिद्र चारुदत्त मे अनुरक्त है, मुझे नही चाहती है'—शकार के इस कथन मे नाटक का 'बीज' वर्तमान है क्योकि इसी सक्षिप्त-कथित तथ्य का विस्तार नाना सरणियो मे आगे हुआ है। वसन्तसेना चारुदत्त मे आसक्त है और शकार को पसद नही करती—इस कथन मे ही नाटक के सम्पूर्ण सघर्ष तथा भावी विपत्ति के सकेत गर्भित हैं, अतएव, यही 'बीज' है। दूसरे अक मे, कामदेवायतन उद्यान वाली यात्रा की चर्चा करने पर मदनिका ने कहा है—"अच्छा, जान गई। क्या वही जिसकी शरण मे आप गई थी ?" ('ज्ञातम। कि स एव येनार्य्या शरणागता अभ्युपपन्ना ?")।[3] इस उक्ति को शकार के प्रस्तुत कथन से मिला कर विचार करने पर जान पडता है कि कामदेवायतन के उद्यान मे जब ये सभी कामदेव पूजा के उत्सव मे सम्मिलित होने गये थे, तब वसन्तसेना को गणिका युवती जान कर, शकार ने कदाचित् उसके साथ छेडखानी करने की चेष्टा की थी और समीपस्थ चारुदत्त के दाक्षिण्य पूर्ण हस्त-क्षेप के कारण, उसका शील भग होने से बच गया था। तभी से शकार को यह अनुभव हो गया था कि वसन्तसेना उसे नही चाहती और चारुदत्त को चाहती है, शायद चारुदत्त के हस्तक्षेप मे ही वह उसकी ओर विशेषरूप से ढल गई हो। बात जो भी रही हो, मूल तथ्य यही है कि "एषा गर्भदासी कामदेवायतनोद्यानात् प्रभृति दरिद्रचारुदत्तस्य अनुरक्ता, शकार न कामयति।" अतएव, शकार का उक्त कथन ही नाटक की कथा-वस्तु का बीज है।

दूसरे अक में जुआरियों वाला दृश्य मूल कथा प्रवाह को विच्छिन्न करता

---

१. "अल्पमात्र समुद्दिष्ट बहुधा यद्विसर्पति ॥
फलस्य प्रथमो हेतुर्बीज तदभिधीयते ।
अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम् ॥
× × × × ×
अपेक्षित तु यत्साध्यमारम्भो यन्निबन्धन ।
समापन तु यत्सिद्धयै तत्कार्यमिति सम्मतम् ॥ (दा० द०, ६।६५ ७०)

२ 'मृच्छकटिक' (चौखम्बा), पृ० ५२   ३ वही, पृ० ९८

प्रतीत होता है यद्यपि, जैसा ऊपर कहा गया है, संवाहक के वसन्तसेना के घर के भीतर प्रवेश करने से और चारुदत्त के साथ अपना पुराना संबंध बनाने पर, यह दृश्य प्रधान कथा का पूर्ण विच्छेदक नहीं सिद्ध होता। तथापि, जब कर्णपूरक प्रवेश करता है और दुष्ट हाथी के उत्पात से श्रमण को बचाने तथा पुरस्कार रूप में चारुदत्त से प्रावारक पाने का संवाद कहता है तब मुख्य कथा को निश्चित रूप से अग्रसर होने का हेतु प्राप्त हो जाता है क्योंकि वसन्तसेना चेटी के साथ चारुदत्त के प्रावारक अलिन्द पर चढ़ जाती है। अतएव कर्णपूरक का प्रस्तुत प्रसंग शास्त्रीय भाषा में 'बिन्दु' कहा जा सकता है।

पताका और प्रकरी की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। नाटक का मुख्य साध्य चारुदत्त और वसन्तसेना का स्थायी मिलन है। लेकिन वसन्तसेना गणिका की हैसियत से नहीं वैध वधू की हैसियत से चारुदत्त के साथ स्थायी आधार पर बंध जाना चाहती है। दूसरे अङ्क में जब मदनिका ने प्रस्ताव किया कि चारुदत्त से गुप्तरूपेण मिला जा सकता है, तब वसन्तसेना ने इसका प्रत्याख्यान किया—'सखि, प्रत्युपकार करने में असमर्थ उनसे गुप्त रूप से मिलना उचित नहीं होगा। तब उनका पुनर्दर्शन दुर्लभ हो जायगा।'[1] इस कथन से जान पड़ता है कि वसन्तसेना का मिलन-लक्ष्य कुछ गहरा है। छठे अङ्क में जब रात्रि रमण के बाद प्रातःकाल वसन्तसेना उठी तब उसे यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि वह अन्तःपुर में प्रविष्ट हो चुकी है—'हञ्जे! किं प्रविष्टा अहमिह अभ्यन्तरचतुःशालकम्?'[2] इसी अङ्क में वह धूता के साथ बहन का सम्बन्ध जोड़ती है और अपने को श्रीचारुदत्त की गुणनिर्जिता दासी बताती है—'हञ्जे! गृहाण एनां रत्नावलीम्, मम भगिन्यै आर्यधूतायै गत्वा समर्पय, वक्तव्यञ्च श्रीचारुदत्तस्य गुणनिर्जिता दासी, तदा युष्माकमपि।'[3] आगे चल कर, वह रोहसेन को 'पुत्र' कहकर पुकारती है—"जात! मा रुदिहि, सौवर्णशकटिकया क्रीडिष्यसि।'[4] इन कथनों से जान पड़ता है कि वसन्तसेना चारुदत्त की पत्नी का महत्त्व ग्रहण करने के लिए लालायित है। अन्त में, शर्विलक ने नये राजा आर्यक की ओर से उसे चारुदत्त की 'वधू' की पदवी भी प्रदान की है।[5]

अतएव, नाटक का मुख्य साध्य चारुदत्त एवं वसन्तसेना का पति-पत्नी

---

१. मृच्छ०' (चौखम्बा) पृ० १०१
२ वही पृ० ३१५
३ वही, पृ० ३१७
४ वही, पृ० ३२०.
५ वही पृ० ५९८

भाव से स्थायी प्रविबन्धन है, और यही उसका 'कार्य' समझा जाना चाहिए।

(३) कार्यावस्थाएँ

कथा-वस्तु के कार्य की पाँच अवस्थाएँ बताई गई हैं, यथा—आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा नियताप्ति और फलयोग अथवा फलागम।[1] फल के अभिलाषी नायक-नायिका जब कार्य प्रारंभ करते हैं, तब अंतिम साध्य तक पहुँचने के लिए उस कार्य को विभिन्न सोपानों से होकर अग्रसर होना पड़ता है। इन पाँच अवस्थाओं में ये आवश्यक सोपान ही निरूपित किये गये हैं।

मुख्य फल की सिद्धि के लिए जो 'उत्कण्ठा' या 'औत्सुक्य' होता है, वह 'आरम्भ' कहलाता है। फलप्राप्ति के लिए त्वरापूर्वक किया गया प्रयत्न 'यत्न' कहा जाता है। जहाँ प्राप्ति की आशा उपाय तथा अपाय की शंकाओं से घिरी हो किन्तु प्राप्ति की सम्भावना बनी हो, उस अवस्था को 'प्राप्त्याशा' कहते हैं। अपाय के दूर हो जाने से जब प्राप्ति निश्चित हो जाती है तब वह अवस्था 'नियताप्ति' कहलाती है। जहाँ सम्पूर्ण फल की प्राप्ति हो जाय, उस अवस्था को 'फलयोग' अथवा 'फलागम' कहा गया है।[1]

'मृच्छ०' में ये सभी अवस्थाएँ अवलोकनीय हैं। अंधेरी रात में शकारादि से पीछा की जाती हुई वसन्तसेना जब शकार के कथन से ही यह सुनती है कि चारुदत्त के घर के अत्यन्त समीप वे पहुँच गये हैं और वसन्तसेना उसमें भाग कर शरण ले सकती है, तब वसन्तसेना कहती है—"यदि सचमुच उसका घर बाईं ओर है, तो इस दुष्ट ने बुराई करते हुए भी मेरा उपकार ही किया है कि प्रिय चारुदत्त का मिलन तो सम्भव हो गया।"[2] इस कथन में वसन्तसेना के प्रियमिलनौत्सुक्य की क्षीण छाया दिखाई पड़ती है।[3] चारुदत्त के घर में प्रवेश कर जाने पर वसन्तसेना का यह कथन इस औत्सुक्य को अधिक

१ "अवस्थाः पञ्च कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः ।
आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमाः ॥" (दशरूपक, १।१९)

२ "भवेदारम्भ औत्सुक्यं यन्मुख्यफलसिद्धये ॥
प्रयत्नस्तु फलावाप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः ।
उपायापायशङ्काभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्तिसम्भवः ॥
अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिस्तु निश्चिता ।
सावस्था फलयोगः स्याद्यः समग्रफलोदयः ॥"

(सा० द०, ६।७१-७३)

३ 'मृच्छ०' (चौखम्बा) पृ० ५३

प्रस्फुट बनाता है। उत्तरीय चारुदत्त के हाथ से लेकर, वह कहती है—"अहा ! चमेली के फूलों की सुगन्ध से सुवासित यह उत्तरीय ! इसका यौवन अभी कामुक ही प्रतिभासित होता है।"[1] चारुदत्त का औत्सुक्य भी इसी प्रसंग में व्यंजित हुआ है। विदूषक के मुँह से शकार की धमकी सुनकर वह कहता है—'राजश्याल मूर्ख है। अहो ! देवता के समान कैसी उपासना-योग्य वह युवती है !'[2] अतएव, प्रथम अंक के इन कथनों में, चारुदत्त तथा वसन्तसेना का औत्सुक्य समान भाव से व्यंजित होने के कारण, कार्य के 'आरंभ' की अवस्था प्रस्फुट हो गई समझी जानी चाहिए।

इसी सदर्भ में 'यत्न' की अवस्था भी प्रारम्भ हो गई है। सामान्य शिष्टाचार के बाद फल प्राप्ति के निमित्त त्वरित प्रयत्न वसन्तसेना की ओर से किया जाता है। "भवतु, तिष्ठतु प्रणय ।"—चारुदत्त का यह वाक्य सुनकर वसन्तसेना उस वचन के मधुर चातुर्य पर मुग्ध हो जाती है ("चतुरो मधुरश्चायमुपन्यास ") और कहती है— अब आर्य मुझे इस प्रकार अनुगृहीत कर रहे हैं तब मैं इन आभूषणों को आपके घर रखना चाहती हूँ। इन आभूषणों के ही कारण, ये पापी जन मेरा पीछा करते हैं।"[3] चारुदत्त के यह कहने पर कि यह जीर्ण घर धरोहर रखने योग्य नहीं है, वह कहती है—"आर्य ! यह असत्य है। धरोहर योग्य पुरुष के यहाँ रखी जाती है, न कि योग्य घर में।"[4] और, अन्तत वह चारुदत्त के घर आभूषण छोड ही देती है। यह फल-प्राप्ति की दिशा में निश्चित प्रयत्न का प्रारम्भ है क्योंकि उसी गहने के बहाने से वह भविष्य में चारुदत्त के घर पुन आने की योजना बना पायगी। चारुदत्त स्वयमेव उसे उसके घर पहुँचाने के लिए तैयार हो गया है—'एव भवतु। स्वयमेवानुगच्छामि तत्रभवतीम् ।"[5] इसे भी चारुदत्त की ओर से फलप्राप्ति की दिशा में हलका प्रयत्न समझा जा सकता है क्योंकि इसका उद्देश्य चारुदत्त के लिए वसन्तसेना को उपकृत करना ही है।

अतएव, प्रथम अङ्क में 'आरम्भ' तथा 'यत्न' दोनों अवस्थाएँ उपन्यस्त हो गई हैं। यत्न' की अवस्था, लेकिन, आगे भी छठे अङ्क तक चलती गई है। दूसरे अङ्क में फल प्राप्ति की दिशा में कोई प्रयत्न नहीं हुआ है। तीसरे

---

१ 'मृच्छ०' (चौखम्बा), पृ० ८२

२ वही, पृ० ८६   ३ वही, पृ० ८८।

४ वही, पृ० ८९ ('आर्य ! अलीकम्। पुरुषेषु न्यासा निक्षिप्यन्ते न पुनर्गेहेषु।")

५ वही, पृ० ९०.

अङ्क मे भी यही अवस्था है, कारण कि सन्धिच्छेद वाला प्रसग मुख्य कथा के साथ प्रत्यक्षरूपेण सम्बद्ध नहीं है। चौथे अङ्क मे अलकार-न्यास के चोरी चल जाने पर, चारुदत्त ने अपनी सम्मान रक्षा के लिए धूता की रत्नावली वसन्तसेना को भिजवाई है जबकि वह अलकार भी उसके पास पहले ही पहुँच गया है। तब वसन्तसेना की जो अभिसार की योजना है और पाँचवें अङ्क मे जो वह अभिसार सम्पन्न हुआ है वह वसतसेना की ओर से मुख्य साध्य की प्राप्ति के लिए दूसरा ठोस कदम समझा जाएगा। पाँचवें अङ्क के अन्त तक—जैसा पहले कहा जा चुका है—मुख्य कथा-प्रवाह मे एक विराम आ गया है। वस्तुत इस विराम के साथ वसतसेना के प्रयत्न का स्वरूप बदल जाता है। अब तक मुख्य साध्य की सिद्धि के लिए वही प्रयत्न का प्रारम्भ तथा परिपोष करती रही है। पाँचवें अङ्क तक उसकी यह लीड' ('lead'), यह अग्रेसरण विरामस्थल को पहुँच जाता है। छठे अङ्क मे पुष्प-करडक उद्यान मे विहार की योजना उसने नहीं चारुदत्त ने बनाई है। अतएव, छठे अङ्क का लगभग पूरा काय 'यत्नावस्था' का है और वह प्रयत्न वसतसेना की ओर से नही, चारुदत्त की ओर से किया गया है।[1] शायद, इसी एक सदर्भ मे चारुदत्त की सतर्कतापूर्वक निर्मित निष्क्रियता को नाटककार ने जानबूझ कर भग किया है।

'प्राप्त्याशा' का प्रारम्भ सातवें अङ्क मे होता है और वह अवस्था दसवें अक तक चलती मानी जा सकती है। सातवें अक मे प्रवहण-विपयय के फलस्वरूप, चारुदत्त की आशा शकाओ से घिर जाती है। वधमानक के उद्यान मे पहुँचने में विलम्ब करने पर चारुदत्त चिन्तित हो गया है—"वयस्य! चिरयति वर्द्धमानक।" और नाना कारणो की सम्भावना से उसका चित्त डगमग होने लगा है।[2] पुन जब वधमानक की आवाज सुनाई पडती है, तब यह जान कर कि वसन्तसेना गाडी मे आई है, चारुदत्त कहता है, 'प्रिय न प्रियम्।" गाडी को देखकर, वह कहता है, "वधमानक! गाडी को घुमाओ।

---

१ छठे अक मे वसन्तसेना को आशा लगी है कि चारुदत्त से वह मिलेगी और प्रणय-सबध को और भी दृढ बनायेगी। इस दृष्टि से इस अक का काय 'प्राप्त्याशा' के अन्तगत रखा जा सकता है। किन्तु, शास्त्रीय विधान मे उपाय-अपाय की शकाओं से अन्वित आशा ही 'प्राप्त्याशा' कही गई है। ऐसी अवस्था सातवें अक मे ही उत्पन्न होती है। इसी कारण, छठा अक विशुद्ध 'यत्न' की अवस्था है और वह यत्न नायकारब्ध है।

२ 'मृच्छ०' (चौ०), पृ० ३५९-६०

मित्र मैत्रेय। वसन्तसेना को उतारो।"[1] इस स्थल पर चारुदत्त की आशा-निराशा का मार्मिक अंकन हुआ है। वर्धमानक के विलम्ब करने पर चिन्तित हो जाना तथा उसके पहुँच जाने पर आशान्वित हो जाना और वाहक को अपनी गाडी मे भेजकर, वसन्तसेना के लिए फिर चिन्तित हो जाना "सखे मैत्रेय ! मैं वसन्तसेना को देखने के लिए उत्सुक हो रहा हूँ। प्रियतमा वसन्तसेना के बिना मेरी बाईं आँख फडक रही है। X X X यह अमांगलिक श्रमणक कैसे दिखाई पडा ?"[2] 'प्राप्त्याशा' का यह सही स्वरूप है।

आठवें अंक में चेट स्थावरक के जीर्णोद्यान मे पहुँचने पर जब वसन्तसेना को वस्तुस्थिति का ज्ञान हो जाता है तब से लेकर अन्त तक 'प्राप्त्याशा' का अत्यन्त दारुण स्वरूप चित्रित हुआ है। नवें अंक में सातवें अंक के समान ही, चारुदत्त को पुनः प्राप्त्याशा के कठिन तीरों से चुभना पडा है। वसन्तसेना की जो उसके प्राणों की भूख है, हत्या का आरोप उस पर लगाया गया है। "फूल लेने के लिए जो मैं विकसित लता को भी झुकाता नहीं, वही मैं भ्रमर के पंख के समान नील कान्ति वाले लम्बे केशों को खींच कर रोती हुई कामिनी को कैसे मारूँगा ?"[3]—चारुदत्त के इस हृदय विदारक कथन मे 'प्राप्त्याशा' का स्वरूप नितान्त सुकुमार बन गया है क्योंकि जिस पाने की सकटापन्न अभिलाषा उसे तडपा रही थी, उसी की हत्या का आरोप उस पर मढा गया है ! वही आगे चल कर, चारुदत्त ने स्पष्ट कहा है—'वसन्तसेना के जीवन के बिना मेरे लिए जीना व्यर्थ है।"[4] इस प्रकार, प्रस्तुत अंक फल-प्राप्ति की सभावना को मर्मस्पर्शी शकाओ से पर्याच्छन्न कर गया है।

दसवें अंक मे प्राप्त्याशा का अतीव दारुण एवं कारुणिक स्वरूप उभर आया है। मृत्यु के जुलूस मे ले जाया जाता हुआ भी, चारुदत्त वसन्तसेना की प्राप्ति की आशा से चिपका हुआ है। कहता है—"चन्द्रमा की निर्मल किरण के समान उज्ज्वल दाँतों वाली ! मनोरम प्रवाल के तुल्य अधरों वाली ! प्रियतमे ! तुम्हारे मुखामृत का पान कर चुकने पर, सम्प्रति मैं कितना असहाय होकर अयश रूपी विष का पान कर रहा हूँ।"[5] चाण्डालों के यह कहने पर कि मारे जाने के पूर्व वह मनचाही बात का स्मरण कर ले, चारुदत्त कहता है—

---

१ वही, पृ० ३६३. २ वही, पृ० ३७०–७१

३ वही, पृ० ४९७

४ "(स्वगतम्) न च मे वसन्तसेनाविरहितस्य जीवितेन कृत्यम् ।"—वही, पृ० ५१२

५ वही, पृ० ५२९ ३०

"राजपुरुष के वचनों से कलंकित आज मेरे धर्म में यदि कुछ भी प्रभाव हो, तो वसन्तसेना जहाँ भी हो मेरे कलंक को दूर करे।"[1] इस कथन में भी चारुदत्त के मन से वसन्तसेना-मिलन की संभावना विनष्ट नहीं हुई है। इस कथन को उसने दो तीन बार दुहराया है।[2] चण्डाल के हाथ से तलवार गिर जाने पर, चारुदत्त के अन्तत किसी प्रकार बच जाने की संभावना और इसी कारण उसके वसन्तसेना से मिल जाने की संभावना एक बार पुनः धरातल पर आ जाती है कि झटिति वसन्तसेना भिक्षु के साथ वहाँ पहुँचती और आर्त्त आर्द्र स्वरों में पुकार उठती है—'ऐसा न कीजिए, सज्जनो ! यह मैं अभागिनी हूँ जिसके कारण वे मारे जा रहे हैं।"[3] इस स्थल तक पहुँचते पहुँचते, चारुदत्त और वसन्तसेना दोनों की 'प्राप्त्याशा' नितान्त तलस्पर्शी तथा प्रेक्षकों के लिए प्राणों को झकोरने वाली बन गई है।

इसी स्थल के बाद 'नियताप्ति' की अवस्था आई है। चांडालों को भी लगा है कि शायद वह वसन्तसेना जीवित आ रही है—"केश-कलाप कंधे पर लटक रहे हैं, हाथ उठाए 'न कीजिए, न कीजिए' कहते यह कौन जल्दी-जल्दी इधर आ रही है ?" वसन्तसेना झटिति वहाँ पहुँचती और भूमि पर पड़े चारुदत्त के हृदय पर गिर पड़ती है। भिक्षुक भी उसके चरणों पर गिर पड़ता है। चांडाल डर जाते हैं कि भाग्य-वश उन्होंने चारुदत्त का वध नहीं किया। भिक्षुक हर्ष से पुकार उठता है, "अरे ! चारुदत्त जीवित है !" वसन्तसेना हर्ष में भर जाती है और अपने लिए भी कहती है, "मैं पुनर्जीवित हो गई !" और, प्राप्त्याशा काल का सम्पूर्ण 'अपाय' (विघ्न) तब विनष्ट हो गया है जब शकार वसन्तसेना को देख कर, यह कहते हुए भाग जाता है कि "हाय ! यह अधम दासी कैसे जीवित हो गई ! मेरे प्राण निकलना चाहते हैं।"[4] अब, नायक-नायिका का स्थायी मिलन निश्चित हो गया है। शर्विलक के प्रकट होकर यह संवाद सुनाने से कि आर्यक ने राजा पालक का वध कर दिया है जिसने चारुदत्त के प्राण-दण्ड के कार्यान्वयन का आदेश दे रखा था, 'नियताप्ति' की अवस्था अधिक प्रस्फुट हो गई है और जब शकार निराश होकर, असहाय दशा

---

१ वही, पृ० ५६० २. पृ० ५६६, ६८.

३ "आर्याः ! मा ताव मा तावत्। आर्याः ! एषाहं मन्दभागिनी यस्याः कारणादेष व्यापाद्यते।"—वही पृ० ५६८

४ वही पृ० ५६६–७० 'अत्याहितम् ! केन गर्भदासी जीविता प्रत्यागता ? उत्क्रान्ता मे प्राणाः। [illegible]'

मे चारुदत्त की शरण मे आ जाता है, तब तो नियताप्ति 'फलागम' की सीमा-रेखा को चूमने लग गई है।

दसवें अक का अवसान फलागम का महोत्सव है। वसन्तसेना नए राजा-द्वारा चारुदत्त की वधू घोषित की गई है, चारुदत्त को कुशावती का राज्य समर्पित किया गया है और प्राय सभी महत्त्वपूर्ण पात्रो को यथा योग्य पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया है। आधिकारिक कथा का प्रस्तुत 'फल योग' कितना मधुर और सुखद सिद्ध हुआ है!

(४) पचसन्धियाँ

उपर्युक्त पाँच अर्थ प्रकृतियों और पाँच कार्यावस्थाओ के क्रमिक सयोग से कथा-वस्तु की पाँच सन्धियो का आविर्भाव होता है। धनजय ने कहा है—

"अर्थप्रकृतय पञ्च पञ्चावस्थासमन्विता ।
यथासख्येन जायन्ते मुखाद्या पञ्चसन्धय ॥"
(द० रू०, १।२२ २३)

—'पाच प्रकार की अर्थ प्रकृतियो का क्रमश पाँच प्रकार की अवस्थाओ से समन्वय होने पर मुख इत्यादि पाँच सन्धियाँ उत्पन्न होती हैं।'

एक ही मे अन्वय होने पर एक अवान्तर अर्थ के साथ सबध होना 'सन्धि' कहलाता है।[1] नाटक मे भिन्न भिन्न कथाश होते हैं जिनके प्रयोजन भी भिन्न-भिन्न होते हैं। एक ही प्रयोजन से जहाँ कई एक कथाश परस्पर अन्वित (सयुक्त) हो, वहाँ पर उन कथाओ का उस अवान्तर प्रयोजन से सबध होना ही शास्त्रीय शब्दावली म 'सन्धि' कहा जाता है। 'मुख', 'प्रतिमुख', 'गर्भ', 'अवमर्श' तथा 'उपसहृति' नाम से पाँच सधियाँ बताई गई हैं। 'अवमर्श' को 'विमर्श' और 'उपसहृति'[2] को 'निर्वहण' भी कहा गया है। 'बीज' तथा 'आरभ' के सयोग से 'मुखसधि' होती है। 'बिन्दु' तथा 'यत्न' के सयोग से 'प्रतिमुख सधि' होती है। 'गर्भसधि' म 'पताका' और 'प्राप्त्याशा' का संयोग होता है यद्यपि पताका का रहना यहाँ अनिवार्य नही है। विमर्श सधि' मे 'प्रकरी' और 'नियताप्ति' का मेल होता है यद्यपि यहाँ भी प्रकरी का रहना अनिवार्य नही है। 'निर्वहण' अथवा 'उपसहृति' मे 'फलागम' तथा 'फलागम' का सयोग सम्पन्न होता है।[3]

---

१ "अन्तरैकार्थसम्बन्धः सन्धिरेकान्वये सति ।" (द० रू०, १।२३)

२ "मुखप्रतिमुखे गर्भ सावमर्शोपसहृति" (द० रू०, १।२)

३ 'यत्र बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा ॥
प्रारम्भेण समायुक्ता तन्मुख परिकीर्तितम् ।

'मृच्छ०' के प्रथम अंक मे मोटे रूप से आरम्भ से लेकर चारुदत्त के यह कहने तक कि 'देवता के समान कैसी उपासना-योग्य वह युवती है" जहाँ चारुदत्त का 'औत्सुक्य' भी व्यजित हो गया है, 'मुखसंधि' की व्याप्ति मानी जा सकती है। इसी अंक मे उस स्थल से जहाँ वसंतसेना अपना आभूषण चारुदत्त के घर मे रख छोडने का प्रस्ताव करती है ('यत्न' के आरम्भ से), छठे अंक तक (जिसमे चारुदत्त ने जीर्णोद्यान मे विहार की योजना कर, अपनी ओर से यत्न' को नवीन मोड दिया है) 'प्रतिमुखसंधि' चलती है क्योंकि इसी अंतराल मे, दूसरे अङ्क मे जुआरियो वाले दृश्य से उत्पन्न अवरोध का अवच्छेद कर्णपूरक वाले प्रसग से होता है जो 'बिन्दु' है। सातवें अङ्क से 'प्राप्त्याशा' की अवस्था का आरम्भ हुआ है और दसवें अङ्क के श्मशानस्थल तक जहाँ चाडाल के हाथ से तलवार गिर पडी है और श्रमण के साथ वसंतसेना ने पहुँच कर अपने को विज्ञापित किया है, यह अवस्था चलती गई है। यही भाग 'गर्भसंधि' का विस्तार है क्योंकि इसी मे राज्य क्रान्ति वाली मुख्य 'पताका' के प्रधान पात्र आर्यक के अपहरण का दृश्य सामने आया है, वैसे 'गर्भसंधि' मे पताका का रहना अनिवार्य भी नही है। दसवें अंक मे चाडालो के इस कथन से लेकर कि 'कंधे पर केश छितराये यह कौन आ रही है', शकार के सवस्त्र दशा मे चारुदत्त की शरण मे आ जाने तक 'विमर्श' अथवा 'अवमर्श' संधि की स्थिति है, इसी बीच संवाहक वाली 'प्रकरी' का भी मुख्य कथा के साथ विस्मयपूर्ण संयोग घटित हो गया है। शकार के आत्म-समर्पण से लेकर अंत तक 'निर्वहण' अथवा 'उपसंहृति' नाम्नी संधि की व्याप्ति मानी जाएगी क्योंकि इस सोपान मे 'कार्य', अर्थात् नाटक का मुख्य साध्य 'फलागम' की स्थिति को उपलब्ध कर गया है।

(५) नान्दी

संस्कृत नाट्य शास्त्र के विधान के अनुरूप, शूद्रक ने 'मृच्छकटिक' को

फलप्रधानोपायस्य मुखसंधिनिवेशिन ॥
लक्ष्यालक्ष्य इवोद्भेदो यत्र प्रतिमुख च तत् ।
फलप्रधानोपायस्य प्रागुद्भिन्नस्य किंचन ॥
गर्भो यत्र समुद्भेदो ह्रासान्वेषणवान्मुहु ।
यत्र मुख्यफलोपाय उद्भिन्नो गर्भतोऽधिक. ॥
शापाद्यै सान्तरायश्च स विमर्श इति स्मृत ।
बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम् ॥
एकार्थमुपनीयन्ते यत्र निर्वहण हि तत् ।" (साहित्यदर्पण, ६।७५-८१)

'नान्दी' से आरम्भ किया है जिसमें स्रग्धरा तथा अनुष्टुप् छन्दों में रचित दो श्लोक हैं। पहले में शंकर की प्रलयोन्मुख, परमात्मा में लीन निर्विकल्पक समाधि तथा दूसरे में पार्वती की भुज लताओं से सुशोभित शंकर के नीले कण्ठ में सामाजिकों के मंगल की याचना की गई है।[1] नाट्य वस्तु के पूर्व, नाट्यशाला के विघ्नों को दूर करने के लिए कुशीलवों द्वारा सम्पन्न उपचार 'पूर्व-रंग' कहा जाता था। 'नान्दी' उस उपचार का अन्तिम महत्त्वपूर्ण अंग है जिसे विघ्न शान्ति के हेतु आवश्यक समझा गया है।[2] नान्दी की परिभाषा में कहा गया है कि इसमें किसी देवता, ब्राह्मण इत्यादि की आशीर्वाद-युक्त वन्दना के साथ, नाट्य वस्तु के मुख्य तथ्यों की विज्ञप्ति भी होनी चाहिए।[3] प्रस्तुत नान्दी के नीलकण्ठ (शंकर) और गौरी (पार्वती) नाटक के नायक नायिका के निर्देशक समझे गए हैं। उनका मिलन नान्दी के दूसरे श्लोक से संकेतित है। बादल ('श्यामाम्बुद') तथा बिजली ('विद्युल्लेखा') पाँचवें अङ्क में वर्णित दुर्दिन के सूचक कहे गए हैं और श्यामल तथा गौर वर्ण क्रमशः दुष्टों तथा सज्जनों द्वारा अपनाई गई जीवन पद्धतियों के व्यंजक माने गए हैं—स्मरणीय है कि शकार दुष्टों का शिरोभूषण तथा चारुदत्त सज्जनों का शिरमौर है। इस अनुवचन को थोड़ा और बढ़ाकर, कहा जा सकता है कि शंकर के लिए 'शम्भु' तथा 'नीलकण्ठ' पर्यायों के प्रयोग से नाटककार ने यह ध्वनित किया है कि वे (भगवान् शिव) अन्ततः समस्त अनिष्टों का वैसे ही

१ "पर्यङ्कग्रन्थिबन्धद्विगुणितभुजगाश्लेषसंवीतजानो-

×   ×   ×

शम्भोर्वः पातु शून्येक्षणघटितलयब्रह्मलग्नः समाधिः ॥ (१)

पातु वो नीलकण्ठस्य कण्ठः श्यामाम्बुदोपमः ।

गौरीभुजलता यत्र विद्युल्लेखेव राजते ॥" (२)

२ "यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये ।

कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते ॥

प्रत्याहारादिकान्यङ्गान्यस्य भूयांसि यद्यपि ।

तथाप्यवश्यं कर्तव्या नान्दी विघ्नोपशान्तये ॥

(साहित्यदर्पण, ६।२२–२३)

३ 'आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते ।

नान्दीति कथ्यते प्राज्ञैः × × × × ॥"

शमन कर देंगे जैसे हालाहल का पान कर, उन्होंने देवताओं का कल्याण-सम्पादन किया था।[1]

एक अमेरिकन आलोचक हेनरी वेल्स ने अपनी नव प्रकाशित पुस्तक में प्रस्तुत नान्दी के मर्म का उद्घाटन करते हुए लिखा है कि शंकर के कण्ठ के उल्लेख से कवि-नाटककार ने शिव से वाणी के वरदान की याचना की है और बादल तथा बिजली की उपमा में इस स्थापना की पुष्टि की है कि पुरुष बादल है और नारी बिजली है। पञ्चम अङ्क में चारुदत्त ने स्वयं वसंतसेना का ध्यान मेघ तथा विद्युत् के मिलन-दृश्य की ओर आकर्षित किया है जिससे संकेत ग्रहण कर, वसन्तसेना उसके भुज पाश में लिपट गई है।[2] इस प्रकार, नारी वसंतसेना की 'बिजली' को पुरुष चारुदत्त ने उधार ले लिया है, वसंतसेना की शक्ति की आग से उसके भीतर भी आग जल उठी है। हेनरी वेल्स की यह व्याख्या सुन्दर कही जाएगी।[3] चारुदत्त गरीबी के कारण यों ही शीतल है, और वसंतसेना की आग के अभाव में कदाचित्, उसके भीतर रोमांस की आग की चिनगारी भी सजीव नहीं हो पाती। कदाचित् पुरुष की सम्पूर्ण आर्द्रता चमक ही नहीं पाती यदि नारी की निसर्ग सिद्ध अग्नि का उसके साथ संयोग नहीं हुआ रहता।

(६) प्रस्तावना (आमुख)

नान्दी के बाद 'आमुख' अथवा 'प्रस्तावना' होती है। प्रस्तावना सूत्रधार का नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक के साथ किसी संबंधित विषय पर वार्त्तालाप है जिसके द्वारा प्रस्तुत कथा का सूचन हो जाय।[4] प्रस्तावना इस रीति से उपनिबद्ध होती है कि वह सामाजिकों की रुचि एवं ध्यान जाग्रत एवं आकर्षित कर लेती है और नाटककार के संक्षिप्त परिचय के साथ-साथ,

१ Dr Devasthali 'Introduction To The Study of Mrccha-katika' (1951), पृ० ४१

२ "एषाऽम्भोदसमागमप्रणयिनी स्वच्छन्दमभ्यागता
रक्ता कान्तमिवाम्बरं प्रियतमा विद्युत् समालिङ्गति।" (५।४६)

३ Henry W Wells 'The Classical Drama of India' (1963), पृ० १३९–४०.

४ "नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा॥" (ना० द० ६।११–१२)

अभिनय नाटक का भी बोध करा देती है। 'मृच्छकटिक' की प्रस्तावना इस दृष्टि से सार्थक है क्योंकि वह लेखक का परिचय देने के साथ ही, मुख्य कथानक तथा उससे सम्बन्धित अन्य उप-कथाओं की सुन्दर विज्ञप्ति करती है। संगीत के अभ्यास के बाद भूख से पीड़ित सूत्रधार जब घर लौटता और सुस्वादु भोज्य-पदार्थों का रोचक वर्णन करता है, तब हमारी अभिरुचि जाग्रत हो उठती है। नटी एवं सूत्रधार के संवाद में यथेष्ट हास्य विनोद का पुट सन्निविष्ट हो गया है और 'अभिरूपपति' वाले उपवास के लिए किसी उपयुक्त ब्राह्मण की खोज में जब मैत्रेय सम्मुख उपस्थित होता है, तब सुन्दर रीति से प्रतिपाद्य वस्तु का सूत्र-प्रवर्तन हो गया है।

आचार्यों ने प्रस्तावना के पाँच प्रकार निर्दिष्ट किये हैं, यथा—उद्घात्यक, कथोद्घात, प्रयोगातिशय, प्रवर्तक तथा अवलगित।[1] अप्रतीतार्थक पदों के अर्थ की प्रतीति कराने के लिए जहाँ अन्य पद साथ में जोड़ दिए जायें, वहाँ प्रस्तावना 'उद्घात्यक' कहलाती है। जहाँ सूत्रधार का वाक्य या वाक्यार्थ लेकर, कोई पात्र प्रवेश करे, वहाँ 'कथोद्घात' होती है, जहाँ एक ही प्रयोग में दूसरा प्रयोग भी प्रारम्भ हो जाय तथा उसी के द्वारा पात्र का प्रवेश हो वहाँ प्रस्तावना 'प्रयोगातिशय' कहलाती है।[2] इसी प्रकार, जहाँ सूत्रधार उपस्थित समय (अथवा ऋतु) का वर्णन करे तथा उसी के आश्रय से पात्र का प्रवेश हो, वहाँ 'प्रवर्तक' और जहाँ एक प्रयोग में सादृश्यादि के द्वारा समावेश कराकर, किसी पात्र का सूचन किया जाय, वहाँ 'अवलगित' प्रस्तावना होती है।[3]

---

१. "उद्घात(त्य)क कथोद्घातः प्रयोगातिशयस्तथा।
प्रवर्तकावलगिते पञ्च प्रस्तावनाभिदाः॥" (वही, ६।३३)

२ "पदानि त्वगतार्थानि तदर्थगतये नराः।
योजयन्ति पदैरन्यैः स उद्घात(त्य)क उच्यते॥
सूत्रधारस्य वाक्यं वा समादायार्थमस्य वा।
भवेत्पात्रप्रवेशश्चेत्कथोद्घातः स उच्यते॥"
यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत्प्रयोगातिशयस्तदा॥ (वही, ६।३४-३६)

३. "कालं प्रवृत्तमाश्रित्य सूत्रधृग्यत्र वर्णयेत्।
तदाश्रयश्च पात्रस्य प्रवेशस्तत्प्रवर्तकम्॥
यत्रैकत्र समावेशात्कार्यमन्यत्प्रसाध्यते।
प्रयोगे खलु तज्ज्ञेयं नाम्नावलगितं बुधैः॥" (सा० द०, ६।३७-३८)

'मृच्छकटिक' की प्रस्तावना को कुछ पंडितों ने 'प्रवर्तक' की जाति का बताया है। जैसे 'उत्तररामचरित' की प्रस्तावना है।[1] यहाँ स्मरणीय यह है कि सूत्रधार 'उत्तर०' में घोषणा करता है कि वह स्वयं 'आयोध्यिक' तथा 'तदानीन्तन' बन गया है और इसलिए नाटकीय पात्रों का समकालीन हो गया है।[2] अतएव यहाँ प्रस्तावना प्रवर्तक बन गई है। 'काल प्रवृत्त' में विश्वनाथ महापात्र ने उपस्थित ऋतु का भी भाव ग्रहण किया है।[3] निम्नांकित श्लोक में शरद्वर्णन के अनन्तर, श्लेष के प्रश्रय से, शरदृतु के रूप में ही राम का प्रवेश कराया गया है—

"आसादितप्रकटनिर्मलचन्द्रहासः प्राप्तः शरत्समय एष विशुद्धकान्तिः ।
उत्खाय गाढतमसं घनकालमुग्रं रामो दशास्यमिव संभृतबन्धुजीवः ॥"
('ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो रामः।')

विश्वनाथ के मतानुसार, यहाँ 'प्रवर्तक' प्रस्तावना हुई है। किन्तु 'मृच्छ०' की प्रस्तावना में "काल प्रवृत्त" के इन द्विविध अर्थों में से किसी की भी उपपत्ति सिद्ध नहीं होती। नाटक का पात्र मैत्रेय यहाँ सबसे प्रथम प्रवेश करता है और सूत्रधार से उसका कोई कालिक सम्बन्ध सूचित नहीं होता। वह केवल कहता है कि मैं अब प्राकृत में बोलूँगा—'एषोऽस्मि भोः। कार्यवशात् प्रयोगवशाच्च प्राकृतभाषी संवृत्तः।" इस कथन से वह न तो नाटकीय पात्रों का समसामयिक बनता है, न यहाँ किसी ऋतु या मौसम का ही वर्णन हुआ है। अतएव, यह प्रस्तावना 'प्रवर्तक' नहीं कही जा सकती। इसके विपरीत मैत्रेय रंगमंच पर सूत्रधार के इस कथन से उपस्थित किया गया है, 'एष चारुदत्तस्य मित्रं मैत्रेय इत एवागच्छति।" अतएव यहाँ प्रस्तावना 'प्रयोगातिशय' जाति की मानी जाएगी।

'मृच्छ०' की प्रस्तावना के संबंध में सबसे महत्त्व की बात है कवि शूद्रक की प्रशंसा वाला अंश। जैसा मैंने अन्यत्र दिखाया है ये पद्य स्वयं कवि की रचना नहीं हो सकते क्योंकि कवि अपने जीवन काल तथा मृत्यु के विषय में ऐसी वस्तुनिष्ठ अभ्युक्तियाँ कैसे कर सकता था? इसी कारण, प्रायः सभी भारतीय तथा पश्चिमीय विद्वान् इन पद्यों को बाद का प्रक्षेप मानते हैं। दूसरी उल्लेखनीय बात इस संबंध में यह है कि 'प्रस्तावना' के सामान्य अर्थ-

---

१ द्र० करमरकर द्वारा सम्पादित मृच्छ० की टिप्पणियाँ पृ० ७ एफ्०।
२ "एषोऽस्मि कार्यवशात् प्रयोगवशाच्च आयोध्यिकस्तदानीन्तनश्च संवृत्तः।"
३ साहित्यदर्पण (विमलाख्या व्याख्या) १९५६ पृ० १७३.

ग्रहण को ध्यान में रख कर पण्डितों ने 'मृच्छ०' की वर्तमान प्रस्तावना में नाट्य वस्तु के प्रमुख सूत्रों या तथ्यों का संधान किया है। ऐसा कहा गया है कि 'सविधानक' शब्द का तीन बार प्रयोग कर शूद्रक ने अपने कथानक की वैचित्र्य पूर्णता की व्यंजना की है तथा 'नवसविधानक' पद के प्रयोग से चारुदत्त को विनष्ट करने के शकार के प्रयत्न, चारुदत्त के कंठ में वध्य पुरुष की पहनाई गई माला और नाटक के अन्त में परिगणित पंचविध मंगल-सिद्धियों[1] अथवा वसन्तसेना के प्रासाद में होने वाले नाना व्यापारों का ध्वनन किया है। इसी प्रकार, सूत्रधार के अपनी पत्नी के प्रति दिए गए अभिशाप को वसन्तसेना के ऊपर आने वाली विपत्ति का सूचक बताया गया है और "क्षुधया अक्षीणि खटखटायन्ते" में शकार के असंबद्ध प्रलाप का संकेत ग्रहण किया गया है।[2] प्रस्तुत प्रस्तावना में काव्यार्थ सूचक इतने सूत्रों तथा संकेतों की खोज निकालना निश्चित-ही भावयित्री प्रतिभा का आकर्षक प्रयोग समझा जाएगा, सामान्य पाठक को यह सम्पूर्ण मानसिक व्यायाम स्वीकार करने की कदाचित् आवश्यकता नहीं है। इतना लेकिन, अवश्य ध्यातव्य है कि शूद्रक ने प्रस्तावना में चूर्णवृद्ध द्वारा प्रेषित 'जातीकुसुमवासित प्रावारक' (मालती के फूलों से सुगन्धित उत्तरीय) तथा राजा पालक के कुपित होकर, नवकामिनियों के सुगन्धित केश कलाप को छिन्न-भिन्न करने वाले व्यापार का सोद्देश्य कथन किया है[3] उत्तरीय की भूमिका नाट्य-वस्तु के सम्पादन में महत्त्व की रही है और पालक के क्रुद्ध, विलासी आचरण से राज्य विप्लव की योजना में त्वरित प्रगति होने की सम्भावना का संकेत मिला है।

हेनरी वेल्स ने संस्कृत नाटकों की प्रस्तावना का एक प्रमुख उद्देश्य यह बताते हुए कि प्रस्तावना लौकिक संसार से हमारी चेतना को रंगमंचीय संसार में प्रवर्तित कर देने में सहयोग देती है, 'मृच्छकटिक' की प्रस्तावना की प्रशंसा की है। उनका कथन है कि प्रस्तुत नाटक के नाना रूप एवं पार्श्व हैं जैसे

---

१ " लब्धा चारित्रशुद्धिश्चरणनिपतितः शत्रुरप्येष मुक्तः
प्रोत्खातारातिमूलः प्रियसुहृदचलामार्यकः शास्ति राजा।
प्राप्ता भूयः प्रियेयं प्रियसुहृदि भवान् सङ्गतो मे वयस्यो
लभ्यं किञ्चातिरिक्तं यदपरमधुना प्रार्थयेऽहं भवन्तम्॥ ' (१०।५८)

२ Dr Devasthali Introduction To The Study of Mrccha,' पृ० ८८

३ 'आ दास्याः पुत्र ! चूर्णवृद्ध ! कदा नु खलु त्वां कुपितेन राज्ञा पालकेन नववधूकेशकलापमिव सुगन्धं छेद्यमानं प्रेक्षिष्ये।'

उसके चरित्र नाना रूप एवं नाना जाति के हैं। धर्म एवं लोक, आदर्श एवं यथार्थ, गाम्भीर्य एवं परिहास, इन समस्त परस्पर विरोधी तत्वों का समिलन इसमें सम्पन्न हुआ है। प्रस्तावना में नाटक की इस नाना रूपिणी आत्मा का सुन्दर प्रतिफलन दृष्टिगोचर होता है। नान्दी पाठ के बाद सूत्रधार सहसा कहता है—"सभ्य-जनों के धैर्य एवं उत्सुकता को भंग करने वाले इस मंगल-पाठ को अब समाप्त किया जाय।"[1] नान्दी की शिव वन्दना के बाद, सूत्रधार प्रतिदिन भोजन की माँग करता है क्योंकि संगीत के अभ्यास के कारण, वह क्लान्त होकर, भूख से पीड़ित हो गया है। अर्थात् धर्म (नान्दी की शिव-वन्दना) और कला (संगीत) समानान्तर धरातल पर प्रतिष्ठित नहीं किये जा सकते। नाटक की लौकिक ध्वनि का संकेत प्रस्तावना के उपसंहार में भी मिलता है। जहाँ सूत्रधार ने नाटक के एक महत्त्वपूर्ण पात्र मैत्रेय को भोजन के लिए निमंत्रण दिया है। मैत्रेय यह निमन्त्रण अस्वीकार कर देता है, इसलिए कि उसे अभी एक कर्त्तव्य पूरा करना है, अपने मित्र तथा स्वामी चारुदत्त को एक उत्तरीय देना है। इससे केवल यही विवक्षा नहीं है कि नाटक की मूल वस्तु प्रस्तावना की तुलना में अधिक पसंद करने योग्य है। वह दावत धार्मिक जानि की थी क्योंकि उसका एक गंभीर उद्देश्य था, यह कि सूत्रधार और नटी दूसरे जन्म में भी पति पत्नी बनें। मैत्रेय ब्राह्मण था और उसका उस दावत में भोजन करना, धार्मिक अनुरोधों की रक्षा के लिए, आवश्यक था। किन्तु, साथ ही वह सुखान्तकी का एक महत्त्वपूर्ण पात्र भी है और सूत्रधार के समान ही, आहार विहार के आनन्दों का रसास्वादयिता भी है। अतएव वह उस धर्म-प्रेरित निमंत्रण को अस्वीकार कर देता है। इस प्रकार, न तो नाटक के गंभीर तत्त्वों की ओर न उसके विनोद मूलक तत्त्वों की ही अवहेलना की जा सकती है। प्रस्तुत प्रस्तावना नाटक की इस मिश्र प्रकीर्ण प्रकृति का सुन्दर प्रतिनिधित्व करती है।[2]

(७) अन्यान्य उपकरण

मृच्छ०' का अंगी (प्रधान) रस, शास्त्रीय विधान के अनुरूप, शृंगार है जिसके साधक अंग रूप में करुण (दसवें अङ्क में) हास्य (शकार की तथा विदूषक की उक्तियों में) तथा बीभत्स (वसन्तसेना मोटन वाले प्रसंग में) का सुन्दर नियोजन हुआ है। 'नान्दी से आरम्भ कर, प्रस्तावना' का विधिवत्

१ "अलमनेन परिषत्कुतूहलविमर्दकारिणा परिश्रमेण।"

२ Henry Wells 'The Classical Drama of India' (1963), पृ० १४०–४१

उपयोग किया गया है जिन दोनों की सूक्ष्म परीक्षा अभी ऊपर की गई है। अङ्कों की योजना के सम्बन्ध में यह द्रष्टव्य है कि आचार्यों के इस नियम का 'मृच्छ०' में पालन हुआ है—जैसा एक पूर्व प्रकरण में दिखाया गया है—कि एक अङ्क की घटनाओं के लिए एक दिन से अधिक का समय नहीं लगना चाहिए।[1] 'प्रवेशक' अथवा 'विष्कम्भक' का उपयोग नहीं किया गया है[2] जो इस नाटक की एक उल्लेखनीय विशेषता है। भरतवाक्य' के साथ, सामान्य नाटकों के समान, यह भी समाप्त हुआ है।

कतिपय बातों में शूद्रक ने शास्त्रीय विधान की अवहेलना भी की है। कुल कन्या तथा गणिका, दोनों नायिकाओं का रंगमंच पर एक साथ मिलना निषिद्ध है।[3] किन्तु, 'मृच्छ०' में धूता और वसन्तसेना न केवल रंगमंच पर साथ आई हैं, अपितु परस्पर कुशल प्रश्न के उपरान्त आलिंगन भी किया है।[4] लेकिन, बहुत पहले दिखाया गया है कि सम्बद्ध मदम नीलकण्ठ नामक अन्य व्यक्ति का प्रक्षेप है, अतएव, इसके लिए शूद्रक को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। 'प्रकरण' का सामान्य नियम है कि उसका नामकरण नायक-नायिका के नाम पर होना चाहिए। जैसा भवभूति ने 'मालतीमाधव' में किया

---

१ 'एकाहाचरितैकार्थमित्थमासन्ननायकम्।" (द० रू० ३।३६)

२ नाटक में रस हीन वस्तुओं की केवल सूचना दी जाती है, उनका रंगमंच पर प्रदर्शन नहीं होता। सूच्य वस्तुओं की सूचना देना शास्त्रीय शब्दावली में 'अर्थोपक्षेपण' कहलाता है और अर्थ का उपक्षेपण (सूचन) कराने वाले साधन 'अर्थोपक्षेपक' कहे गये हैं। ये अर्थोपक्षेपक पाँच प्रकार के होते हैं, यथा—प्रवेशक, विष्कम्भक, चूलिका, अङ्कास्य और अङ्कावतार। प्रवेशक तथा विष्कम्भक दोनों भूत तथा भविष्य की घटनाओं अथवा कथांशों के सूचक होते हैं। प्रवेशक का प्रयोग दो अङ्कों के बीच में ही होता है किन्तु विष्कम्भक का प्रयोग प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में भी होता है और दो अङ्कों के बीच भी। प्रवेशक के सभी पात्र निम्नश्रेणी के होते हैं जब कि विष्कम्भक में मध्यम श्रेणी के पात्रों का रहना आवश्यक है।

(दे० दशरूपक, १।५६-६०)

३ "गृहवार्ता यत्र भवेन् न तत्र वेश्याङ्गना कार्या।
यदि वेशयुवतियुक्तं न कुलस्त्रीसङ्गमो भवेत्तत्र।"

(नाट्यशास्त्र, २०।५५-५६)

४ 'मृच्छ०' (चौखम्बा), पृ० ५९८

है।[1] शूद्रक ने इस विधान की अवहेलना की है तथा छठे अङ्क के उस छोटे-से प्रसंग के आधार पर नाटक का नामकरण किया है जिसमें शिशु रोहसेन ने मिट्टी की गाड़ी की उपेक्षा कर, सोने की गाड़ी से खेलने का आग्रह किया है। हमने अन्यत्र दिखाया है कि शास्त्र की लीक से हट कर, शूद्रक ने 'मृच्छकटिक' ('मिट्टी की गाड़ी') का जो अभिधान ग्रहण किया उससे नाटक का महत्त्व ही निराला बन गया है। पुनः आचार्यों का यह भी विधान है कि प्रत्येक अङ्क में नायक का चरित्र प्रत्यक्ष आना चाहिए।[2] लेकिन दस अंकों में से चार अंकों में चारुदत्त के चरित्र का प्रत्यक्ष अभिनिवेश नहीं हो सका है।[3]

लेकिन, सर्वाङ्ग रूप से विचार करने पर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि 'मृच्छ०' में शास्त्रीय मानों का बहुलांशतः अनुपालन किया गया है। राज्य-विप्लव तथा पालक के वध को प्रत्यक्ष न दिखाकर[4] तथा नायक-नायिका के अन्तिम सुखद मिलन का चित्रण कर, शूद्रक ने, अपने सम्पूर्ण निरालेपन के बावजूद उन्नत भारतीय साहित्य-मर्यादा की रक्षा की है।

—

१ 'नायिकानायकाख्यानात्संज्ञा प्रकरणादिषु। यथा मालतीमाधवादि।"
(साहित्यदर्पण, ६।१४२)

२ 'प्रत्यक्षनेतृचरितो × × × ×" (दशरूपक, ३।३०)
"संनिहितनायकोऽङ्कः कर्त्तव्यो नाटके प्रकरणे च।"
(नाट्यशास्त्र २०।३१)

३ दूसरे, चौथे, छठे तथा आठवें अंक में नायक चारुदत्त का प्रत्यक्ष चरित्र उपनिबद्ध नहीं हुआ है—यद्यपि इन अंकों में भी उसका प्रभाव कार्यशील है जैसा अन्यत्र दिखाया गया है।

४ दूराह्वानं वधो युद्धं राज्यदेशादिविप्लवः।
× × × ×
स्नानानुलेपने चैभिर्वर्जितो नातिविस्तरः।" (सा० द० ६।१६–१८)

(८) मृच्छकटिक और नाटकीय अन्वितियाँ

नाटक दृश्यकाव्य होने के कारण मूलतः अभिनेय होता है। नाट्य वस्तु का रंगमंचीय प्रदर्शन अथवा अभिनय अपेक्षित है क्योंकि उससे सामूहिक प्रभाव अभीष्ट होता है। इस प्रभाव की तात्कालिक सम्पूर्णता को उभार में लाने के लिये पश्चिमीय साहित्यशास्त्रियों (यूनान के अरस्तू से प्रारम्भ कर) ने नाटक की रचना में तीन प्रकार की अन्वितियों (Three Unities) को महत्त्व प्रदान किया है जिन्हें हिन्दी आलोचना में 'सङ्कलनत्रय' की अभिधा मिली है। ये अन्वितियाँ देश, काल तथा कार्य की सीमा को इस प्रकार सङ्कुचित करने पर बल देती हैं कि प्रेक्षक पूरी कथ्य वस्तु को आसानी से हृदयगम कर सकें और वाञ्छित प्रभाव को, बिना किसी सबल मानसिक अवरोध के, उसकी समग्रता में ग्रहण कर सकें। स्थान, समय तथा व्यापार के बिखराव से अपेक्षित प्रभाव के ग्रहण मे विघ्न उपस्थित हो जाता है। इसलिए, पश्चिमीय साहित्यशास्त्र मे इस बात पर बल दिया गया है कि नाटक की घटनाएँ एक स्थान-सीमा तथा एक समय-सीमा के भीतर घटित हों और उनमे एक कार्य-विशेष, अर्थात्, नाटककार के एक मूल प्रयोजन की सिद्धि हो सके। इस दृष्टि से, 'स्थान की अन्विति' अथवा 'स्थान संकलन' (Unity of Place) 'समय की अन्विति' अथवा 'समय-सकलन' (Unity of Time) और 'कार्य की अन्विति' अथवा 'कार्य सकलन' (Unity of Action) नाम से नाट्य-रचना के सदर्भ में तीन 'अन्वितियां' अथवा 'सकलन' व्यवस्थापित हुए हैं।[१] स्थान की अन्विति से अभिप्राय यह है कि नाटकीय दृश्य ऐसी स्थान-सीमा के भीतर नियोजित किये जाँय कि नाटक के पात्र अभिनय के लिए निर्धारित समय मे सबद्ध स्थलों पर पहुँच सकें। समय की अन्विति से अभिप्राय यह है कि नाटक के कार्य की पूर्ति के लिए चौबीस घण्टे से अधिक का समय न लगे। कार्य अथवा व्यापार की अन्विति से अभिप्राय यह है कि नाटक में एक विषय अथवा व्यापार चित्रित हो जिसका एक निश्चित आरम्भ, एक निश्चित मध्य तथा एक निश्चित पर्यवसान हो और समस्त पात्र तथा समस्त दृश्य नाटकीय व्यापार के उपलालन मे सहयोग करें। इस प्रकरण में हम थोड़ा यह विचार करेंगे कि 'मृच्छ०' मे इन त्रिविध अन्वितियों का कहाँ तक पालन हुआ है।

---

१ अरस्तू ने अपने काव्यशास्त्र 'पोयटिक्स' में पहले-पहल सकलन-त्रय के सिद्धान्त का निरूपण किया और पुनर्जागरण के पश्चात् सन् १५७० ई० मे कैस्टेल्वेट्रो ने 'पोयटिका' (काव्यशास्त्र) मे इसका विस्तृत विवेचन किया।

(१) स्थान की अन्विति

यह उल्लेख्य है कि नाटक का सम्पूर्ण व्यापार उज्जयिनी नगरी की सीमा में घटित हुआ है। पहले अंक का कार्यस्थल चारुदत्त का घर तथा उसके निकट की सड़क है। कार्य घर के भीतर आरम्भ होता है और जब रदनिका एवं मैत्रेय गृह-द्वार के पास आते हैं तब वसन्तसेना एवं उसका पीछा करने वाले शकारादि से उनकी भेंट होती है। शेष कार्य दरवाजे तथा घर के बाहरी प्रांगण में घटित हुआ है। दूसरे अंक का कार्य-स्थल वसन्तसेना का घर है। आरम्भिक दृश्य वसन्तसेना के अन्तरंग कक्ष में न्यस्त है। जुआरियों का तमाशा सड़क पर तथा मन्दिर में घटित होता है। लेकिन, संवाहक जब वसन्तसेना के घर में भाग कर चला आता है, तब से कार्य अन्तरंग कक्ष और बाहर की सड़क के बीच घटित होता है। कर्णपूरक के प्रवेश करने पर इस अङ्क का कार्य कक्ष के भीतर ही समाप्त होता है जब वसन्तसेना द्वारस्थ अलिन्द में चढ़ कर सड़क से जाने वाले चारुदत्त को देखने लगी है। तीसरे अंक का घटना-स्थल चारुदत्त का घर है। बाहरी दरवाजे से दृश्य घर के भीतरी भाग में पहुँच जाता है और अनन्तर सन्धिच्छेद पूर्ण होने पर, जब शर्विलक मैत्रेय के हाथ से आभूषण की धरोहर ले लेता है तब वह चारुदत्त के शयनकक्ष में चला गया है। चौथे अङ्क का व्यापार पुनः वसन्तसेना के गृह में न्यस्त है। वसन्तसेना अपने अन्तरङ्ग कक्ष की खिड़की से भीतरी प्रांगण में झाँकती है जहाँ मदनिका तथा शर्विलक मिलने तथा चुराये हुए आभूषण के विषय में बातें करते हैं। इसके बाद दृश्य वसन्तसेना के अन्तरङ्ग कक्ष में संक्रमित हो जाता है जब शर्विलक वसन्तसेना की उपस्थिति में लाया जाता है। तब, मैत्रेय के आगमन के साथ नया दृश्य आरम्भ होता है जब वह वसन्तसेना के महल के आठ प्रकोष्ठों के भीतर से होता हुआ उसके एकान्त निजी कक्ष में लाया गया है। पाँचवें अङ्क का कार्यस्थल चारुदत्त का घर है। जब मैत्रेय वसन्तसेना के घर से वापस आता है, तब चारुदत्त बाहरी प्रांगण में वृक्षों की झुरमुट में है। वसन्तसेना का चेट बाहरी दीवाल के निकट खड़ा है जहाँ से वह मैत्रेय के ऊपर मिट्टी के ढेले फेंकता है। वसन्तसेना अभी बाहर सड़क पर है। बाद को, वह भीतर प्रवेश करती है और चारुदत्त से उसका मिलन झुरमुट में ही घटित होता है। धारासार वर्षा के बीच जब दोनों प्रेमी प्रेमिका रंगमहल घर के भीतर चले गये हैं, तब यह दृश्य समाप्त हुआ है।

छठे अंक का स्थल पुनः चारुदत्त का घर है जहाँ वसन्तसेना ने रात बिताई है तथा जहाँ से पुष्पकरण्डक उद्यान के लिए चारुदत्त के आमन्त्रण पर प्रस्थान करती है। यहाँ दृश्य बदलता है। [illegible] के घर के [illegible]

सड़क पर आता है। यहाँ चारुदत्त तथा सम्थानक की गाड़ियों की अदला-बदली हो जाती है। किन्तु, गाड़ियों का आगे बढ़ना, उनका सन्देह-जनित निरीक्षण तथा वीरक एवं चन्दनक में होनेवाला झगड़ा—ये सभी कार्य बाहर सड़क पर घटित हुए हैं जो जीर्णोद्यान तक चली गई है। सातवें अंक का स्थल वही पुष्पकरंडक उद्यान है जहाँ चारुदत्त मैत्रेय के साथ वसन्तसेना की प्रतीक्षा कर रहा था। वहीं आर्यक की भेंट चारुदत्त से होती है और वह उसी गाड़ी से भाग जाता है। चारुदत्त भी मैत्रेय के साथ उद्यान छोड़कर चला गया है। आठवें अंक की वसन्तसेना के कण्ठ निपीडन तथा प्राण-रक्षण वाली पूरी घटना पुष्पकरंडक में ही घटित होती है। नवें अंक में चित्रित न्यायालय वाला दृश्य उज्जयिनी के राजकीय न्याय-भवन में उपन्यस्त है। अन्तिम अंक का कार्यस्थल उज्जयिनी का राजमार्ग है जिसमें से होकर चारुदत्त चाण्डालों-द्वारा वध्यस्थल को ले जाया जा रहा है। सार्वजनिक चौराहों पर चाण्डालों की घोषणाएँ की जाती रही हैं। नगर के बाहर स्थित श्मशान के दक्षिणी प्रान्त में चारुदत्त शूली पर लटकाये जाने के लिए अन्त में लाया गया है। धूता के सती होने का स्थल भी उसी स्थान के समीप रहा है।

अतएव, 'मृच्छ०' का सम्पूर्ण व्यापार उज्जयिनी में ही घटित हुआ है और समस्त सबद्ध स्थान पात्रों की पहुँच के भीतर रहे हैं—न्यायालय वाले दृश्य में हमने देखा है कि वीरक कितनी जल्दी जीर्णोद्यान में जाता है और स्त्री की लाश के विषय में अपेक्षित सूचना लेकर लौट आता है यद्यपि नाटककार की सजगता इस बात में दर्शनीय है कि उसने घोड़े की पीठ पर वीरक को उद्यान में भिजवाया है। अतएव, 'मृच्छ०' में स्थान की अन्विति की पूर्ण रक्षा हुई है।

(२) समय की अन्विति

'मृच्छ०' में समय की अन्विति का कहाँ तक पालन हुआ है, यह प्रश्न विवादग्रस्त है। पण्डितों ने इस विषय में भिन्नता विचार व्यक्त किये हैं। किस ऋतु की किस तिथि को नाटक के कार्य का आरम्भ हुआ, इस विषय में शायद शूद्रक ने कोई स्पष्ट निर्देश नहीं किया है, तथापि विद्वानों ने इस तिथि को भी पकड़ने का उद्योग किया है। एम० आर० काले ने 'मृच्छ०' (सम्पा०) की भूमिका में माघ कृष्ण षष्ठी में आरम्भ मानकर, नाट्य-व्यापार की अवधि को लगभग बीस दिनों की माना है और फाल्गुन शुक्ल एकादशी को उसका अवसान बताया है।

शकार पहले अंक में कहता है कि वेश्या वसन्तसेना उस कामदेव मन्दिर

उद्यान से ही निर्धन चारुदत्त मे अनुरक्त है "भाव ! भाव ! एषा गर्भदासी कामदेवायतनोद्यानात् प्रभृति तस्य दरिद्रचारुदत्तस्य अनुरक्ता[1] × × ×" वसन्तसेना ने भी दूसरे अंक मे मदनिका से यही बात कही है 'त्वं मया सह कामदेवायतनोद्यानं गता आसी ।'[2] इन उल्लेखों से ज्ञात होता है कि वसन्तसेना कामदेव के मन्दिर मे काम पूजन के किसी पर्व के दिन चारुदत्त से मिली और तभी उसमे अनुरक्त हो गई । वह पर्व ऐसा समझा जा सकता है वसन्तोत्सव का था जब माघ शुक्ल पंचमी को वसन्त के आगमन का सोल्लास उत्सव मनाया जाता है जिसकी चर्चा 'मालविकाग्निमित्र', 'रत्नावली' तथा अन्य संस्कृत नाटकों मे आई है । वसन्तसेना के घर जाते हुए मैत्रेय भी अशोक मालती, कुरवक इत्यादि वृक्षों तथा फूलो के कुसुमित होने का उल्लेख करता है जो वसन्तागमन के समय ही पुष्पित होते हैं ।[3] पहले अंक मे ही वसन्तसेना की अनुरक्ति की सूचना मिलती है जिससे ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि नाटक के कार्यारम्भ तक वसन्तसेना के चारुदत्त-मिलन के दिन से लगभग पन्द्रह दिन की अवधि बीत चुकी होगी । अतएव, ऐसा समझा जा सकता है कि नाटक का कार्यारम्भ माघ कृष्ण षष्ठी के दिन होता है । पहले अंक के अन्त मे चन्द्रमा के उदय होने मात्र का उल्लेख आया है ('उदयति हि शशाङ्क इत्यादि")[4] और रात इतनी बीत चुकी है कि राजमार्ग पर चलने वाले दिखाई नहीं पड़ते ("राजमार्गो हि शून्य इत्यादि")[5] । इन दोनों उल्लेखो से प्रतीत होता है कि महीने के कृष्णपक्ष की षष्ठी की रात को प्रथम अंक की समाप्ति तक लगभग ग्यारह बज चुके हैं (क्योंकि चन्द्रमा के उदय होते ही सड़क सूनी हो गई है) । काले का अनुमान है कि 'सिद्धीकृतदेवकार्यस्य'[6] के स्थान पर "षष्ठीव्रतकृतदेवकार्यस्य" का पाठ आरम्भ में रहा होगा जिससे कार्यारम्भ की यही तिथि षष्ठी ही मानी जानी चाहिए ।[7] चूर्णवृद्ध चारुदत्त के लिए जो उत्तरीय लाया है, वह चमेली के फूलों की सुगन्ध से सुवासित है । चमेली वसन्त मे नही खिलती है—"न स्याज्जाती वसन्ते" (साहित्यदर्पण, ७।२५) । इसीसे, कार्य का आरम्भ वसन्त ऋतु के आरम्भ मे माना जाना उचित होगा क्योंकि तभी "जातीकुसुमवासित प्रावारक" का मूल्य होगा वसन्तसेना ने

---

१ "मृच्छकटिक' (चौखम्बा, १९५४), पृ० ५२
२ वही, पृ० ९८
३ वही, पृ० २४८
४ वही, पृ० ९१
५ वही, पृ० ९२
६ वही, पृ० २३
७ काले 'मृच्छ०' (सम्पादित, १९९२ ई०), भूमिका, पृ० ४२–४३

चमेली की सुगन्ध मे भिने उत्तरीय पर प्रसन्नतापूण आश्चर्य भी प्रकट किया था—"अहो ! जातीकुसुमवासित प्रावारक ।"[१] इस बात का भी संकेत मिलता है कि शीत ऋतु अभी बीती नही है क्योंकि शिशु रोहसेन प्रात काल 'शीतार्त' (जाडे से कापता) दिखाया गया है ।[२] इस कारण भी, नाटक का कार्यारम्भ माघ महीने के कृष्णपक्ष की षष्ठी को मानना उचित ठहरता है ।[3] विभिन्न अको के सबन्ध मे व्यतीत समय का विश्लेषण यों किया जा सकता है —

पहला अक अनुमानत माघ कृष्ण षष्ठी की रात को लगभग नव बजे प्रारम्भ होता है । विदूषक ने मातृदेवियो को बलि चढ़ाने जाने के विरुद्ध यह तक उपस्थित किया है कि प्रदोषवेला मे सडक पर वेश्या, विट इत्यादि घूम रहे हैं—"एतस्या प्रदोषवेलाया इह राजमार्गे इत्यादि ।"[४] और विट ने घने अधकार का वर्णन करते हुए कहा है कि आकाश मानो काजल की वर्षा कर रहा है—"लिम्पतीव तमोऽङ्गानि इत्यादि ।"[५] इन उल्लेखो से उस दिन रात को काफी विलब से, नव बजे के लगभग कार्यारम्भ हुआ है और लगभग

१ 'मृच्छ०' (चौखम्बा), पृ० ८२ २ वही, पृ० ८२

३ काले : 'मृच्छ०' (सम्पादित, १९६२) Introduction पृ० ४३ —

—आर० डी० करमरकर ने नाटक के आरम्भ के लिए एक भिन्न मास का निर्देश किया है । उनका कथन है कि कामदेवायतन मे वसन्तोत्सव चैत्र शुक्ल चतुर्दशी, अर्थात् , 'मदनचतुर्दशी' को मनाया गया होगा और उसी दिन वसन्तसेना तथा चारुदत्त की पहली भेंट हुई । इसलिए, प्रथम अङ्क का व्यापार उस दिन के बाद, चैत्र कृष्ण षष्ठी को घटित हुआ होगा । "सिद्धीकृतदेवकार्यस्य" के वैकल्पिक पाठ "षष्ठीकृतदेवकार्यस्य" को स्वीकार कर षष्ठी व्रत के लिए पृथ्वीधर की इस टिप्पणी की सहायता ली गई है कि यहाँ 'अरण्यषष्ठिका' व्रत से अभिप्राय लेना चाहिए जो ग्रीष्मर्तु का त्योहार है । अतएव, नाटकीय कार्य ग्रीष्मर्तु के आरम्भ में, अर्थात्, चैत्र के मध्य से प्रारम्भ हुआ मानना चाहिए । पाँचवें अङ्क मे जिस असामयिक वर्षा इत्यादि का कथन हुआ है, वह भी वैशाख मास की ओर सकेत करता है । इस प्रकार, करमरकर, भाट इत्यादि के अनुसार, नाटकीय व्यापार आधे चैत से लेकर आधे वैशाख तक घटित माना जाना चाहिए । करमरकर तथा भाट भी लगभग तीन सप्ताह का समय मानते हैं ।—द्रष्टव्य : करमरकर—'Mrcch.', Introduction, Pages XX-XXI तथा भाट 'Preface To Mrcch', Pages 136-38

४ 'मृच्छ०' (चौखबा), पृ० ३४

५ वही, पृ० ५४–५५

दो घण्टे के बाद ग्यारह बजे के आसपास समाप्त हुआ है क्योंकि वसन्तसेना के अपने घर वापस लौटने तक चन्द्रमा उदय हो चुका है और राजमार्ग सूना पड गया है।

प्रस्तावना वाले दृश्य का कार्य भी उस दिन शायद सध्या तक चला है। "चिरसगीतोपासना" के कारण सूत्रधार भूख से व्याकुल हो गया है, शायद सगीत का कार्यक्रम बहुत देर तक चलने से वह प्रात काल का भोजन वा जलपान नही कर सका है। दोपहर तक ही वह घर पहुँच सका है और वहाँ 'अभिरूपपति' वाले व्रत के लिए पकवानो का आयोजन देखता है। व्रत तथा भोज इत्यादि की व्यवस्था अपराह्न मे ही उपर्युक्त जँचती है। मैत्रेय ने सन्ध्या से कुछ पूर्व भोजन का निमन्त्रण अस्वीकार किया है और प्रदोषकाल तक चारुदत्त की सेवा के लिए तत्पर हो गया है।

दूसरा अक दूसरे दिन प्रात काल प्रारम्भ होता है जबकि वसन्तसेना ने अभी स्नान नही किया है—"आर्य्ये ! माता आदिशति स्नाता भूत्वा देवाना पूजां निवर्त्तयेति ।"[1] इसी अक मे आगे चलकर कहा गया है कि चारुदत्त ने कर्णपूरक को वही सौरभित उत्तरीय पुरस्कार-रूप मे दे दिया है। इससे जान पडता है कि यह पूरी घटना पहले अक के दूसरे ही दिन प्रात काल घटी है। इस अक का सम्पूर्ण व्यापार दो घण्टे के भीतर हुआ माना जाएगा। क्योकि जुआरियो वाले कलह के लिए एक-डेढ़ घण्टा समय चाहिए और उसीके बाद कर्णपूरक-द्वारा बौद्ध भिक्षु के प्राण बचाये जाने की घटना घटित होती है। काल ने दूसरे अक के लिए तीन घण्टे का समय दिया है, इस तर्क पर कि सवाहक को भिक्षु की वेशभूषा अपनाने के लिए दो घटे का समय चाहिए ही।[2] अर्थात् काले यह मानते हैं कि जो बौद्ध भिक्षु कर्णपूरक द्वारा बचाया गया, वह सवाहक ही था। किन्तु स्वय नाटक मे ऐसा कोई सकेत उपलब्ध नही है। वह भिक्षु कोई दूसरा भी श्रमण हो सकता था, सवाहक श्रमण ही हो, ऐसी बात आवश्यक नही। किन्तु, यदि सवाहक श्रमण ही बचाया गया, तो फिर, श्रमण की वेशभूषा के लिए दो ही नही, तीन-चार घण्टे का समय चाहिए। मैं स्वय समझता हूँ कि हाथी के उत्पात से रक्षित भिक्षु सवाहक श्रमण नही था क्योकि न तो इस अक मे और न बाद वाले, विशेषत आठवें, अङ्को मे ही ऐसा मानने के लिए कोई सकेत उपलब्ध है।

तीसरे अक मे चारुदत्त रात को रेभिल के घर 'गान्धर्व' (गाना) सुनने गया है और आधी रात बीतने पर वापस लौटा है 'अतिक्रामति अर्द्धरजनी,

---

१ वही, पृ० ९५ २ काले : वही, Intro, पृ० ४२

श्चद्यापि नागच्छति।"[1] अत्यन्त क्षीण बचे हुए चन्द्रमा को अन्धकार को अवकाश देकर अस्ताचल की ओर जाते बताया गया है "असौ हि दत्वा तिमिरावकाश-मस्त व्रजत्युन्नतकोटिरिन्दुः।"[2] काले का कथन है कि यह चन्द्रमा फाल्गुण के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि का ही होना चाहिए। इस प्रकार, दूसरे और तीसरे अङ्कों के बीच एक पखवारे से अधिक का समय अवश्य बीत जाना चाहिए।[3] अन्य तथ्य भी इस धारणा की पुष्टि करते हैं। उदाहरणत, जब चेट मैत्रेय को आभूषण देने लगता है, तब मैत्रेय कहता है कि क्या अभी तक यह आभूषण स्थिर है? क्या इस उज्जयिनी मे चोर नही हैं जो नीद की चोरी करने वाले इस कमबख्त आभूषण को चुरा ले जायें "अद्यापि एतत् तिष्ठति? किमत्र उज्जयिन्या चौरोऽपि नास्ति य एत दास्या पुत्र निद्राचौर नापहरति?"[4] विदूषक के इस झुंझलाहट-भरे कथन से ज्ञात होता है कि उसे आभूषण की रक्षा के लिए लगातार कई दिनो तक चिन्ता करनी पडी होगी जिस कारण उसकी रात की नीद हराम होती रही होगी। पुन, सेंध लगने से आभूषण के चोरी चले जाने पर चारुदत्त का आश्चर्य-पूर्वक यह कहना कि क्या वह धरोहर थी "कथ न्यास?" तथा मूच्छित हो जाना ("मोहमुपगत")[5] इस तथ्य की ओर इगित करता है कि वह आभूषण कुछ दिनो तक उसके पास पडा रहा जिससे वह प्राय भूल गया था कि वह धरोहर है और उसे उसके खो जाने पर इसलिए प्रसन्न नही होना चाहिए कि चोर खाली हाथ तो नही गया 'यदसौ कृतार्थो गत।'[6] यदि वह गहना केवल एक दिन पूर्व चारुदत्त के घर मे आया होता, तो "कथ न्यास" वाला कथन नितान्त अस्वाभाविक होता। अतएव, यह मानना उचित होगा कि वह अलकारन्यास चारुदत्त के घर मे कुछ काल तक अवश्य पडा रहा होगा। यह भी द्रष्टव्य है कि पाँचवें अक मे चारुदत्त ने वसन्तसेना की वियोग वेदना में कतिपय सध्याएँ एव निशाएँ निश्वास छोडते व्यतीत करने का कथन किया है "सदा प्रदोषो मम याति जाग्रत, सदा च मे निश्वसतो गता निशा।"[7] इस कथन से भी इस अनुमान की पुष्टि होती है कि अलकारन्यास के बाद से कुछ यथेष्ट काल बीत चुका है जिसमे चारुदत्त वसन्तसेना से पुन नही मिल सका था। अतएव इस प्रकार भी यह

---

१ 'मृच्छ०' (चौखबा) पृ० १४७   २ वही, पृ० १५१
३ 'मृच्छ०' (सम्पादित, १९६२ सस्करण) भूमिका, पृ० ४४
४ 'मृच्छ०' (चौखबा) पृ० १५४
५ वही, पृ० १७९   ६ वही, १७९
७ वही, पृ० २९७ (श्लो० २७)

मानना युक्तिसगत जान पडता है कि दूसरे तथा तीसरे अङ्कों के बीच एक पख-वारे का समय व्यतीत हुआ है।

तीसरे अङ्क का कार्य अर्ध-रात्रि के लगभग आरंभ होता है और चार-पाच घटे मे समाप्त होता है क्योंकि इसी बीच चारुदत्त एव मैत्रेय सोये हैं, शर्विलक ने सेंध तोडी है और सूर्योदय के होने पर ही सेंध का पता चला है तथा मैत्रेय को वसन्तसेना के घर रत्नावली के साथ भेजकर, चारुदत्त ने शौचादि नित्य क्रियाओं का उपक्रम किया है "तद्गच्छतु भवान्। अहमपि कृतशौच सन्ध्यामुपासे।"[१]

चौथे अक मे दूसरे ही दिन सन्धिच्छेद के बाद शर्विलक मदनिका का मुक्ति के लिए आभूषण लेकर वसन्तसेना के घर गया है "अद्य रात्रौ मया भीरु त्वदर्थे साहस कृतम्।"[२] बाद को, वह मदनिका से कहता है कि प्रात काल मैंने सुना कि वह आभूषण आर्य चारुदत्त का है 'आर्ये! प्रभाते मया श्रुत श्रेष्ठिचत्वरे यथा सार्थवाहस्य चारुदत्तस्य इति।"[३] इससे जान पडता है कि प्रात काल आठ बजे के लगभग शर्विलक वसन्तसेना के घर गया। इसी समय के आस पास मैत्रेय भी वहाँ गया है और वेश्या-प्रासाद के आठ प्रकोष्ठों का सजावट का अवलोकन करता हुआ, वसन्तसेना से मिलकर तथा उसे रत्नावली देकर वापस लौट आया है। वह वसन्तसेना का सवाद भी चारुदत्त के लिए लेते आया है कि वह उस रात को उसके घर आयेगी''अहमपि प्रदोषे आर्य प्रेक्षितुमागच्छामि।"[४] यह सम्पूर्ण व्यापार दो ढाई घटे मे पूरा हुआ होगा। लेकिन, इस अक की समाप्ति तक वसन्तसेना चारुदत्त के घर अभिसार करने की तैयारी करते दिखाई गई है "हञ्जे! गृहाणैतमलङ्कारम्, चारुदत्तमभिरन्तु गच्छामः"[५] और भी, 'उदयन्तु नाम मेघा, भवतु निशा इत्यादि।"[६] अतएव, चौथे अक के कार्य के लिए दो तीन घटे का समय प्रात काल मे होना चाहिए और थोडा-सा समय सध्या को सूर्यास्त के आस पास होना चाहिए जब शृगारादि से सम्पन्न होकर वसन्तसेना ने चारुदत्त के घर वस्तुत अभिसार किया।

पाँचवें अङ्क का कार्यारम्भ चौथे अङ्क के दिन की रात मे होता है। 'अकालदुर्दिन" का ताडव हो रहा है[७] और उसी के बीच वसन्तसेना चारुदत्त के

---

१. वही, पृ० १८६   २ वही पृ० २०० (श्लोक ५)
३ वही, पृ० २०४   ४. वही, पृ० २५३
५ वही, पृ० २५३   ६ वही, पृ० २५४ (श्लोक ३२)

७ काले का कथन है कि यह अकाल वर्षा तूफान फागुन के महीने की ओर सकेत करता है क्योंकि फागुन मे प्राय ऐसा मौसम नहीं होता।

घर गई है। आधी रात तक मिलन-शिष्टाचार चलता रहा है जिसमें लगभग दो घटे का समय व्यतीत हुआ होगा। वसन्तसेना ने वहीं चारुदत्त के साथ रात्रि-रमण किया है।

छठे अङ्क का कार्यारम्भ ठीक दूसरे ही दिन के प्रातःकाल हुआ है "हञ्जे[1] सुष्ठु न निध्यातो रात्री, तदद्य प्रत्यक्ष प्रेक्षिष्ये" ('रात मे मैंने उन्हें *अच्छी तरह से नही देखा, आज दिन मे अच्छी तरह से देखूंगी'*)'। गाड़ियों *की अदला-बदली*, चन्दनक *तथा* वीरक के कलह *तथा* आर्यक के पलायन मे दो-तीन घटे का समय, अनुमानत आठ बजे प्रात से ग्यारह बजे दिन तक का, व्यतीत हुआ होगा।

सातवें अङ्क का कार्य छठे अङ्क के कार्यविमान के सिलसिले मे ही उसी दिन आरम्भ होता है और आर्यक की चारुदत्त से भेंट तथा चारुदत्त की गाड़ी मे बैठकर सुरक्षित स्थान मे पहुँच जाने को मिलाकर, एक घटे मे लगभग बारह बजे दिन तक समाप्त भी हो जाता है।

आठवें अक का कार्यारम्भ पिछले अक के दिन ही हुआ है क्योंकि चारुदत्त के जीर्णोद्यान छोड़ते समय ही बौद्ध भिक्षु उद्यान मे प्रवेश कर रहा था। वसन्तसेना का वहाँ पहुँचना तथा उसका कठ-निपीडन और अन्तत सवाहक श्रमण द्वारा उसके प्राणों की रक्षा—इस सम्पूर्ण व्यापार के घटित होने मे तीन-चार घटे का समय लगा होगा। स्थावरक चेट के गाड़ी लेकर पहुँचने मे विलम्ब होने पर शकार ने कहा है कि मैं बहुत भूखा हूँ, दोपहर के समय पैदल नही चल सकूँगा, सूर्य आकाश के मध्यभाग में पहुँच गया है—"चिरमस्मि बुभुक्षित। मध्याह्ने न शक्यते पादाभ्या गन्तुम्। × × × × नभोमध्यगत सूर्यः × ×।"[2] तब मध्याह्न के *लगभग आरम्भ* होकर, इस अक का कार्य अपराह्न मे लगभग चार बजे तक समाप्त हुआ है।

अतएव, छठे से आठवें अक तक का कार्य एक ही दिन मे घटित हुआ है।

नवां अक दूसरे दिन के प्रात काल आरम्भ होता है क्योंकि वीरक कहता है कि चन्दनक से अपमानित होकर उसने एक रात बिताई है "अनुशोचत इव कथमपि रात्रि प्रभाता मे।"[3] अभियोग के विचार और निर्णय मे दो-तीन घटे का समय लगा होगा। तदनन्तर चारुदत्त चाण्डालों को देख भाल मे सौंप दिया

---

१ 'मृच्छ०' (चौखवा), पृ० ३१५ २ वही, पृ० ३८६-८७

३ वही, पृ० ४९१ (श्लोक २३)

—'उससे (चदनक से) किस प्रकार बदला लेना चाहिए, यही सोचते रात बीत गई और सवेरा हो गया।'

जाता है और उन्हें आज्ञा दी जाती है कि वे अपने कर्त्तव्य सम्पादनार्थ तैयार हो जायें। इस प्रकार दस-ग्यारह बजे दिन तक यह प्रसंग समाप्त हुआ होगा।

दसवें अंक का जहाँ तक सम्बन्ध है, उसे नवें अंक की समाप्ति के कुछ घण्टे बाद उसी दिन रखा जा सकता है क्योंकि निर्णय के बाद चारुदत्त चाण्डालों द्वारा श्मशान में ले जाया जा रहा है। डॉ० राइडर इत्यादि कतिपय विद्वानों का कथन है कि यह कार्य नवें अंक के दूसरे दिन सम्पन्न हुआ। किन्तु, ऐसा समझना युक्ति संगत नहीं है, कारण कि यदि प्राणदण्ड के निर्णय के दूसरे दिन इस अङ्क का कार्यक्रम होता, तो चारुदत्त जैसे सत्यनिष्ठ एवं उदारमना व्यक्ति के मृत्यु-दण्ड का संवाद सम्पूर्ण नगरी में मिनटों में फैल जाता और तब वसन्तसेना एवं संवाहक भिक्षु तत्काल उसकी प्राण-रक्षा के निमित्त उपस्थित हो जाते। लेकिन, वे दोनों चारुदत्त की विपत्ति का संवाद चाण्डालों की घोषणा की मार्फत सड़क पर सुनते हैं। पुनः, यदि नवें तथा दसवें अङ्कों के बीच एक दिन का अन्तराल पड़ा होता, तो चारुदत्त और उसके पुत्र की भेंट (जो मैत्रेय के द्वारा सम्पन्न कराई जा रही है) राजमार्ग पर नहीं, अपितु उस जगह पर हुई होती जहाँ रात भर चारुदत्त बन्दीगृह में रखा गया होता। इन दोनों तथ्यों के आलोक में यही मानना उचित है कि प्रस्तुत अंक पिछले अंक की पीठ पर ही उसी दिन अपराह्न में घटित हुआ है।[1] शकार का यह कथन कि उसने घर में शाक, सूप, मछली इत्यादि के सहित प्रचुर भात खाया है,[2] और चारुदत्त की मृत्यु का लम्बा जुलूस भी अपराह्न की ओर इङ्गित करते हैं। फिर, शर्विलक-द्वारा यज्ञशाला में पालक की हत्या हुई है जिससे भी सन्ध्या का संकेत मिलता है।[3] प्रस्तुत अंक की घटनावधि तीन-चार घण्टे की ठहरती है और इस प्रकार यह माना जा सकता है कि नाटक का सम्पूर्ण व्यापार उस दिन सूर्यास्त तक संवरण हो गया है।

अब विभिन्न अंकों की घटनाओं अथवा व्यापार का समय निर्देश यों किया जा सकता है —

पहला अंक—रात का पहला पहर (काले के अनुसार, माघ कृष्ण षष्ठी-की रात)।

दूसरा अंक—दूसरा दिन, तब लगभग एक पखवारे का अंतराल।

---

१ काले. 'मृच्छ०' (सम्पादित), भूमिका, पृ० ४५

२ 'मृच्छ०', १०।२९ ३ डॉ० भाट 'Preface to Mrcch.' (1953), पृ० १४२

तीसरा अंक—एक दिन आधी रात (काले के अनुसार फाल्गुन शुक्ल अष्टमी की रात)।

चौथा और पाँचवाँ अंक—दूसरा दिन।

छठा, सातवाँ और आठवाँ अंक—तीसरा दिन।

नवाँ और दसवाँ अंक—चौथा दिन।

इस प्रकार, लगभग तीन सप्ताह की अवधि में नाटक का कार्य समाप्त हुआ है। डॉ० राइडर तथा डॉ० परांजपे[१] दूसरे तथा तीसरे अंकों के बीच में कोई अंतराल नहीं मानते। परांजपे ने पूरा समय नब्बे घंटे माना है तथा डॉ० देवस्थली[२] छानवे घंटे मानते हैं यद्यपि उक्त अनराल मानने के पक्ष में वे भी हैं। यह अनराल नहीं मानते हुए, अन्य पंडितों ने नाटक का समय पाँच छ दिन भी स्थिर किया है। लेकिन, दूसरे अंक के बाद लगभग एक पखवारे का व्यवधान मानने के पक्ष में सबल एवं विश्वासोत्पादक तर्क मिलते हैं। परांजपे का यह कथन स्वीकार नहीं किया जा सकता कि पहले अंक में चन्द्रोदय का वर्णन कर और तीसरे अंक में चन्द्रास्त दिखा कर शूद्रक ने समय-क्रम की उपेक्षा की है।[३] अतएव, उक्त व्यवधान मान कर, नाटक का कार्य काल तीन सप्ताह के लगभग मानना ही उचित एवं युक्तिसंगत होगा।

संस्कृत के नाट्याचार्यों ने यह नियम निरूपण किया है कि एक अंक की घटनाओं के लिए एक दिन से अधिक का समय नहीं लगना चाहिये और उन सभी घटनाओं को जो उस समय सीमा में समाहित नहीं होती, 'प्रवेशक' में (अथवा दूसरे पृथक् अंक में) दिखाना चाहिए। इसी प्रकार, 'प्रवेशक' के लिए विधान दिया गया है कि उसमें वर्णित घटनाओं की अवधि एक वर्ष से अधिक की नहीं होनी चाहिए।[४] संस्कृत नाटककारों ने इन नियमों का प्राय पालन किया

---

१ Dr Ryder, Introduction, Page XXVI,
Dr Paranjpe, Notes, Page 37 f

२ Dr Devasthali 'Introduction to the Study of Mrcch" (1951), पृ० १२४

३ Notes, Page 37 f (Paranjpe)

४ "दिवसावसानकार्यं यद्यङ्केनोपपद्यते सर्वम्।
अङ्कच्छेदं कृत्वा प्रवेशकै तद्विधातव्यम्॥"
"अङ्कच्छेदं कुर्यात् मासकृत वर्षसञ्चितं वापि।
तत्सर्वं कर्तव्यं वर्षादूर्ध्वं न तु कदाचित्॥"
—नाट्यशास्त्र, २०।२८-२९ (चौखम्बा)

है यद्यपि कभी कभी प्रवेशक सम्बन्धी विधान का उल्लघन भी हुआ है। जहाँ तक 'मृच्छ०' का प्रश्न है, हमने ऊपर दिखाया है कि किसी भी अक मे ऐसी घटनाएँ समाविष्ट नही हुई हैं जिनकी अवधि एक दिन से अधिक हो। साथ ही, दूसरे तथा तीसरे अको के बीच लगभग एक पखवारे का व्यवधान देने के अतिरिक्त, अन्यत्र कही भी घटनाओ को लम्बे अन्तराल से परस्पर पृथक् नहीं रखा गया है। अतएव, भारतीय विधान के अनुसार, 'मृच्छ०' मे समय सकलन का पालन किया गया समझा जा सकता है। लेकिन हमने आरभ मे पाश्चात्य नाट्यशास्त्रियो के जिस समय-सकलन (Unity of Time) का उल्लेख किया है, उसके अनुसार तो यही ठहरता है कि शूद्रक ने समय की अन्विति का पालन नही किया है क्योंकि नाटक के सम्पूर्ण व्यापार की समय-सीमा चौबीस घटे से आगे नही बढनी चाहिए। किन्तु, यह स्मरणीय है कि यूरोप के नाटककारो ने भी (विशेषत शेक्सपियर ने) समय-सकलन का पालन नही किया है। 'मृच्छ०' को पढते समय या उसका अभिनय देखते समय, पाठको अथवा प्रेक्षको को काल-विषयक किसी गहरे व्यतिक्रम या व्यवधान का बोध नही होता। अतएव, मोटे रूप से यही समझना चाहिए कि शूद्रक ने समय की अन्विति की भी सुन्दर ढग से रक्षा की है।

(३) व्यापार की अन्विति

'मृच्छ०' का प्रधान वक्तव्य चारुदत्त तथा वसन्तसेना का प्रणय-परिपाक है जिसमें वार-वनिता अपने प्रणय की सचाई के कारण, ब्राह्मण सार्थवाह की वैध वधू बन गई है। जैसा अन्यत्र कहा गया है, प्रस्तुत नाटक अपनी योजना एव उद्देश्य मे एकदम निराला है। उसमे वैसे प्रेम की कहानी नही कही गई है जो लोक-निरपेक्ष एकान्तता मे अपनी उपलब्धि या परिपूर्ति (Self fulfilment) खोजे। शूद्रक ने आरम मे ही इसमे सघर्ष एव सशय के सूत्र अनुस्यूत कर दिये हैं। सस्थानक वसन्तसेना का प्यार बलपूर्वक, प्रलोभनो का 'अँकोर' देकर, विजित करना चाहता है। और उधर, चारुदत्त नितान्त निर्धन एव नितान्त सकोची है जो वसन्तसेना को जीतने के लिए स्वत कोई सशक्त कदम उठाना नहीं चाहता। वसन्तसेना भी प्रणय व्यापार मे अकेली नहीं है। उसकी प्रिय चेटी मदनिका शर्विलक मे अनुरक्त है जो चोरी भी करता है और राजद्रोह की भूमिका भी तैयार कर रहा है। पात्रो मे एक सवाहक जुआरी भी है जो कभी चारुदत्त से सबधित रहा है। और सबसे ऊपर, राज्य परिवर्तन की योजना भी नाटककार ने अपने मन मे बना ली है। यदि शकार के कारण यह आशका बनी हुई है कि चारुदत्त वसन्तसेना का मिलन आसान एव निरापद नहीं

बनने पायेगा, तो शर्विलक के कथन से स्पष्ट हो जाता है कि राजा पालक के अन्त के लिए हिंसा का प्रश्रय भी ग्रहण किया जा सकता है। अर्थात्, नाटक की दुनिया में झांकने से लगता है जैसे सघर्ष, कपट एव हिंसा के प्रतिकूल वातावरण में प्रणय का पौधा एकदम सूख जाएगा। चारुदत्त की अतिशय अच्छाई एव उदारता और शकार की असीमित दुष्टता एव नृशसता—इन दो ध्रुवान्तो के बीच तरुणी वसतसेना, जो वार-वनिता थी और सम्पत्तिशालिनी थी। वह क्या करेगी ? चारुदत्त में वह अनुरक्त है अवश्य, लेकिन फिर भी है तो वेश्या-पुत्री। क्या वह धमकियों और प्रलोभनों के बीच अपने प्रणय-दीप को निश्छल एव अविचलायमान ढग से अन्त तक प्रज्वलित रख सकेगी ? पुन', वह राज्य विप्लव जिसके भाग्य के साथ चारुदत्त-वसतसेना के प्रणय का भाग्य भी जुडा हुआ प्रतिभासित होने लगा है। शूद्रक ने सचमुच 'मृच्छ०' की दुनिया इतनी जटिल बना दी है कि हमे सदेह होने लगता है कि नाटकीय व्यापार मे अन्विति की रक्षा हो सकेगी या नहीं। प्रस्तावना में नाटक के जटिल प्रयोजन का स्पष्ट निर्देश—चारुदत्त एव वसतसेना का सुरतोत्सव, नीति का प्रचार, दुष्टो का आचरण, दुर्जनों का स्वभाव तथा भाग्य की अनियत्रित लीला का प्रदर्शन'[1]—पाठक को सशकित बना देता है कि नाटककार इस बहुमुखी प्रयोजन की सिद्धि के साथ 'कार्य सकलन' की रक्षा क्योंकर कर सकेगा ?

लेकिन, हम पहले देख चुके हैं कि कुछ अनावश्यक विजृम्भण को छोड़कर, 'मृच्छ०' के वास्तु-सघटन में पर्याप्त सतुलन है और विभिन्न दृश्य किसी विशिष्ट प्रयोजन की पूर्ति करते हुए भी, केन्द्रीय कार्य-धारा से पृथक् अथवा कटे हुए नहीं हैं। कहीं से भी आरम्भ कर, प्रत्येक दृश्य या व्यापार अन्त मे प्रधान वक्तव्य का परिपोष करता है—गुत्थियाँ उलझाता है और गुत्थियाँ सुलझाता है। राजनीतिक विप्लव वाला अन्त कथानक ऊपर-ऊपर से असबद्ध प्रतीत होता है, लेकिन जिस ढग से अनमेल भासित होने वाले पात्रो एव व्यापारों को एकसाथ शूद्रक ने उलझा दिया है, उससे सम्पूर्ण नाटक मे कार्य की अन्विति की सुन्दर रीति से स्थापना हो गई है। सवाहक और शर्विलक—एक जुआरी और एक चोर। लेकिन जुआरी का पूर्व सम्पर्क नायक के साथ है और विचित्र ढग से वह नायिका से भी सम्बन्धित हो जाता है, पहले उपकृत होकर और पीछे उपकारी होकर। शर्विलक सन्धिच्छेद करता है और नायक का अपकार

---

१ "तयोरिद सत्सुरतोत्सवाश्रय नयप्रचार व्यवहारदुष्टताम्।
खलस्वभाव भवितव्यतां तथा चकार सर्वं किल शूद्रको नृप ॥" (१।७)

कर, नायिका द्वारा मदनिका-दान के रूप मे पुरस्कृत होना है, और फिर आगे चलकर, राजद्रोह का स्वतः नायक बन गया है तथा प्रधान कथानक के नायक चारुदत्त को अन्त में कुशावती राज्य के दान से पुरस्कृत करने के लिए प्रस्तुत हो गया है। दो साधारण व्यक्तियो के प्रेम की कहानी एक पूरे राज्य तथा राजधानी के भाग्य से खूबी के साथ जोड दी गई है, लेकिन नाटक के अवसान पर, राज्य-विप्लव वाला व्यापार मुख्य प्रेम-कहानी की सुखद परिणति मे ही विलीन हो गया है। जैसे जैसे नाटक मे घटनाओ की गति तीव्र होती गई है, वैसे-वैसे हमारा ध्यान मुख्य कहानी और मुख्य पात्रो की ओर केन्द्रित होता गया है और नाट्य व्यापार का बिखराव सिमटता गया है तथा उसमे केन्द्रीकरण घटित होता गया है। हमने पहले स्वीकार किया है कि पाँचवें अक के बाद कथानक की प्रगति मे एक विराम सा प्रतिभात होता है। लेकिन, उस विराम से नाटक के 'कार्य-सकलन' को कोई आघात नही पहुँच पाया है। पूर्वार्ध मे जिन विचारो तथा चरित्रो का अवतरण हुआ है, वे ही उत्तरार्ध मे अधिक उभार में लाये गये हैं, और उन सब के बीच चारुदत्त एव वसन्तसेना के प्रणय की अविचलित पवित्रता की प्रतीति ही हमे गहन चुम्बक की नाईं आकर्षित करती है।

कार्य की अन्विति का उपलालन नाटक मे एक अन्य ढग से भी सम्पन्न हुआ है नायक चारुदत्त प्राय निष्क्रिय होता हुआ भी, समस्त महत्त्वपूर्ण प्रसगों में अपने अदृश्य प्रभाव का उद्भास करता रहा है। सातवें अक मे राज्य-विप्लव का केन्द्रीय व्यक्तित्व आर्यक दिखाई देता है, लेकिन चारुदत्त से उपकृत हो कर, वह अपना महत्त्व लगभग खो बैठता है। चारुदत्त उसके प्रति उदारतापूर्ण मैत्री का हाथ बढाता है और आर्यक कृतज्ञताभिभूत होकर, उसके सामने नम्रशिरस्क हो जाता है। अन्त में, आर्यक ने अवश्य मैत्री का प्रतिदान दिया है, किन्तु रगमच पर उसके उपस्थित न होने के कारण, यहाँ भी चारुदत्त ही चमक गया है। यद्यपि नाटक के दस अकों मे चारुदत्त केवल छ अकों में ही शरीरतः उपस्थित होता है,[१] तथापि उसका व्यक्तित्व आद्योपान्त प्रभावशाली सिद्ध हुआ है। आठवें महत्त्वमय अंक में *चारुदत्त उपस्थित नहीं है, लेकिन उसकी अनुपस्थिति ने ही उस दारुण घटना* के घटन मे सहयोग किया है। जहाँ चारुदत्त उपस्थित नहीं है वहाँ वसन्तसेना वर्तमान है और वही नाट्य कार्य को गति एव रूप प्रदान करती है तथा कार्य की अन्विति के परिपोष में सहायक होती है। पुन, चारुदत्त का प्रत्येक मित्र

---

१. पहले, तीसरे, पाँचवें, सातवें, नवें तथा दसवें अङ्कों मे ही चारुदत्त प्रत्यक्ष रङ्गमञ्च पर उपस्थित हुआ है।

एव प्रशसक उसकी महत्ता की स्थापना मे सहयोग देना है, और द्रष्टव्य यह है कि नाटकीय पात्रो मे लगभग सभी (सस्थानक को छोडकर) उसके मित्र अथवा प्रशसक हैं। वह बराबर "आर्यचारुदत्त" की अभिधा से आस्थापित होता है और पाठक अथवा प्रेक्षक निरन्तर यह अनुभव करता रहता है कि वह चारुदत्त का ही तमाशा देख रहा है। छठे अक मे, जब चदनक यह तर्क-वितर्क करता है कि चारुदत्त की गाडी में पलायन करने वाले आर्यक का रहस्य वह खोले अथवा नही, तब उसका निर्णय (यह कि आर्यक को भगने दिया जाय) मुख्यतया इस विचार से निर्धारित होता है कि चारुदत्त इस काड मे फँसने नही पावे।[१] आठवें अक मे जब सस्थानक वसन्त-सेना को उसकी हत्या की धमकी देता है, तब वह उसी का नाम पुकारती है और उसी का नाम लेने के कारण, शकार वसन्तसेना का कण्ठ निपीडन करता है। इस प्रकार, नाटक का सम्पूर्ण कार्य-कलाप चारुदत्त के व्यक्तित्व से प्रभावित रहा है।

अतएव, 'मृच्छ०' मे चारुदत्त के व्यक्तित्व का जो सावधानीपूर्वक परिपोष हुआ है, उससे नाटकीय कार्य सकलन की रक्षा मे महत्त्वपूर्ण सहयोग मिला है।

सुतरा 'मृच्छ०' मे नाटकीय अन्वितियो का पालन किया गया समझना चाहिए।

---

१ "एषोऽनपराध शरणागत आर्यचारुदत्तस्य प्रवहणमारूढः प्राणप्रदस्य मे आर्यशर्विलकस्य मित्रम् × × × ×।"

—'मृच्छ०' (चौखम्बा), पृ० ३४५.

(९) चरित्र-चित्रण

चारुदत्त

(१)

चारुदत्त प्रस्तुत प्रकरण का नायक है। वह अतिशय प्रशान्त एवं धैर्यशाली है। नाटक की घटनाओं पर उसका प्रत्यक्ष नियन्त्रण नहीं के बराबर है। वह प्रायः निष्क्रिय है। कर्मलीन होना उसके स्वभाव का अंग नहीं है। शायद कर्म करने में, किसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए कोई सुचिन्तित योजना बनाने में वह प्रकृत्या असमर्थ है। नाटककार ने चारुदत्त के रूप में लगभग सत्त्व-विहीन नायक की सृष्टि की है जो प्रतिकूल आर्थिक परिस्थितियों के मानसिक अनुभवन के बोझ से आक्रान्त है और इसी कारण, जो घटना प्रवाह में बह जाना पसंद करेगा, किन्तु, उसे अपनी अनुकूलता में मोड़ने के लिए एक छोटी अँगुली भी नहीं उठाना चाहेगा। "दरिद्रचारुदत्त" अभिधान में 'दरिद्र' विशेषण उसके पौरुष की दरिद्रता का ही बोध करता समझा जाना चाहिए—आर्थिक दरिद्रता तो उसकी अपरिमेय उदारता में प्रायः डूब ही गई है यद्यपि उसी ने उसका मनोबल तोड़ सा दिया है।

चारुदत्त चिन्तक बन गया है, इस कारण कि वह दरिद्र हो गया है। हमारा उससे प्रथम परिचय इसी रूप में होता है "कुछ दिन पूर्व हमारे जिस द्वार पर पूजा के समय गिराये हुए द्रव्यों को हंस तथा सारस खाया करते थे, उसी तृणों से आच्छादित भूमि पर सम्प्रति कीड़ों के मुख से खंडित बीजों के समूह गिरते हैं।"[1] इस कथन में दरिद्रता की दीन भावना से उत्पन्न एवं अनुप्रेरित उसकी चिन्तनशीलता की छाया हमें आरम्भ में ही चिन्तित बना देती है। दरिद्रता की अनुभूति से इतना उद्विग्न यह व्यक्ति नायक का गुरु-गम्भीर दायित्व कैसे वहन कर सकेगा? निर्धनता एवं मृत्यु में से वह मृत्यु को पसंद करता है।[2] वह सच ही कहता है—"मित्र! मुझे धन के लिए दुःख नहीं है। मुझे यह दग्ध कर रहा है जिस प्रकार समय के फेर से हाथी के गण्डस्थल से मदस्राव रुक जाने पर भ्रमर वहाँ मँडराना छोड़ देते हैं, उसी प्रकार अतिथियों ने धनहीन जानकर मेरे घर आना छोड़ दिया है।"[3] अर्थात्, विभव के नष्ट हो

---

१ 'मृच्छ०' (चौखम्बा), १।९ २ वही, १।११

३ वही, १।१२

जाने से वह दुःखी नहीं है, दुःखी है उससे निकलने वाले परिणामों की प्रतीति से। धन के नाश हो जाने की उसे चिन्ता नहीं है क्योंकि भाग्य के अनुसार धन आता है और चला जाता है।[1] चिन्ता उसे इस बात की सन्तापित कर रही है कि धन के अभाव में मनुष्य का सामाजिक मूल्य नष्ट हो जाता है और मानसिक दृष्टि से वह ग्लानि तथा विडम्बना का आखेट बन जाता है। चारुदत्त ने पर्याप्त सुख तथा सम्मान का उपभोग किया है, और इसी कारण उसकी प्रस्तुत विपन्नावस्था की प्रतीति उसे अत्यन्त कातर एवं दुर्बल बनाये हुई है। वह सोचता है, चिन्ता करता है, मर जाना चाहता है क्योंकि नवोपपन्न निर्धनता ने उसका मानसिक मेरुदण्ड तोड़ दिया है। चिन्तनशीलता ने उसे एक प्रकार से 'दरिद्रता का दार्शनिक' (Philosopher of Poverty) बना दिया है—दारिद्र्य दर्शन का वह यों निरूपण करता है—"धनहीन हो जाने पर मित्रगण भी विमुख हो जाते हैं। निर्धनता से लज्जा होती है, लज्जित मनुष्य तेजहीन बन जाता है, तेजहीन व्यक्ति लोक से तिरस्कृत होता है, तिरस्कार के कारण वह विरक्त हो जाता है, विरक्त होने पर शोक उत्पन्न होता है, शोकातुर होने से बुद्धि क्षीण होती है, फिर, बुद्धिहीन होने पर सर्वनाश की अवस्था आ जाती है। दरिद्रता समस्त आपत्तियों का मूल है। वही मनुष्यों की चिन्ता का आश्रय है, शत्रुओं के अपमान का भाजन है, शत्रु एवं मित्रों की घृणा का पात्र है, स्वजनों से भी वैर का कारण है। जो धनहीन है, उसे वन में चले जाने की इच्छा होती है। उसे अपनी स्त्री का भी अपमान सहना पड़ता है। गरीबी तो हृदय के भीतर बसी हुई शोक की आग है जो एक ही बार जला कर भस्म नहीं कर देती, अपितु घुला घुला कर मारती है।"[2] दरिद्रता के इस हृदय-तोड़ प्रभाव से चारुदत्त नितान्त पंगु बन गया है।

(२)

किन्तु उक्त केन्द्रीय दुर्बलता को यदि 'माइनस'[3] कर दिया जाय, तो चारुदत्त के चरित्र में जो कुछ बच जाता है, वह नितान्त प्रिय, मोहक, आकर्षक तथा हृदयग्राही है। वह अत्यन्त दानी एवं उदार है। उसकी सम्पत्ति उचित परोपकारी कार्यों में खर्च हुई है। विदूषक का कथन द्रष्टव्य है

'मित्र ! दुःख करना व्यर्थ है। याचकों को दान देने से क्षीण-विभव, देवताओं के पी लेने पर अवशिष्ट प्रतिपदा की क्षीण चन्द्रकला की भाँति, आपकी यह

---

१ वही १।७३

२. वही, १।१३–१५ —और भी देखिये . १।३६–३८, ५।४०–४२

३ 'माइनस' अंग्रेजी का शब्द है, अर्थ होता है 'घटाना'.

निर्धनता भी अधिक रमणीय लगती है।"[1] विदूषक इसी प्रसग मे धन की क्षणभगुरता तथा कृपणों के पास ही उसके सचयीभवन का स्मरण दिलाता है।[2] वस्तुत, जैसा आरम मे कहा है, चारदत्त की आर्थिक विपन्नता उसकी असीम उदारता मे डूब जाती है वह कृपण तो है नही अपितु आवश्यकता से अधिक उदार एव दानशील है। घर मे सेंध लगाने पर उसे यह दुःख होता है कि चोर को कोई धन मिला नही होगा और इस प्रकार, उसे निराशा हुई होगी। चोर को भी अपने घर से निराश भेजना वह नही चाहता।[3] जब वह यह सुनता है कि चोर स्वर्णालकार चुरा ले गया, तब वह हर्षित होता और उस सवाद को शुभ एव प्रिय मानता है, यह सोचकर कि चोर आखिर कृतार्थ होकर गया है—"यदसौ कृतार्थो गत ।[4] कर्णपूरक को उस दुष्ट हाथी को नियत्रित करने के उपलक्ष में सौरभित उत्तरीय देना, विदूषक की इस प्रतिकूल टिप्पणी पर कि वसन्तसेना रत्नावली का मूल्य कम जानकर कुछ और अधिक माँगने आ रही है (पचम अक) उसका मन मे यह सोचना कि "परितुष्टा यास्यति' (वह यहाँ से सतुष्ट होकर जाएगी)," और यह सुनकर कि चोरी गया स्वर्णाभूषण वसन्तसेना को मिल गया है, चेटी को अपनी अंगूठी पुरस्कार-रूप मे देने के लिए तत्पर हो जाना क्योंकि 'न कदाचित् प्रियनिवेदन निष्फली-कृत मया" (मैंने प्रिय-वचन को कभी खाली नहीं जाने दिया)[6]—ये सभी तथ्य चारदत्त की अतिशय उदारता के प्रकाशक हैं।

सबसे बड़ी बात यह है कि उसकी प्रशस्ति के गायक शायद शकार के अतिरिक्त नाटक के सभी पात्र हैं। सभी उसके उपकार से प्रत्यक्षतया अथवा परोक्षतया मनसा अभिभूत हैं। मैत्रेय को तो उसका प्रत्यक्ष पोषण प्राप्त हुआ है। सूत्रधार-द्वारा भोजनार्थ निमन्त्रित किये जाने पर वह ग्लानि से भर जाता है। एक समय था जब वह चारदत्त के अन्त पुर की बैठक के द्वार पर बैठा नाना प्रकार के मधुर व्यजनों का आस्वाद लेता हुआ, नगर-प्रागण के साँड के समान पागुर किया करता था, और अब वही चारदत्त की निर्धनावस्था मे रूई के समान हीन होकर, यत्र तत्र भोजन के लिए पूछा जा रहा है।[7] शकार

१ वही, पृ० २७-२८

२ वही, पृ० २९—"भो वयस्य ! एते खलु दास्या पुत्रा अर्थकल्यवर्ता ××××।"

३ वही, ३।२१

४ वही, पृ० १७९

५ वही, पृ० २६६

६ वही, पृ० ३०३

७ वही, पृ० २१-२२

का मित्र विट भी चारुदत्त की दानशीलता की प्रतीति से दबा हुआ है। शकार का उसके प्रति कदर्थनात्मक भाव समझ कर, विट प्रतिवाद की मनोभंगी में उसका गुणगान यों कर जाता है—"यह चारुदत्त हमारे जैसे याचकों के कारण दरिद्र हो गया है। उसने कभी किसी को अपने विभव से अवमानित नहीं किया। वह ग्रीष्मकाल के जलपूर्ण तालाब की भाँति मनुष्यों की प्यास बुझाकर स्वयं सूख गया है।"[1] उसकी अपार दानशीलता को विट ने जैसे एक लघु वाक्य में व्यंजित कर दिया है: 'दीनानां कल्पवृक्षः।'[2]

(३)

चारुदत्त सज्जनता की प्रतिमूर्ति है। उसके मानसिक संघटन में कहीं कोई ऐसा तत्त्व गुम्फित नहीं है जो उसे किसी प्रकार की हिंसा-वृत्ति के लिए अनुप्रेरित करे। इस तत्त्व के अभाव से उसका चरित्र दो सहगोत्री विशेषताओं से समन्वित बन गया है जिसमें से एक उसे दुर्बल बनाती है तो दूसरी उसे लोकप्रिय एवं शील्वान् बनाने में सहायक सिद्ध हुई है। पहली विशेषता है उसमें दृढ संकल्प का अभाव जिससे वह नाटक में कहीं भी अपनी बात आसानी से मनवा नहीं सका है—शायद कभी किसी बात पर वह दृढतापूर्वक अड़ा हो नहीं है। दूसरी विशेषता है उसके स्वभाव की अतिशय विनम्रता एवं कोमलता जिसमें उज्जयिनी का सकल समाज उसके प्रति सहानुभूति एवं सम्मान के सुनहले सूत्रों में बँधा है। देखिये, उसके प्रति की गई शकार की अपमानमूलक अभ्युक्तियों का प्रतिवाद करते हुए, विट क्या कहता है—"अरे मूर्ख! यह आर्य चारुदत्त है। × × × दयादि गुणों से विनीत, सज्जनों का कुटुम्बी, पण्डितों का आदर्श, सच्चरित्रों की कसौटी, शील का समुद्र, किसी का अपमान नहीं करने वाला, मानवोचित गुणों का भंडार तथा सरल-उदार चित्त वाला वह चारुदत्त है जिसका ही जीवन इस संसार में प्रशंसनीय है।"[3] रात के अँधेरे में छिप कर घुस आने वाली वसन्तसेना को रदनिका समझ कर, जो उसने उसे रोहसेन को घर के भीतर ले जाने का आदेश दिया था, उसके लिए वह सही स्थिति का ज्ञान होने पर खेद प्रकट करता है और उससे यों क्षमा याचना करता है—"भवति! वसन्तसेने! अनेनाविज्ञा-नादपरिज्ञातपरिजनोपचारेण अपराद्धोऽस्मि। शिरसा भवतीमनुनयामि।"[4] यद्यपि मैत्रेय काफी मुँहलगू है और सेवक होने के बावजूद उससे डरना का नाम नहीं जानता, तथापि उसे भी उसकी भावनाओं की सुकुमारता का बड़ा ध्यान है। शकार के द्वारा अपमानित की गई रदनिका से वह अनुरोध करता

१ वही, पृ० ७२ २ वही, पृ० ७३
३ वही, पृ० ७३-७४ ४ वही, पृ० ८७.

है कि वह उस अपमान को आर्य चारुदत्त से नही कहे क्योकि उसे सुन कर वह और भी दु खी होगा।[1] विट ने भी विदूषक से यही प्रार्थना की है कि वह उस अशोभन घटना को चारुदत्त से न कहे[2] और दम्भी शकार से स्पष्ट कहा है कि वह (विट) आर्य चारुदत्त के गुणो से भयभीत हो गया है।[3] इन गुणों मे परोपकार, सदाचार प्रभृति के साथ उसकी सरल, निश्छल विनम्रता का भी समावेश है। वसन्तसेना जब आभूषण उसके पास छोड जाना चाहती है, तब उसने अत्यन्त निश्छलता पूर्वक उस प्रस्ताव का प्रतिवाद करते हुए कहा है—"अयोग्यमिद न्यासस्य गृहम्" (यह घर धरोहर रखने योग्य नही है)।[4] यह स्पष्टोक्ति उसके चरित्र की विनम्र सरलता पर प्रकाश डालती है। उसके मनोभावो की कोमलता वहाँ भी लक्षित होती है जब गान्धर्व सुनने के बाद रात को विलम्ब से घर लौटने पर वह रदनिका को नीद से जगाने की बात अस्वीकृत कर देता है। विदूषक कहता है—"वर्धमानक ! पैर धुलवाने के लिए रदनिका को बुलाओ।" तब चारुदत्त दयापूर्वक कहता है—"अल सुप्तजन प्रबोधयितुम्" (सोये व्यक्ति को जगाना उचित नही)।[5] उसके स्वभाव की सुकुमारता अपने परिजनो तक ही सीमित नही है। वह पशु पक्षियो को भी स्पर्श करती है। वसतसेना के चेट ने जब विदूषक का ध्यान आकर्षित करने के लिए उसे ककडी मारी, तब वह (विदू०) यह समझ कर कि वह ककडी ऊपर के कबूतर ने गिराई है, कबूतर को काठ के डडे से मार गिराना चाहा। किन्तु, चारुदत्त उसे रोकता है—"मित्र ! बैठो। इस काम से क्या लाभ ? अपनी प्रिया के साथ इस तपस्वी (दीन) पारावत को सुख पूर्वक बैठने दो।"[6] इस कथन मे चारुदत्त की सुकोमल मनोवृत्ति व्यजित होती है। किन्तु, चारुदत्त ने अपने स्वभाव का स्वय यो परिमापण किया है—"जो मैं फूल लेने के लिए विकसित लता को भी झुका कर पुष्प-चयन नही करता, वही मैं भ्रमर के पख के समान नीली कान्ति वाले सुदीर्घ केशो को खीच कर, रोती हुई कामिनी की हत्या कैसे करूँगा ?"[7]

चारुदत्त का अन्त करण इतना कोमल एव सुकुमार है कि वह कुसुमित लता तक को भी कोई क्षति नहीं पहुँचाना चाहता। उसके स्वभाव की इसी मृदुलता एव निश्छलता की प्रतीति से नगर की स्त्रियाँ महलो से, खिडकी मे से मुँह

---

१ वही, पृ० ८१
२ वही, पृ० ७०
३ वही, पृ० ७१
४ वही, पृ० ८८
५ वही, पृ० १५२.
६ वही, पृ० २६८
७ वही, पृ० ४९७ (९।२८)

निकाल कर, "हा चारुदत्त ! हा ! चारुदत्त !" पुकारती हुई अश्रु-धाराएं गिराने लगी थी— हा ! चारुदत्तेत्यभिभाषमाणा बाष्प प्रणालीभिरिवोत्सृजति ।।"

(४)

चारुदत्त के चरित्र के अन्य गुण हैं, उसकी सदाचारशीलता, सत्यनिष्ठा एव सम्मान की भावना । वस्तुत हिंसा वृत्ति का अभाव ही इन गुणो के मूल मे माना जाना चाहिए । क्योंकि इन गुणों की विरोधी वृत्तियो का प्रादुर्भाव हिंसा भावना से ही होता है । वसन्तसेना को रदनिका समझ कर चारुदत्त ने रोहसेन को उत्तरीय से ढक कर चतु शाला के भीतर ले जाने का आदेश दिया । किन्तु, जब उसे यह ज्ञात हुआ कि वह रदनिका नही है, तब उसे पश्चात्ताप होता है कि अज्ञान के कारण वह स्त्री उसके वसन-स्पर्श से दूषित हो गई और झटिति यह विचार उसके मन म आता है कि दूसरे की स्त्री को देखना अनुचित है यद्यपि वह 'शरत्कालीन मेघ से आच्छादित चन्द्रकला" की भाँति उसे अवनत जान पडी ।[2] वसन्तसेना भी उसकी ओर आसक्त है तो इसी कारण कि वह सच्चरित्र एव निर्मल शील से सयुक्त है, अन्यथा दरिद्र व्यक्ति उस जैसी गणिका से सेवित नही होता । वसन्तसेना ने बडे निर्भीक भाव से शकार को यह उत्तर दिया है—"सुचरित-चरित विशुद्धदेह न हि कमल मधुपा परित्यजति । यत्नेन सेवितव्य पुरुष कुलशीलवान् दरिद्रोऽपि ।"[3]

असत्य भाषण भी चारुदत्त के स्वभाव के विपरीत है । न्यायालय मे विदूषक की काँख से स्वर्ण भाण्ड गिर पडता है । चारुदत्त पर आरोप भी यही है कि सुवर्णाभूषणो के मोह के कारण ही उसने वसन्तसेना की निर्मम हत्या की है । अब ये आभूषण अनायास न्यायालय मे उपस्थित हो गये हैं । वसन्तसेना की वृद्धा माता चारुदत्त को बचाने के लिए असमजस मे भरा उत्तर देती है— 'आय ! शिल्पी की कुशलता मेरी आँखो को खीचती है, किन्तु ये अलकार वे नही है ।'[4] तब बात चारुदत्त से पूछी जाती है । चारुदत्त स्वय आभूषण पहचानता है सही स्थिति जानता है और साथ ही, यह भी जानता है कि यदि अलकारों की पहचान अदालत मे सदिग्ध रह गई—जैसी सम्भावना वृद्धा गणिका के वक्तव्य से उत्पन्न हो गई है—तब उस पर लगाये गये हत्या-आरोप की विश्वसनीयता पूर्णत स्थापित नही हो सकेगी और न्यायाधीश से

---

१. वही, १०।११ २ वही, पृ० ८४
३ वही, पृ० ४२५ ४ वही, पृ० ५०८

उसे सन्देह का लाभ मिल जाएगा। ऐसी अवस्था मे वह उन अलंकारो के विषय म कोई परोक्ष घूम घुमाव वाला जवाब दे सकता था। लेकिन वह स्पष्ट उत्तर देता है कि अलकार उसके नही हैं, अपितु उस वृद्धा की पुत्री (वसन्तसेना) के हैं।[1] यह अवश्य है कि जब चारुदत्त से पूछा गया कि वे अलकार वसन्तसेना के शरीर से कैसे अलग हुए, तब वह वास्तविक वस्तु स्थिति का प्रकाशन नही कर सका। उसने बताया "इस प्रकार गये। हाय ! यह।"[2] श्रेष्ठिकायस्थो के यह कहने पर कि 'आप चारुदत्त ! यहाँ सच बोलना चाहिए', चारुदत्त न कहा—"यही अलकार हैं या नही, यह मैं नही जानता। किन्तु, इतना जानता हूँ कि ये मेरे घर से आए हैं।"[3] यहाँ थोडी कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। पहली बार तो उसने स्पष्ट शब्दो मे कहा है कि वे आभूषण उस वृद्धा की लडकी के हैं 'इहात्रभवत्या दुहितु ।'[4] और अब, वह किन दुबल क्षणो से आक्रा त होकर, अपन पूव कथन को तनिक सशोधित करने लगा है अलकार कौन से हैं, किसके हैं यह वह नही जानता, इतना ही केवल जानता है कि वे उसके घर से आये हैं। यहाँ चारुदत्त की अवस्था युधिष्ठिर की उस अवस्था के समान हो गई है जब उन्हे कहना पडा था 'अश्वत्थामा हतो नरो वा कुञ्जरो वा।" लेकिन, चारुदत्त की इस विचित्र अवस्था के लिए यथेष्ट परिमाजन नाटककार न प्रस्तुत किया है। उसके प्राण ता यों सकट मे थे ही, साथ ही, अलकारों का रहस्य खोलते समय उस आयक के पलायन वाला तथ्य भी विज्ञापित करना पड जाता। पुन, इतना तो उसने स्वीकार कर ही लिया है कि वे अलकार उसके घर से आये हैं। शकार के ललकारने पर भी—'पहले तो उद्यान मे उसे ले जाकर मारा और अब कपटपूर्ण धूर्तता से उसे छिपा रहे हो।'[5]—वह सही स्थिति का प्रकाश नही कर सका है। अधिकरणिक की इस धमकी पर कि यदि वह सच नहीं बोलेगा, तो उसके सुकुमार शरीर पर बेतें पडेंगी, वह अत्यन्त प्रशान्त मुद्रा मे जवाब देता है—'पवित्र कुल मे उत्पन्न होने वाले मुझमे पाप वर्तमान नहीं हैं, और यदि मुझम

---

१ वही, पृ० ५१०.

२ 'एव गतानि । आ इदम् ।"—वही, पृ० ५१०

३ "आभरणानि आभरणानीति न जाने, किन्त्वस्मद्गृहादानीतानीति जाने।"—वही, पृ० ५११

४ वही, पृ० ५१०

५ 'उद्यान प्रवेश्य प्रथम मारयसि, कपटकापटिकया साम्प्रत निगूहसि।"—वही, पृ० ५११

पाप सम्भव है, तो मेरे जीवित रहने से क्या प्रयोजन ?"[१] चारुदत्त का यह कथन हमें सर्वथैव विचलित कर देता है। चारुदत्त पापी नहीं है, वह पाप करने के बिलकुल अयोग्य है। वह पूत कुल मे उत्पन्न नितान्त पूत एवं पवित्र है। कठोर नीतिवादी बुद्धि कहती है, उसने असत्य-भाषण नहीं किया, किन्तु सत्य को छिपाया तो अवश्य। यदि सत्य को विज्ञापित किया होता, तो क्या अवस्था होती ? क्या वह बिलकुल बच ही गया होता ? क्या राजद्रोह में सम्मिलित होने का नया अभियोग उसके ऊपर नहीं लगाया जाता ? क्या आर्यक पुन बन्दी नहीं बना लिया जाता ? क्या तब उसकी मैत्री और प्राण दोनों ही साथ साथ सङ्कट में नहीं पड़ते ? अभी तो उसने नई मैत्री की रक्षा कर ली। यदि वसन्तसेना उसे नहीं मिलती है, तो फिर जीवित रहने से क्या लाभ—"न च मे वसन्तसेनाविरहितस्य जीवितेन कृत्यम् ?" और फिर, तब पूर्ण सत्य के उद्घाटन का प्रातिभासिक श्रेय क्यों लिया जाय ? यदि वर्तमान प्रसग चारुदत्त के चारित्रिक गौरव को किसी प्रकार की आच पहुँचाना समझा जाय तो भी यह प्रसग नितान्त मार्मिक सुकुमारता से ओतप्रोत है और इसके कारण, चारुदत्त के चरित्र की 'मानवता', रक्तमांस से आर्द्र 'मनुष्यता' हृदयग्राही ढग से उद्भासित हो गई है।

सत्य-भाषण की इसी चिन्ता से सलग्न है, चारुदत्त की सम्मान की भावना। वह सार्थवाह विनयदत्त का पौत्र (नप्ता) और सागरदत्त का पुत्र है। उसके 'भवन की रचना' अपूर्व ढग से हुई है जिसे देखने से कोई भी सोच सकता है कि वह परिवार सम्पत्तिशाली रहा है। दूसरे, वह कुल निष्पाप है।[२] वह उत्तम कुल अतीत से विविध यज्ञानुष्ठानों से पवित्र हो चुका है और सभाओं एवं निमंत्रित व्यक्तियों से परिपूर्ण यज्ञ-मन्दिरों में गुञ्जायमान वेदध्वनियों से पूर्णतया प्रकाशित हो चुका है।[3] चारुदत्त को अपने वश तथा परिवार की धवल कीर्ति का बड़ा ध्यान है। वह कोई ऐसा कृत्य नहीं करना चाहता जिससे उस उत्तम कुल की प्रतिष्ठा को तनिक भी आघात पहुँचे। सार्थवाहों का वह परिवार सम्पत्ति के लिए भी विख्यात रहा है। चारुदत्त सम्प्रति दरिद्र हो गया है। उज्जयिनी का समाज जानता है कि लक्ष्मी की कृपा उसके कुटुम्ब से हट गई है। किन्तु, कोई परदेसी भी उसकी दरिद्रता के विषय में आश्वस्त हो जाय, यह उसे गवारा नहीं है। इसी कारण, जब तक उसको यह ज्ञान नहीं हुआ कि सधिच्छेद से न्यास वाला स्वर्णालंकार चोरी चला गया है, तब तक उसे यही

---

१ वही, ९।३७ २ वही, ९।३७

३ वही, १०।१२

ग्लानि सताती रही (यद्यपि स्थिति का ज्ञान झटिति हो गया) कि वह चोर जो उसकी "प्राङ्महती निवासरचना" को देख धन प्राप्ति के विषय में आशान्वित हुआ होगा घर में कुछ बहुमूल्य वस्तु नहीं पाकर कितना निराश हुआ होगा।[1] और उसने मन में कैसे यह सोचा होगा कि चारुदत्त के भवन में प्रवेश कर उसे कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ—'सार्थवाहसुतस्य गृहं प्रविश्य न किञ्चिन्मया समासादितम्।'[2] दरिद्र चारुदत्त अपनी दरिद्रता की अनावश्यक, अनाहूत विज्ञप्ति से व्यथित होता है क्योंकि उसमें उसके ख्यातिलब्ध परिवार की विख्यात सम्पन्नता के अपलाप का प्रश्न उलझ जाता है। जब उसे सही वस्तु-स्थिति का परिज्ञान हो गया है तब वह धरोहर के अपहृत किये जाने से अत्यन्त चिन्ताग्रस्त बन जाता है। 'वास्तविक तथ्य पर कौन विश्वास करेगा (कि चोर ने धरोहर चुरा ली) ? सभी मुझे ही दोषी ठहरायेंगे। इस संसार में निर्धनता समस्त शंकाओं की जननी है।'[3]—इस विचार से चारुदत्त को मर्मान्तक पीड़ा होती है, क्योंकि अब तो लोग उसकी सचाई में विश्वास नहीं करेंगे और उसका चरित्र (कि वह सत्यनिष्ठ एवं ईमानदार है) अब कलंकित हो जाएगा।[4] विदूषक जब यह प्रस्ताव रखता है कि वह उस धरोहर के विषय में ऐसा प्रचार करेगा कि जिससे चारुदत्त उसके न्यास से मुक्त हो जाय, तब वह कहता है—"क्या मैं इस समय झूठ बोलूंगा ? भिक्षा के द्वारा यथेष्ट धन एकत्र कर धरोहर लौटा दूंगा, किन्तु चरित्र को कलंकित करने वाला असत्य-भाषण नहीं करूंगा।'[5] यह है उसकी सम्मान भावना जो उसे एक ओर अपने प्रतिष्ठित कुल की ख्याति को तथा दूसरी ओर अपने शुभ्र चरित्र को कलंकित करने से रोकती है। इसी "चारित्रभ्रंश" को रोकने के लिए, चारुदत्त यह झूठ बोल गया है कि वह उस सुवर्णालंकार को भ्रमवश अपना समझ कर जुए में हार गया। विदूषक के रत्नावली भेजने के प्रस्ताव का विरोध करने पर उसने उत्तर दिया है—"जिस विश्वास के सहारे वसन्तसेना ने वह धरोहर मेरे पास रखी, उसी विश्वास के कारण यह मूल्यवान् रत्नावली उसे दी जा रही है न कि उस स्वर्णाभूषण के बदले में।' विश्वास भंग न होने की यह चिन्ता चारुदत्त के चरित्र को चामत्कारिक आलोक से मंडित कर देती है।

इसी प्रकार, जब चाण्डाल घोषणास्थल पर पहुँच कर चारुदत्त के पिता एवं पितामह का नाम लेकर, उसके ऊपर मढ़े गये आरोप की घोषणा करते हैं,

---

१ वही, ३।२३	२ वही, पृ० १७७
३ वही, ३।२४	४ वही, ३।२५
५ वही, ३।२६.	६ वही, ३।२९, ५।७

तब उसे अपने गौरवान्वित कुल का स्मरण कर गहरी पीड़ा होती है कि उसकी वर्तमान 'मरणदशा" में चाण्डालों द्वारा वह कुल कलङ्कित किया जा रहा है।[१] कुल-परम्परा की बात छोड़ भी दी जाय चारुदत्त स्वयं अपने धवल यश की रक्षा के लिए चिन्तित है और उस यश के कलङ्कित होने की उत्कट सम्भावना से अतीव दुःखी हो गया है। वह मृत्यु से भयभीत नहीं है। यदि निष्कलंक वह मर जाता, तो उसे पुत्रजन्म के समान सुख मिलता। भयग्रस्त वह इस कारण हो गया है कि उसकी शुभ्र कीर्ति दूषित हो गई—

"न भीतो मरणादस्मि केवलं दूषितं यशः ।
विशुद्धस्य हि मे मृत्युः पुत्रजन्मसमो भवेत् ॥" (१०।२७)

(५)

चारुदत्त धर्म-परायण है। इसी कारण, वह भाग्यवादी है। शकुनों में विश्वास भी वह रखता है क्योंकि वह समझता है कि वे मनुष्य के भाग्य पर रहस्यमय नियन्त्रण रखते हैं। विदूषक के नाटक पर हमने आरम्भ में ही पाया है कि चारुदत्त गृहदेवों की पूजा सम्पादित कर चुका है।[२] वह मैत्रेय को भी निर्देश करता है कि वह चतुष्पथ पर जाकर मातृदेवियों को बलि अर्पण कर आये।[३] विदूषक जब देवताओं की पूजा में अविश्वास प्रकट करता है, तब चारुदत्त उसे समझाता है—"मित्र! ऐसा मत कहो। गृहस्थों का यह दैनिक नियम है। तप, मन, वाणी एवं बलि कर्मों के द्वारा पूजित देवता शान्त चित्त वाले मनुष्य पर अवश्य प्रसन्न होते हैं। इसमें तक वितर्क करने की आवश्यकता नहीं है।"[४] निर्धनता-विषयक उद्गारों में उसने सर्वत्र भाग्य की प्रबलता की बात कही है। उसका विश्वास है कि धन का आना और जाना भाग्य के अनुसार होता है "भाग्य-क्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति।"[५] रदनिका के भ्रम में घर के भीतर प्रवेश करने के लिए आदिष्ट वसन्तसेना जब उत्तर नहीं देती, तब चारुदत्त अपनी हीनावस्था के लिए भाग्य को दोषी ठहराता है "भाग्यक्षयपीडितां दशां नरः × × × ×।"[६] न्यायालय में जब विदूषक की असावधानता से अलंकार भूमि पर गिर पड़ते हैं तब उस सयोग की अर्थवत्ता से भयभीत होकर, वह भाग्य की प्रतिकूलता का वर्णन करता है "अस्माकं भाग्यदोषात् पतितं पात-यिष्यति।"[७] चाण्डालों द्वारा वधस्थान को ले जाये जाते हुए वह मनुष्यों के भाग्य

---

१ वही, १०।१२
२ 'मृच्छ०' (चौखम्बा), पृ० २३
३ वही, पृ० ३२
४ वही, पृ० ३३
५ वही, पृ० २९, पृ० १८६
६ वही, पृ० ८३
७ वही पृ० ५०६

की अचिन्त्यता का स्मरण कर दुःख प्रकट करता है "पुरुषभाग्यानामचिन्त्या खलु व्यापारा × × × ×।"[1] भाग्य-दोष और अपनी धर्म परायणता में उसका अमोघ विश्वास तब प्रकट होता है जब वह यह आह्वान करता है कि वसन्तसेना जहाँ भी हो, स्वर्ग में या संसार में, तत्काल वहाँ उपस्थित हो जाय यदि उसके धर्म में कुछ भी प्रभाव हो—

> "प्रभवति यदि धर्मो दूषितस्यापि मेऽद्य
> प्रबलपुरुषवाक्यैर्भाग्यदोषात् कथञ्चित्।
> सुरपतिभवनस्था यत्रतत्र स्थिता वा
> व्यपनयतु कलङ्कं स्वस्वभावेन सैव ॥'
>
> (१०।३४)

नाटकांत में सम्पूर्ण घटनाओं पर समाहारात्मक टिप्पणी करते हुए चारुदत्त ने कहा है—"कूप-यन्त्र की क्षुद्र घटी के समान यह दैव परस्पर विरोधियों की उन्नति-अवनति का अवघटन कराते हुए संसार का खेल खेल रहा है। किसी को नीचे से ऊपर उठाता और ऊपर से नीचे गिराता है। सभी कुछ विधि के अधीन है, वही संसार को नचा रहा है।"[2]

इस कथन से चारुदत्त के चरित्र की आधारभूत मूल ध्वनि भाग्य अथवा किसी पारलौकिक नियामिका सत्ता में गहरी आस्था, की विज्ञप्ति हुई है। शकुनों में भी उसका अविचलित विश्वास है। बाईं आँख फड़कती है तो भयभीत हो जाता है, मुंडित बौद्ध भिक्षु को देखता है तो अमंगल की आशंका से ग्रस्त बन जाता है,[3] कौवा रूक्ष स्वर से काँव काँव करता है तो उसे भावी विपत्ति की शंका होती है,[4] मार्ग में सर्प पड़ा दिखाई देता है तो वह देवताओं से रक्षा की भीख माँगता है।[5]

वस्तुतः चारुदत्त प्रगाढ़ आस्थावान् व्यक्ति है—विधि में आस्था, भाग्य में आस्था, शकुनों में आस्था और इन सम्पूर्ण आस्थाओं की जननी धर्म बुद्धि में आस्था। आस्था के इसी सर्वातिशायी प्रभाव के कारण, जैसा आरम्भ में कहा गया है, कि वह प्रायः निष्क्रिय रहा है। इसी कारण वह घटना प्रवाह को मोड़ने के लिए कोई निश्चित योजना नहीं बना सका है। योजना तो उसने एक ही बनाई थी, पुष्पकरण्डक उद्यान में वसन्तसेना के साथ विहार की

---

१ वही, पृ० ५२३
२ वही, पृ० ६०२
३ वही, पृ० ३७०-७१
४ वही, पृ० ४३४-३५
५ वही, पृ० ४७९

लिए। और, वह योजना कितनी दिग्भ्रान्तरित हो गई! उसका परिणाम कितना भयकर सिद्ध हुआ!

(६)

चारुदत्त के चरित्र का अब केवल एक ही महत्त्वपूर्ण पटल शेष बचता है, और वह है उसका प्रणयशील स्वरूप। इस विषय मे केन्द्रीय तथ्य यह है कि चारुदत्त स्वभावत प्रेम करता है, किन्तु प्रेम का उद्गार प्रकट नहीं होने देता। भावनाएँ उठती हैं, लेकिन वह उन्हें, कुछ तो नीति से और कुछ प्रकृतित भी, खुल कर प्रकाश मे नहीं आने देता। प्रकृति और परिस्थितियाँ दोनों ही उसे धीर एव प्रशान्त बनाने में सहयोग करती हैं। कामदेवायतन उद्यान मे उसने वसन्तसेना को सम्भवत शकार के दुष्ट व्यवहार से बचाया था।[1] वह उनकी पहली आकस्मिक भेंट रही होगी। और, यदि चारुदत्त का सयमी, शीलवान् स्वभाव वसतसेना के लिए सबल आकर्षण था, तो वसन्तसेना की यौवनोत्फुल्ल रूपलक्ष्मी भी उसके लिए उतनी ही, शायद अधिक सशक्त प्रलोभन थी। लेकिन, नाटक मे यही सूचना मिलती है कि वसन्तसेना चारुदत्त मे अनुरक्त है, यह नहीं कि चारुदत्त वसन्तसेना मे अनुरक्त है। वास्तविकता यह है कि चारुदत्त स्वत वह चुम्बक रहा है जो उज्जयिनी की रत्न-श्री गणिका को अनायास अपनी ओर खीच रहा है। इसी लिए, कार्यारम्भ की प्राथमिकता ('इनीशियेटिव') का श्रेय वसन्तसेना को मिला है न कि चारुदत्त को।

'चारुदत्त रूपवान् है। ऊँची नासिका तथा कानों तक विस्तृत विशाल लोचन! ऐसी भव्य आकृति वाला व्यक्ति कोई दुष्कर्म कर ही नहीं सकता—न्यायाधीश की यह टिप्पणी है उसे देख कर।[2] किन्तु, उसके प्रणय-जीवन मे उसके रूप का उतना महत्त्व नहीं जितना उसके शीलवान् एव उदार स्वभाव का। वसन्तसेना मुख्यत आकर्षित हुई है, उसके चरित्र की शालीनता के कारण ही। जाती-पुष्प से सौरभित उसके उत्तरीय की मधुर सुगन्ध से वसन्तसेना को अवश्य एक मानसिक आश्वासन मिला, यह कि चारुदत्त का यौवन कामुक प्रतिभासित होता है : "अहो! जातीकुसुमवासित प्रावारक अनुदासीनमस्य यौवन प्रतिभासते।"[3] किन्तु इस प्राथमिक आश्वासन के पश्चात् जो कुछ भी उस रूपशालिनी एव सम्पत्तिशालिनी गणिका को चारुदत्त मे अधिकाधिक आसक्त करने मे सहायक सिद्ध हुआ है वह है चारुदत्त की उदारता एव शील-

१ वही, पृ० ९८ 'किं स एव येनाहं शरणागता अभ्युपपन्ना ?"
२ वही, पृ० ४८० ३ वही, पृ० ८२.

वत्ता । कर्णपूरक को चारुदत्त ने बौद्ध संन्यासी की दुष्ट हाथी से रक्षा करने के उपलक्ष्य में जो उत्तरीय का उपहार दिया, उससे वसन्तसेना उसकी उदारता से ही परोक्षतया प्रभावित हुई । मैत्रेय ने जब उसे चारुदत्त द्वारा भिजवाई गई रत्नावली प्रदान की तब वह मन में अत्यन्त विस्मित होकर कहती है—'चोरों से भी चुराये गये आभूषण को उदारता के कारण वे कहते हैं कि जुए में हार गये । इसी लिए तो मैं उनकी कामना करती हूँ ।"[१] चेटी को वह प्रसन्न होकर जो मुद्रिका देना चाहता था और हाथ में मुद्रिका न पाकर लज्जित हुआ उससे वसन्तसेना प्रभावित होती है और कहती है— इसी लिए तो मेरा मन आप के लिए ललकता है ।"[२] कहने का अभिप्राय यही है कि चारुदत्त की उदारता उसके प्रणय जीवन का केन्द्रगत तथ्य है । चौथे अंक के प्रारम्भ में वसन्तसेना उसकी चित्राकृति में आँखें गड़ाई दीख पड़ी है और मदनिका से कहा भी है—'सखी मदनिके ! आर्यचारुदत्त की यह चित्राकृति सदा ही दर्शनीय है ।'[३] लेकिन यह कथन उसकी चारुदत्त-विषयक आसक्ति का प्रतिफलन है, न कि इस बात का द्योतक कि वह उसकी रूपमाधुरी से आकर्षित होकर उसमें आसक्त हुई है । मदनिका ने जब कहा कि वह आकृति दर्शनीय है, तब वसन्तसेना ने पूछा—'तुमने कैसे जाना ? ' तब मदनिका ने सच्ची बात बताई है—"(वह आकृति दर्शनीय है) क्योंकि आपकी स्नेहस्निग्ध दृष्टि उसमें अनुरक्त हो गई है ।"[४]

प्रणयोपचार में चारुदत्त, जैसा अभी कहा है, स्वभाव तथा परिस्थिति दोनों ही कारणों से धीर, प्रशान्त एवं सकोची है । मैत्रेय वसन्तसेना के घर से लौटने के बाद उसके उदासीन व्यवहार पर जब तीव्र टीका-टिप्पणी करता और चारुदत्त से प्रार्थना करता है कि वह विघ्न स्वरूप वेश्या संसर्ग से विमुख हो जाय, तब चारुदत्त उत्तर में जो कुछ कहता है, उससे उसकी सही मानसिक स्थिति पर उन्मीलक आलोक पड़ता है—'मित्र ! इस समय इन निन्दा-वाक्यों का कहना व्यर्थ है । मैं तो अपनी वर्तमान दरिद्रावस्था के ही कारण वेश्या प्रसंग से निवृत्त हूँ । अश्व शीघ्र भागने के लिए उत्सुक होता है, किन्तु परिश्रम से बल क्षीण होने के कारण उसके पैर उतने वेग से आगे नहीं बढ़ते । मनुष्य की चंचल मनोवृत्तियाँ सर्वत्र जाती हैं, किन्तु लक्ष्य सम्पादन में असमर्थ होने से खिन्न होकर पुनः मन के भीतर समा जाती हैं । और भी मित्र ! जिसके पास धन है, उसकी वसन्तसेना है क्योंकि वेश्या धन से ही वशीकृत की जा सकती है ।"[५]

---

१ वही, पृ० २५२ २ "अत एव कामये"—वही पृ० ३०४
३ वही, पृ० १९० ४ वही, पृ० १९१
५. वही, पृ० २६३ ६४

अर्थात्, निर्धनता के कारण चारुदत्त अपनी प्रणय-वृत्तियों को वेगपूर्वक प्रवाहित होने से रोकता है, वह स्पष्ट स्वीकार करता है कि निर्धनता ने ऐसे ही उसके गणिका-संसर्ग की सम्भावनाओं को विघ्नित कर दिया है "यस्यार्थास्तस्य सा कान्ता।" और, उसके पास अर्थ नहीं है, अतएव रूपसी वसन्तसेना उसकी कैसे हो सकती है? अतः चारुदत्त की प्रणय विषयक संयमशीलता एवं प्रशान्तता में उसकी परिस्थितियों का भी अवदान है। यों वह स्वभावतः संकोची एवं शालीन है ही। न्यायाधीश के यह पूछने पर कि क्या गणिका उसकी मित्र है, चारुदत्त ने लज्जापूर्वक उत्तर दिया है—"हे न्यायाधिकारियो! यह मैं कैसे कहूँ कि वेश्या मेरी मित्र है? अथवा इस विषय में मेरा यौवन अपराधी है, चरित्र नहीं।"[1] यह कथन चारुदत्त के स्वाभाविक संकोच एवं मर्यादाशीलता पर रम्य आलोक डालता है। उसकी इसी सलज्जता को शकार ने कायरता समझ लिया[2] जब कि न्यायाधीश ने उसे अधिक सहानुभूति से समझ कर, सच्ची बातें बताने के लिए यों प्रोत्साहित किया—"यह व्यवहार विघ्नमय है, अतएव हृदयस्थित लज्जा का परित्याग करो।"[3] चारुदत्त निलज्ज नहीं है।

यद्यपि चारुदत्त प्रणय-मार्ग में स्वयं आगे बढ़ने वाला तथा उतावला नहीं है, तथापि वह प्रणय की रक्षा एवं सम्मान करना जानता है। शकार की यह धमकी सुनकर कि वह वसन्तसेना को उनके हाथों समर्पित नहीं करेगा तो चिर-स्थायिनी शत्रुता वह मोल लेगा, चारुदत्त अवज्ञापूर्वक कहता है—'वह राज-श्याल मूर्ख है! अहो! कैसी देवता के समान उपासना योग्य वह युवती है।"[4] इस कथन में एक ओर सौन्दर्य की पूजा वृत्ति प्रकट हुई है तो दूसरी ओर उसकी रक्षा के निमित्त राजसत्ता के एक सशक्त अधिकारी की धमकी की अवहेलना भी प्रत्यक्ष दिखाई पड़ती है। सौन्दर्य सम्मान तथा प्रणय परिपोष की भावना से अनुप्राणित होकर ही, वह उस रात को वसन्तसेना को उसके घर पहुँचाने के लिए उद्यत हो गया है। बड़ी शिष्टता की वाणी में वह कहता है—'एवं भवतु! स्वयमेवानुगच्छामि तत्रभवतीम्।"[5] वास्तव में, चारुदत्त सहृदय है और किसी की भी भावनाओं पर चोट पहुँचाना नहीं चाहता। कल्पना भी उसकी बड़ी सुकुमार है। संगीत का अनुरागी तथा प्रशंसक है जिस कारण भी उसकी मनोवृत्ति प्रेम के पोषण की अभ्यासिनी बन गई है।[6]

---

१ वही, पृ० ८८३ — २ वही, ४८२
३ वही, पृ० ४८३ — ४ वही, पृ० ८६
५. वही, पृ० ९० — ६ वही, पृ० ३१२

ललित भाव उसके हृदय मे उठते है और नितान्त मँजी सधी शैली मे वह उन्हे अभिव्यक्ति प्रदान करता है। रदनिका के भ्रम मे वसन्तसेना के प्रति किये गये दासी तुल्य आचरण के परिमार्जन मे वह अपना अपराध स्वीकार करता है और सिर नवाकर उससे विनय करता है "शिरसा भवतीमनुनयामि।"[१] वसन्तसेना के प्रणाम करने पर जब विदूषक हास्य करता है,[२] तब चारुदत्त ने टिप्पणी की है—"भवतु तिष्ठतु प्रणय।"[३] इस कथन से वसन्तसेना चमत्कृत हो गई है और मन ही मन यह सोच कर हैरान है—'चतुरो मधुरश्चायमुपन्यास (यह वाक्य विन्यास कितना विदग्ध एव मधुर है!)'[४] ललित कल्पना और ललित वाग्विन्यास का एक सुन्दर दृष्टान्त वहाँ उपलब्ध है जहाँ चारुदत्त वसन्तसेना को घर पहुँचाते समय नवोदित चन्द्रमा की दुग्धधवल प्रभा का यो वर्णन करता है—'युवतियो की कपोलस्थली के समान सुन्दर स्निग्ध, नक्षत्रो से घिरा चन्द्रमा राजपथ को आलोकित कर रहा है। घोर अन्धकार मे उसकी शुभ्र किरणें पृथ्वी पर ऐसे गिर रही है जैसे जलशून्य पक मे दूध की धाराएँ गिरती हों।'[५] पाँचवें अक के अन्त मे वर्षा और वसन्तसेना को लेकर चारुदत्त ने अन्य ललित कल्पनाएँ की हैं जिनसे उसके स्वभाव के लालित्य पर रमणीय आलोक पडता है।[६]

वसन्तसेना के प्रति उसका प्यार अत्यन्त गहरा एव सुकुमार है। जब तक वसन्तसेना उससे आकर मिली नही है, तब तक उसे वियोग की वेदना तड़पाती रहा है। उसके आ जाने पर वह सहर्ष उठ जाता है और कहता है—'अरे! वसन्तसेना आ गई! हे प्रिये! मेरा सायकाल प्रतिदिन जागते बीतता है और सारी रातें निरन्तर निश्वास छोडते व्यतीत हो जाती हैं। लेकिन, हे विस्तृतलोचने! तुम्हारे समागम से आज की सन्ध्या हमारे शोक का अन्त कर देने वाली सिद्ध होगी।"[७] अभियोग प्रकरण मे जब वह देखता है कि प्रमाण उसके प्रतिकूल जा रहे हैं, तब वह कहता है—"वसन्तसेना के जीवन के बिना मेरा जीवित रहना व्यर्थ है।"[८] वस्तुत जिस विकट विषम परिस्थिति मे चारुदत्त पड गया है—जिस युवती के प्रेम मे वह लीन है, उसीकी हत्या का मिथ्या आरोप—वह परिस्थिति शायद ही साहित्य के किसी प्रणयी के भाग्य मे पडी हो। वह वाचाल नहीं था, चपल नहीं था, चतुर छलछद्मी नहीं था, अन्यथा ऐसी अवस्था मे

---

१ वही, पृ० ८७ | २ वही, पृ० ८७
३ वही, पृ० ८८ | ४ वही, पृ० ८८
५ वही, पृ० ९२ | ६ वही, पृ० ५।३८, ४४ ५२
७ वही पृ० २९७ | ८ वही, पृ० ५१२.

पड़ा ही नहीं होता। चाडालो की इस घोषणा से सन्तप्त होकर कि उसने वसतसेना को मारा है, उसका कोमल कातर हृदय यो फूट पड़ा है—

"शशिविमलमयूखशुभ्रदन्ति ! सुरुचिरविद्रुमसन्निभाधरोष्ठि !
तव वदनभवामृत निपीय कथमवशो ह्ययशोविष पिबामि ॥"
(१०।१३)

—'चन्द्रमा की विमल किरणों के समान उज्ज्वल दाँतो वाली ! मनोरम प्रवाल के तुल्य रक्ताभ अधरोष्ठो वाली ! प्रियतमे ! तुम्हारे मुखामृत का पान कर, मैं इस समय कितनी निस्सहाय अवस्था मे अपयश-रूपी विष का पान कर रहा हूँ !'

और, वधस्थान मे वसन्तसेना के अचानक प्रकट हो जाने पर तथा उसके स्पर्श सुख का अनुभव कर लेने पर चारुदत्त हर्षगद्गद हो, कह उठा है—"प्रिये ! तुम वसन्तसेना हो ! × × × क्या वसन्तसेना ही हो ! मेरे मृत्यु के वश मे होने पर, अश्रुवारि की धाराओं से अपने दोनो पयोधरो को अभिषिचित करती हुई सजीवनी बूटी के समान तुम कहाँ से आ पहुँची ?"[१]

चारुदत्त शान्त, सकोची, गभीर निष्ठावान् तथा प्रणय के उज्ज्वार को सयम एव शालीनता के कठोर पटल मे छिपा लेने वाला प्रेमिक है।

कालिदास के नाट्य नायकों के समान चारुदत्त भी पितृरूप मे उपस्थित हुआ है। रोहसेन के प्रति उसके वात्सल्य की क्षीण किरणें उसके मेघाच्छन्न जीवनाकाश को उद्भासित करती दिखाई पडी हैं। आरम्भ मे सायकालीन शीतल पवन से बालक को बचाने की उसकी चिन्ता पहले देखी जा चुकी है। मृत्यु दण्ड की घोषणा हो जाने पर, उसने अपनी माता को अभिवादन भेजने के साथ-साथ मैत्रेय से यह भी अनुरोध किया है कि वह (मैत्रेय) बालक रोहसेन का भी पालन करेगा[२] और उस पर उसका जो प्रेम है, उसे रोहसेन को समर्पित करेगा।[३] पुन उसने प्रार्थना की है कि मैत्रेय रोहसेन को उसे, मरने से पूर्व, दिखा दे।[४] श्मशान-मार्ग मे मैत्रेय के साथ आये रोहसेन को गले लगाता है, ब्राह्मणो का परम अलकारभूत यज्ञोपवीत उसे प्रदान करता है और तब उसका वात्सल्य मानो यों, शान्त स्थिर मुद्रा मे ही जो उसके चरित्र का मुख्य पारिभाषिक धर्म है, फूट पड़ा है—"यह पुत्र स्नेह धनी तथा निर्धन दोनो के लिए समानभाव से जीवनसर्वस्व है। चन्दन तथा उशीर (खस) से भिन्न यह हृदय का शीतल अनुलेप है।"[५] और यह पुत्र स्नेह भारतीय सस्कृति से कितनी

---

१ वही, पृ० ५७३ २ वही, पृ० ५१७
३ वही, पृ० ५१८ ४ वही, पृ० ५१८
५ वही, पृ० ५३९

गहराई से अनुरञ्जित है, इस तथ्य की विज्ञप्ति तब हुई है जब चारुदत्त पितृ-दोष से बचने के लिए रोहसेन को माता के साथ तपोवन में चले जाने का उपदेश देता है—

"आश्रम वत्स ! गतत्त्व गृहीत्वाद्यैव मातरम् ।
मा पुत्र ! पितृदोषेण त्वमप्येवं गमिष्यसि ॥" (१०।३२)

(७)

हमने प्रस्तुत प्रसंग के आरम्भ में कहा है कि निर्धनता की अनुभूति से चारुदत्त का मानसिक मेरुदण्ड इतना टूट सा गया है कि हमें संदेह होने लगता है कि वह नायक का गुरु दायित्व क्योंकर संभाल सकेगा ? लेकिन, जब हम उसके चरित्र का सूक्ष्मतया अध्ययन करने लगते हैं, तब नाटककार की निपुण कला की प्रतीति से हम विस्मित हो जाना पड़ता है। ऊपर जिन गुणों तथा विशेषताओं का विवेचन किया गया है उनका उपन्यास इस रूप एवं परिणाम में सम्पन्न हुआ है कि चारुदत्त नाटक के नायक के गौरव से जगमगा उठता है। नायकत्व की गरिमा तथा प्रतिष्ठा को उपलालित करने के निमित्त, नाटककार ने एक अन्य परोक्ष प्रयत्न किया है, और वह यह है कि नाटक के प्रायः समस्त पात्र चारुदत्त के प्रति पूज्य अथवा सम्मानपूर्ण भाव रखते चित्रित किये गये हैं। चारुदत्त से सम्बद्ध या उपकृत पात्रों की प्ररोचना की तो बात ही क्या, जो उससे प्रत्यक्ष उपकृत अथवा परिपालित नहीं हैं, वे भी उसके प्रति आदर तथा आस्था का भाव रखते हैं। शकार के सहचरों में विट की भावनाओं का पहले उल्लेख हो चुका है। यही विट आठवें अंक में वसन्तसेना को गाड़ी पर बैठी देख पछताता हुआ, शकार को काग और चारुदत्त को हंस बताता है।[१] चेट स्थावरक (जो शकार की सेवा में नियुक्त है) चारुदत्त के प्राणों पर आये संकट को देखकर महल की रथ्या में कूद पड़ता है और शकार को वसन्तसेना का हत्यारा घोषित करता है। 'मेरा मरना अच्छा है, किन्तु कुलपुत्र रूपी विहगों के आश्रयदाता वृक्ष रूप आर्यचारुदत्त का मरना अच्छा नहीं है"—स्थावरक का यह कथन चारुदत्त की लोकप्रियता का उद्घाटक है। संवाहक, शर्विलक, आर्यक, चन्दनक इत्यादि सभी उसके आराधनीय चरित्र के गायक हैं। और तो और, स्वयं चाण्डालों में भी उसके प्रति सम्मान का भाव वर्तमान है। जब एक चांडाल केवल 'चारुदत्त' कह कर उसे संबोधित करता है : 'आगच्छ रे चारुदत्त ! आगच्छ।" तब दूसरा इस असम्मानपूर्ण संबोधन से दुःखी होकर उसे रोकता और समझाता है—'अरे ! बिना उपाधि के ही आर्यचारुदत्त को

१ वही, ८।१६

पुकार रहे हो ! उन्नति अवनति होती ही रहती है। ××× नियति की गति दुर्निवारणीय है। क्या मिथ्या दोषारोपण के कारण आर्यचारुदत्त का कुल, नाम इत्यादि प्रणाम करके मस्तक पर रखने योग्य नहीं है ?"[१]

न्यायाधीश का भाव चारुदत्त के प्रति अत्यन्त सम्भ्रमपूर्ण है। उसे विश्वास ही नहीं होता है कि चारुदत्त पर वसन्तसेना की हत्या का दोषारोपण किया भी जा सकता है,[२] कि वैसा रूपाकार वाला व्यक्ति कोई गर्हित कर्म भी कर सकता है।[३] शकार को न्यायाधीश ने तीव्र स्वरों में यों फटकारा है— "साधारण अधम व्यक्ति होते हुए तुम वेदार्थों का उच्चारण करते हो, तो भी तुम्हारी जीभ गिर नहीं जाती ? दोपहर के समय तुम सूर्य की ओर ताकते हो, फिर भी तुम्हारी दृष्टि सहसा विचलित नहीं हो जाती ? प्रज्वलित अग्नि में हाथ रखते हो, फिर भी तुम्हारा हाथ भस्म नहीं हो जाता ? मिथ्या दोषारोपण-द्वारा चारुदत्त का चरित्र भ्रष्ट करते हो, फिर भी पृथ्वी तुम्हारी देह अपहरण नहीं कर लेती ? आर्यचारुदत्त यह दुष्कार्य कैसे कर सकता है ('आर्यचारुदत्त वधमकार्यं करिष्यति') ?"[४] प्रमाणों के आकस्मिक संयोग से चारुदत्त को प्राण-दण्ड देना पड़ा है, लेकिन न्यायाधीश को उस निर्णय के लिए सम्भवतः पश्चात्ताप होता ही रहा है और वह चाहता था कि चारुदत्त की मृत्यु नहीं होती— तभी तो उसने शोधनक के द्वारा राजा पालक को यह संदेश भिजवाया है कि मनु के अनुसार यह पातकी ब्राह्मण मारा नहीं जा सकता, अपितु राष्ट्र से निर्वासित कर दिया जाय।[५]

और, चारुदत्त की लोकप्रियता का विज्ञापन तब तो प्रगाढ़ भाव से हो गया है जब चाण्डालों के साथ नगर मार्गों से जाये जाते हुए उसे देख कर, नगर वासी रो पड़े हैं तथा उनके अश्रु जल से पथ आर्द्र हो गये हैं—

"वध्ये नीयमाने जनस्य सर्वस्य रुदत।
नयनसलिलसिक्तो रथ्यातो न उन्नमति रेणु॥" (१०।१०)

चारुदत्त के चरित्र को सँवारने का शूद्रक ने बड़ा सतर्क प्रयास किया है। प्रकरण का सम्पूर्ण वातावरण "आर्यचारुदत्त" के स्निग्ध सुकुमार व्यक्तित्व की वशवदकारी सुरभि से सौरभित हो उठा है।

---

१ वही, पृ० ५३५-३६
२ वही, पृ० ४८७
३ वही, पृ० ४८०
४ वही, पृ० ४८८-८९
५ वही, पृ० ५१५

वसंतसेना

(१)

वसन्तसेना प्रकरण की नायिका है। वह वेश्या युवती है जो अपने अविचलित साहस के बल पर कुल वधू बन गई है। प्रो० जागीरदार ने उसे "जीवन के आनन्द' (Joy of Life) का प्रतीक बताया है जो "शालीनता" (Nobility) के प्रतीक (चारुदत्त) के साथ प्रतिबंधित हो गई है।[1] लेकिन, जागीरदार-द्वारा दी गई अभिधा ('जीवन का आनन्द') वसन्तसेना के चरित्र के साथ पूर्ण न्याय नहीं करती। उन्होंने इस आनन्द को 'अदमनीय" तथा "उत्तरदायित्व की भावना से विहीन" (irrepressible and irresponsible) बताया है। वसन्तसेना का प्रेम अदमनीय तो है सही, लेकिन उत्तरदायित्व-बुद्धि से विहीन नहीं है। यह तथ्य ही कि वह गणिका से कुल स्त्री बनने का अथक प्रयास करती रही है और प्राणों को संकट में डालकर भी वह पद प्राप्त कर लिया है, इस बात का प्रमाण है कि वसन्तसेना केवल-मात्र 'जीवन का आनन्द' नहीं है। वह, अपितु, 'आनन्द-खोजी जीवन का संयम एवं साहस' (The Restraints and Courage of Joy-oriented Life) है। उसके चरित्र के पारिभाषिक तत्त्व हैं, वेश्या जीवन के प्रति गहरी वितृष्णा और कुल-वधू बनने का अदमनीय मोह। विनोदशीलता, विनम्रता, विदग्धता, उदारता प्रभृति गुण उसके स्वभाव में प्रस्फुरित हुए हैं अवश्य, किन्तु वे सभी उसके प्रधान उद्देश्य के उपलालन में वैसे ही सहयोग करते हैं जैसे काव्य में रस के परिपोष में विभावानुभाव इत्यादि सहयोगी एवं सहायक सिद्ध होते हैं। वसन्तसेना में जीवन-भोग की लालसा है लेकिन वह वरणीय पात्र की पात्रता की भावना से अनुप्राणित है, मर्यादित है। वेश्या सुन्दरी प्रणय में मर्यादा का भी मान करती है, 'मृच्छ०' की यही केन्द्रीय ध्वनि है।

(२)

वसन्तसेना नाटक में पहले-पहल उज्जयिनी के राजमार्ग में रात्रि के अन्धकार में बेतहाशा दौड़ती भागती दिखाई पड़ती है। राजश्याल शकार अपने सहचरों के साथ उसका पीछा करता दिखाई देता है। कामदेवायतन उद्यान में कन्दर्प-पूजन के महोत्सव में वह गई थी और वहाँ भी शकार ने उसके शीलापहरण की चेष्टा की थी। तब वह चारुदत्त की शरण में छिपकर अपनी मान-रक्षा कर पाई थी। अभी वह रात के प्रगाढ़ तिमिर में उज्जयिनी के राजमार्ग में घूमती दिखाई पड़ी है और वही शकार पुनः उसे परेशान करता है। अनंग पूजन वाली

---

१ 'Drama In Sanskrit Literature' (1947), Chap XIV.

घटना से ही शकार को विश्वास हो गया कि वसंतसेना चारुदत्त मे अनुरक्त है ।[१] वसंतसेना नव्यागना है और नई चढती जवानी के रागोन्मेष मे वह चुहल और चहलकदमी पसन्द करती है । अन्यथा रात मे घर छोडकर राजपथों म टहलने का क्या उद्देश्य हो सकता है ? चारुदत्त के घर की स्थिति की जानकारी भी तो उसे नहीं है । अर्थात्, वसंतसेना बुलबुल है, नव उदीयमान यौवन ने उसे घर से बाहर निकल कर जीवन के आनन्द से परिचय लाभ करने के लिए अनुप्राणित किया है । यों वह नृत्यनिपुण गणिका युवती है और उज्जयिनी का सौन्दय शृगार है, अतएव यौवन का आनन्द या तो उसे उसके भव्य महल की अन्तरग सीमाओ में ही मिल सकता था या फिर वह किसी सम्भ्रान्त समृद्ध नागरिक-द्वारा स-सम्मान रमण के हेतु बुलाई जा सकती थी जैसा शकार ने उसे गाडी भेज कर बुलाया भी है ।[२] लेकिन, जीवन का आस्वाद वह अपनी ओर से, अपनी 'इनीशियेटिव'[३] पर लेना चाहती है । इसी कारण वह घर से बाहर निकलनी और दुनिया को अपनी आँखो से देखने-परखने की 'थ्रिल'[४] (उत्तेजना) का अनुभव करना चाहती है ।

नवयुवती होने के कारण वसन्तसेना 'नवल अनगा' है । अनुराग का अकुर उसके हृदय मे उद्भिन्न हो गया है । लेकिन, वह अत्यन्त विकट स्थिति मे पड गई है । शकार राजा का साला है और उसका उपभोग करने के लिए लालायित है । लेकिन, वसन्तसेना अनुराग का कारण 'गुण' मानती है, न कि 'बलात्कार' । रात को राजपथ पर घूमती हुई उसे शकार अपने सहचरो के साथ पकडना चाहता है । वह शुद्ध बलात्कार है । उससे बचने के लिए वसन्तसेना नृत्य-कला मे निपुण अपने चरणो को जल्दी-जल्दी आगे बढाती हुई वैसे भागी जा रही है जैसे हरिणी व्याध से पीछा की जाती हुई भयग्रस्त होकर भागती है ।[५] दौडती है गिर पडती है, उठ कर फिर भागती है ।[६] नवीन केले के समान वह काँपती जा रही है ।[७] शकार अन्तत उसका मस्तक पकड लेता है और अपनी तेज तलवार से उसका सिर काट डालने की धमकी देता है ।[८] वसन्तसेना स्थिति को भलीभाँति समझती है । फिर भी, छद्म विनय से, जैसे स्थिति की अनिवार्यता को थोडा टालने के लिए, वह पूछती है—'आर्य ! आप मुझसे किस आभूषण की इच्छा करते हैं ?'[९] शकार जब अपना मनोरथ व्यक्त करता

---

१ 'मृच्छ०' (चौखबा), पृ० ५२ २ वही, पृ० १९३
३ Initiative कार्यारम्भ की सूझ ४. Thrill उत्तेजना.
५ मृच्छ०' (चौखबा), पृ० ३५ ६ वही पृ० ३६
७ वही, पृ० ३८ ८ वही, पृ० ४६-४७
९ वही, पृ० ४८

है, तब वसन्तसेना क्रोध से तिलमिला जाती है और कहती है—'शान्त ! शान्त ! अपेहि अनार्य्य मन्त्रयसि।'[1] वसन्तसेना कितनी निर्भीक है ! और, जब विट ने वेश्याओं की समदृष्टि का कथन किया है, तब शान्तभाव से उसने प्रेम के प्रादुर्भाव का कारण बताया है—'गुण खलु अनुरागस्य कारणम् न पुनर्बलात्कार।'[2] वेश्यादारिका युवती। यथा वही जो ब्राह्मण और मूर्ख में, मयूर और काग में भेद नहीं करता।[3] लेकिन, वह गणिका वृत्ति से कितना भिन्न कितना पृथक् है ! अपने प्रेम का दान वह गुणवान् व्यक्ति को देना चाहती है, न कि लम्पट को। यही सिद्ध करता है कि वह जीवन भोग की लालसा को संयमित करना जानती है, वह लालसा अनियंत्रित नहीं अनुत्तरदायी नहीं। वह जन्म एवं वृत्ति से गणिका है, किन्तु उसका मन कमल उस विलासी तथा कृत्रिमतापूर्ण वातावरण में खिल नहीं सकता। वह गुण' चाहती है, धन नहीं। इसी कारण, बाद को शकार ने जब उसके लिए दस हजार वाला सुवर्णाभूषण भेजा और पुनः उसे बुलाने के लिए गाड़ी भेजी, तब वह सन्देश सुनकर वह क्रुद्ध हो गई तथा चेटी से कहा—'जाकर माताजी से कह दो कि यदि वे मुझे जीवित देखना चाहती हैं, तो पुनः ऐसी आज्ञा न दें।'[4] वह सोना नहीं चाहती, सोने जैसा हृदय चाहती है। शकार के पास सोने जैसा हृदय नहीं है।

(३)

वसन्तसेना का प्रणय जीवन विरोधों से भरा है। दुनिया उसे स्वशालिनी वेश्या ललना समझती है जो पथ में उत्पन्न होने वाली लता के समान है, जिसकी देह 'बाजार' में खरीदी जाने वाली वस्तु के समान है तथा जिसे रसिक अरसिक दोनों के साथ समान व्यवहार करना चाहिए।[5] शकार को जब वह डाँटती है, तब विट कहता है उसने वेश्यालय की मर्यादा के विरुद्ध वाक्यों का उच्चारण किया है "वसन्तसेने ! वेशवासविरुद्धमभिहितं भवत्या।"[6] अतएव, दुनिया समझती है, वह अपने स्वभाव एवं जीवन-वृत्ति के विरोध में चारुदत्त से प्रेम कर रही है। वह स्वयमेव महसूस करती है कि वेश्या होने के कारण वह चारुदत्त के अन्तरङ्ग कक्ष में प्रवेश की अधिकारिणी नहीं है। रदनिका की भ्रान्ति में जब रोहसेन को लेकर से उसे चतुःशाला में भीतर जाने का आदेश

---

१ वही, पृ० ४९ २ वही, पृ० ५२
३ वही, पृ० ५१ ४ वही, पृ० ११४
५ वही, पृ० ५०-५१ ६ वही, पृ० ५०.

मिला, तब वह मन-ही-मन कहती है— 'तुम्हारे घर के भीतर प्रवेश करने की अधिकारिणी नहीं हूँ।"[1] और उधर चारुदत्त अपने यौवन की कामुकता के बावजूद स्वभाव तथा परिस्थिति दोनों से आगे बढ़ने में संकोच करता है। वह जानता है कि वसन्तसेना वेश्या युवती है और निर्धन होने के कारण, वह उसके लिए अधिगम्य नहीं है।[2] अतएव, चारुदत्त को लेकर भी उसके प्रणय में एक परोक्ष विरोध उत्पन्न हो गया है। यदि चारुदत्त धनसम्पन्न होता, तो वह भी उसकी आवभगत में आगे बढ़ता और उसका प्रणय शायद सुख साध्य बन जाता। किन्तु, अवस्था ऐसी नहीं है। अतएव, वसन्तसेना का प्रणय जीवन विरोधों से भरा है और उनके बीच उसे अपनी आत्मोपलब्धि (Self-fulfilment) खोजनी है। इसी कारण, वह जीवन का विशुद्ध 'आनंद' नहीं है जैसा जागीरदार ने गलती से समझ लिया है।

दूसरे अंक के आरम्भ में मदनिका से वार्तालाप करते हुए वसन्तसेना ने अपने प्रणय का प्रतिपादन किया है। मदनिका उसके हृदय की 'शून्यता' का अनुमान कर लेती है और पूछती है कि इस महोत्सव में कौन भाग्यशाली तरुण उसके द्वारा अनुगृहीत हुआ है। मदनिका के यह पूछने पर कि क्या वह कोई राजा अथवा राजवल्लभ है, वसन्तसेना उत्तर देती है—'सखी! रमण करना चाहती हूँ सेवा करना नहीं।'[3] बाद को फिर उसने बताया है कि उसका प्रेम-पात्र न ब्राह्मण है, न व्यापारी। लेकिन, इस पूरे वार्तालाप से एक केन्द्रीय तथ्य यही विनाशित हुआ है कि वसन्तसेना रमण करना चाहती है 'रन्तुमिच्छामि।' और इस रमणेच्छा में धन का कोई सवाल नहीं है। चारुदत्त विषयक अनुरक्ति को स्वीकार कर लेने पर जब उससे मदनिका कहती है कि चारुदत्त निर्धन बताया जाता है, तब वह उत्तर देती है—"इसीलिए तो मैं उन्हें चाहती हूँ। निर्धन पुरुष में आसक्त होने वाली वेश्या संसार में निन्दनीय नहीं समझी जाती।"[4] वसन्तसेना वेश्या है, यदि वह धन के लाभ से किसी को अपना प्यार दान देती है तो वह 'वचनीय' (निन्दनीय) कही जाएगी, किन्तु, निर्धन पुरुष को प्रेम दान देने पर वह वचनीयता की सीमा को पार कर जाएगी—यही तर्कना है उसके प्रणय जीवन की। अर्थात्, वह ऐसे पात्र को अपने हृदय का उपहार देगी जिसमें बँधने पर उसकी निन्दा नहीं, अपितु प्रशंसा हो। अर्थात्

---

१ वही, पृ० ८३ २ 'प्रचुर धन के नष्ट हो जाने पर वसन्तसेना का काम उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार अयोग्य जन का क्रोध अपने ही शरीर में विलीन हो जाता है'—वही, पृ० ८५

३ वही, पृ० ९७ ४ वही, पृ० ९९

उसका प्रणय धन से नहीं, योग्यता से परिभाषित होगा। ऊपर हमने उसके प्रणय विषयक विरोधों की चर्चा की है। उसका प्रस्तुत संकल्प कि वह प्रेम करके "अवचनीया" होना चाहती है, उन विरोधों को दमित शमित करने में आद्योपान्त सहायक सिद्ध हुआ है।

चारुदत्त का मानसिक संकोच कि वह निर्धन है, इसलिए वसन्तसेना उसे प्राप्य नहीं और शकार का यह प्रयास कि वसन्तसेना उसकी उपभोग्या है क्योंकि वह धनसम्पन्न तथा शक्तिसम्पन्न है—ये दोनों वसन्तसेना के मार्ग में प्रधान अवरोध हैं, और उसके चरित्र का पूर्ण प्रकाश इन्हीं अवरोधों की अभिव्यक्ति में प्रस्फुटित हुआ है। शकार को उसने दो दो, तीन तीन बार फटकारा और दुत्कारा है दो बार प्रत्यक्ष रूप से (कामदेव मंदिर में और रात को नगरी के राजपथ में) तथा एक बार परोक्षरूप से (अपनी माता को भेजे उपर्युक्त संवाद में)। वह स्वयं तो दृढ़संकल्प है कि गुणसम्पन्न चारुदत्त ही उसके प्रणय का देवता है। किंतु, चारुदत्त का मानसिक अवरोध कैसे निवारण किया जाय? सहसा उसकी वसन्तसेना से भेंट सम्भव नहीं क्योंकि वह निर्धन है और उसके आत्मसम्मान को ठेस पहुँचेगी यदि वसन्तसेना 'सहसा' उससे मिले तथा खाली हाथ लौटे। वसन्तसेना इस स्थिति को समझती है, इसीलिए मदनिका से कहती है—"सखी! प्रत्युपकार करने में असमर्थ उनसे सहसा' नहीं मिला जा सकता क्योंकि तब उनका दर्शन पुनः दुर्लभ हो जाएगा।"[1] यही सोच समझ कर, वसन्तसेना ने अपना सुवर्णाभरण धरोहर रूप में चारुदत्त के घर रख दिया है जिससे उसे चारुदत्त से मिलने का एक आधार मिल जाए। वसन्तसेना, अतएव, स्वयं आगे बढ़ती है, योजना बनाती है, सक्रिय बनती है—इस उद्देश्य से कि चारुदत्त का उपर्युक्त मानसिक अवरोध मिट जाय, उसके आत्मसम्मान की रक्षा हो सके।

शर्विलक द्वारा चुराया गया अलंकार पुनः वसन्तसेना को मिल गया है। तो भी, धूता की रत्नावली जब चारुदत्त ने मैत्रेय की मार्फत भिजवाई है, तब वह उसे स्वीकार कर लेती है और विदूषक की टीका टिप्पणी का भाजन बनती है। किन्तु, वसन्तसेना ने वह हारावली स्वीकार कर, अपने अभीष्ट की पूर्ति में एक निश्चित कदम आगे बढ़ाया है। वह चारुदत्त को यह मानसिक संतोष प्रदान करना चाहती है कि वह भी अलंकार की एवज में बहुमूल्य मुक्तावली भिजवा सकता है—यह कि वह वसन्तसेना का ऋणी नहीं, उसका उपकृत नहीं, अपितु समानता के धरातल पर उसकी धरोहर को लौटा सकता है। यदि वसन्तसेना

---

१ वही, पृ० १०१

मुक्तावली स्वीकार न करती, तो चारुदत्त को यह कसक सताती रह जाती कि उसने उसे निर्धन समझ कर मुक्तावली लौटा दी है। और, उस अवस्था में उसका मानसिक अवरोध और भी दृढ़ हो जाता। पुन. मुक्तावली स्वीकार कर, वसन्तसेना ने चारुदत्त को यह सोचने का सन्तोष प्रदान किया है कि वसन्तसेना उसकी उदारता एवं बड़प्पन की प्रतीति से अभिभूत होगी। इस प्रकार, यह गणिका नवागना अपने प्रणयपथ को बड़ी चातुरी एवं सूझ-बूझ के साथ प्रशस्त कर रही है और स्वभाग्य-निर्णय का अपने बल पर उपक्रम कर रही है।

दुर्दिनमयी सन्ध्या में अभिसार की योजना चारुदत्त के मानसिक सकोच के निराकरण की दिशा में साहसपूर्ण कदम है। यह वसन्तसेना का आत्मसमर्पण है, इस उद्देश्य से कि दरिद्र चारुदत्त को अपनी दरिद्रता की दु खद प्रतीति नहीं होवे—आखिर चारुदत्त का विश्वास तो यही था कि वसन्तसेना उसकी है जिसके पास धन है '*यस्यार्थस्तस्य सा कान्ता*।'[1] रात्रि रमण के पश्चात् *वसन्तसेना कृतार्थ* हो गई है लेकिन उसे आत्मोपलब्धि नहीं मिली है। पुष्पकरडक उद्यान म जाने का चारुदत्त का आमत्रण सुन कर, वह अतीव हर्षित होती है और कहती है—"रात्रि में मैंने उन्हें ठीक से नहीं देखा। आज दिन में भलीभांति देख सकूंगी। अरी! क्या मैं अन्त पुर में प्रविष्ट हूं?"[2] अन्त पुर प्रवेश की महिमा से वह अवगत है। केवल प्रेयसी बनना वह नहीं चाहती। चारुदत्त के 'हृदय' में तो शायद वह रमण के साथ ही प्रवेश कर गई है। लेकिन, वही उसका उद्देश्य नहीं है। अन्त पुर में प्रवेश कर वह गृहिणी, कुलस्त्री बनने के लिए लालायित है। वही उसकी आत्मोपलब्धि होगी। इसी कारण, जब उसे यह बताया जाता है कि वह चारुदत्त के अन्तःपुर में प्रविष्ट हो गई है, तब उसे आनन्दपूर्ण विस्मय की प्रतीति होती है। पुन, अन्तःपुर-प्रवेश की मर्यादा तभी स्थिर वा स्थायी मानी जाएगी जब चारुदत्त के परिवार के सदस्य उसे स्वजन-रूप में समझने लग जायँ। केवल चारुदत्त के हृदय में समा जाने और तत्पश्चात् उसके गृहस्वामी होने के फलस्वरूप अन्तःपुर में प्रवेश कर लेने से ही उसके वास्तविक मनोरथ की सिद्धि नहीं होगी। वह कृतकामा तब बनेगी जब अन्तःपुर-प्रवेश की नवोपलब्ध मर्यादा को परिवार-जनों के हार्दिक स्नेह का सीमेंट भी मिल जाय। अतएव, जब चेटी उसे यह उत्तर देती है कि वह अन्तःपुर में ही नहीं, अपितु समस्त जनों के हृदय में भी प्रवेश कर गई है ("सर्वजनस्यापि हृदयं प्रविष्टा"),[3] तब उसे सहसा विश्वास नहीं होता और पूछती है—"अपि

1. वही, पृ० २६४
2. वही, पृ० ३१५.
3. वही, पृ० ३१६

सन्तप्यते चारदत्तस्य परिजन ?" (क्या चारदत्त के परिजन मेरे कारण दुःखी हैं ?) और, जब चेटी विश्वास दिलाती है कि वे सभी उसके आगमन से सुखी हैं, तब वह 'बहन आर्या धूता' को इस सन्देश के साथ मुक्तावली भिजवाती है—"इय श्रीचारदत्तस्य गुणनिर्जिता दासी तदा युष्माकमपि, तदेषा तवैव कण्ठाभरण भवतु रत्नावली ।"[1] वह चारुदत्त की गुण विजिता दासी है, अतएव धूता की भी वशीभूता है, उसका अनुरोध है कि वह मुक्तावली "भगिनी" धूता के कंठ की ही शोभा बढ़ाये।

लेकिन धूता ने मुक्तावली लौटा दी है इस सवाद के साथ कि आर्यपुत्र ने यह रत्नावली वसन्तसेना को दी है, यह उसी के पास रहनी चाहिए क्योंकि "आर्यपुत्र ही मेरे आभूषण हैं"। वसन्तसेना की प्रतिक्रिया इस सवाद पर क्या हुई, इसका कथन तो नाटककार ने नहीं किया किन्तु इतना निश्चित है कि उसने भी चारदत्त को अपने जीवन का आभूषण बनाने का सकल्प मन में कर लिया होगा। जब रदनिका रोहसेन को साथ लेकर उसके सामने आती है और यह बताती है कि बालक मिट्टी की गाडी से खेलना नहीं चाहता, अपितु सोने की गाडी से खेलना चाहता है तब वह स्नेहपूर्ण सम्बोधन के साथ आश्वासन देती है कि "पुत्र, मत रोओ, तुम सोने की गाडी से खेलोगे।" रदनिका के यह बताने पर कि वह 'आर्या' उसकी माता होती हैं रोहसेन जब सन्देह में पूछता है कि यदि यह आर्या हमारी माता हैं, तो किस कारण ये आभूषणों से अलकृत हैं ?", तब वसन्तसेना बालक की भोली वाणी सुन कर रोने लगती है और मिट्टी की गाडी को अपने अलकारों से भर देती तथा कहती है—"पुत्र ! इनसे सोने की गाडी बनवा लेना।"[2] बालक के प्रति इस समस्त आचरण को देखकर यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि वसन्तसेना धूता को भगिनी बनाने के बाद, चारुदत्त को अपने जीवन का आभूषण बनाने का सकल्प कर लेती है क्योंकि वह अपने को रोहसेन की माता मानती है और अपने आभूषण उतार कर न केवल शिशु-स्नेह का परिचय देती, अपितु चारुदत्त के परिवार की आर्थिक योग्यता के साथ अपने को समरस भी बना देती है।

वसन्तसेना ने उक्त आचरण से चारुदत्त के मानसिक अवरोध पर पूर्ण विजय और साथ ही उसके परिवार की पूर्ण सदस्यता एवं 'आर्या धूता' का पूर्ण भगिनीत्व भी प्राप्त करने का सफल उद्योग किया है।

(४)

वसन्तसेना ने जिस परिमाण में अपने वैयक्तिक आचरण में अपने प्रणय-परिणय के पथ को प्रशस्त बनाया है, उसी परिमाण में शकार का विरोध-

---

१ वही पृ० ३१७ २. वही, पृ० ३२१

तत्त्व सघन बनता गया है। यह बात भिन्न है कि इस विरोध को और सकट-पूर्ण बनाने मे स्वय शकार का हाथ नही है, अपितु सयोग एव नियति का कर्तृत्व है। लेकिन उसका प्रतिफल वसन्तसेना को भुगतना पडा है, और उसने अभूतपूर्व साहस एव सकल्प के साथ उसे भोगा है। बडी अरमान लेकर तथा शृगार-सज्जित होकर वह जीर्णोद्यान के लिए प्रस्थित हुई है। चेटी से कहा है—'प्रिय चेटी ! चलो। मेरा हृदय चारुदत्त से मिलने के लिए उत्सुक हो रहा है। अत द्वार का मार्ग बताओ।'[1] दाहिनी आँख के स्पन्दन से उसे भावी विपत्ति की आशका भी हुई है तो भी वह सोच कर कि चारुदत्त के दर्शन से वह अपशकुन प्रक्षालित हो जाएगा[2] वह उद्यान-यात्रा की योजना कार्यान्वित करती है। पचम अक मे उसने एक अभिसार किया है प्राकृतिक दुर्दिन के बीच और अब वह यह दूसरा अभिसार कर रही है, मृत्यु की गाडी मे बैठ कर। गाडियों की अदला बदली के साथ उसके भाग्याकाश का चित्र-पट भी अदल-बदल गया है।

जीर्णोद्यान के समीप पहुँचते पहुँचते, वसन्तसेना को भावी विपत्ति का स्पष्ट अनुमान हो जाता है। वर्धमानक का स्वर सयोग न पहचान कर, उसका हृदय काँपने लगता है, दिशाएँ उसे सूनी दिखाई पडती हैं, सभी कुछ प्रतिकूल प्रतिभासित होता है।[3] स्थिति के स्पष्ट होने पर, वसन्तसेना विट से रक्षा का अनुरोध करती है। शकार के साथ रमण का अनुमान सुन कर, वह कहती है—'शान्त पाप शान्त पापम्।'[4] शकार जब गिडगिडाते स्वरों मे उससे अपने पूर्व व्यवहार के लिए क्षमा माँगता है, तब क्रोध पूर्वक उसे पैरों से ठुकराती हुई उगल पडती है—'दूर हटो, अनार्य वाक्य बोल रहे हो।'[5] जब शकार चेट के कथन से गाडियो की अदला-बदली का अनुमान कर, वसन्तसेना को डाँटता है और कहता है कि वह दरिद्र सार्थवाहपुत्र से रमण करने जा रही है और उसके बैलों पर भार लाद रही है तब चारुदत्त के साथ रमण वाली बात सुन कर वसन्तसेना हर्षित हो कह उठती है—"इन वचनों से मैं सचमुच विभूषित हो गई।"[6] विट जब यह सोचकर उस स्थान से हट जाने का प्रस्ताव करता है कि शायद एकान्त मे वसन्तसेना शकार के साथ रमण करना स्वीकार कर ले, तब वह वस्त्र की आड से नम्र निवेदन करती है—'अजी, मैं शरणागत हूँ।'[7]

---

१ वही, पृ० ३२५ २ वही, पृ० ३२६
३ वही, पृ० ३९१-९२ ४ वही, पृ० ४०३.
५ वही, पृ० ४०५ ६ वही, पृ० ४०७
७ वही, पृ० ४२२

किन्तु, विट शकार के हाथो उसे धरोहर छोड कर चला जाता है "काणे-लीमात ! वसन्तसेना तव हरते न्यास ।"[१] यह विचित्र संयोग है कि वसन्तसेना ने अलकारो का न्यास चारुदत्त को सौंपा जिसने बडी उदारता के साथ उसका निर्वाह किया और यहाँ वसन्तसेना स्वयमेव शकार के हाथो न्यास रूप मे सौंपी जा रही है जिसका परिणाम अतीव भयकर सिद्ध हुआ। वसन्तसेना का पूर्व कथन कितना सत्य प्रमाणित हुआ है कि धरोहर योग्य व्यक्ति के पास रखी जाती है—"आय ! अलीकम् । पुरुषेषु न्यासा निक्षिप्यन्ते × × ।"[२]

[लेकिन यह न्यास की धारणा भी क्या करामाती सिद्ध हुई है ? ग्रन्थियो का उलझाव नाटक मे न्यास का ही नियोजन है !]

उसके बाद तो, वसन्तसेना ने लम्पट शकार का जो सामना किया है, वह नितान्त अद्भुत एव विस्मयोत्पादक है। अत्यन्त तीव्र एव भर्त्सना के शब्दो में वह डाँटती है—"हे खल ! तुम चरित्र से अधम हो। दोषो के आकर हो। मुझे धन का लोभ क्यो दे रहे हो ? सुन्दर चरित्र तथा पवित्र शरीर वाले कमल को छोड कर क्या भ्रमर और कहीं जा सकता है ? कुलशील की मर्यादा से गौरवित दरिद्र व्यक्ति भी यत्नपूर्वक सेवा के योग्य है। समान गुण वाले पुरुष से समागम होने पर मदन वेश्या-ललनाओ के लिए शोभावायक बन जाता है। आम्रपादप की सेवा करने के पश्चात् मैं पलाश को स्वीकार नहीं करूँगी।"[३] शकार की निर्मम दुष्टता के साथ रमणानन्द की अन्वेषिणी यह गणिका ललितागना अपूर्व साहस के साथ उलझती है। चारुदत्त को तो उसने पहले ही तद्-विषयक अपनी अनुरक्ति का प्रभूत प्रमाण दे दिया था वह उसकी हो गई थी और वह उसका हो गया था। लेकिन शक्ति एव सत्ता का यह दुराचारी प्रतिनिधि अभी सदेह मे है। प्रलोभन देकर जब वह वसन्तसेना को वशीभूत नहीं कर सका है, बलात्कार की चेष्टा मे जब वह विफल हो चुका है, तब वह उसे प्राणघात की कसौटी पर कस रहा है। किन्तु, वसन्तसेना अपनी सम्पूर्ण रिरसा के बावजूद कुलवधू बनने का सकल्प किये बैठी है। उसकी रमण लालसा उस मर्यादा-प्राप्ति के उद्देश्य से मर्यादित है। इसी कारण, वसन्तसेना प्राणों की बाजी लगा देती है और विद्वानो द्वारा दी गई उपाधि, 'जीवन का आनद' को मर्यादित करने का अनुरोध करती है। शकार के साथ उस सकटमयी अवस्था मे हुआ सवाद नीचे देखें —

---

१ वही, पृ० ४२२ २ वही, पृ० ८९
३ वही, पृ० ४२५-२६

"वसन्त०—जो हृदय मे बैठा हुआ है, क्या उसका स्मरण नहीं किया जाता ?

शकार—आज भी तुम्हारे हृदय मे बैठे चारुदत्त को तथा तुम्हें पीस कर एक साथ चूर्ण करता हूँ ! दरिद्रचारुदत्त की अभिलाषिणी, ठहर, ठहर !

वसन्त०—कहो कहो। पुन कहो, वे (चारुदत्त) पूजनीय अक्षर हैं।

शकार—अजमपुत्र चारुदत्त तुम्हारी रक्षा करे।

वसत०—यदि देख ले तो रक्षा करेगा।'[१]

वसन्तसेना इस परीक्षा की घडी मे अपने प्रणय की पवित्रता की पताका को फहराने के लिए कृतसकल्प हैं। वह अपनी माँ का पुकारती है "हा मात ! कस्मिन्नसि ?" तब चारुदत्त को पुकारती है कहती है कि वह अपूर्ण मनोरथ के साथ मर रही है। ऊँचे स्वर मे रोना चाहती है। किंतु सोचती है, रोना लज्जास्पद विषय है। इसलिए चारुदत्त को नमस्कार करती है। शकार गला दबा रहा है। फिर भी, वह आर्यचारुदत्त के प्रति अपना अभिवादन दुहराती है "नम आर्यचारुदत्ताय।" शकार कठ-निपीडन करता है। "मर जा, अधम दासी ! मर जा।" वसन्तसेना मूर्च्छित होकर निश्चेष्ट दशा मे पृथ्वी पर गिर पडती है।[२] कुलवधू बनने की अभिलाषा का कितना भीषण मूल्य चुकाना पडा है उसे जो शकार के साथ राजसुख का भोग कर सकती थी ! उसकी अनुमानित मृत्यु पर विट ने निम्नोल्लिखित शोकोद्गार प्रकट किया है —

दाक्षिण्योदकवाहिनी विगलिता याता स्वदेश रति ,
हा हालङ्कृतभूषणे ! सुवदने ! क्रीडारसोद्भासिनि !
हा सौजन्यनदि ! प्रहासपुलिने ! हा मादृशामाश्रये !
हा हा नश्यति मन्मथस्य विपणि सौभाग्यपण्याकर ॥"

(८।३८)

—'अलकारों को भूषित करने वाली ! सुदर वदन वाली ! क्रीडारस को प्रकाशित करने वाली ! हास्य विनोद की पुलिने ! सुजनता की सरिते ! मुझ-जैसों को अपने मे आश्रय रखने वाली ! वसन्तसेने ! हाय ! हाय ! उदारता रूपी जल को धारण करने वाली नदी विलुप्त हो गई। रति स्वदेश, स्वर्ग को, चली गई। सौभाग्य रूपी विक्रेय पदार्थो की निधि, कामदेव का बाजार लुट गया !'

विट के प्रस्तुत उद्गार मे 'वेश्या युवती' के असाधारण सौंदर्य, उत्फुल्लता, लीला विलासिता, माधुर्य-मादकता तथा असीम उदारता के कायिक एव मानसिक गुणों का विज्ञापन हुआ है। विट की रसार्द्र दृष्टि मे वह मुग्धत.

१. वही, पृ० ४२७ २ वही, पृ० ४२६.

"मन्मथ विरति" है क्योंकि उत्कृष्टकोटिता देखना लगता है। विट को क्या पता कि वसन्तसेना ने मदन के हाट के विलासी प्रलोभनों को ठुकरा कर, नाट्यिक गौरव की उपलब्धि के निमित्त अपने प्राणों को दाव पर रख दिया है! भवभूति के प्रकरण की मालती एक 'मनोमोहक गुड़िया' बन कर रह गई है जब कि वसन्तसेना अपने अनुपमेय साहस एवं सहिष्णुता के कारण, संस्कृत साहित्य की नायिकाओं की स्वर्ण श्रेणिका में अनन्य महिमा से चमक उठी है।

(५)

वसन्तसेना के चरित्र की अन्य सहयोगी विशेषताएँ हैं कोमलता, विनम्रता, उदारता, विदग्धता, विनोदप्रियता, एवं बुद्धि की सतर्कता।

रात के अन्धकार में भागती हुई वह विट के कथनों से वांछित संकेत ग्रहण कर लेती है। शकार से बचने के लिए वह विट की इस अत्युक्ति से कि 'माला से निकली हुई सुगन्ध तथा शब्दायमान नूपुर तुम्हारी सूचना दे देंगे' आवश्यक सावधानी ग्रहण करती है, वसनों को ऊपर उठा लेती है और सुरभित मालाओं को दूर फेंक देती है। विट और शकार के संवाद से उसने पहले ही जान लिया है कि चारुदत्त का घर उस गली में बाईं ओर है और अब भित्ति के स्पर्श से दरवाजे के बन्द किवाड़ों का पता लगा लेती है और ज्योंही दरवाजा खुलता है आँचल से दीप बुझा देती तथा घर के भीतर प्रवेश कर जाती है। शर्विलक को मदनिका के साथ बातें करते हुए देख कर वह समझ जाती है कि वह उसे दासीत्व से मुक्त कराना चाहता है।[1] अलंकार की धरोहर रख कर तथा संवाहक द्वारा लाई रत्नावली ग्रहण कर, उसने प्रणय को आगे बढ़ाने की योजना में पर्याप्त बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है। लेकिन, प्राणसंकट के समय (आठवें अङ्क में) उसकी बुद्धि चकरा सी गई है। तनिक विचार करें। क्या बुद्धि बल से वह अपने प्राण बचा सकती थी? ऐसा लगता है, शकार के सम्मुख झूठ बोल कर (क्योंकि बुद्धि का वहाँ यही प्रयोग सम्भव था), अपनी रक्षा करने की मानसिक तत्परता उसमें नहीं आ सकती थी। वास्तव में ऐसे अवसरों पर वह पलायन करती या फिर साहस के साथ संकट का सामना करती। कामदेवायतन उद्यान में शकार ने बलात्कार करना चाहा तो वह भाग कर चारुदत्त की शरण में गई, और रात को जब शकार ने उसे पकड़ना चाहा, तब वह भाग कर चारुदत्त के घर में प्रवेश कर गई। जीर्णोद्यान वाले घोर संकट के समय वह भाग नहीं सकती थी। झूठ बोलना उसके स्वभाव के विपरीत था। पुन वह अपने प्रणय की पवित्रता एवं अनन्यता को अधिक समय तक

---

१ वही, पृ० १९८

सन्देहापन्न रखना नहीं चाहती थी, मदान्ध लम्पट शकार के समीप। अतएव उसने उस मृत्यु काल में बुद्धि का कोई चमत्कार नहीं दिखा कर, साहसपूर्ण 'सतीत्व' का परिचय दिया। वह बुद्धि जो सतीत्व की गरिमा के ग्रहण में बाधक सिद्ध हो, उसे पसन्द नहीं थी।

वसन्तसेना के शील संकोच, विनम्रता इत्यादि का सुन्दर प्रदर्शन वहाँ हुआ है जब वह रात को भाग कर चारुदत्त के घर में प्रवेश कर गई है। "घर के अंदर चली जाओ", यह वाक्य सुन कर भी, वह चारुदत्त के घर के भीतर नहीं जाती। अभी गणिका होने की भावना उसके अन्तर्मन में छिपकी हुई है। अत वह संकोचवश घर के भीतर नहीं प्रवेश करती। जब वस्तु स्थिति का परिज्ञान हो गया है और चारुदत्त दासी का सा व्यवहार करने के लिए क्षमा माँगता है, तब वह अति विनम्रभाव से अपना ही अपराध स्वीकार करती और प्रणाम कर उसे प्रसन्न करने की चेष्टा करती है।[१] दूसरे अंक के आरम्भ में मदनिका से उसने अपने प्रेमके सम्बन्ध में जो वार्तालाप किया है, उससे भी उसकी सरल निश्छलता एवं विनम्रता पर मोहक आलोक पड़ता है।[२] चारुदत्त ने उसकी वाचालता का साक्ष्य दिया है, फिर भी, पुरुषों के समक्ष विनम्रता उसका एक गुण स्वीकार किया है 'पुरुषपरिचयेन च प्रगल्भ न वदति यद्यपि भाषते बहूनि।'[३]

कोमलता और उदारता वसन्तसेना के चरित्र का प्रधान गुण है। मदनिका तथा संवाहक के सम्पूर्ण प्रसंग उसकी कोमल उदारता से ओतप्रोत हैं। संवाहक की विपत्ति को दूर करने के लिए उसने हाथ का आभूषण दे दिया और उसका यथेष्ट आदर किया।[४] उदारता का वह कोई प्रतिदान लेना नहीं चाहती। जब संवाहक ने उसके अंग सम्मर्दन का प्रस्ताव किया, तब वह उसे अस्वीकार कर देती है, इन विनम्र शब्दों में, 'आर्य! जिसके कारण आपने यह कोमल कला सीखी है, उसी पूर्वसेवित पुरुष की आप सेवा करें।'[५] संवाहक समझ जाता है कि उसने चतुराई के साथ प्रत्युपकार का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया है।[६] कर्णपूरक जब थोड़ी देर बाद दुष्ट हाथी द्वारा बौद्ध भिक्षु के सताये जाने का संवाद सुनाता है, तब वसन्तसेना का कोमल चित्त अनिष्ट की आशंका से सिहर उठता है—"अरे! अनर्थ हुआ! अनर्थ हुआ!"[७] मदनिका को अनुरागिणी आँखों से शर्विलक के साथ छिपकर बातें करती हुई देख, वह कहती है—

---

१ वही, पृ० ८७
२ वही, पृ० ९६–९९
३ वही, पृ० ८६
४ वही, पृ० १३३
५ वही, पृ० १३५
६ वही, पृ० १३६
७ वही, पृ० १४०

"अच्छा तो ये यथेष्ट रमण करें। इनकी प्रीति में कोई विच्छेद न उत्पन्न हो जाय। मैं पुकारूँगी नहीं।"[1] यह उसके कोमल चित्त पर मधुर प्रकाश डालता है। पुन यह जानकर कि शर्विलक ने वह साहसपूर्ण दुष्कृत्य चारुदत्त के घर में किया है, हिंसा के अनुमान से उसके कोमल हृदय पर मर्मान्तक आघात पहुँचा है और मदनिका के साथ वह भी मूर्च्छित हो गई है।[2]

मदनिका को दासीत्व से मुक्त कर तथा उसे शर्विलक को सौंप कर, वसन्तसेना ने अपूर्व उदारता का प्रदर्शन किया है। इस संदर्भ में उसकी वाक्चातुरी, समझदारी तथा सहृदयता का मोहक विज्ञापन हुआ है। वसन्तसेना का यह 'झूठ' कितनी समझदारी से भरा हुआ है—"आर्य चारुदत्त ने मुझ से कहा है कि जो कोई इस आभूषण को लौटायेगा, उसे मदनिका समर्पित कर देना। इसीलिए मदनिका आपको दी जा रही है।"[3] मदनिका को गाड़ी पर चढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते समय वह कहती है—"अरी मदनिके! मुझे अच्छी तरह देख लेने दे। आज से तुम दूसरे को दे दी गई। गाड़ी पर चढ़ो। मुझे याद रखना।'[4] वसन्तसेना के प्रस्तुत कथन में उसके हृदय की कोमलता निश्छलता एवं उदारता की कुल्याएँ एक-साथ फूट पड़ी हैं। शर्विलक को मदनिका सौंप कर, उसे गहन सन्तोष हुआ है और मदनिका उसकी दृष्टि में "वन्दनीया" बन गई है।[5] सन्धिच्छेदक शर्विलक स्वयं उसकी उदारता से अभिभूत हो जाता है और अपनी नवनिर्जिता प्रेयसी-पत्नी को यह निर्देश करता है—'इन्हें भली-भाँति देख लो और सिर नवा कर प्रणाम करो। (वेशवास में रह कर भी) तुमने इन्हीं के कारण असम्भव 'वधू'-पद का अवगुंठन प्राप्त किया है।"[6]

पाँचवें अंक में प्रेम-संयोगिनी वसन्तसेना का आचरण अत्यन्त सरल तथा विदग्ध एक-साथ दिखाई पड़ता है। अभिसार के दौरान में वह मोहक भाव से मेघ तथा इन्द्र से प्रार्थना कर चुकी है—"हे मेघ! तुम बड़े निर्लज्ज हो। प्रियतम के गृह जाती हुई मुझे अपने गर्जन से भयभीत कर वर्षा की धारा रूपी हाथों से स्पर्श कर रहे हो। हे इन्द्र! क्या कभी पहले मैं तुम्हारे प्रेम में अनुरक्त थी कि इस समय (जब मैं दूसरे नायक के पास जा रही हूँ) तुम मुझे सिंह के गर्जन के समान रोकते हो? चारुदत्त की प्रेमिका का मार्ग वर्षा से रोकना उचित नहीं है।"[7] चारुदत्त के पास पहुँचकर वह बड़ी विदग्धता से विट को अलग

---

1 वही, पृ० १९९ | 2 वही, पृ० २०४
3 वही पृ० २२१. | 4. वही, पृ० २२३.
5 वही, पृ० २२३ | 6 वही पृ० २२३-२४
7 वही, पृ० २८८-८९

हटा देती है : कहती है—"भाव ! यह छत्र धारण करनेवाली दासी आपके अधीन हो जाय।" विट समझ जाता है कि उसे उस कुशल रीति से घर लौटने की अनुमति मिल रही है।[2] विट के चले जाने पर वह मैत्रेय से पूछती है—"आर्य मैत्रेय ! आपके जुआडी कहाँ हैं ?"[3] चारुदत्त के लिए 'जुआडी' संज्ञा की अर्थवत्ता हमें तत्काल झलक जाती है और हम वसन्तसेना की वचन-विदग्धता पर मुग्ध हो जाते हैं। साथ ही, वसन्तसेना सरल भी प्रतीत होती है क्योंकि चेटी से पूछती है कि अब चारुदत्त के सामने प्रविष्ट होकर उसे क्या कहना चाहिए। चेटी बताती है कि उसे कहना चाहिए—'जुआडी ! क्या आपका सायकाल सुखमय है ?" वसन्तसेना विदग्ध होते हुए भी, प्रेम के ऐसे प्रसगो मे बहुत निपुण नही जान पडती। कहती है—"क्या ऐसा कहने मे समर्थ हो सकूँगी ?" चेटी के प्रोत्साहित करने पर उसने चारुदत्त को फूलो से मारते हुए कहा ही है—"अयि द्यूतकर ! अपि सुखस्ते प्रदोष ?"[4] जब मैत्रेय पूछता है कि वह उस घोर अन्धकार मे किस लिए आई है, तब वसन्तसेना, चेटी की टिप्पणी का प्रतिवाद करते हुए कहती है—'ये सरल नही हैं, इन्हे चतुर समझो।"[5] रात्रि रमण के पश्चात् प्रात काल उठकर, उसने पूछा है—"अरी ! हम लोगो के जुआडी (चारुदत्त) फिर कहाँ चले गये ?"[6] वास्तव मे, वसन्तसेना को 'जुआडी' शब्द से एक प्रकार का मोह हो गया है। हम उसीके शब्दो की प्रेरणा लेकर यह टिप्पणी करने के लिए अनुप्रेरित हो जाते हैं कि वसन्तसेना सरल नही, चतुर समझी जाएगी, चतुर नही, सरल समझी जानी चाहिए।

(६)

नाटक के अन्त मे वसन्तसेना का सम्पूर्ण चरित्र नितान्त निर्मल किरणो से भास्वर हो उठा है। उसकी समस्त विशेषताएँ—चपलता, विनम्रता, विदग्धता, विनोदशीलता, उदारता इत्यादि—परस्पर रसमस हो गई हैं और वह नवजीवन का देवदूत बन गई है। चारुदत्त को सान्त्वना एव विश्वास प्रदान करती हुई, वह उसके चरणो मे गिर पडती है और सजल नयनों मे कातर निवेदन करती है—"आर्य चारुदत्त ! मैं वही पापिनी वसन्तसेना हूँ जिसके कारण आप इस शोचनीय अवस्था मे पहुँच गये हैं। × × × × हा मैं वही वसतसेना हूँ।" चारुदत्त हर्षित होकर सानन्द कह उठता है—मेरे मृत्यु के वश मे होने पर,

---

१ वही, पृ० २९४
२ वही, पृ० २९४–९५
३ वही, पृ० २९५
४ वही, पृ० २९६–९७
५ वही, पृ० २९९
६ वही, पृ० ३१४

अश्रुजल की धाराओं से दोनों उरोजों को अभिषिक्त करती हुई, तुम मृतसञ्जी-वनी बूटी के समान कहाँ से आ पहुँची ?"

वस्तुत वसन्तसेना न पापिनी है, न अभागिनी है। फलागम के उस पुण्य अवसर पर उसकी वाचालता कर्पूर की नाईं उड़ गई है। शरणागत शकार को देख कर, वह चारुदत्त के कंठ से वध-समय की माला उतार लेती और उसे शकार के ऊपर फेंक देती है। बस, यही उसका प्रतिशोध है। दुष्ट, संस्कार-विहीन शकार अभी भी उसे 'गर्भदासी' कह कर पुकारता है लेकिन वह एक शब्द, उसके प्रतिवाद में नहीं बोलती[1]। शर्विलक जब नये राजा आर्यक की ओर से उसे 'वधू' की उपाधि प्रदान करता है, तब वह केवल इतना कह कर उस नवनिर्जित सौभाग्य को स्वीकार करती है—"आर्य ! कृतार्थास्मि ।"[2]

वसन्तसेना वधू बन कर कृतार्थ हो गई है ! रमण की अभिलाषा से दीप्त नवकामिनी दक्षिणतापूर्ण दारिद्र्य से अपने सुहाग का अंचल जोड़ कर, पवित्र सतीत्व की सुगंध से सौरभित हो गई है।

राजश्याल संस्थानक

(१)

संस्थानक प्रकरण का 'प्रति-नायक' है। वह किसी व्यभिचारिणी स्त्री का पुत्र ('काणेलीमातः') है। दुष्ट, दम्भी, दुर्विनीत एवं दुराचारी है। उसकी मनोवृत्तियाँ हिंसालु हैं, प्रेरणाएँ पाशविक हैं। वह परले दर्जे का मूर्ख है। उसके मन तथा वाणी दोनों में एक प्रकार की वक्र कुटिलता है। अपने को 'राजा का साला' घोषित करने में उसे गहरी संतृप्ति का अनुभव होता है और वह प्रत्येक अवसर पर अपनी सत्ता एवं शक्ति का थोथा प्रदर्शन करता है। वह घृणित है, कपटी है, कामुक है भयावह है। और हास्यास्पद है। चारुदत्त जितना ही विनम्र एवं शालीन है, संस्थानक उतना ही उद्धत एवं दुर्ललित है।

(२)

संस्थानक का उपनाम 'शकार' पड़ा है क्योंकि वह प्रायः 'स' की जगह 'श' का उच्चारण करता है। एक ही प्रसंग में वह अनेक समानार्थक शब्दों के प्रयोग का शौकीन है। वसन्तसेना की भ्रान्ति में रदनिका के सिर के केश पकड़ कर, वह 'केश', बाल, 'शिरोरुह', 'आक्रोश', 'विक्रोश' तथा 'शम्भु', 'शिव' 'शङ्कर', 'ईश्वर' पर्यायों का एक-साथ कथन कर जाता है।[3] वैसे ही, मागधी

---

१ वही पृ० ५८७ २ वही पृ० ५९९

३ 'मृच्छ०' (चौखम्बा) १।४१

वसनसेना को रोकते हुए वह मदन' 'अनग', 'म मथ', 'प्रस्खल ती', 'स्खलन्ती' जैसे पर्यायों का एक ही स्वर मे कथन करता है।[१] वसतसेना के दौडने के लिए 'यासि', 'धावसि', 'पलायसे' का प्रयोग भी द्रष्टव्य है।[२] अपनी महिमा के बखान मे वह अपने को "देवपुरुष मनुष्य वासुदेव" एक ही सास म कह गया है।[३] वसतसेना के लिए उसने दस नाम रखे हैं, यथा—'लम्पटो की कामनाशिका' 'मत्स्यप्रिया', 'नृत्यशालिनी', 'नाशकारिणी', 'वशनाशिनी', अवशिका', काम-मजूषा', 'वेशवधू', 'अलकारनिलया' तथा 'वेशागना'।[४] ऐसा जान पडता है जैसे वह इन नामो मे इन्द्रजाली प्रभाव का अधिष्ठान मानता है। तभी तो वह अपनी हैरानी प्रकट करता है कि इन नामो के रखने के बावजूद, वसनसेना उसे नही चाहती "अद्यापि मा नेच्छति।" प्राय वह शब्दो का सही अथ नही पकड पाता। जब वसतसेना उसकी कामुक इच्छा का प्रतिवाद करती उसे डाँटती है—"शान्त। शात। अपेहि" × × ×, तब वह 'शान्त' को "श्रान्त" और 'अपेहि' को "एहि" समझ लेता और कहता है—"यह वेश्या भीतर से मुझ पर अनुरक्त है, अत कहती है, तुम थक गये हो थक गये हो, आओ × × ×। मैं न किसी ग्राम मे गया हूँ, न नगर मे। × × तुम्हारे ही पीछे दौडने से थक गया हूँ।"[५] जीर्णोद्यान मे बौद्ध भिक्षु जब उसका अभिनदन करते हुए कहता है कि उपासक प्रसन्न होवे—'स्वागतम्! प्रसीदतु उपासक," तब वह 'उपासक' से 'नापित' (हजाम) अथ ग्रहण करता है और कहता है भिक्षु उसे गाली दे रहा है।[६] पुन जब सन्यासी कहता है—"त्व धन्य, त्व पुण्य", तब वह इन शब्दों से 'चारण', 'जुआडी' और 'कुम्हार' का अर्थ ग्रहण कर लेता है।[७] लेकिन कभी-कभी वह शब्दो का अथ समझते हुए भी विपरीत अर्थ ग्रहण करता है। और वहाँ वह मूर्ख न होकर, शरारत से काम लेता है। पलायनशील वसनसेना मय के साथ 'पल्लवक' 'परिभृतिका', 'माध-विका' इत्यादि परिजनो को पुकारती है। विट से यह जानकर कि वह अपने परिचारकों की खोज कर रही है, शकार इन शब्दों से वसतर्तु के प्रसग का जानबूझ कर अथ ग्रहण कर लेता है और कहता है—'क्षुद्र वसनसेने! परिभृ-तिका (कोयल), पल्लवक या सम्पूर्ण वसन्त मास का नाम लेकर विलाप कर। जब मैं तुम्हारा पीछा कर रहा हूँ, तब कौन तुम्हारी रक्षा कर सकता है?"[८]

---

१ वही, १।२१ — २ वही, १।१८
३ वही, पृ० ४८ — ४ वही, १।२३
५. वही, पृ० ४९ — ६ वही, पृ० ३७७
७ वही, पृ० ३७८ — ८ वही, पृ० ४४-४५

अतएव, शब्दों से गलत अर्थ ग्रहण करने की उसकी परिपाटी सोद्देश्य भी हो सकती है और मूर्खतापूर्ण भी। किन्तु, यह प्रत्यक्ष है कि वह अपने सुविधा-हेतु मनोनुकूल अर्थ निकालने के लिए भाषा का प्रयोग करता है। शायद ऐसा करते समय, वह भाषण की एक विशिष्ट शैली अथवा पद्धति का अनुगमन करने की भी चेष्टा करता है। जादूगर जब एक पदार्थ के लिए एक नाम अथवा सभी सम्भव नाम खोजने का प्रयत्न करता है, तब वह उस या उन शब्द या शब्दों से सूच्यमान पदार्थ को अपने जादू के प्रभाव में पूर्णतः ले आने का उद्देश्य रखता है। क्या शकार के पर्यायवाची शब्दों के प्रदर्शन में जादूगर का छल तो नहीं है वह छल जिससे पदार्थ का नाम लेकर उसे पूर्ण वशीभूत कर लिया जाता है? शकार के ऐसे भाषणों का प्रत्यक्ष प्रभाव निस्सन्देह हास्यो-त्पादक होता है। किन्तु यह हास्य (humour) वैसा है जो अविकसित मस्तिष्क की उपज है और जो साधारण की अपेक्षा असंस्कृत अथवा जादुई से अधिक महोदर सम्बन्ध रखता है।[1]

संस्थानक अपने मूर्खतापूर्ण भाषणों में रामायण, महाभारत इत्यादि महा-काव्यों एवं कथा-पुराणों के पात्रों की प्रायः नियोजना करता है। यह योजना सदैव असंगत एवं विकृतिपूर्ण होती है। उदाहरणतः, वह वसंतसेना से कहता है—"तू इस समय मेरे वश में वैसे ही आ गई है जैसे रावण के वश में कुन्ती आ गई थी।[2] ××××× तू राम से डरी हुई द्रौपदी के समान क्यों भाग रही है?[3] × × × ××× क्या भीमसेन तुम्हारी रक्षा कर सकता है अथवा परशुराम या अर्जुन या रावण?[4] ×××××× मैंने तुम्हारा केशपाश वैसे ही पकड़ लिया है जैसे चाणक्य ने द्रौपदी का।[5]" चारुदत्त के विषय में वह क्रुद्ध होकर विट से यों पूछता है—'वह अधम पुत्र कौन है? क्या शूरवीर पाण्डव है? क्या राधा का पुत्र श्वेतकेतु है? क्या इन्द्र का पुत्र रावण है? क्या राम तथा कुन्ती के संयोग से उत्पन्न अश्वत्थामा है? अथवा क्या धर्म का पुत्र जटायु है?'[6]

प्राचीन कथाओं तथा काव्यों से लिये गये ये उल्लेख स्पष्ट ही विकृत एवं प्रमादपूर्ण हैं। उनमें अनर्गल एवं असम्भव सम्बन्ध अनुस्यूत किये गये हैं। ये प्रयोग शकार के मस्तिष्क में व्यापित होने वाली ग्रंथियों तथा उन्मादों के व्यंजक हैं।

---

१ Dr G K Bhat 'Preface To Mrcch' (1953), पृ० ९७

२ 'मृच्छ०' (चौखंबा) १।२१   ३ वही, १।२५

४ वही, १।२९.   ५ वही, १।३९

६ वही, १।४७

वह वे प्रयोग ऐसी प्रमदा के अपहरण तथा उपभोग की तीव्र मानसिक लालसा के संदर्भ में कर रहा है जो लाख प्रयत्न करने पर भी उसे दुत्कारती रही है, रहती है। वह उसे सताने, अधिकृत करने और नहीं तो हिंसित करने की भावना से भी चपल हो रहा है। उसकी प्रकृत मानसिक अवस्था इस कथन में प्रकट हो रही है—'क्यों जाती है! क्यों दौड़ती है? क्यों गिरती हुई भागती है? हे बाले? प्रसन्न हो। मरने की शंका छोड़ दे। तनिक ठहर। अग्नि-राशि में पड़े हुए मांस के समान मेरा क्षुद्र हृदय काम से जल रहा है।'[1] प्रत्यक्ष ही, जो कामाग्नि से दह्यमान हो रहा है और जिसका समस्त अनुनय विनय उस गणिका युवती के समीप निष्फल सिद्ध हो रहा है (शकार को वसन्तसेना के असली भाव का तो परिज्ञान था नहीं), उस शकार के अन्तर्मन में भी एक आग जल रही है। वह आग 'फ्रस्ट्रेशन' (मनोभग्नता) की आग है जिसमें अनम्रता एवं विवशता की राख नहीं जमने पाई है और न परिस्थितियों के प्रति आत्महननशील समर्पण की सर्दी ही जम सकी है। शकार राजश्याल है राजसत्ता का प्रतिनिधि है। और, वह एक वेश्या युवती के द्वारा ठुकराया जा रहा है। ऐसी अवस्था में उसका विक्षुब्ध एवं आन्दोलित मानस सम्भव-असम्भव, असंगतिपूर्ण बिम्बों की रंगस्थली बन जाता है और वह अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिए भाषा का, एक नग्न अस्त्र के रूप में बड़ा भोंडा प्रयोग करता है। डॉ० भाट ने यह टिप्पणी बिल्कुल सही की है कि भाषा का अधिक प्रतिशोधपूर्ण प्रयोग सम्भव नहीं था 'It could not be used with more vengeance'"[2]

(३)

शकार खाऊ और भोजन-भट्ट है। लेकिन, उसकी जीभ स्वाद-लोलुप है। नाना स्वादों के व्यंजन का वह मोह करता है और उनके आस्वाद को सुरभित करने की जानकारी भी रखता है। मैत्रेय से चारुदत्त को वसन्तसेना के विषय में चेतावनी देते हुए वह भोजन-शास्त्र से यह दृष्टान्त देता है—"गोबर में लिपी हाण्डी वाला कुष्माण्ड, सूखा साग, तला हुआ मांस तथा हेमन्त की रात में पकाया हुआ भात—ये सब बहुत समय बीतने पर भी खराब नहीं होते।"[3] स्वर को चर्परी चटनी, मसालों इत्यादि के द्वारा मधुर बनाने का नुस्खा वह जानता है। विट से कहता है—'मैं गायक क्यों न होऊँ? हींग के संयोग से उज्ज्वल जीरा, मोथा, वच की गाँठ तथा गुड़ से मिली सोंठ—इन सबों के मेल से बने

१ वही, १।१८. २ 'Preface To Mrcch', पृ० १७.

३ 'मृच्छ०' (चौखंबा), १।२१

हुए मदयोग का मैंने सेवन किया है। मेरे स्वर में मधुरिमा क्यों नहीं आवे ?[1] × × × मैंने हींग से सुवासित तथा मरीच के चूर्ण से युक्त तेल और घी में बघारा हुआ कोयल का मांस खाया है। अतः मेरा स्वर मधुर क्यों नहीं होवे ?'[2] चारुदत्त का जिस दिन वध होने वाला है उस दिन उस महोत्सव-पूर्ण घटना के उपलक्ष में वह विशिष्ट प्रकार के समृद्ध भोजन का आस्वाद लेता है—'मैंने अपने घर में शालि चावल का भात मांस के साथ, तिक्त एवं अम्ल शाक के साथ, दाल के साथ, उत्तम मछली के साथ तथा प्रचुर गुड़ मिला कर खूब खाया है।'[3] शकार, अतएव, स्वाद-लोलुप व्यक्ति है जो भोजन को अधिक से अधिक चपरा एवं सुस्वादु बना कर भोग करने में रस लेता है।

(४)

शकार के कामाग्नि में दग्धीभूत होने का अभी उल्लेख किया गया है। ऐसा लगता है मानो उसकी जिह्वा-तृष्णा और काम-तृष्णा में घनिष्ठ सम्बन्ध है। वसन्तसेना को वह कामदेवायतन में परेशान कर चुका है। उसकी कामुकता इतनी गहरी एवं अमर्यादित है कि वह राजपुरुष होते हुए भी वेश्या युवती के शीलभंग का खुल्लम-खुल्ला प्रयत्न करता है। और नहीं तो रात्रि के समय राजपथों में घूमने वाली उस सुन्दरी को पकड़ने का उद्योग करता है, यह जानते हुए कि वह उसमें नहीं, चारुदत्त में अनुरक्त है। वस्तुतः वह प्रेम का मर्म नहीं जानता, वासना की परितुष्टि ही उसका चरम लक्ष्य है। वह इस तथ्य को कभी समझ नहीं सका कि वसन्तसेना वेश्या होते हुए भी, दरिद्र चारुदत्त में क्यों आसक्त है। वह यह अवश्य कहता है कि वसन्तसेना उसके आच्छन्न हृदय को चुरा कर वेग से भागती जा रही है।[4] लेकिन, असलियत यह है कि उसके पास अछूता हृदय है ही नहीं। वह केवल अनंग से सन्तापित है, और उसकी ज्वाला जहाँ-कहीं भी बुझाने की व्यग्रता उसे चंचल बना रही है। वह वसन्तसेना को कोसता है कि वह रात्रि में उसकी शय्या पर आकर उसकी निद्रा नष्ट करती है और अब गिरती पड़ती उसकी पहुँच के बाहर भागती जा रही है।[5] प्रेम की स्निग्धता एवं सुकुमारता का वह कायल नहीं है। शायद वह अपनी भूख मिटाने के लिए शिष्ट उपचारों की उपादेयता में विश्वास न रख कर, तात्कालिक क्रिया में विश्वास रखता है। स्वभाव से दम्भी एवं दुर्विनीत होने के कारण,

---

१ वही, ८।१३   २ वही, १८।१४
३ वही, १०।२९   ४ वही, १।२८
५ वही, १।२१

वह इस आदश के पालन को महत्त्व देता है 'ललचाओ, फुसलाओ, गणिका मान जाय तो अच्छा ही है, अन्यथा, निरन्तर ताक मे रहो, खदेडो, पकडो, धमकाओ और मिल जाय तो वासना की आग को भरपूर बुझा लो।" वसन्तसेना को पकड लेने पर वह उसे यो डरवाता है—"देखो, देखो। मेरी तलवार तेज है। तुम्हारा सिर काट डालूँ अथवा तुम्हे मार डालूँ! अब तुम्हारा भागना व्यर्थ है। जो मरणासन्न हो जाता है, वह पुनर्जीवित नही हो सकता।"[1] अर्थात् कोमल वचन विन्यास की अपेक्षा वह मृत्यु की तलवार को चमकाने मे अधिक आस्था रखता है। उसका विनम्र वचन भी—"इसी लिए तुम्हारी हत्या नहीं की गई—"[2] वसन्तसेना के लिए भयोत्पादक सिद्ध हो रहा है 'कथमनुनयोऽप्यस्य भयमुत्पादयति।"[3] वास्तविकता यह है कि शकार शक्ति के मद मे अन्धा है और प्रेम की वाणी तथा आचरण का अभ्यास करते समय भी, वह इस तथ्य को नही भूल पाता कि वह मृत्यु एव विनाश की सामर्थ्य का स्वामी है।

(५)

शकार दम्भी, किन्तु, कायर है। वह अपने को "देवपुरुष" और "वासुदेव" समझता है।[4] वह सैकडो स्त्रियों को मारने की सामर्थ्य की डींग मारता है और इस बल पर "शूरवीर" होने का दम्भ भरता है।[5] प्रत्येक सम्भव अवसर पर गर्व के साथ 'राजा का साला' होने की घोषणा करता है क्योंकि उससे उसे अपनी शक्ति का सदा बोध बना रहता है। यह भी द्रष्टव्य है कि राज्य के अन्य कर्मचारी भी उसे "राजश्याल" या "राष्ट्रियश्याल" कहकर ही विज्ञापित करते हैं।[6] स्थिति की हास्योत्पादकता तब और बढ जाती है जब वह अपनी बहन के पालक-विषयक सम्बन्ध के उल्लेख से राजा के साथ अपने सम्बन्ध का प्रदर्शन करता है। तालाब मे गन्दा कोपीन धोने के लिए क्रोधित होकर, वह बौद्ध सन्यासी को एक बेंत मारते हुए यो डाटता है —"अरे दुष्ट बौद्ध श्रमणक! मेरी बहन के पति राजा पालक ने सभी उद्यानों मे श्रेष्ठ यह पुष्पकरंडक उद्यान मुझे दिया है।"[7] न्यायमण्डप मे जाकर वह न्यायाधीश से अपना अनावश्यक परिचय देते समय, बहन के साथ पिता को भी जोड लेता है—"मैं विशाल कुक्कुर के कुल मे उत्पन्न हुआ हूँ। मेरे पिता राजा के ससुर हैं, स्वय राजा मेरे पिता

---

१ वही, ६।३०
२ वही, पृ० ४७
३ वही, पृ० ४८
४ वही, पृ० ४८, ४०३, ४५९.
५ वही, पृ० ४५
६ वही, पृ० ४३४, ४५२, ४५३, ४५९, ४६०, ४६१ इत्यादि।
७ वही, पृ० ३७९, ४६४

के जामाता हैं, मैं राजा का साला हूँ और राजा मेरी बहन के पति हैं ।"[१] विशाल कुक्कुर कुल में जन्म लेने के कथन से उसका अभिप्राय अपने कुटुम्ब की दारुण भयानकता का विज्ञापन करना है। चेट से लेकर न्यायसंस्था के कर्मचारी एवं अधिकारी तक उसका भय मानते हैं। विलम्ब से उद्यान में पहुँचने के कारण चेट स्थावरक उसके क्रोध के अनुमान से भयभीत हो गया है और बैलों को जल्दी-जल्दी हाँकता है।[२] उसकी इस आज्ञा पर कि चहार-दीवारी के ऊपर से ही वह गाडी हाँक दे, चेट के यह निवेदन करने पर कि बैल मर जाएँगे, गाडी टूट जाएगी और वह भी मृत्यु के मुख में चला जाएगा, शकार भोंडे तथा दम्भपूर्ण स्वरों में कहता है—"अरे! मैं राजा का साला हूँ। बैल मर जाएँगे तो दूसरे बैल खरीद लूँगा। गाडी टूट जाएगी तो दूसरी बनवा लूँगा। तुम मर जाओगे तो दूसरा गाडीवान रख लूँगा।"[३] न्यायालय में भी शकार का आतंक विराजता है। शोधनक चिन्ता से काँप जाता है कि सर्वप्रथम आज राजा का साला ही "कार्यार्थी" (विचार-प्रार्थी) है। न्यायाधीश भी यह सूचना पाकर डर जाता है. आज शकार के अभियोग के कारण न्यायालय में व्याकुलता छा जाएगी।[४] लेकिन, जब शकार क्रोधित होकर यह धमकी देता है कि वह अपनी बहन के पति राजा पालक से कह कर तथा बहन एवं माता से कह कर, न्यायाधीश को पदमुक्त करा देगा तो न्यायाधीश डर जाता है "वह मूर्ख सब कुछ कर सकता है। कह दो, उसके अभियोग पर आज ही विचार होगा।"[५]

शकार, अतएव, भय एवं आतंक का प्रसार करने वाला दुर्विनीत दानव है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे उसकी रक्त शिराओं में शिष्टता, संस्कृति तथा सौजन्य के कीटाणु बिलकुल ही प्रवाहित नहीं होते। वह जानता है कि राजा उसे दंड नहीं दे सकता।[६] इसी कारण, न्यायाधीश के उससे बैठने का अनुरोध करने पर, वह उसके मस्तक पर बैठने की बात कहता है।[७] चारुदत्त पर वसन्तसेना की हत्या का आरोप लगा कर, वह शिष्टता का नकाब पहन कर भी अभियोग का संचालन एवं उपलालन कर सकता था। किन्तु, शकार के मानसिक संघटन में अपने प्रतिस्पर्धी के लिए (चारुदत्त को वह यही समझता है) शिष्टता का कोई स्थान नहीं है। चारुदत्त को बैठने के लिए आसन दिये

१ वही, पृ० ४६३
२ वही, पृ० ३११.
३ वही, पृ० ३१४
४. वही, पृ० ४६०
५ वही, पृ० ४६१
६ वही, पृ० ४६४.
७ वही, पृ० ४६२-६३.

जाने पर, वह बौखला उठा है।[१] बाद को, उसे 'स्त्री घातक' कह कर, उस पर कपटपूर्ण घूतता का आरोप मढा है। जब वह न्यायाधीश के ऊपर 'धर्म' एवं 'न्याय' के नाम पर पक्षपात का आरोप लगाता है, तब उसकी कपटपूर्ण दुःशीलता जैसे बलात् हमारे मानस पर अमिट छापें अंकित कर गई हैं।

लेकिन, सब कुछ कह लेने के बाद, शकार भीतर से कायर है। विदूषक की माफत चारुदत्त को यह धमकी भेज कर कि यदि वह वसन्तसेना को नहीं लौटायेगा, तो उन दोनों के बीच चिरस्थायी शत्रुता हो जाएगी, विट के चले जाने के बाद तलवार को कोष मे रख कर वह झपके से वैसे भाग जाता है जैसे भूँकते हुए कुत्तों के पीछे लगने पर सियार शरण के लिए भाग जाता है।[3] जीर्णोद्यान मे स्थावरक के गाडी ले पहुँचने पर, जब वह उसके भीतर झाँकता और वसन्तसेना को देखता है, तब अतीव भयभीत हो जाता है और उसे राक्षसी समझ कर, समस्त धैर्य एव साहस खो देता है "मर गये! मर गये! गाडी पर राक्षसी या चोर बैठा हुआ है।"[४] विट जब वसन्तसेना को मारने से इनकार करता है और वसन्तसेना पर प्रहार करने से रोकने के लिए उसका गला दबाता है, तब वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडता है।[५] शकार की बहादुरी असहाय अबलाओं तथा निर्धन सज्जनों तक ही सीमित है। रदनिका का केशपाश पकड कर वह असीम तुष्टि एव गर्व का अनुभव करता है।[६] विट के मुख से चारुदत्त की प्रशसा सुन कर, वह उसे "गर्भदासी का पुत्र" कह कर उस पर, उसकी अनुपस्थिति मे, क्रोध से टूट पडता है।[७] धमकी देना, शक्ति का प्रदर्शन करना उसके स्वभाव का संघटक तत्व है। किन्तु, वह मूलत, अन्तरत कायर है। वसन्तसेना की हत्या कर, तभी तो उसे अपार सतोष मिला है, समझता है उसने बडी वीरता का कार्य सम्पादित किया है और पछताता है कि उसकी माता अपने पुत्र का यह 'शूरत्व' नहीं देख सकी "योऽम्बे पश्यति नेदृशं व्यवसित पुत्रस्य शूरत्व।"[८] पुन विट के आने पर बड़े गर्व एव प्रसन्नता से वह कहता है—"मैंने वसन्तसेना को मार डाला। × × × × यदि मेरी बात पर विश्वास न हो, तो राजश्याल सस्थानक का वीरत्व देखो (निश्चेष्ट वसन्तसेना की देह को दिखलाते हुए)।'[९] नाटकान्त में, वसन्तसेना को जीवित देख कर,

---

१ वही, पृ० ४८१
२ वही पृ० ४८१, ४८७
३ वही, पृ० ११५२
४ वही, पृ० ३९७
५ वही, पृ० ४१९
६ वही, ११४१.
७ वही, ११४७
८ वही, ८।३७
९ वही, पृ० ४२४

उसके प्राण निकलना चाहते है और वह भयभीत हो भाग जाता है।[1] और, पालक की हत्या के उपरान्त जब वह "पश्चाद्बाहुबद्ध" होकर अपनी दुष्टता का कुफल भोगने के लिए सामने लाया गया है, तब वह 'आर्यचारुदत्त' की 'शरणागतवत्सलता' का स्मरण कर, उसके चरणों मे गिर पड़ा है[2] और अपनी रक्षा करने के लिए अत्यन्त दीनभाव से विनय की है—"भो अशरणशरण ! परित्रायस्व ।"[3] यही नही, वसन्तसेना से भी उसने कातर प्रार्थना की है—"गर्भदासीपुत्रि ! प्रसीद, प्रसीद । न पुनर्मारयिष्यामि । तत् परित्रायस्व ।"[4] अतएव, सम्पूर्ण शूरत्व एव निर्भीकत्व के नकाब के बावजूद, शकार कायर है। सस्कार उसके इतने विकृत है कि अभी भी वह वसन्तसेना को 'गर्भदासी-पुत्री' कहता है जबकि वह उससे रक्षा की भीख माँगता है। वह मूर्ख, दुर्बुद्धि राष्ट्रियश्यालक' यह समझ ही नही सका कि वसन्तसेना अपने निःस्वार्थ, पवित्र प्रेम के फलस्वरूप अब गौरवमयी कुलवधू बन गई है।

(६)

तथापि, शकार के चरित्र का सही चित्र त्रिकोणात्मक है। वह क्रूरता, कामुकता एव कापटिकता की तीन मुख्य भुजाओ पर निर्मित है। ये तीनो तत्त्व परस्पर समरस भाव से मिले हुए हैं। उसकी सहज क्रूरता एव कपटशीलता पर सान चढ जाती है जब उसकी कामुक प्यास की तृप्ति मे बाधा या विफलता मिलती है। विनीत तो वह है नही। लेकिन, कामातुर होकर वह वसन्तसेना के चरणो पर गिर कर, विनीत स्वरो मे प्रार्थना करता है—"हे विस्तृतलोचने ! हे निर्मल दाँतो वाली ! हे मनोहर अगों वाली ! हे प्रिये ! मै तुम्हें हाथ जोड़ता हूँ। मैंने कामातुर होकर पहले जो तुम्हारा अपमान किया था, उसके लिए अब क्षमा माँगता हूँ। मैं अब तुम्हारा सेवक हो गया हूँ।"[5] वसन्तसेना, तब, जब उसे चरणो से मारती है और दुत्कारती है, तब उसकी सहज क्रूरता को ही ठेस पहुँचती है—स्वाभिमान को नहीं क्योंकि उसे स्वाभिमान है ही नही, अन्यथा वह इतना निलज्ज लम्पट नही होता। वह क्रोध से तिलमिला उठता है। जिस मस्तक का प्रेम से अम्बिका ने चुम्बन किया तथा जो मस्तक प्रणाम करने के लिए देवताओं के आगे भी नहीं झुका, उसे वसन्तसेना ने अपने चरणो के तलवे से ठुकरा दिया ![6] उसकी रोषाग्नि प्रज्वलित हो गई और वसन्तसेना को

---

१ वही, पृ० ५७०	२ वही, पृ० ५८५
३ वही, पृ० ५८६	४ वही, पृ० ५८८
५ वही ८।१८	६ वही, ८।१९.

मारने का उसने निश्चय कर लिया। वह 'अपमान' की बात करता है[१] किन्तु यह उसकी स्वभावसिद्ध क्रूरता का ही अपमान है।

एक बार जब उसकी क्रूरता को चुनौती मिल गई है, तब उसकी कापटिकता (धूर्तता) को भी खुलकर खेलने का अवकाश मिल गया है। वह विट से अनुरोध करता है कि वह वसन्तसेना को मार डाले क्योंकि उस निर्जन स्थान में उसे कोई देखता नहीं है।[२] पुनः वह चेट को प्रलोभन देता है कि वह उसे सोने का कंगन बना देगा, सोने का आसन बनवा देगा, सभी चेटों का उसे प्रधान बना देगा, किन्तु तो भी वसन्तसेना की हत्या करने पर स्थावरक तैयार नहीं होता।[३] तब वह उसे उस स्थान से हटा देता है। विट को भी यह कपटपूर्ण आश्वासन देकर दूर कर देता है कि वसन्तसेना उसके हाथों धरोहर है। यह सोच कर कि शायद विट कहीं से छिप कर देखता हो, वह कपट से पुष्प चुन कर अपने अंग सजाता है और ऊपर से दिखाने के लिए स्निग्ध स्वरों में वसन्तसेना को सम्बोधित करता है—"हे बाले! हे बाले! हे वसन्तसेने! आओ।"[४] उसके इस कपटाचरण से विट को विश्वास हो जाता है कि अब शकार 'कामी' बन गया और इस लिए, किसी प्रकार की हिंसा की उससे आशंका नहीं की जानी चाहिए।[५] उसकी कामुकता, किन्तु, उसकी प्रधान प्रेरणा बनी हुई है। उस अवस्था में भी वह वसन्तसेना से प्रलोभनपूर्ण अनुनय विनय करता है—'सुवर्ण के अलंकार देता हूँ, प्रिय वाणी कहता हूँ। पगड़ी के सहित अपना मस्तक तुम्हारे चरणों पर रखता हूँ। फिर भी, हे निर्मल दाँतों वाली! तुम मुझे क्यों नहीं चाहती? क्या सेवकों के प्रति मनुष्य ऐसा ही व्यवहार करते हैं?"[६] शकार का यह कथन उसके भीतर जलने वाली कामाग्नि की निविड़ता की विज्ञप्ति करता है।

वसन्तसेना की हत्या वाला प्रसंग यहाँ तनिक जटिल बन गया है। शकार क्रूर एवं कपटी है अवश्य लेकिन वसन्तसेना की हत्या स्वयं उसके व्यवहार से भी द्रुतगमित हुई है। शकार समझता है वसन्तसेना एकान्त में है और वह उतनी विनीतता दिखलाता है जितनी उस जैसे स्वभाव के व्यक्ति के लिए सम्भव थी। किन्तु वसन्तसेना अपने आदर्श का निरूपण करती और उसे दुष्ट एवं मूर्ख बताती है तथा चारुदत्त को रसाम्र एवं उसे

---

१. वही, पृ० ४०९   २. वही, पृ० ४११.
३ वही, पृ० ४१३–१५   ४ वही, पृ० ४२३
५ वही, पृ० ४२३.   ६ वही, ८।३१

पलायन करती है।[1] शकार स्वभावत: जल-भुन जाता है। वसन्तसेना फिर कहती है—'जो हृदय में बैठा हुआ है, क्या उसका अनुस्मरण न करूँ ?'' जब शकार दाँत पीस कर फिर धमकाता है, तब वह कहती है—"कहो, कहो। ये अक्षर (दरिद्रतावाहक) पूजनीय हैं।" शकार के यह कहने पर कि क्या वह अधम चारुदत्त तुम्हारी रक्षा करेगा, वह अविचलित भाव से जवाब देती है—"यदि मुझे देखेगा, तो अवश्य रक्षा करेगा।"[2] शकार के पुन धमकाने पर तथा कण्ठ में चोट पहुँचाने पर भी, वह 'आर्यचारुदत्त' को नमस्कार करती है और तब वह उसका गला दबा देता है और वह मूर्च्छित हो धराशायी हो जाती है।[3] इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि वसन्तसेना की हत्या में उसके आदर्श का तात्कालिक अवदान रहा है—यद्यपि मैं मानता हूँ कि वसन्तसेना के लिए उस समय, अपने प्रणय की पवित्रता की रक्षा करते हुए, प्राण-रक्षा का कोई विकल्प नहीं था और इसके लिए उसे दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

वसन्तसेना की हत्या कर, शकार को तनिक भी पश्चात्ताप नहीं हुआ है। उलटे, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, वह उसे अपनी बड़ी शूरता समझता है, और हँसता है प्रसन्न होता है तथा विट से कमलयुक्त सरोवर में खेलने का प्रस्ताव करता है।[4] अपने दुष्कृत्य का अनुमोदन न पाकर, वह विट को खदेड़ता है और चेट को महल की नवनिर्मित वीथी में बन्दी बना देता है। उसकी क्रूर कापटिकता तब पराकाष्ठा को पहुँच जाती है जब उसने निर्दोष चारुदत्त के ऊपर न्यायालय में झूठा अभियोग दाखिल किया है। चारुदत्त को मृत्युदण्ड दिलाने में सफल होने पर उसे असीम प्रसन्नता हुई है। उसने उस दिन विशिष्ट भोजन तो खाया ही है, साथ ही, चाण्डालों की घोषणा का स्वर सुन कर उसे असीम सन्तोष होता है और नवीन रथ्या पर चढ़ कर, वह चारुदत्त की मृत्यु का जुलूस देखता है। "मैंने सुना भी है कि जो कोई मरते हुए शत्रु को देखता है, उसे दूसरे जन्म में आँख का रोग नहीं होता। विषवृक्ष की गाँठ के छिद्र में प्रविष्ट कीड़े के समान छिद्र खोजते हुए मैंने दरिद्र चारुदत्त का विनाश उपस्थित कर दिया।"[5] शकार हत्या तथा विनाश की चर्चा करने वाला राक्षस है। चारुदत्त को शत्रु मान बैठा था, इस कारण कि वसन्तसेना को उसने अपने घर में शरण दी थी—कामदेवायतन उद्यान से ही तो वह उस पर रुष्ट था। अर्थात्, काम की प्यास बुझाने में चारुदत्त की ओर से जो

---

१ वही, ८।३२–३३ २ वही, पृ० ४२७

३ वही, पृ० ४२९ ४ वही, ४३९

५ वही, पृ० ५४६–४७

प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष अवरोध मिला, उसी कारण सुशील-शालीन चारुदत्त से उसने इतनी भयंकर शत्रुता मोल ले ली। स्थावरक को सोने का कंकण देकर और फिर लेकर, उसने अन्तिम क्षण तक कपट करने का प्रयत्न किया।[1] चारुदत्त के अपने मुंह से स्वत यह घोषणा करने के लिए कि "मैंने वसन्तसेना को मारा है", वह चाडालों से निर्देश करता है कि वे उसे उस जीर्ण बाँस के टुकडे से मारें।[2] वह चारुदत्त की जान मारने में शीघ्रता करने के लिए उनसे आग्रह करता है[3] और निश्चय करता है कि चारुदत्त का वध देखकर ही वह घर जायगा।[4] पहले रोहसेन को देखकर उसने यह निर्देश किया था कि पिता पुत्र दोनों को साथ साथ मार दिया जाय।[5]

ऐसा नृशंस, निर्मम और रक्त-पिपासु है यह राजश्याल सस्थानक! वसन्तसेना की हत्या तथा चारुदत्त के प्राण-हरण के लिए उसका इतना तत्परतापूर्ण, इतना कापटिक प्रयास! उसके इस सम्पूर्ण आचरण में एक अतिशय कामुक लम्पट का चित्र उभर आया है जो मनोवृत्ति से हिंसक है, कुल और परम्परा से क्रूर है स्वभाव से कपटी[6] एवं प्रपंची है, परिस्थितियों से प्रतिशोध का भूखा है और जो *हत्या एव विनाश का रगमंच सजाने के लिए निरन्तर* ललचता-हहरता रहा है।

(७)

न्याय-मडप में अभियोग प्रस्तुत करने के ठीक पूर्व शकार ने अपना एक खड परिचय प्रस्तुत किया है—"इस विशिष्ट उपवन में स्थित मैं गधर्व के समान युवती कामिनियों के साथ स्नान कर चुका हूँ। किसी क्षण मे बालों को बाँध *लेता हूँ, क्षण में उनका जूड़ा बना लेता हू, क्षण में उन्हें स्वाभाविक रूप में छोड* देता हूँ, क्षण मे उन्हें बिखरा देता हूँ तथा क्षण भर में ही उनकी वेणी बाँध लेता हूँ। इस प्रकार, राजश्याल मैं चित्र विचित्र रूप धारण करता हूँ।"[7] शकार, अतएव, बहुरूपिया है। ऐसे बहुरूपिया व्यक्ति को इतना क्रूर एवं निर्मम रक्त पिपासु नहीं होना चाहिए। लेकिन शकार वही है जो कामुक व्यक्ति को सामान्यतः नहीं होना चाहिए। डॉ० भाट की निम्न टिप्पणी हमें युक्तिसगत प्रतीत हुई है —

---

१ वही पृ० ५५०-५१. २ वही, पृ० ५५६
३ वही, पृ० ५५९ ४ वही, पृ० ५६१
५ वही, पृ० ५५५
६ इस सम्पूर्ण प्रसग मे 'कपटी' से 'धूर्त' और 'कापटिकता' से 'धूर्तता' का अर्थ लिया गया है।
७ वही, ५।१-२

"अपने भाषण एवं आचरण में, अपनी प्रगाढ़ कामलिप्सा में तथा अपनी निर्व्याज हिंस्रप्रवृत्ति में शकार नितान्त पाशविक है। अपितु, वह मनुष्य से निचली श्रेणी का जीव है। उसकी मूर्खता एवं कायरता, "वरपुरुषमनुष्य" कहे जाने की उसकी अभिलाषा तथा प्रेमाचरण करने की उसकी छद्म-चेष्टाएँ— ये सभी ऐसे मस्तिष्क की प्रसूतियाँ हैं जिसका विकास आधे रास्ते में आकर रुक गया है। लेकिन, उसकी धूर्तता, एवं कपटशीलता, उसका पेटूपन तथा विनाश प्रेम साधारण पाशविक सोपान की वस्तुएँ हैं जिसे वह पार नहीं कर सका है। वह (शेक्सपियर का दानव) कैलिबन (Caliban) है जिस पर नियन्त्रण रखने वाला मालिक मौजूद नहीं है।[१] उसने सभ्यता का आसव पान नहीं किया है, किन्तु उसका मिथ्या गर्व एवं कामलिप्सा वह रखता है। अथवा 'पञ्चतन्त्र' के पृष्ठों में से शायद एक धूर्त लोमड़ी शकार के स्वरूप में जीवित प्रकट हो गई है!"[२] शकार सम्पूर्ण साहित्य में निराली सृष्टि है।

विदूषक मैत्रेय

(१)

शृंगार रस वाले नायक के सहायकों में 'विदूषक' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विश्वनाथ के अनुसार, किसी फूल अथवा वसंतादिक पर जिसका नाम हो, जो अपने काय, देह, वेष, भाषा इत्यादि से हँसाने वाला हो, दूसरों के लड़ाने में आनन्द लेता हो और अपने मतलब के कामों में निपुण तथा चतुर हो, वह 'विदूषक' कहलाता है।[3] वह प्राय ब्राह्मण होता है और सुस्वादु भोजन का लालुप होता है। अ त पुर में वह स्वतन्त्रतापूर्वक आ-जा सकता है और राज

---

१ शेक्सपियर के नाटक 'टेम्पेस्ट' (The Tempest) में कैलिबन एक कुरूप राक्षसी जीव है जो साइकोरैक्स नामक एक भीषण डाइन का पुत्र है। मिलन नगर का पहले का नवाब प्रोस्पिरो अपनी युवती पुत्री मिरैंडा के साथ एक द्वीप में रहता था जिसे जादू के बल से साइकोरैक्स ने अपने आधिपत्य में कर लिया था। प्रोस्पिरो भी जादू में प्रवीण था। साइकोरैक्स मर चुकी थी जब वह उस द्वीप में पहुँचा था। उसने कैलिबन को जगल में पाया जो अत्यन्त कुरूप बन्दर जैसी सूरत का था। प्रोस्पिरो ने उसे बोलना सिखाया और सभ्य सस्कृत बनाने का प्रयत्न किया। किन्तु, उसकी डाइन माँ का स्वभाव उसे विरासत में मिला था और तनिक भी नियत्रण ढीला होने पर, वह सभी प्रकार के पाशविक कृत्य करने पर उतारू हो सकता था।

२ Dr G K Bhat 'Preface To Mrcch.', पृ० १०१

३ साहित्यदर्पण, ३।४१

परिवार के सदस्यों मे परस्पर लडाई-झगडा उत्पन्न करता रहता है। नायक का वह परामर्शदाता एव उसके गोपनीय रहस्यों का ज्ञाता एव पोषक होता है। किन्तु, नायक को अपने मूर्खतापूर्ण कृत्यों से वह प्राय कठिनाई मे डालता रहता है और उसके साथ स्वातन्त्र्यपूर्ण आचरण करता है। वह मध्यम श्रेणी का व्यक्ति होता है और स्त्रियों के समान भाषा का प्रयोग करता है क्योंकि उनके साथ उसका घनिष्ठ सम्पर्क होता है।[1] ब्राह्मण होने से वह धार्मिक दान, उपहारादि प्राप्त करता है। चित्र-विचित्र उपमाओ तथा हास्योत्पादक वचन-विन्यास से वह नाटक मे हास्य विनोद का वातावरण बनाये रहता है। शरीर से वह प्राय कुरूप तथा स्वभाव से भीरु होता है। 'मृच्छ०' का विदूषक मैत्रेय है।

(२)

मैत्रेय के चरित्र मे विदूषक के परम्परा-प्रथित समस्त रूढिगत गुण वर्तमान हैं। वह ब्राह्मण है। रूपवान् नहीं है। शकार उसे "काकपदशीर्षमस्तक दुष्टबटुक", 'कौवे के पैर के समान क्षीण मस्तक वाला दुष्ट बालक' कहता है।[2] मैत्रेय का मस्तक अवश्य विकृत आकृति का है क्योंकि वह स्वय भी उसे ऊँट के बच्चे के घुटने के समान ऊँचा-नीचा बताता है "करभजानुसदृशेन शीर्षेण।"[3] उसका काठ का डडा भी उसके मस्तक के समान टेढे तथा विकृत आकार है - "तदनेन आत्मनो हृदयमिव कुटिलेन दण्डकाष्ठेन × × ×।"[4] ब्राह्मण होने पर भी, न तो उसने शास्त्रों इत्यादि का अध्ययन किया है और न उनके ज्ञान का गर्व ही करता है। इतना अवश्य है कि वह वैदिक मन्त्रों तथा यज्ञादि धार्मिक क्रियाओं की जानकारी रखता है जो उसके वार्तालाप मे ज्ञात होता है। वसन्तसेना के महल के फाटक पर ऊँघते द्वारपाल को देखकर, उसे आत्मतोषी वैदिक ब्राह्मण का स्मरण हो आता है।[5] रेभिल के सगीत पर टिप्पणी करते हुए, वह सस्कृत पढ़ती हुई स्त्री तथा पतली मधुर ध्वनि से गाते हुए पुरुष की हँसी उडाता है - पहली नवनासिकाछिद्रित प्रथमप्रसूता गाय के समान उसे 'सू-सू' शब्द करती प्रतीत होती है और दूसरा सूखे फूलों की माला पहने हुए वृद्ध पुरोहित के समान मन्त्र जपता हुआ उसे अरोचक दिखाई पडता

---

१ Dr S N Shastri. 'The Laws and Practice of Sanskrit Drama,' Vol one, P 227

२ मृच्छ०' (चौ०) पृ० ७६, ५०१ ३ वही, पृ० ८७

४ वही, पृ० ६७ ५ वही, पृ० २३२

है।[1] तप-जप मे तथा ब्राह्मणो के औपचारिक धर्म-विषयक कृत्यो मे उसे कोई दिलचस्पी नही है। मातृदेवियो को बलि चढाने जाने के चारुदत्त के आदेश का वह प्रतिवाद करता है, यह तक देकर कि जब इस प्रकार पूजा करने पर भी देवता चारुदत्त के ऊपर प्रसन्न नही होते (वह धनी नही बन जाता), तब समस्त पूजा-अर्चा व्यर्थ है।[2] वह इन क्रियाओ मे शायद विश्वास ही नही करता क्योकि 'मुझ ब्राह्मण की समस्त क्रियाएँ विपरीत ही प्रतिफलित होती हैं जैसे दर्पण मे प्रतिबिम्बित अग विपरीत दिखाई पडते है।"[3] वसन्तसेना के महल के पर्यटन का अवसर पाकर वह अत्यन्त प्रसन्न होता है तथा अपने भाग्य की सराहना करता हैं कि राक्षस-राज रावण घोर तपस्या के बल पर पुष्पक विमान से भ्रमण करता था जबकि वह तपस्या का कष्ट सहे बिना ही पुरुष एव नारी रूप विमान से यात्रा करता है।[4] अतएव, मैत्रेय को अपनी जाति के कर्मों एव कृत्यो मे कोई अनुराग नही और वह सुख तथा आराम का जीवन पसन्द करता है।

(३)

मैत्रेय स्वादयुक्त उत्तम भोजन का अनुरागी है। सूत्रधार ने यही जान कर उसे अपने यहाँ भोजन का निमन्त्रण दिया था। यद्यपि मैत्रेय ने वह निमन्त्रण स्वीकार नही किया, तथापि चारुदत्त के पिछले सौभाग्यशाली दिनों मे अपने खाये हुए सुगन्धित एव मनोरम मोदकों तथा नानाविध व्यजनों के स्मरण से वह व्यथित होता है।[5] वसन्तसेना के महल मे वह नाना सुगन्धों से पूर्ण खाद्य पदार्थों को देख कर अत्यधिक विस्मयपूर्ण आनन्द से गद्गद हो जाता है। हिंगु-तैल की गन्ध, अनेक प्रकार की सुरभियो से सुगन्धित धूम की गन्ध, खाद्य द्रव्यो की गन्ध तथा मोदकों एव मालपूओं की छटा उसे अत्यन्त उत्सुक बना देती है और उसका चित्त उन्हें चखने के लिए तरसने लगता है।[6] पिंजड़े के सुग्गे को सुन्दर वाक्यों का उच्चारण करते देख कर, उसे दही और भात की याद आ जाती है जिसे खा-खा कर ब्राह्मण सन्तुष्ट रहते हैं।[7] वसन्तसेना की स्थूलकाय विस्तीर्ण उदर वाली माता को देख कर उसे ईर्ष्या होती है कि उसे वैसा ही मधुर एव स्वादिष्ट भोजन भर-पेट मिलता, चाहे भले वह भी 'चौथिया' रोग मे पीडित क्यों न हो जाता।[8] भोजन करने का निमन्त्रण पाने की अभि-

---

१ वही, पृ० १४८-४९
२ वही, पृ० ३१
३ वही, पृ० ३३-३४
४ वही, पृ० २२८
५ वही, पृ० २१ २२
६ वही, पृ० २३६-३७
७ वही, पृ० २४१
८ वही, पृ० २४४ ४५

लाया उसके मन में प्रवेश कर जाती है और वह चाहता है कोई पानी लाकर उसका पैर धुलाता ।[1] वसन्तसेना के यहाँ उसे किसी ने जलपान अथवा भोजन के लिए अनुरोध किया नहीं, और उसकी कलक उसे बनी रह गई है ।

लेकिन मैत्रेय की यह भोजन लिप्सा निरी हास्योत्पादक अथवा विनोदकारी नहीं रह गयी है । उस पर अपितु कारुणिक रंग चढ़ गया है । जैसा अभी ऊपर कहा गया है, चारुदत्त की समृद्धि के अतीत काल में अन्तःपुर की बैठक के द्वार पर बैठा हुआ, सैकड़ों व्यंजन-पात्रों से घिरा हुआ चित्रकार के समान वह उन्हें अंगुलियों से छू छू कर छोड़ देता था और नगर-प्रांगण के साँड के समान पागुर करता हुआ पड़ा रहता था । और अब, चारुदत्त की दरिद्रता के कारण, इधर-उधर से भोजन प्राप्त करने की चेष्टा उसे करनी पड़ रही है ।[2] अतएव, मैत्रेय की खाद्य स्पृहा कारुणिक भी बन गई है ।

(४)

मैत्रेय स्वभाव से भीरु है । रदनिका का शकार द्वारा किया गया अपमान देख कर वह क्रुद्ध हो गया है और काठ का डण्डा उठा कर प्रतिशोध के लिए तैयार हो गया है क्योंकि "अपने घर में तो कुत्ता भी बलवान् हो जाता है" और शकार को "दुष्ट ! अविनयी !" कह कर तीव्र भर्त्सना की है ।[3] इसी प्रकार, वह निरीह पारावत पर भी प्रहार करने के लिए काष्ठ-दंड उठा लेता है ।[4] किन्तु, मैत्रेय अत्यन्त भीरु है । अन्धेरे में वह दीप चढ़ाने के लिए अकेले घर से बाहर नहीं निकलना चाहता और रदनिका को साथ लेकर ही उसके लिए *तैयार होता है । वसन्तसेना को रात में घर पहुँचाने के* लिए भी वह राजी नहीं हुआ, -इस डर से कि वह ब्राह्मण कुत्ते के समान मार न दिया जाय।[5] और, मैत्रेय की यह भीरुता उसकी प्रकृति का अङ्ग है । उसने पहले ही, बलि-दीप चढ़ाने जाने का अनुरोध अस्वीकार करते हुए, कारण बताया है कि सध्या-समय सड़क पर वेश्या विट, चेट, राजश्याल इत्यादि घूमा करते हैं और उनके बीच वह, काल-सर्प के मुँह में गिरे चूहे के समान, वध्य हो जाएगा ।[6]

(५)

मैत्रेय की उपमाएँ बड़ी सटीक, विचित्र तथा आकर्षक होती हैं । दीपक के जलने का वह यों वर्णन करता है—"यूपकाष्ठ में बाँधने के लिए लाये हुए बकरे के समान यह दीपक 'फुरफुरा' रहा है ।"[7] बकरे का फुरफुराना जिसने

१. वही, पृ० ५७ २ वही, पृ० २२
३ वही, पृ० ६८. ४ वही, पृ० २६८.
५ वही, पृ० ९०. ६ वही, पृ० ३४
७ वही, पृ० ६५–६६

देखा है, वह इस उपमा की सार्थकता से चमत्कृत हो जाएगा। पैर धोने के लिए पानी की अनावश्यकता का कथन करते हुए, वह कहता है—"मैं पीटे हुए गधे के समान पुन जमीन पर ही लेट जाऊंगा।"[1] चेट के इस प्रस्ताव का प्रतिवाद करते हुए यह कहने पर कि वह ब्राह्मण है, मैत्रेय कहता है—"जिस प्रकार सभी सर्पों मे विषहीन डुण्डुभ होता है, उसी प्रकार ब्राह्मणो मे सबसे निस्तेज मैं हूं।"[2] गधे और डुण्डुभ उपमानो की योजना जितनी सटीक है, उतनी ही अ सामान्य है। वसन्तसेना और चारुदत्त के परस्पर झुक कर अभिवादन करने के दृश्य का वर्णन यों करता है—"अहा! आप दोनों के सुखपूर्वक प्रणाम करते समय विनम्र होने से आप के सिर ऐसे मिल रहे हैं जैसे कलमकेदार धान के गुच्छे मिल रहे हो।"[3] धान डण्ठलो के पवन के स्पर्श से झुक कर परस्पर मिल जाने और दो व्यक्तियो के झुक कर परस्पर प्रणाम करने मे कितना विचित्र सादृश्य खोजा गया है!

मैत्रेय की विनोदशीलता अलिम उपमा मे साफ साफ झलक जाती है। चाहने पर वह शिष्ट विनोद की भी योजना कर सकता है। चारुदत्त के इस अनुरोध का कि मैत्रेय वसन्तसेना को रात मे उसके घर पहुंचा दे, बड़े सुन्दर ढग से वो प्रतिवाद करता है—"इस हसगामिनी के साथ चलने मे आप राज-हस के समान सुशोभित होते हैं।"[4] इसी प्रकार उसने वसन्तसेना से दो आपातत. सरल प्रश्न पूछे हैं। पहला प्रश्न है—"इस घोर अन्धकार मे आप यहाँ (चारुदत्त के घर) किस लिए आई हैं ?" दूसरा प्रश्न यह है—'प्रिय सखी! क्या आप आज की रात यहीं सोयेंगी ?' इन प्रश्नो पर चेटी ने टिप्पणी की है—"यह सचमुच बड़ा सरल ब्राह्मण है।[5] × × × इस समय आप अपनी आत्मा को बिलकुल सरल प्रदर्शित कर रहे हैं।"[6] किन्तु, मैत्रेय की इस सरलता मे उसका शिष्ट, और तनिक तीखा भी विनोद छिपा हुआ है जो व्यग्य की सीमा को स्पर्श करता है।

परम्परा के अनुसार मैत्रेय नायक चारुदत्त का विश्वस्त सुहृदय एव सहचर है तथा उसके प्रणय की प्रगति मे सहायता भी पहुँचाता है। चारुदत्त के साथ अपने व्यवहार मे वह नितान्त निर्भीक एव स्वतन्त्र है। वह उसकी बातों का खडन भी करता है और उसकी इच्छाओ तथा आज्ञाओ का पालन भी करता है।

---

१ वही पृ० १५१
२ वही, पृ० १५३.
३ वही, पृ० ८७
४ वही, पृ० ९०
५ वही, पृ० २९९
६ वही, पृ० ३०७.

(६)

उपर्युक्त विवेचन मे मैत्रेय का रूढ़िगत विदूषक रूप दिखाई पड़ा है। लेकिन, जैसा ऊपर कहा गया है, मैत्रेय परम्परा के विदूषकों की बिरादरी से बाहर निकल कर, एक महत्वमय चरित्र बन गया है। मैत्रेय की वाणी बड़ी तेज है। धन तथा वेश्याओ के विषय मे वह बहुत समझदारी के साथ, लक्ष्यवेधी ढग से, बोलता है। चारुदत्त की गरीबी से वह नितान्त दुखी है और यह सोच कर कि धन सज्जनो के पास नही रहता, वह अब धन को तनिक हीन दृष्टि से देखने लगा है। उसका कथन है कि धन अधम एव क्षणभगुर है और बर्रे से भयभीत गोप-बालक के समान वही दृष्टिगोचर होता है जहाँ इसका कोई उपयोग नही होता, अर्थात्, कृपणों के घर रहता है, दानियो के घर नही।[१] इसी कारण, वह चारुदत्त को सात्वना प्रदान करता है कि क्षणभगुर धन की चिन्ता करना व्यर्थ है।[२]

वेश्याओ के प्रति मैत्रेय की गहरी घृणा है और उसका प्रकाश स्त्री, धन तथा वेश्या-प्रसग की प्रखर टीका-टिप्पणी मे होता है। वसन्तसेना के महल के वैभव से उसकी आँखें अवश्य चौंधिया जाती हैं लेकिन उसका कोई प्रभाव उसके मस्तिष्क पर नहीं पड़ता। वसन्तसेना के भाई को सुन्दर रेशमी वसन पहने तथा आभूषणों से अलकृत देख कर, वह यह स्वीकार करता है कि पूर्व जन्म के सुकृत्यो के अभाव मे वह वैभव सम्भव नही होगा। परन्तु, वह साथ ही यह भी कहता है कि श्मशान मे विकसित चम्पक-पुष्पो के समान इन लोगो की सगति त्याज्य है।[३] वसन्तसेना की स्थूलकाय वृद्धा माता की उसने और भी प्रखर आलोचना की है। वह उसे देख कर कहता है—"अरे! इस अपवित्र पिशाचिनी का पेट कितना बड़ा है! क्या इसे प्रविष्ट करा कर इस द्वार की शोभा का निर्माण हुआ है?" यह बताये जाने पर कि वह शुभ्रवसना बुढ़िया चौथिया रोग से पीड़ित है, वह तनिक भी सहानुभूति उसके प्रति नहीं दिखलाता और उलटे कहता है कि उस प्रकार के फूले एव स्थूल उदर वाले व्यक्ति का मर जाना ही उचित होगा "वरम् ईदृश· शूनपीनजठरो मृत एव।"[४] उसकी टिप्पणी और भी प्रखर हो जाती है जब वह कहता है—'सीधु, सुरा तथा आसव, इन तीन प्रकार के मद्यपान से मतवाली यह बुढ़िया बहुत स्थूल हो गई है। यदि इसकी मृत्यु हो जाय, तो हजारों सियारों

१ वही, पृ० २९.

२ वही, पृ० ३१

३ वही, पृ० २४४

४. वही, पृ० २४४-४५

का भोजनोत्सव हो जाय।"[1] । वसन्तसेना के प्रासाद के वैभव का रहस्य वह खोजना चाहता है। सोचता है, शायद वे सब समुद्री व्यापार इत्यादि के कारण इतने वैभव सम्पन्न हुए हो।[2] किन्तु, झटिति वह अपना अनुमान संशोधित कर, कहता है—'जहाज इत्यादि के विषय मे क्या पूछना है? कामदेव-रूपी सागर के निर्मल जल मे कुच, नितंब जघा ही आप लोगो के मनोरम यान हैं। समस्त प्रकोष्ठो को देखने के बाद मुझे विश्वास हो गया है कि स्वर्ग, मर्त्य एवं पाताल तीनों लोकों को यहीं एकत्र स्थित समझना चाहिए।"[3] स्पष्ट है कि मैत्रेय की वाणी की कैंची वेश्या-वृत्ति के विरुद्ध बडी तेज चलती है और वह शिष्टता इत्यादि का ध्यान बिलकुल भूल जाता है। वह सीधे, प्रत्यक्ष रीति से, बिना चिकनाई चुपड़ाई के व्यवहार करता है। वह इस निष्कर्ष पर पहुँच गया है कि जैसे जूते मे पड़ी कंकड़ी को निकालना कठिन हो जाता है, वैसे ही वेश्या का निराकरण कठिन है। चारुदत्त को वह प्रत्यक्ष स्वरो मे यद्यपि विनम्रता से, सलाह देता है कि वह वेश्या प्रसंग से विमुख हो जाय। यह विचित्र है कि उसने वेश्या, हाथी, कायस्थ, भिक्षुक, शठ तथा गधा सबको एक-साथ जोत कर, उन्हें सज्जनो के ही लिए नहीं, अपितु दुष्टो के लिए भी त्याज्य बताया है।[4] वसन्तसेना के भवन मे अपना स्वागत-सत्कार नहीं होने के कारण तथा रत्नावली स्वीकार कर लेने मे वसन्तसेना का (अपनी समझ से) लोभ देख कर मैत्रेय ने चारुदत्त को उससे विमुख करने का संकल्प कर लिया है और ऐसा करने के लिए वह अनुरोध करता है, विनय करता है और प्रत्यक्ष आलोचना करता है। उसका दृढ़ विश्वास है कि धूल से रहित कमलिनी, नहीं ठगने वाला बनिया, नहीं चुराने वाला सोनार, कलह नहीं करने वाला ग्राम्य समागम तथा लालच नहीं करने वाली गणिका—ये सभी मिलने वाले असम्भव हैं।[5] सब कुछ समझने पर जब वह देखता है कि चारुदत्त की वसन्तसेना-विषयक ललक बढ़ती ही जाती है, तब उसे बड़ा दुःख होता है और कहता है—"कामो वाम" (कामदेव प्रतिकूल होता है)। वसन्तसेना के पहुँचने पर वह व्यग्य भरे स्वर मे चारुदत्त को जाकर सूचित करता है—"हे चारुदत्त! आपके धनिक आये हैं।"[6] इस वाक्य से चारुदत्त को चोट पहुँच सकती थी, क्योंकि वह गरीब हो गया है[7], किन्तु, मैत्रेय यथा-मति मित्र को वेश्या-व्यसन से दूर रखना चाहता था।

---

१ वही, ४।२९. २ वही, पृ० २४१
३ वही, पृ० २४६, ४७ ४ वही, पृ० २६३.
५ वही, पृ० २६०-६१ ६ वही, पृ० २७२
७ वही, पृ० २७३—'कुतोऽस्माकं धनिक ?'

(७)

मैत्रेय तीखा व्यग्य करता है । चारुदत्त और स्वय अपने को भी वह अपने व्यग्य का भाजन बनाता है । सृष्टि के समस्त क्षेत्र से वह अपनी चतुर एव विदग्ध उपमाएँ सकलित करता है । मिट्टी के ढेले से लेकर स्वर्ग तक, फूलो से लेकर सितारो तक, जड जगत् से लेकर पशुओ तथा मनुष्यो तक, पशु विज्ञान से लेकर पुराणकथाओ तक—सर्वत्र उसकी पैनी मनोदृष्टि जाती है और वह उनसे अपने तीखे व्यग्य विनोद के लिए सामग्री उपलब्ध करता है । सम्पूर्ण नाटक मे वह विदूषक की पगडी पहन कर सचरण करता है, किन्तु बुद्धिमानी की बात करता है और चित्र विचित्र हास्य-विनोद तथा व्यावहारिक उपयोगिता की अभ्युक्तियाँ कर जाता है । मैत्रेय वैसा विदूषक नही है जो स्वय अपनी हँसी कराता है । उसके विकृत सिर मे बुद्धिमानी से भरा हुआ मस्तिष्क छिपा हुआ है । यह सही है कि वह समय और परिस्थिति का ध्यान बिना रखे, वाणी का प्रयोग करता है । और, ऐसा करते समय चारुदत्त की भावनाओं पर हल्की चोट भी पहुँचा देता है जबकि दुनिया मे उसकी आस्था एव ममता का शायद वही एकमात्र आधार एव आस्पद है । शर्विलक की चोरी के बाद जब चारुदत्त उसे रत्नावली के साथ वसन्तसेना के पास भेजता है, और कहता है कि निर्भीक होकर वसन्तसेना से सभी बातें कह देना, तब तपक कर तथा आश्चर्य की मुद्रा मे उसने उत्तर दिया है—'अरे ! क्या दरिद्र भी निर्भीक होता है !'[१] ऐसा ही तीखा जवाब उसने दिया है जब चारुदत्त ने जीर्णोद्यान मे (यह समझ कर कि चेट की गाडी मे वसन्तसेना आई है) उससे वसन्तसेना को गाडी से नीचे उतारने के लिए कहा है—"क्या इसके पैरो मे बेडी पडी हुई है कि वह अपने से नीचे नही उतर सकती ?"[२]

लेकिन, मैत्रेय के कथनो तथा व्यग्योक्तियों मे यथेष्ट बुद्धिमानी, समझदारी तथा व्यावहारिक विवेक का पुट वर्तमान रहता है । वस्तुत वह 'मूर्ख' नही है जैसा विद्वानों ने दिखाया है । उसकी 'वज्रमूर्खता' (Stupidity' or 'blockheadedness) के प्रमाण मे दो उदाहरण रखे गये हैं पहला, चेट कुम्भीलक द्वारा बुझाई गई पहेली को उसका नहीं समझना और दूसरा, दुर्दिन की वर्षा मे वसन्तसेना के चारुदत्त से चिपक जाने का गलत अभिप्राय ग्रहण करना ।[3] मैत्रेय नहीं जानता कि आम का वृक्ष किस ऋतु मे मजरित होता है और कि सम्पत्ति-

---

१. वही, पृ० १८५ २ वही, पृ० ३६४

३ द्रष्टव्य (i) 'Preface To Mrcch' (डॉ० भाट), पृ० १०४,
(ii) 'Introductin To Study of Mrcch.'
(डॉ० देवस्थली) पृ० ९३

शाली नगरो का रक्षा किसके द्वारा होती है। चारुदत्त से इन प्रश्नो का उत्तर जान लेने पर भी वह 'वसत' और 'सेना' शब्दों को सही ढग से जोड नही सका है तथा 'सेना वसत' कहने के बाद ही, पुन' सोच कर 'वसन्तसेना' नाम पा सका है।[1] वस्तुत यह प्रसग मैत्रेय को 'वज्रमूर्ख' अथवा 'मूर्ख' प्रमाणित करने के लिए सशक्त नही है, और नही शूद्रक द्वारा इस अभिप्राय से यह उपनिबद्ध ही हुआ है। वास्तव मे, कुम्भीलक वाला यह प्रसग हास्य की अवतारणा के लिए गुम्फित हुआ है न कि विदूषक की मूर्खता के प्रदर्शनार्थ। शूद्रक ने इस स्थल मे जो मैत्रेय को चारुदत्त से प्रश्नो के उत्तर पूछने तथा थोडा 'सोचने' ('विचिन्त्य") का अवसर प्रदान किया है, वह केवल रगमच पर हास्य विनोद की कुछ क्षीण छीटें बिखेरने के लिए, न कि मैत्रेय की मूर्खता का निरूपण करने के लिए। जो व्यक्ति नितात सटीक तथा विस्मयकारक उपमाओ की योजना कर सकता है—और जो ज्ञान की ऊँची बातें कर सकता है (धन की क्षण-भगुरता इत्यादि), वह यह नही जानता हो कि आम्रवृक्ष मे मजरियाँ कब लगती हैं अथवा यह कि 'वसत' और 'सेना' शब्दो को कैसे जोडा जाय जबकि वह कुम्भीलक को भी पहचानता है और वसन्तसेना के अभिसार का सवाद भी स्वय ला चुका है—वह सम्पूर्ण स्थिति विश्वसनीय एव स्वीकार्य नही है। काम भाव से दीप्त होकर ही, वसन्तसेना चारुदत्त के शरीर से चिपक गई है। लेकिन, यह समझने का कोई कारण नही कि मैत्रेय इस स्पष्ट शृगारी आचरण का अर्थ नही समझ सका है जबकि चारुदत्त तथा वसन्तसेना दोनो ने परस्पर आलिंगन किया है "वसन्तसेना शृगारभाव नाटयन्ती चारुदत्तमालिङ्गति × × × × × स्पर्श नाटयन् प्रत्यालिङ्गय।"[2] स्मरण रहे कि वेश्या-प्रसग के विरुद्ध मैत्रेय यथेष्ट चेतावनी दे चुका है। वह यही तो टिप्पणी करता है—"अरे अधम दुर्दिन! तुम बडे नीच हो कि आर्या वसन्तसेना को बिजली की चमक से भयभीत करते हो।"[3] इस अभ्युक्ति मे उसकी छद्म गम्भीरता का झीना आवरण चढा हुआ है जिसके भीतर से उसकी वास्तविक शरारत भरी विनोदप्रियता झलक आती है। इस प्रसग को लेकर डॉ० भाट की की गई यह टिप्पणी युक्तिसगत नही समझी जाएगी कि मैत्रेय किसी स्थिति अथवा कथन का अन्तर्निहित तत्त्व नहीं समझ सकता है।[4]

---

१ 'मृच्छ०' (चौ०), पृ० २७१-७२ २ वही, पृ० ३१०

३. वही, पृ० ३१०

४ "It appears that he cannot divine the Sublety in a Situation or a speech"—'Pref To Mrcch' पृ० १०४

(८)

मैत्रेय चारुदत्त की भलाई के प्रति निरंतर चिंतित तथा व्यग्र रहा है। चारुदत्त जितना ही आदर्शवादी रहा है, मैत्रेय उतना ही व्यवहारनिष्ठ रहा है। चेटी ने तो उसे उसके प्रश्नों के लिए 'सरल' की उपाधि दी है—'आर्य ! ऋजुको ब्राह्मण'',[१] "आर्यमैत्रेय ! अतिमात्रमिदानीम् ऋजुमात्मानं दर्शयसि।"[२] लेकिन, वसन्तसेना उसकी 'ऋजुता' समझ गई है और कहा है—"ननु निपुण इति भण।"[३] वास्तविकता यही है कि मैत्रेय सरल नहीं, चतुर एवं 'निपुण' है। यदि वह सरल बनता है, तो इस कारण कि उससे स्थिति की विनोदात्मकता अथवा तीखेपन को उभार में आने का अवसर मिलता है।

नाटक में मैत्रेय ने दो बड़ी भूलें की हैं। नींद में बड़बड़ा कर, उसने *आभूषण की चोरी कराने में सहायता पहुँचाई है और न्यायमंडप में शकार* से झगड़ कर आभूषण को भूमि पर गिरा दिया है जिससे चारुदत्त के प्राण गहरे सङ्कट में पड़ गये हैं। किन्तु, इन गलतियों से उसकी मूर्खता (Stupidity) का द्योतन नहीं होता अथवा न यही कहा जा सकता है कि वह किसी स्थिति की अन्तर्हित सूक्ष्मता अथवा गंभीरता नहीं समझ सकता। नींद में बड़बड़ाने से उसके स्वभाव की शिथिलता एवं आलस्य का परिचय मिलता है और इस बात का भी कि वह अलंकार-न्यास के विषय में यथेष्ट सावधान नहीं था। न्यायालय में आभूषण के भूमि पर गिर जाने से भी उसके बुद्धिमान्द्य का प्रमाण नहीं मिलता। वस्तुतः जिस स्थिति में वह चारुदत्त को अपराधी की हैसियत से न्यायमंडप में खड़ा देखता है, वह स्थिति उस जैसे निष्ठावान् तथा ईमानदार व्यक्ति को व्यथित तथा इसीलिए, कुपित एवं उतावला बना देने के लिए पर्याप्त थी। चारुदत्त की भलाई एवं मर्यादा की रक्षा की अतिशय चिंता ही उसके उस अविवेकपूर्ण कृत्य के लिए उत्तरदायी थी।

यह प्रत्यक्ष है कि मैत्रेय की गलतियों से नाट्य वस्तु के विकास में सहायता मिली है। सम्भवतः कालिदास के समान शूद्रक ने भी वस्तु विकास के निमित्त विदूषक की गलतियों का सचेत भाव से उपयोग किया है। शूद्रक ने अपने विदूषक के चरित्र में सुकुमार कौशल के साथ इन विशेषताओं का विनियोग किया है। लेकिन, यदि शूद्रक यहीं रुक गया होता, तो मैत्रेय का चित्रण रूढ़िगत परम्परा की परिधि को अतिक्रमित नहीं कर सका होता। परम्परा से

---

१ वही, पृ० २९९ २ वही, पृ० ३०७

३ वही, पृ० ३०७

चौखटे को लाँघने में ही मैत्रेय की विशिष्टता तथा शूद्रक की सफलता रही है।

मैत्रेय व्यवहार-बुद्धि से और इसी कारण, आलोचनात्मक दृष्टि से किसी वस्तु पर विचार करता है। चारुदत्त को वेश्या-प्रसंग से विमुख करने के लिए उसने जो प्रयत्न किया है, वह बिलकुल व्यावहारिक दृष्टि से ही। सन्धिच्छेद के बाद आभूषण की चोरी हो जाने पर उसकी व्यवहार-बुद्धि सजग हो उठी है। चारुदत्त के मूच्छित हो जाने पर वह उसे धैर्य धारण कराता है—"यदि धरोहर को चोरों ने चुरा लिया तो आप क्यों मूच्छित होते हैं ?" यहाँ मैत्रेय सरल अथवा मन्दबुद्धि नहीं, व्यावहारिक है। वह झटिति सुझाव देता है कि 'मैं प्रचार करूँगा कि गहना किसने दिया, किसने लिया और कौन साक्षी है ?"[१] उसकी दृष्टि में वह तत्त्वतः 'झूठा' नहीं होगा क्योंकि अन्ततोगत्वा आभूषण तो चारुदत्त के घर से चोरी चला ही गया और अब उसे लौटाने का प्रश्न व्यवहार-दृष्टि से उठता ही नहीं—यदि चारुदत्त जानबूझ कर बेईमानी करता तो स्थिति भिन्न होती। वसन्तसेना जब उसे यह सन्देश देती है कि सूर्यास्त के बाद वह चारुदत्त से मिलने आएगी, तब भी उसकी आलोचनात्मक व्यवहार बुद्धि उससे यही कहती है कि वह 'आयचारुदत्त' से कुछ और खसोटना चाहती है क्योंकि रत्नावली को शायद कम मूल्यवान् समझती है। वस्तुतः मैत्रेय यही नहीं समझ सका कि वसन्तसेना का प्रेम सच्चा एवं पवित्र भी हो सकता है। किन्तु, शायद हम-आप भी वेश्या स्नेह को, यह नाटक पढ़ने के पूर्व, सच्चा एवं निःस्वार्थ नहीं समझते।

(९)

मैत्रेय की सबसे महत्त्वमयी विशेषता है, चारुदत्त-विषयक उसका प्रगाढ़ प्रेम। दुःख सुख में साथ रहने वाली मैत्री उसके चरित्र को धवल ज्योति से मंडित कर देती है। चारुदत्त की दरिद्रता ने उसके चारुदत्त विषयक प्रेम एवं निष्ठा को गहरी सहानुभूति से अनुरञ्जित कर दिया है। दीन कपोत के समान वह भोजन के लिए चारों तरफ से घूम कर अन्ततः अपने निर्धन मित्र के घर लौट आता है। परिस्थितियों से ऊब कर, वह चारुदत्त की आज्ञाओं का उल्लंघन करने के लिए अनुप्राणित अवश्य होता है, किन्तु जब यह समझ लेता है कि चारुदत्त की यह भीतरी इच्छा है, तब अपनी भावनाओं को दबा कर वह आज्ञा का पालन करता है। वेश्याओं के विरुद्ध होता हुआ भी, वह चारुदत्त की भावना का आदर कर, वसन्तसेना के घर गया है। चारुदत्त-जैसे उदार

---

१ वही, पृ० १८१

तथा धार्मिक व्यक्ति के ऊपर दरिद्रता की विपत्ति आने पर, वह देवताओं में आस्था खो देता है और उनके पूजन की आवश्यकता का स्पष्ट प्रत्याख्यान करता है। निर्धनता के निपात से शोकमग्न चारुदत्त को वह सान्त्वना एवं साहस प्रदान करता है। "मित्र ! याचकों को दान देते-देते आपके सम्पूर्ण विभव के देवताओं के पी लेने पर अवशिष्ट प्रतिपदा की क्षीण चन्द्रकला के समान, नष्ट होने हुए भी आपकी कीर्ति और अधिक रमणीय बन गई है।"[१] ऐसे वचनों से मैत्रेय चारुदत्त के हरे घावों पर मुलायम मलहम लगाने का प्रयत्न करता है। उसे लगता है जैसे भाग्य फिर कभी अनुकूल होगा और आर्यचारुदत्त पुनः सम्पत्ति शाली होंगे "पुनरपि ऋद्धया आर्यचारुदत्तस्य।"[२] चारुदत्त की भावनाओं पर कोई आघात कहीं से न पहुँचे, इस बात का उसे सदैव ध्यान बना रहता है। रदनिका से वह अनुरोध करता है कि शकार के द्वारा किये गये अपमान की सूचना वह चारुदत्त को नहीं दे क्योंकि चारुदत्त उससे और दुखी होगा।[3] वसन्तसेना को घर पहुँचाने के लिए दीपक जलाने का निर्देश करने पर चेट धीरे से कहता है कि घर मे तो तेल है ही नहीं, दीपक कैसे जलेगा ? तब, उसी मन्द स्वर मे मैत्रेय कहता है—'चारुदत्त ही हम लोगों के दीपक हैं जो इस समय कामुक गणिका की तरह स्नेह हीन हो गये हैं।"[४] चारुदत्त की दरिद्रता तथा वेश्याप्रेम के बावजूद, मैत्रेय की उसके प्रति निष्ठा तथा आदर-भावना में रत्तमात्र की कमी नहीं होने पाई है।

वसन्तसेना की हत्या का मिथ्यारोप चारुदत्त के ऊपर लगाया जाना सुन कर मैत्रेय नितान्त विचलित एवं कुपित हो गया है। आवेशपूर्ण स्वरों मे वह न्यायाधीश के समक्ष यों निवेदन करता है—"हे सभ्यगण ! जिसने निर्धनों के लिए भवन निर्माण, बौद्ध भवन, उपवन देवमंदिर, कूप, तालाब एवं यज्ञस्तम्भों से उज्जयिनी नगरी को विभूषित किया, वह निर्धन हो गया व्यक्ति क्या क्षण-स्थायी धन के लिए ऐसा दुष्कृत्य करेगा ? × × × जो मेरा प्रिय मित्र पुष्पित माधवी लता को झुका कर कुसुम चयन नहीं करता, वह दोनों लोको के प्रतिकूल यह कर्म कैसे कर सकता है ?"[५] इस रोषोद्गार मे वह शकार को 'विविध सुवर्ण से अलंकृत बन्दर' एवं 'कुट्टनी पुत्र' कहता है और उस पर काष्ठदंड मे प्रहार कर बैठता है। मैत्रेय का यह समस्त आचरण विवेकहीन होने पर भी, उस जले मुने ईमानदारी से उत्पन्न क्रोध का विज्ञापक है जिससे

---

१ वही, पृ० २७–२८ २. वही, पृ० ७७
३ वही, पृ० ८१ ४ वही, पृ० ९१
५ वही, पृ० ५०४

वह, उस अन्यायपूर्ण एवं असत्य अभियोग के मानसिक संघात से, तिलमिला उठा है। चारुदत्त का इससे भयंकर अपकार हुआ है अवश्य, लेकिन संसार के विदूषक मित्रों के इतिहास में वह अमर महत्त्व का अधिकारी भी हो गया है।

चारुदत्त को प्राण दंड मिल जाने पर मैत्रेय हताश हो जाता है। अपने प्रियवयस्य से विरहित होकर, वह कैसे प्राण धारण कर सकेगा—"अहं ते प्रियवयस्यो भूत्वा त्वया विरहितान् प्राणान् धारयामि ?"[1] चारुदत्त के आदेश से वह बालक रोहसेन को उसे दिखलाने श्मशान भूमि में ले आता है। अपने प्राण त्यागने का वह संकल्प करता है यद्यपि चारुदत्त उसे ऐसा करने से रोकता है। बालक रोहसेन को उसकी माता के पास पहुँचा कर, वह भी मृत्यु का स्वेच्छया संवरण करने का अन्तिम निश्चय कर लेता है। शायद यही एक अवसर है जब वह प्रिय वयस्य चारुदत्त की इच्छाओं का विरोध करने के लिए सन्नद्ध हो गया है।

मैत्रेय सामान्य कोटि का विदूषक नहीं है। वह चारुदत्त का दुःख-सुख का मित्र है—"सर्वकालमित्र मैत्रेय प्राप्त।"[2] धूता जैसी 'विभवानुगता भार्या' के साथ साथ, चारुदत्त को मैत्रेय जैसे सुहृद पर भी गर्व है।[3] शायद, शूद्रक ने उसके सभी अवस्थाओं में समरस भाव से मित्र बने रहने के कारण ही उसे 'मैत्रेय' की संज्ञा प्रदान की है।

शर्विलक

शर्विलक नाटक का 'अनुनायक'[4] है।

वह ब्राह्मण है। दान न लेने वाले तथा चारों वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण का पुत्र है। वह राज्यविप्लव का नेता है और उसीके इर्द-गिर्द वह विप्लव शक्ति तथा स्वरूप ग्रहण करता रहा है। किन्तु, राजविद्रोह वाला कथानक परदे के पीछे चलता रहा है। इसी कारण, शर्विलक के कर्तृत्व का परिचय हमें प्रत्यक्ष नहीं मिलता रहा है। सर्वप्रथम वह सन्धिच्छेद वाले प्रसंग में दिखाई पड़ता है। वह वसंतसेना की दासी मदनिका में अनुरक्त है और उसको दासत्व के बंधन से मुक्त करने के हेतु ही वह सन्धिच्छेद का साहस करता है।[5]

सेंध लगाने की विद्या में वह निष्णात है। शरीर से विशाल है और ऐसी

---

१ वही, पृ० ५१८, २ वही, २५

३ वही, १।२८

४ 'पताका' तथा 'प्रकरी' के नेता को 'अनुनायक' कहा गया है। 'अनुनायक' नायक की कार्य सिद्धि में सहायक होता है।

५. 'मृच्छ०' (चौ०), पृ० १६६

चोड़ी सेंध तोड़ना है जिसमें उसका शरीर आसानी से भीतर बाहर निकल सके। अन्तःपुर में सेंध फोड़ने के लिए दीवाल का वह भाग खोजना है जो जल गिरने से शिथिल पड़ गया हो और जहाँ तोड़ने से शब्द नहीं निकले। वह सेंध तोड़ने के सूक्ष्म नियमों को जानता है। भगवान् कनकशक्ति के बनाये नियमों का उसने अनुगमन किया है।[१] अनेक आकार की सेंधों में से वह 'पूर्णकुम्भ' वाले आकार का सन्धिच्छेद पसन्द करता है। चौरकर्म दूषित है, यह वह जानता है, लेकिन तोभी, वह अपने सन्धिच्छेद-कौशल का वैसा प्रदर्शन करने के लिए लालायित है जिसकी लोग प्रशंसा करें।[२] कार्तिकेय, कनकशक्ति, भास्करनन्दी इत्यादि देवताओं तथा आचार्यों को उसने प्रणाम किया है और इस प्रकार सन्धिच्छेद वाली विद्या के प्रति अपनी गंभीर निष्ठा का प्रदर्शन किया है। ब्राह्मण है, किन्तु पथभ्रष्ट होकर वह यज्ञोपवीत का प्रयोग सेंध का आकार नापने में करता है। इतना साहसी है कि सर्प द्वारा दंशित अंगुली को यज्ञोपवीत से बाँध कर झटिति प्रकृतिस्थ हो गया है और सेंध फोड़ना पूरा कर दिया है।[३] चोरी की कला में अत्यन्त कुशल तथा सावधान दिखाई पड़ता है। चारुदत्त तथा मैत्रेय को सोते देखकर, उसने बड़ी सूक्ष्मता के साथ परीक्षा कर ली है कि वे सचमुच सो गये हैं या केवल कपट की नींद में पड़े हैं।[४] विदूषक के नींद में बड़बड़ाने पर, वह सोचता है क्या उसे जान से मार दे? लेकिन, अभी वह हत्यारा नहीं बन सका है। आरम्भिक विचार को बदल कर कहता है—"हमारे समान ही दीन इस सज्जन पुरुष को क्लेश देना उचित नहीं है।" उसने दीपक को बुझाने के लिए वह अग्नि के कीड़े का प्रयोग करता है और जब दीपक बुझ जाता है, तब उसके मन में तनिक पश्चात्ताप की भावना उत्पन्न होती है कि उसने भी उस ब्राह्मण के कुटुम्ब में अन्धकार उत्पन्न कर दिया। मदनिका के प्रणय के लिए वह दुष्कर्म कर रहा है—उसे इसका क्लेश सताता है।[५] समझता है, उसने अपनी आत्मा का पतन कर दिया—'अपशः आत्मा पातितः।'[६] ऐसा लगता है, जैसे चोरी की विद्या में निपुणता प्राप्त करने के साथ-साथ उसने उस विद्या का व्यावहारिक अभ्यास भी किया है। देखिये, वह अपने विशिष्ट कौशल का कैसा बखान करता है—"चुपचाप भागने में बिल्ली हूँ। शीघ्र भागने में हरिण हूँ। किसी वस्तु का अपहरण करने में बाज, सोये या जगे मनुष्य के पराक्रम निरूपण में

१ वही, पृ० १६०
२ वही, पृ० १६१
३ वही, पृ० १६४
४ वही, पृ० १६६-६७
५ वही, पृ० १६८-६९
६ वही, पृ० १७०

कुत्ता; संकीर्ण पथ से घिसक कर भागने में सर्प, रूप, शरीर तथा वेश के परिवर्तन में साक्षात् माया, भाषा-परिवर्तन में मूनिमती वाणी, संकट के समय शृगाल, भूमि के लिए घोड़ा तथा जल के लिए नौका हूं।"[१]

(२)

मदनिका-विषयक प्रसंग में शर्विलक काम-दग्ध पुरुष के रूप में प्रकट हुआ है। वसन्तसेना के घर जाकर मदनिका को देखता है तो कामदेव की अग्नि से जलते हुए उसके हृदय पर चन्दन का शीतल लेप चढ़ जाता है।[२] वह दरिद्र है और प्रेम के वशीभूत होने के कारण रात को चोरी की है—यह स्पष्ट कथन वह मदनिका से करता है। यह भी गर्व करता है कि साहस में ही लक्ष्मी निवास करती हैं।[३] मदनिका के द्वारा निन्दित होने पर उसने चौर्य-विषयक अपने आदर्श का निरूपण किया है जिसमें बताता है कि वह धन के लोभ से नारी, ब्राह्मण, यज्ञ इत्यादि की पवित्रता का शील भंग नहीं करता और चोरी करते समय भी, उसकी बुद्धि वक्तव्यावक्तव्य का पूर्ण ध्यान रखती है।[४] कामदेव ने उसके गुणों को विनष्ट कर दिया है, फिर भी वह आत्म सम्मान की रक्षा करने में सतर्क है।[५] वह सन्देह हो जाने पर कि मदनिका अन्य पुरुष में अनुरक्त है, वह स्त्रियों तथा वेश्याओं की तीव्र निन्दा करता है—'स्त्री तथा सम्पत्ति सर्पिणी के समान कुटिल गति से चलती हैं, स्त्रियों पर अनुराग नहीं करना चाहिए क्योंकि अनुरक्त पुरुष का भी वे अपमान करती हैं; सत्स्वभाव वाले पुरुषों को चाहिए कि वे वेश्याओं को श्मशान-भूमि के फूल के समान त्याग दें, वेश्या के भवन में उत्पन्न होने वाली नारी पवित्र नहीं होती।'[६] शर्विलक कामी है, किन्तु सम्मान तथा विश्वास का भी आकांक्षी बना हुआ है। वस्तुतः यह एक ऐसा तत्त्व है जो उसे नितान्त विलासी एवं निष्क्रिय नहीं होने देता और वह राज्यक्रान्ति का सफल नेतृत्व करता है।

(३)

राज्य विप्लव के नायक रूप में शर्विलक का अदम्य साहस एवं त्याग प्रशंसनीय है। नव प्राप्त प्रेयसी मदनिका को वह रेभिल के घर भेज कर, स्वतः क्रान्ति के सम्पादनार्थ चला गया है। प्रणय के अनुरोध को वह पीछे ढकेल देता है और प्रजाजन के कल्याण तथा अत्याचार के निराकरण के हेतु और सबसे

---

१ वही, ३।२०
२. वही, ४।४
३. वही, पृ० २०१
४. वही, ४.६
५. वही, ४।९
६ वही, ४।१२-१७

बढ कर, अपने मित्र आर्यक की रक्षा के निमित्त, विद्रोह की अग्नि मे कूद पडता है। आर्यक के बन्दी बनाये जाने का सवाद सुन कर, वह तनिक धम-सकट मे पड गया है, किन्तु तत्काल वह अपने कर्त्तव्य का निर्णय कर लेता है—"ससार मे मनुष्यो के लिए सुहृद् एव वनिता दोनो अत्यन्त प्रिय हैं। किन्तु, इस समय जब मित्र कारागार मे पडा हो, उसके हितार्थ सैकडो सुन्दरियाँ निछावर की जा सकती हैं।"[1] शर्विलक विद्रोह को प्रज्वलित करने का व्यवहारिक तरीका भी जानता है वह राजा पालक के कुटुम्बी, धूर्त, पराक्रमी, वीर, राजा से अपमानित किये गये व्यक्ति, मत्री इत्यादि सभी को उत्तेजित करने चला गया है।[2]

(४)

नाटक के अन्त मे ही पुन शर्विलक रङ्गमञ्च पर आता है। जब वह आर्यक को सिंहासनस्थ बना चुका है। वसन्तसेना तथा चारुदत्त को जीवित देख कर उसे गहरा सन्तोष होता है। सेंध का स्मरण कर, वह चारुदत्त के सामने हाथ जोड कर जाता है, अपना परिचय देता है और पालक वध की सूचना देकर नये राज आर्यक की ओर से उसे कुशावती का राज्य भी समर्पण करता है। वसन्तसेना के प्रति वह कृतज्ञ है क्योंकि उसी की उदारता के फलस्वरूप मदनिका 'वधू' जैसी दुर्लभ पदवी पाकर उसकी पत्नी बनी थी।[3] और, अब शर्विलक वसन्तसेना को भी, घूघट खीच कर, 'वधू' का गौरव प्रदान कर देता है।[4]

शर्विलक परिस्थितियो से चौर्य कर्म मे प्रवृत्त हुआ भी, अपने चारित्रिक गौरव को नहीं भूल सका है। वह सच्चा मित्र है, सच्चा प्रणयी है, उपकार के प्रति कृतज्ञ है, प्रत्युपकार करने के लिए भी लालायित है और सबसे बडी बात यह है कि वेश्या-दासिका की प्रीति मे फँसने के बावजूद कौटुम्बिक एवं गार्हस्थिक मर्यादा के महत्त्व के प्रति सजग है—मदनिका को वधू रूप मे प्राप्त कर लेने के बाद, वसन्तसेना को भी उसी गौरव से विभूषित कर देता है।

सवाहक श्रमण

सवाहक श्रमण भी शर्विलक के समान अनु-नायक, कहा जा सकता है क्यों कि उसने भी नायक चारुदत्त को मूल्यवान् सहायता पहुँचाई है। श्रमण अथवा बौद्ध भिक्षु होने के पूर्व, वह हारे हुए जुआरी के रूप मे हमारे सामने आता है। वह पाटलिपुत्र का निवासी एक गृहस्थ का पुत्र है। उत्सुकता

१ वही, ४।२५ २ वही, पृ० ४।२६
३ वही, ४।२४ ४ वही, पृ० ५९८-९९

एवं कुतूहल से वह इस देश के अवलोकनार्थ उज्जयिनी में आया है। यहाँ वह देह दबाने की कला सीख कर, चारुदत्त की सेवा सादर रूप में से करने लगा था। किन्तु, चारुदत्त के दरिद्र हो जाने पर उसे नौकरी छोड़नी पड़ी है और जीविकोपार्जन के हेतु जुआरी बन गया है। जुए में हार कर वह सभिक माथुर का दस सुवर्ण से ऋणी बन गया है। माथुर की मार के भय से भाग कर, वह वसन्तसेना के घर में जान बचाने के लिए शरण लेता है। यह जान कर कि वह चारुदत्त की सेवा कर चुका है, वसन्तसेना के द्वारा उसका बड़ा आदर किया जाता है, सहानुभूति दिखाई जाती है और उसके ऋण के परिमार्जन में वसन्तसेना अपना आभूषण माथुर को भेज देती है। संवाहक को इस जीवन की विडम्बना से बड़ी विरक्ति होती है और वह तत्काल बौद्ध सन्यासी बन जाता है।

संवाहक चारुदत्त की सज्जनता तथा उदारता से सर्वदैव अभिभूत है। उसे "भूमण्डल का चन्द्रमा" तथा "आराधनीय" बताता है। वसन्तसेना से जो सहानुभूति एवं सम्मान का प्रसाद उसे मिला है, उससे वह वसन्तसेना के प्रति भी कृतज्ञता के भाव से भर गया है। वह उसकी देह का संवर्दन करना चाहता है, किन्तु वसन्तसेना उसके अनुरोध को टाल देती है। उसका मन तब मसोस कर रह जाता है और प्रत्युपकार करने की ललक लेकर, वह वहाँ से "शाक्य-श्रमणक" (बौद्ध सन्यासी) बनने की प्रतिज्ञा कर, बाहर निकल जाता है। तब कुछ जान नहीं पड़ता उसका चरित्र कौन नवीन रङ्ग दिखाएगा।

सहसा सातवें अङ्क के अन्त में वह जीर्णोद्यान के समीप चारुदत्त को दिखाई पड़ता है। बौद्ध भिक्षु वह तब हो गया है और उसका दर्शन चारुदत्त-द्वारा अमाङ्गलिक समझा जा रहा है। स्वच्छ तालाब में वह अपना गंदा चीवर साफ करने के प्रयोजन से जाता है जहाँ शकार से उसकी भेंट होती है। शकार उसे एक बेंत मारता है। वहाँ संवाहक श्रमण बिल्कुल विरक्त तथा प्रशान्त दिखाई पड़ता है। धर्म का उपदेश करता है—"अपने पेट को संयमित रखो। परमात्मा के ध्यान रूपी नगाड़े से सदा जगे रहो। पंच ज्ञानेन्द्रियाँ चोर हैं जो चिरसंचित धर्म-सम्पत्ति का अपहरण करती हैं।"[1] सन्यासी की वेशभूषा को वह कोई महत्त्व नहीं देता। सिर, दाढ़ी इत्यादि मुड़ा लेना और साधु बन जाना व्यर्थ है जब तक मन मुण्डित नहीं किया जाए, विषय-वासनाओं का दमन नहीं किया जाए—संसार से विरक्त का यह महत्त्वपूर्ण पाठ वह पढ़ चुका है।[2] किन्तु, सम्भवतः नया भिक्षु बनने के कारण ही, उसमें पूर्ण क्षमाशीलता नहीं आ

१ वही, ८।२.   २. वही, ८।३.

सकी है। प्रकार की मूर्खता-पूर्ण डाँट फटकार सुन कर, वह अगमगो-द्वारा उसके प्रति आक्रोश व्यक्त करता है 'नाटयेन आक्रोशति।'[१]

उस सन्यस्त जीवन में भी जब वह पचेन्द्रियों के दमन इत्यादि से परलोक बनाने के लिए चिन्तित है, वसन्तसेना का उपकार वह भूल नहीं पाया है। वह उसे भी 'बुद्धोपासिका' समझता है और यह महसूस कर रहा है कि दस सुवर्ण के लिए जुआरियों से मुक्त कर, उसने उसे खरीद लिया है। वह कैसे वह उपकार लौटाये, यही उसकी चिन्ता बनी हुई है।[२] संयोग से उसकी यह अभिलाषा पूरी होती है। स्मृति उसकी इतनी प्रामाणिक है कि वह चैतन्य प्राप्त करती वसन्तसेना का हाथ पहचान जाता है। कौपीन से जल निचोड़ कर, वह उसे नव जीवन दान करता है और समीपस्थ विहार में अपनी 'धर्म-भगिनी' की देख-रेख में उसे सौंपता है। वसन्तसेना को युवती जानकर उसे थोड़ी चिन्ता हुई है, किन्तु अपने इन्द्रिय-संयम का उसे गर्व एवं विश्वास है—"किं करोति राजकुल तस्य परलोको हस्ते निश्चल ?"[३] उसने वहाँ वसन्तसेना की परिचर्या की है और उसे पूर्ण स्वस्थ बना दिया है। तब पुराने उपकार का प्रतिदान कर, वह कृतकाम बन गया है।[४]

लेकिन चारुदत्त का उपकार तो संवाहक के ऊपर बना ही हुआ है। शायद वह उपकार इतना गहन था कि उसके प्रतिदान की चिन्ता उसे बिल्कुल भूल ही गई थी। वह अचानक वसन्तसेना को चारुदत्त के घर पहुँचाने के उद्देश्य से ले जाते हुए श्मशान-स्थल में पहुँच जाता है और चारुदत्त की आसन्न मृत्यु देख कर, उसके चरणों में गिर पड़ता है। चारुदत्त उसे "अकारणबन्धु" कहता है और पहचानता नहीं।[५] तब वह सम्पूर्ण कहानी आद्योपान्त कह सुनाता है। फलागम के उस आनन्दमय अवसर पर चारुदत्त जब पूछता है कि उसकी क्या इच्छा है जिसे पूरी किया जाय; तब उसने सच्चे श्रमण की भाँति उत्तर दिया है— "इस प्रकार की नश्वरता देख कर, प्रव्रज्या में मेरी आदर बुद्धि दूनी बढ़ गई है।"[६]

संवाहक भिक्षु पृथिवी के सम्पूर्ण विहारों का कुलपति बना दिया गया है। किन्तु, सचाई यह है कि उस मंगलमय घड़ी में उसे किसी पुरस्कार की आवश्यकता नहीं थी, कोई कामना नहीं थी। शिष्टाचार में, उस महत्त्वपूर्ण पद

---

१ वही, पृ० ३८३
२. वही, पृ० ४४६
३ वही, ८।४७.
४ वही, पृ० ५६३
५ वही, पृ० ५७६
६ वही, पृ० ५९९.

पर आमीन कराये जाने के उपलक्ष मे, उसने कहा, 'भली बात है, भली बात है'—"पिअ, णो पिअ।"[1]

चेट और विट

शृंगाररस के नायक के सहायको मे विदूषक के साथ-साथ, 'चेट' और 'विट' भी गिनाये गये हैं। सामान्यतया, इन्हे स्वामिभक्त, बात-चीत तथा हास्य विनोद मे चतुर, कुपित वधू के मान को भंग कराने मे कुशल तथा सच्चरित्र होना चाहिए।[2] 'चेट' साधारण दास होता है। 'विट' का विशिष्ट लक्षण किया गया है। भोग विलास मे अपनी सम्पत्ति खो चुकने वाला, धूर्त, नृत्यगीतादिक कलाओ मे से एक का जानकार, वेश्याओ के उपचार मे कुशल, वार्त्तालाप मे निपुण, मधुर वाणी तथा आचरण का अभ्यासी और गोष्ठियो मे सम्मानित पुरुष 'विट' कहलाता है।[3]

(१)

'मृच्छ०' मे तीन चेट (शकार, चारुदत्त तथा वसन्तसेना के) और दो विट (शकार तथा वसन्तसेना के) आये हैं। शकार का चेट स्थावरक है चारुदत्त का चेट वर्धमानक है और वसन्तसेना का चेट कुम्भीलक है। वर्धमानक सीधा-सादा, ईमानदार नौकर है। वसतसेना को पुष्पकरडक उद्यान में इसे ही प्रातःकाल पहुँचाने का आदेश चारुदत्त ने दिया है। किन्तु, वह गाड़ी ढँकने वाला वस्त्र भूल गया है और उसीको लाने-जाने मे हुए विलम्ब के कारण, प्रवहण विपर्यय की वह दुर्भाग्यपूर्ण घटना घटित हुई है। भोला भाला इतना है कि जब आर्यक चुपके से गाड़ी पर चढ़ता है और उसके पैरों मे पड़ी शृंखला बजती है, तब वर्धमानक उसे वसन्तसेना के चरण नूपुरों की झनकार समझ लेता है। स्वामिभक्ति, भोलापन तथा निश्छलता के अतिरिक्त अन्य कोई विशेषता वर्धमानक मे लक्षित नहीं होती। कुम्भीलक वेश्या का नौकर है। अतएव, वह वर्धमानक की अपेक्षा चतुर एव तनिक धूर्त भी है। वह सात छिद्रो वाली बासुरी से मधुर ध्वनि निकालता है, सात तारों से बजने वाली

---

१. वही, पृ० ५९९

२ "शृङ्गारेऽस्य सहाया विटचेटविदूषकाद्याः स्यु।
भक्ता नर्मसु निपुणा कुपितवधूमान-भञ्जना शुद्धाः॥"
(सा० द०, ३।४०)

३ "सभोगहीनसम्पद्विटस्तु धूर्तः कलैकदेशज्ञः।
वेशोपचारकुशलो वाग्मी मधुरोऽथ बहुमतो गोष्ठ्याम्॥" (वही, ३। ४१)

बीणा बजाता है और गधे के तुल्य गाना गाता है।[1] वसन्तसेना के आगमन की सूचना देने वह चारुदत्त के घर आया है। शरारत से विदूषक के ऊपर, छिपे-छिपे, ककडी मारता है और तब उसे सामने आया देख कर, 'वसन्त' और 'सेना' वाली पहेली बुझाकर विदूषक की बुद्धि को चकमा देने की चेष्टा करता है।[2] मैत्रेय की तुलना में वह अधिक चतुर प्रदर्शित किया गया है। ये दोनों चेट सामान्य कच्चा के हैं, यद्यपि इनमे वर्धमानक ने कथा विकास मे निश्चित सहयोग दिया है।

चेट स्थावरक का, लेकिन, अपना व्यक्तित्व उभर आया है। वह शकार की सेवा मे, उसी के अन्न से पला है। साधारणत वह स्वामिभक्त है और शकार की लम्पटताओं मे सहायता पहुँचाता है। वसन्तसेना का पीछा करते हुए शकार के साथ वह भी रहा है। चित्त एव कल्पना से कोमल प्रतीत होता है। भयभीत भागती हुई वसन्तसेना को वह सुन्दर पूँछ वाली ग्रीष्ममयूरी से तुलित करता है और उससे ठहर जाने का अनुरोध करता है क्योंकि 'मेरे स्वामी तुम्हारे पीछे वैसे ही दौड रहे हैं जैसे वन मे गये हुए मुर्गी के बच्चे को पकडने के लिए लोग दौडते हैं।"[3] वह वसन्तसेना के प्रति तो कोमल भाव रखता ही है, साथ-ही यह भी चाहता है कि वह शकार के काम की तृप्ति करे। इसके निमित्त वह वसन्तसेना को शकार के घर मिलने वाले मछली के माँस की प्रचुरता का प्रलोभन भी देता है।[4]

लेकिन, स्थावरक का वास्तविक चरित्र वसन्तसेना के मोटन वाले प्रकरण में उद्भासित हुआ है। शकार वसन्तसेना को जान मारने के लिए उसे सुवर्ण का कंकण, सोने का आसन तथा सभी चेटों का प्रधानत्व, ये प्रलोभन देता है, लेकिन वह ऐसा 'दुष्कार्य' करने से इनकार करता है। वह स्पष्टभाषी है और धर्मभीरु है। वह दो-टूक निवेदन करता है—"स्वामी! आप मेरे शरीर पर समर्थ हैं, चरित्र पर नहीं।" वह परलोक से डरता है, पाप एव पुण्य के परिणामों में स्पष्ट विभेद करता है। उसने पूर्वजन्म मे पाप किया है जिस कारण वह पराम्नभोजी, "परपिण्डभक्षक" बना है।[5] अर्थात्, उसे अपनी वर्तमान अवस्था से असतोष है, दुःख है और वह पुन स्त्री-हत्या जैसा पाप करने को तैयार नहीं होता।[6] जब शकार उसे खदेडता है, तब वह "स्वामी की आज्ञा" का पालन कर वहाँ से चला तो गया है, किन्तु वसन्तसेना के समीप जाकर यह

---

१ 'मृच्छ०' (चौखम्बा) ५।११ २ वही, पृ० २७० ७२
३ वही, १।१९.
४ वही, १।२६
५. वही, पृ० ४१५
६. वही, ८।२५

निवेदन भी करता है—"आर्य ! तुम्हें बचाने के लिए मुझमे इतनी ही क्षमता है।"[१] वसन्तसेना के कण्ठनिपीडन के बाद, स्थावरक जब लौट कर, उसे मूर्छित देख समझता है कि वह मर गई, तब वह गहरे अनुताप से भर जाता है कि गाडी से वसन्तसेना को यहाँ लाकर, उसी ने वह हत्या कराई है।[२] शकार पुन वसन्तसेना के शरीर से आभूषण उतार कर, उन गहनों का प्रलोभन उसे देता है कि वह सत्य का उद्घाटन नहीं करे। किन्तु, स्थावरक पुन स्वर्ण के प्रलोभन से ऊपर उठ जाता है। अपनी सम्पूर्ण स्वामिभक्ति के बावजूद, वह स्त्री हत्या जैसे गर्हित कृत्य को करने मे असमर्थ है, और समय आने पर वह उसे छिपा भी नही सकेगा। शकार उसके चरित्र की इस विशेषता को भाँप गया है और इसी कारण, उसे अपने महल की नवनिर्मित कोठी मे बन्दी बना देता है।

स्थावरक का साहस विस्मयजनक रूपो मे वहाँ चमक गया है जहाँ वह चांडालो की घोषणा सुन कर, निर्दोष चारुदत्त को बचाने के लिए महल की खिड़की से अपनी बेड़ियो के साथ, नीचे कूद पडा है। उसे अपने मरने की चिन्ता तनिक भी बाधित नही कर सकी है क्योंकि 'कुलपुत्र-रूपी विहगो के आश्रयीभूत' चारुदत्त की प्राण-रक्षा के निमित्त मरने से स्वर्ग की प्राप्ति होगी।[३] स्थावरक नीचे कूदता है और वसन्तसेना की हत्या का रहस्य विज्ञापित कर देता है। शकार वहाँ भी उसे सुवर्ण देकर, सत्य का अपलाप कराना चाहता है। किन्तु, स्थावरक शकार के उस उत्कोच को भी पोषित कर देता है, और जब चांडाल उसकी बात पर विश्वास नही करते, तब उसे गहन आन्तरिक पीड़ा होती है। उसे अपनी दासत्व की स्थिति पर तीव्र क्लेश होता है कि उसके सत्य वचन पर भी विश्वास नहीं किया जाता क्योंकि वह दास है। वह चारुदत्त के चरणों मे गिर पड़ता है और करुण स्वरों में निवेदन करता है। "आर्य चारुदत्त ! आपको बचाने के लिए मुझमे इतनी ही शक्ति थी।"— "एतावान् मे विभव ।"[४] ठीक यही वाक्य उसने वसन्तसेना से कहा था जब शकार ने उसे डाँट कर, किसी एकान्त स्थान में छिप जाने के लिए भेजा था।

स्थावरक अपनी सामर्थ्य जानता है। दास है। वसन्तसेना अथवा चारुदत्त को बचाने के लिए जितना सम्भव था, उसने किया है। कितनी बार तो उसने अपने प्राणों की बाजी लगा दी है। वह सत्य का उद्घोषक तथा सज्जनता एवं शालीनता का पूजक है। धर्म तथा भगवान् से डरता है। स्वामिभक्त भी वह

---

१ वही, पृ० ४१९ २ वही, पृ० ४३४

३. वही पृ० ५४३ ४ वही पृ० ५५१-५२

बड़ा ही निष्ठावान् है, और शायद साधारण स्थितियों में शकार की इच्छाओं का पालन उसने अवश्य किया होगा। किन्तु, शकार ने उसे धर्मसङ्कट में डाल दिया।

स्थावरक स्थिति से दास है लेकिन चरित्र से 'स्वर्गीय' है।

(२)

वसन्तसेना का विट शास्त्रीय जाति का विट है। वह चतुर, मधुर भाषण करने वाला तथा वेशोपचार में कुशल है। शृंगार की ललित कल्पनायें उसके मानस में उत्पन्न होती हैं और वह उन्हें सुन्दर, सुसज्जित वाणी में अभिव्यक्त करता है। अभिसारिणी वसन्तसेना की ओर लक्ष्य करके वह कहता है—'सुरत के समय लज्जा की सहचरी, प्रिय पथिकों से अनुगत राग बढ़ाने वाली, रतिक्षेत्र की ओर लीलापूर्वक पदार्पण करने वाली वसन्तसेना कमल से रहित लक्ष्मी के समान है, कामदेव का सुकुमार अस्त्र है, कुलवती रमणियों का शोक है तथा मदन के श्रेष्ठ वृक्ष का मनोरम फूल है।'[१] दुर्दिन का वर्णन करते हुए वह एक ही पद्य में मेघ तथा राजा दोनों का सटीक चित्रण कर जाता है।[2] घोर जल वृष्टि का वर्णन भी वह कई चित्रों में कर गया है।[3] विट के प्रकृत कार्य को भी—गणिकाओं को रति विहार के लिए शिक्षा देना—वह बड़े सुन्दर तथा सुकुमार ढंग से पूरा करता है। वह समझता है, वसन्तसेना स्वतः सुरत-कलाओं में निपुण है, किन्तु तो भी, वह उससे प्रगाढ़ स्नेह करता है और उसीके कारण, वह उसे समयोपयुक्त उपदेश देता है— यदि अत्यन्त कोप करोगी तो रति का आविर्भाव नहीं होगा। अथवा, बिना ईषत् कोप किये, काम जागृत ही कहाँ होता है? अतएव कान्त को कुछ कुपित कर दो तथा कुछ स्वयं कुपित हो जाओ। मनाने पर पुनः प्रसन्न हो जाओ। और तब प्रियतम को भी प्रसन्न कर लो।'[४] किन्तु, सचमुच स्नेह के वश ही उसने वसन्तसेना को यह अनाकांक्षित उपदेश दिया है। वह तुरन्त वापस भेज दिया जाता है और तब भी जाते समय यह उपदेश दे गया है—'वसन्तसेने! गर्व के सहित माया, छल तथा मिथ्या ही जिसकी जन्म भूमि है, धूर्तता ही जिसकी आत्मा है, सुरत की लीला ही जिसका भवन है, रमण का आमोद ही जिसका सवय है, इस वेश्या रूपी बाजार के, विक्रेय द्रव्य अपने यौवन का उदारतापूर्वक आदान प्रदान करो और वही मूल्यदान की सिद्धि बन जाएगा।'[५]

---

१ वही, ५।१२
२ वही, ५।१७
३ वही ५।१९,२१,२४,२७
४. वही, ५।३४
५ वही, ५।३६

लेकिन, शकार का विट भी, स्थावरक के समान, विशिष्ट महत्त्व से मण्डित हो गया है, अंधेरी अंधेरी रात मे शकार के साथ वसन्तसेना का पीछा करने वालो में वह भी है। वह भी चाहता है कि वसन्तसेना शकार की काम तृष्णा को शान्त करने के लिए तैयार हो जाय। उसकी मनोभावना कोमल एवं सुकुमार है। गरुड से भयभीत सर्पिणी के समान वेगपूर्वक दौड़ने वाली वसन्तसेना के भागने को वह उचित नहीं समझता। किन्तु, वह उसे बलपूर्वक रोकने के लिए तत्पर नहीं है—'हे सुन्दरी! मेरा प्रयत्न बलात् तुम्हारे निग्रह मे नहीं है।"[1] वसन्तसेना के त्वरितगति से भागने के कथन मे वह अनेक सटीक एवं व्यंजक उपमाएँ नियोजित करता है।[2] सुकुमार सौन्दर्य का उसे इतना ध्यान है कि अन्धकार मे दृष्टि आच्छन्न होने पर भी, वह समझ जाता है कि शीघ्रता पूर्वक भागने के कारण वसन्तसेना के कोमल कपोल कुण्डल के घर्षण से क्षतिग्रस्त हो गये हैं।[3] मधुर भाषण की कला मे वह निपुण है। वसन्तसेना के यह पूछने पर कि उन्हें उसका कौन सा आभूषण चाहिए विट उत्तर देता है—"ऐसा मत कहो, वसन्तसेने! उद्यान-लता से फूलो की चोरी नही की जाती।"[4] उसका विचार है कि वसन्तसेना को गणिका होने के कारण अभिलाषी याचकों को अपने उत्फुल्ल यौवन का सहर्ष दान देना चाहिए। वसन्तसेना जब शकार को "अनार्य" वाक्यों के कथन के लिए डाँटती है, तब विट बड़े सरल तथा शिष्ट ढंग से उसे यों समझाता है—'वसन्तसेने! तुमने वेश्यालय की मर्यादा के विरुद्ध भाषण किया है। देखो। युवको से सेवित वेश्यालय को स्मरण करो। बाजार मे धन देकर खरीदी जाने वाली वस्तु के समान देह तुम धारण करती हो अत रसिक और अरसिक दोनों के साथ तुम्हें समान आचरण करना चाहिए तालाब मे विद्वान् ब्राह्मण तथा मूर्ख भी स्नान करते हैं। जिस विकसित वल्लरी को मयूर ने झुकाया है, उसे कौवा भी झुकाता है। जिस नौका से ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य पार उतरते हैं, उसी से शूद्र भी। अतएव, तुम वापी, लता तथा नाव के समान होने के कारण, सभी का समान स्वागत करो।"[5] लेकिन, जब वह वसन्तसेना का मनोभाव समझ जाता है ("गुण खलु अनुरागस्य कारणम् न पुनर्बलात्कार"), तब उसे परेशान करना बन्द कर देता है और, बल्कि वह भी चाहता है कि वसन्तसेना चारुदत्त के समीपस्थ घर में भाग कर सुरक्षित हो जाय। वह स्पष्ट यद्यपि परोक्ष रीति से वसन्तसेना को सलाह

---

१ वही, १।२२   २ वही, १।१७,२२,२७

३ वही, १।२४   ४ वही, पृ० ४८

५ वही, १।३१-३२

भी देना है कि वह अपनी फूलों की माला तोड कर फेंक दे और अपने नूपुरों इत्यादि को समेट लें जिससे उसकी प्रगति का पता बताने वाले संकेत (सुगंध तथा झनकार) विनष्ट हो जायें।' अतएव, विट उदार एवं समझदार है।

रदनिका के प्रति अनजान में हुए अपमान के लिए विट मैत्रेय से क्षमा माँगता है। उसे यह ध्यान है कि किसी कुलजा स्त्री के साथ किया गया दुर्व्यवहार अनुचित है। वेश्या युवती के भ्रम में सदाचार का उल्लंघन हो जाने के लिए वह दुःख व्यक्त करता है और तलवार हटा कर विदूषक के चरणों में बद्धाञ्जलि हो गिर पड़ता है।[2] वह विनम्र है और विट होते हुए भी सामाजिक मूल्यों के प्रति निष्ठा रखता है। चारुदत्त की भावनाओं का उसे तीव्र ध्यान है और इसी कारण, विदूषक से अनुरोध करता है कि रदनिका वाली बात 'आर्यचारुदत्त' से नहीं बताई जाय। वह चारुदत्त के औदार्य इत्यादि गुणों से भयभीत है और जब शकार चारुदत्त की निर्धनता पर कटाक्ष करता है, तब वह शकार को 'मूर्ख' कहता हुआ, चारुदत्त के दानशीलता, परोपकारिता प्रभृति गुणों का सावेश वर्णन कर जाता है।[3] शकार को, जैसे उस बलात् प्रणय के लिए कोसते हुए, यह खरी सीख देकर उसे वहाँ अकेला छोड़ कर वह चला गया है— हाथी स्तम्भ में बाँध कर वश में किया जाता है? घोड़ा लगाम के द्वारा नियन्त्रित किया जाता है और स्त्री हृदय से अनुरक्त होने पर वशीभूत की जाती है।"[4] नारी वशीकरण की कला का उसने सुन्दर कथन किया है।

आठवें अङ्क में विट के चरित्र की असली विज्ञप्ति हुई है। वसन्तसेना को गाड़ी में बैठी देख कर, यह समझ कर कि वह शकार के समीप जानबूझ कर रमणार्थ आई है, उसे दुःख होता है और वह कहता है, कि चारुदत्त जैसे हंस को छोड़ कर उसे शकार-जैसे कौवे के पास नहीं आना चाहिए था।[5] किन्तु, वस्तुस्थिति को जान कर, वह वसन्तसेना को आश्वस्त करता है कि वह भयभीत न हो। उस क्षण से उसने निरन्तर चेष्टा की है कि वसन्तसेना के प्राण सङ्कट में न पड़ें। शकार के इस अनुरोध को कि वह वसन्तसेना को मार डाले, वह स्पष्ट इनकार करता है। वह धर्म-भीरु है और पाप पुण्य की भावनाओं से अनुशासित है। अतएव उसने साफ-साफ कह दिया—"यदि मैं

---

१ वही १।३५ — २ वही, पृ० ६९

३ वही, १।४६–४८ — ४. वही, १।५०

५ वही, ८।१६

उज्जयिनी की विभूषण वेश्याओं के विरुद्ध कुलकामिनी के समान व्यवहार करने वाली इस स्त्री की हत्या करूँगा, तो परलोक-रूपी नदी को किस नाव से पार करूँगा ?''[1]

विट, लेकिन, अभी मन में सोच रहा था कि शायद एकान्त में वसन्तसेना शकार के रमण-प्रस्ताव को स्वीकार कर ले। इस लिए, वह अलग हट जाने का विचार करता है और शकार से यह आश्वासन प्राप्त कर लेने पर कि वसन्तसेना उसके हाथों धरोहर रहेगी, वह अलग चला भी जाता है। छिप कर देखने से जब उसे विश्वास हो जाता है कि शकार काम के सवार से दोष हो गया है, तब निश्चिन्त होकर निजन स्थान को चला जाता है। वस्तुत विट चाहता था कि यदि वसन्तसेना शकार के आचरण से प्रसन्न होकर उसका रमण-प्रस्ताव स्वीकार ले तो वह अच्छा ही होगा। किन्तु, यही उसकी भूल थी और सबसे बड़ी भूल उसने यह की कि उसने शकार की धरोहर वाली बात पर विश्वास कर लिया और वसन्तसेना की हत्या में परोक्ष रूप से सहयोगी बना। मरी वसन्तसेना को देख कर वह मूर्च्छित हो जाता है और संज्ञा प्राप्त करने पर यों शोकविह्वल उद्‌गार प्रकट करता है—"हा अलङ्कार-विभूषणे ! सुवदने लीलारमोद्‌भाविनि ! सुजनता की नदी ! सुहासपुलिने ! उदारता रूपी जल की नदी विलुप्त हो गई ! रति पृथ्वी पर अवतीर्ण होकर पुन स्वर्ग चली गई ! हाय ! हाय ! 'कामदेव का बाजार लुट गया !''[2] वसन्तसेना के प्रति करुणा पूर्वक यों निवेदन करता है—'हे सुन्दरी ! दूसरे जन्म में तुम वेश्या मत बनना। चरित्र गुण से युक्त वसन्तसेने ! तुम किसी निर्मल कुल में जन्म लेना।''[3]

अनतर, शकार को 'पापी', 'पामर' कह कर और अपनी तलवार भांजते हुए, विट शर्विलक चन्दनक इत्यादि विद्रोहियों की पंक्ति को पृथुल बनाने चला गया है।[4]

अतएव शकार का विट अपनी जीविका के अनुरूप विशेषताओं को रखता हुआ भी, शिष्ट है, सज्जन है, धर्म-भीरु है, साहसी एवं निर्भीक है और वर्तमान शासन-तन्त्र की बुराइयों तथा अत्याचारों के प्रति सजग एवं सावधान भी है। उसका अपना विशिष्ट व्यक्तित्व नाटक में निखर आया है और वह शृंगारी संसार के सामान्य विटों की बिरादरी से निकल कर, हमारी प्रशंसा तथा सहानुभूति का भाजन बन गया है।

---

१ वही, ८।२३ | २. वही, ८।३८
३ वही, ८।४३ | ४ वही, पृ० ४४१.

धूता और रोहसेन . मदनिका और रदनिका

(१)

धूता चारुदत्त की धर्म-परिणीता पत्नी है। वह 'टिपिकल' हिन्दू नारी है जिसके लिए पति ही देवता एवं भगवान् है तथा जो पति के कृत्यों की साधारणत आलोचना नहीं सुनती। धूता धरोहर वाले आभूषण के चोरी चले जाने पर अत्यन्त दु खित हो जाती है, यह सोचकर कि निर्धनता के कारण लोग यही समझेंगे कि चारुदत्त ने आभूषण के लोभ से सेंध लगाने का वह छल किया है, और वह अपने नैहर की बहुमूल्य रत्नावली वसन्तसेना को बदले मे लौटाने के लिए बिना मांगे प्रदान कर देती है। चारुदत्त, इसी कारण, अपने को दरिद्र नही समझता है, यह अनुभव कर कि उसने ऐसी "विभवानुगता" सच्ची पतिभक्ता पत्नी पाई है।[१] छठे अक मे जब वसन्तसेना रत्नावली उसे भेजती है, तब धूता यह कह कर उसे लौटा देती है कि 'आर्यपुत्र ही मेरे आभूषण हैं" और उसे अन्य अलकार की आवश्यकता नहीं है। अन्तिम अक मे तो धूता ने चितारोहण का उपक्रम कर, अपनी सतीत्वपूर्ण पति-निष्ठा का ज्वलन्त प्रमाण प्रस्तुत किया है।

रोहसेन बालक है। बालकोचित मनचलापन तथा हठवादी आग्रह उसमे भी वर्तमान है। सोने की गाडी छोडकर, मिट्टी की गाडी से खेलने के लिए व ह हहरता, ललकता है। दरिद्रता की मनोग्रन्थि उसमें इतनी जमी हुई है कि वह वसन्तसेना को अपनी माता मानने के लिए तैयार नही होता क्योकि वह आभूषणों से सुसज्जित थी जब कि धूता गहने नही पहनती। लेकिन, रोहसेन पिता को बेहद प्यार करता है। चाडालो से उसने प्रार्थना की है कि वे उसके पिता को छोड दें और उसे ही उसके बदले मे मार डालें। रोहसेन बालक होते हुए भी होशियार है।

जैसा हमने अन्य प्रसग मे कहा है, रोहसेन को लाकर शूद्रक ने चारुदत्त को जो वात्सल्य से अनुप्राणित दिखाया है, उसके फलस्वरूप, कालिदास के समान उसका नायक भी प्रणयी के साथ-साथ, पितृत्व की गरिमा से मण्डित हो गया है।

(२)

मदनिका वसन्तसेना की प्रिय, विश्वस्त सखी-सहचरी है यद्यपि सेवा-वृत्ति से दासी है। वह वसन्तसेना के प्रणय-रहस्य की गोप्त्री तथा पोषिका है। मधुर तथा चतुर वाणी बोलने मे निपुण है। वसन्तसेना की रचमात्र

---

१ वही, ३।२८

उद्विग्नता भी उसे उद्विग्न बना देती है। प्रेम की पहचान उसकी गहरी तथा अमोघ है। वसन्तसेना का शून्य हृदय देखकर समझ जाती है कि वसन्तसेना किसी हृदयस्थ व्यक्ति की अभिलाषा से उद्विग्न है। दूसरे की चित्तवृत्ति को परखने में वह पण्डिता है—"परहृदयग्रहणपण्डिता मदनिका खलु त्वम्।"[1] मदनिका कैसी ललित, विदग्ध वाणी बोलती है, यह उसके इस प्रश्न से उद्‌भूत होता है—"बड़े आनन्द का विषय है। इस महोत्सव में कौन भाग्यशाली तरुण आपका अनुगृहीत हुआ है? तो आर्या बतायें कि कोई राजा अथवा राजवल्लभ सेवित हुआ है?"[2]

मदनिका शर्विलक की प्रेयसी रही है। किन्तु, वसन्तसेना के प्रति उसका स्नेह बड़ा ही कोमल एवं निष्ठापूर्ण रहा है। यह जानकर कि शर्विलक ने उसकी मुक्ति के लिए सेंध तोड़कर चोरी की है, वह स्पष्ट कहती है कि उसने अपने शरीर एवं चरित्र दोनों को संशय में डाल दिया है। और, यह जानकर कि उसने चारुदत्त के घर सेंध फोड़ी है, मदनिका मूच्छित हो जाती है क्योंकि उसे भय होता है कि शर्विलक ने चारुदत्त के साथ शायद हिंसापूर्ण आचरण किया हो। किन्तु शर्विलक के प्रति भी उसका प्रेम सच्चा है क्योंकि शर्विलक की स्त्रियों के प्रति तीव्र टिप्पणी-मयी सावेश उक्तियों को सुनकर, वह तनिक भी न अन्यथा ही मानती है और न स्वयं विचलित ही होती है। वसन्तसेना से उसने एक ही झूठ कहा है और वह यह कि शर्विलक की सच्ची पहचान उसने उससे छिपा ली है। जब वसन्तसेना उसे शर्विलक को सौंपती है, तब वह कृतज्ञताभिभूत होकर, उसके चरणों में गिर पड़ती है।

मदनिका स्नेहमयी सहेली है और वह अपने प्रणय की निष्ठा के कारण ही, 'वधू' बन गई है।

रदनिका चारुदत्त की चेटी है। दरिद्रता में भी वह उसकी सेवा निष्ठा के साथ करती जा रही है। आज्ञाकारिणी है और चारुदत्त की गिरी अवस्था से अत्यन्त सन्तप्त है। रोहसेन की देखभाल का दायित्व उसी के ऊपर है। बालक के स्वर्णशकटिका से खेलने के हठ पर वह अत्यन्त दुःख प्रकट करती हुई कहती है—"पुत्र! हम लोगों के यहाँ सोने का व्यवहार कहाँ है? पिता चारुदत्त के सम्पत्तिशाली होने पर पुनः सोने की गाड़ी से खेलना।"[3] रदनिका-जैसी दासी पाकर, चारुदत्त दरिद्रता में भी सुखी है।

---

१ वही, पृ० ९६ २ वही, पृ० ९६
३ वही, पृ० ३१८.

प्रकीर्ण पात्र

(१)

न्यायालय वाले दृश्य में अधिकरणिक की अवतारणा हुई है। अधिकरणिक ने नाट्यवस्तु के प्रवाह को निश्चित गति प्रदान की है। वह न्यायनिष्ठ है, यद्यपि वह शकार की दुष्टता से डरता है और चारुदत्त की सज्जनता एवं शालीनता से प्रभावित है। उसे यह विश्वास नहीं होता कि चारुदत्त-जैसी भव्य आकृति वाला व्यक्ति वसन्तसेना की हत्या जैसा गर्हित दुष्कृत्य कर सकता है। इसी कारण, अभिवादन के साथ वह चारुदत्त को बैठने के लिए आसन प्रदान करता है।

अधिकरणिक ने चारुदत्त के प्रति जो सम्मान प्रदर्शित किया है, उसके लिए शकार हो नहीं, समालोचक भी उस पर रुष्ट हो गये हैं। मैंने वस्तु विन्यास की समीक्षा वाले प्रकरण में इस विवाद का विवेचन किया है और दिखाया है कि न्यायाधीश ने न्याय के सुकुमार अनुरोधों का उल्लंघन नहीं किया है और न कोई प्रतिकूल आचरण ही किया है। पाठक वह सदर्भ देख सकते हैं। यहाँ केवल इतना ही कहना अलम् है कि प्रमाण की छान बीन में जो सावधानी न्यायाधीश को बरतनी चाहिए, वह इस अधिकरणिक ने बरती है। चारुदत्त के विरुद्ध जब प्रमाण मिलते गये हैं, तब उसने एक मिनट के लिए भी अपनी वैयक्तिक रुचियों, प्रवृत्तियों अथवा विश्वासों को न्याय के मार्ग में बाधक नहीं होने दिया है। न्यायाधीश होने के साथ, वह मनुष्य भी है और सभ्य सुसंस्कृत मनुष्य। इन दोनों स्थितियों का उसने नितान्त सुकुमारता के साथ पालन किया है। मनु के विधान का पालक को स्मरण करा कर, उसने चारुदत्त के प्रति अपनी आन्तरिक सहानुभूति की विज्ञप्ति अवश्य की है, किन्तु निर्मम न्याय की तुला की पवित्रता पर तनिक आँच नहीं लगने दी है। राजा पालक की आज्ञा की सूचना मिलने पर, अधिकरणिक ने बड़े गंभीर स्वरों में आदेश दिया है—"भद्र शोधनक ! अपसार्यतामयं वटु । × × × क कोऽत्र भोः ! चाण्डालाना दीयतामादेश ।"[२]

"भद्र शोधनक ! इस ब्राह्मण को हटाओ। यहाँ कौन है ? कौन है ?

---

१ "क्या सर्वप्रथम राजा का साला ही विचारप्रार्थी है ? × × × आज न्याय विमर्श में व्याकुलता छा जाएगी।" ('मृच्छ०', पृ० ४६०)

"यह मूर्ख सब कुछ कर सकता है। भद्र ! कह दो कि तुम्हारे अभियोग पर विचार आज ही होगा।" (वही, पृ० ४६१)

२ वही, पृ० ५१८

चाण्डालों को आदेश दो।"—अधिकरणिक के इन अंतिम वाक्यों में 'न्यायाधीश' की निर्मम न्यायशीलता और 'सरकारी मनुष्य' की सुकुमार चित्तवृत्ति, दोनों की मर्मस्पर्शी छुईमुई की युगपत् व्यंजना हुई है।

(२)

राजा पालक निर्मम, विवेकहीन तथा अत्याचारी शासक है। विलासी भी है। उसकी शासन नीति के कारण प्रजा में विक्षोभ एवं संत्रास व्याप्त है। अपने साले शकार को अत्याचार करने की छूट उसने दे दी है। स्वयं यज्ञ-याग में विश्वास रखता है लेकिन मनु के वचनों का उल्लंघन कर उसने चारुदत्त का प्राण दंड क्षमा नहीं किया है। डरपोक इतना है कि सिद्धों की वाणी में विश्वास कर आर्यक को बंधनगृह में डाल दिया, और अयोग्य तथा मदान्ध इतना है कि राज्य-क्रान्ति की योजना को विफल नहीं बना सका। विलासिता, नृशंसता तथा विवेकहीनता से शासन पट्ट अन्ततोगत्वा पलट जाता है—इस सत्य का जीवन्त उदाहरण पालक है।

आर्यक गोपाल-पुत्र है। लगता है, उसके परिवार की कोई पुरानी शत्रुता पालक के साथ है, तभी तो सिद्धों की वाणी पर, बिना किसी ठोस प्रमाण के, वह बन्दी बना लिया गया है। शरीर से स्वस्थ, डील-डौल से प्रशस्त तथा रूप से आकर्षक एवं प्रभावकारी है।[1] चारुदत्त के प्रति वह कृतज्ञ है और उसे, थोड़ी ही देर में, अपनी 'आत्मा' समझने लगा है।[2] नाटकांत में ही फिर उसकी सूचना मिलती है कि शर्विलक की सहायता से विद्रोह सफल हुआ है और आर्यक सिंहासनासीन बन गया है। चारुदत्त के उपकार का प्रतिदान उसने उसे कुशावती का राज्य प्रदान कर किया है। वसन्तसेना को 'वधू' की उपाधि भी उसीने प्रदान की है।

(३)

वीरक राजा पालक का सेनापति और चन्दनक बलपति है। दोनों नगर-रक्षक हैं। चारुदत्त की गाड़ी में आर्यक के भागते समय दोनों गाड़ी को निरीक्षणार्थ राजपथ में रोकते हैं। वीरक आर्यक का पुराना वैरी है और चन्दनक उसका मित्र है। चन्दनक गाड़ी में झाँक कर, आर्यक को पहचानता है और उसे अभय-दान देता है। किन्तु, चन्दनक को भाषा प्रयोग में यथेष्ट अभ्यास नहीं है। शायद वह सतर्क नहीं है। इसी कारण, वीरक से गाड़ी के भीतर बैठे व्यक्ति का कथन करते हुए, वह 'आर्या' की जगह 'आर्य' शब्द का प्रयोग कर बैठता है। वीरक अधिक चतुर एवं सावधान है। पालक के प्रति अधिक निष्ठावान् भी है।

---

१ वही, ७।५ २ वही, पृ० ३६८

उसे चन्दनक के शब्द-परिवर्तन ('आय' कह कर 'आर्या' कहा) से संदेह होता है और गाड़ी का निरीक्षण स्वतः करना चाहता है। इसी सिलसिले में दोनों में झगड़ा होता है और ज्ञात होता है कि वीरक जाति का नाई है तथा चन्दनक चमार। चन्दनक क्रोध से उबल पड़ा है और वीरक का केश पकड़ कर, उसे भूमि पर पटक दिया है तथा लात भी मारी है। वीरक ने न्यायालय में चन्दनक के विरुद्ध अभियोग प्रस्तुत किया है जहाँ जीर्णोद्यान में पड़ी मरी स्त्री की लाश की सूचना उसने न्यायाधीश को दी है। चदनक आर्यक को तलवार देता है और उसे सुरक्षित कर अनन्तर अपने परिवार के साथ उसी की सहायता से विद्रोह को सफल बनाने चला गया है।

वीरक तथा चन्दनक दोनों शूद्र वर्ण के हैं और दोनों विवेकहीन तथा लड़ाकू हैं—एक स्वामिभक्त है तो दूसरा सत्ता परिवर्तन के लिए सचेष्ट है।

(४)

जुआरियों में उनकी वृत्ति की विशेषताओं का प्रदर्शन हुआ है। दर्दुरक एकमात्र ऐसा जुआरी है जिसके चरित्र में कतिपय प्रशस्य तत्व समाविष्ट हो गये हैं। वही द्यूताध्यक्ष माथुर के चंगुल से संवाहक की रक्षा करता है। जुआरी होने के बावजूद, वह एक दम पतित नहीं हो गया है। पंचेन्द्रियों से संयुक्त मनुष्य को दस सुवर्ण के लिए सताया जाय—इसे वह सहन नहीं कर सकता। द्यूताध्यक्ष को पीट कर और संवाहक की रक्षा कर दर्दुरक राजद्रोही शर्विलक के समीप चला गया है जो उसका मित्र है। वसन्तसेना की माता वृद्ध है, चौथिया रोग से पीड़ित है। वेश्यालय के समस्त व्यक्ति उनका बड़ा सम्मान करते हैं। पहले वह चाहती थी कि वसन्तसेना शकार का प्रणय-प्रस्ताव स्वीकार करे। लेकिन, वस्तु स्थिति समझकर, वह वसन्तसेना के चारुदत्त-विषयक अनुराग का अनुमोदन करने लग गई है। अभियोग वाले प्रसंग में उसने चारुदत्त की अन्तिम घड़ी तक प्रशंसा की है और यह स्वीकार करने से इनकार किया है कि चारुदत्त जैसा उदार व्यक्ति उसकी पुत्री की हत्या कर सकता है। वास्तव में, इस वृद्धा गणिका का आचरण विस्मयोत्पादक रहा है और, जैसे वसन्तसेना के आचरण से वैसे ही इसके आचरण से, हमारी यह रूढ़िबद्ध धारणा हिलने लगी है कि वेश्याएँ सच्ची एवं साहसी नहीं होतीं। कर्णपूरक वसन्तसेना का भृत्य है। असीम साहसी है। उसी ने उसके दुष्ट हाथी से बौद्ध भिक्षु की रक्षा की है। चाण्डाल प्राणदण्ड को कार्यान्वित करने में दक्ष एवं तत्पर व्यक्ति हैं। किन्तु, चारुदत्त की सज्जनता से वे भी प्रभावित हैं।[1] उनमें से एक को तो विश्वास

---

[1] वही, १०।४

ही नहीं होता कि चारुदत्त ने वसन्तसेना की हत्या की होगी। केवल 'चारुदत्त' कह कर पुकारने पर वह अपने साथी को यों समझाता है—"अरे! बिना उपाधि के आप चारुदत्त का नाम पुकार रहे हो? अरे! देखो, उन्नति और अवनति रात और दिन के समान नित्य घटनशील हैं। उनके क्रम में कोई विकार नहीं आता। दैव स्वच्छन्द गति से चलता है। नियति की गति दुर्निवार है। झूठे आरोप के कारण, क्या आप चारुदत्त का कुल, नाम इत्यादि प्रणाम करके मस्तक पर रखने योग्य नहीं है? राहु से ग्रसित चन्द्रमा क्या जनता में पूजनीय नहीं होता?"[1] चारुदत्त की प्राण रक्षा की अस्पष्ट कामना इन चाण्डालों की भी रही है।

विशिष्ट टिप्पणियाँ

(१)

शूद्रक ने अपने प्रकरण में सताइस पात्रों का सन्निवेश किया है जो एक ऐसी जमात है जिसमें समाज के लगभग प्रत्येक स्तर तथा प्रत्येक समुदाय के प्रतिनिधि सम्मिलित हैं। राजा, राजश्याल, ब्राह्मण, वैश्य शूद्र कुलवधू, वेश्या, न्यायाधीश, न्याय-कर्मचारी, सेनापति, नगर-रक्षक, श्रमण, चोर, जुआरी, चेट, चेटी, विट तथा चाण्डाल—यह एक ऐसी दुनियाँ है जिसमें मानव-संस्कृति के प्रायः सम्पूर्ण स्वरूपों की प्रदर्शनी सजी हुई मिलती है। आंग्लकवि चॉसर ने 'Prologue To Canterbury Tales' में अपने समाज का जैसा एक प्रातिनिधिक खण्ड-चित्र उपस्थित किया है, प्रायः वैसा ही खंड-चित्र शूद्रक ने भी, नाटयकला की मर्यादा में, यहाँ अंकित किया है। विशेषता यह है कि 'मृच्छ०' के समस्त पात्र अपनी वर्गगत विशेषताएँ रखते हुए ऐसे रूप में चित्रित हुए हैं जिससे उनकी वैयक्तिक विशिष्टता भी झलक जाती है अथवा पूर्ण उभार में आ जाती है।

अन्य संस्कृत नाटककारों की तुलना में शूद्रक की विशेषता इस बात में भी लक्षित होती है कि उसने अपने पात्रों के साथ प्राय समान न्याय किया है। अन्य नाटककार कतिपय विशेष पात्रों के ही चरित्रांकन में अपनी सहानुभूति एवं सहृदयता का कोश खाली कर देते हैं तथा अन्य पात्रों की अवहेलना कर जाते हैं। उदाहरणार्थ कालिदास ने 'अभिज्ञानशाकुन्तल' में एक मछुवे, दो रक्षाधिकारियों तथा एक राजश्याल को प्रविष्ट कराया है, लेकिन उनके चरित्र की किन्हीं विशेषताओं का वहाँ उद्घाटन नहीं हुआ है क्योंकि अंगूठी की प्राप्ति की विज्ञप्ति के अतिरिक्त, कवि को उनमें किसी और प्रकार की दिलचस्पी नहीं है। शूद्रक

---

१ वही, १०।१९-२०

के साथ स्थिति भिन्न है। उसने प्रत्येक पात्र—चोर, जुआरी, नगर-रक्षक, राजश्याल इत्यादि—के चरित्र को पूरी सहानुभूति तथा जानकारी के साथ अंकित करने का श्लाघ्य उद्योग किया है। ब्राह्मण से लेकर चाडाल तक, कुलवधू से लेकर वारवनिता तक, श्रमण से लेकर जुआरी तक—सभी के चित्र अपने महत्त्व के अनुरूप, और महत्त्व सबको मिला है, प्रभावोत्पादक रूप मे उत्कीर्ण हुए हैं। प्रो० लेवी ने ठीक ही कहा है कि सत्ताइस पात्रों मे से प्रत्येक अपनी एक विशिष्ट छाप अथवा विशेषता लिये हुए है जो उसे स्पष्टतया परिभाषित करती है। अपनी इस निराली प्रतिभा एव विशिष्टता के कारण, शूद्रक पाश्चात्य विद्वानो द्वारा शेक्सपियर तथा मोलियर की कक्षा में उपविष्ट किया गया है।

(२)

डॉ० राइडर की एक प्रसिद्ध टिप्पणी यहाँ विचारणीय बन जाती है। राइडर का कथन है—"भारतीय नाटककारो की लम्बी पक्ति मे केवल शूद्रक ही ऐसा नाटककार है जो सार्वभौम स्वरूप रखता है। शकुन्तला हिन्दू ललना है, माधव हिन्दू नायक है, लेकिन सस्थानक मैत्रेय और मदनिका सम्पूर्ण विश्व के नागरिक हैं।"[1] यह कहा गया है कि कालिदास और भवभूति की अन्तरात्मा, *चाहे उनके स्वरूपों मे कितना हू अन्तर हो, मूलत एक ही है*, *किन्तु शूद्रक उन* दोनों से सर्वथैव भिन्न है। तनिक स्थिर भाव से विचार करने पर ज्ञात होता है कि 'मृच्छ०' मे कथानक तथा उसके निर्वाह की जो निराली पद्धति दृष्टिगोचर होती है, उसका प्रत्यक्ष वैशिष्ट्य कालिदास तथा भवभूति की तुलना मे इतना मनोग्राही है कि राइडर, चमत्कृत होकर, प्रस्तुत टिप्पणी करने से अपने को रोक नही सके। उनकी टिप्पणी से एक बात यह झलकती है कि जो हिन्दू होगा, वह सार्वभौम अथवा विश्वजनीन (कॉस्मोपोलिटन) नही हो सकता। सस्थानक, मैत्रेय तथा मदनिका को वे सार्वभौम, 'विश्व के नागरिक', मानते हैं जब कि चारुदत्त, वसन्तसेना इत्यादि को वे 'भारतीय' (हिन्दू) समझते हैं। यहाँ पहला प्रश्न तो यही विचारणीय बन जाता है कि सस्थानक, मैत्रेय तथा मदनिका क्या भारतीय चरित्र नहीं हैं ? मैत्रेय तथा मदनिका का प्रश्न झटिति

---

१ "Śudraka alone in the long line of Indian dramatists, has a cosmopolitan character Śakuntala is a Hindu maid, Madhava is a Hindu hero, but Samsthanaka and Maitreya and Madanika are citizens of the world"

—'The Little Clay Cart', Introduction, Page XVI.

निरस्त किया जा सकता है। मैत्रेय ब्राह्मण है, संस्कृत नाटकों की विदूषक-परम्परा में एक महत्त्वपूर्ण योगदान है, किन्तु उससे मूलत. भिन्न अथवा विद्रोहशील चरित्र नहीं है। स्वामिभक्ति तथा भाग्य में आस्था उसके चरित्र की दो विशेषताएँ हैं जो उसे विशुद्ध भारतीय मर्यादा में बाँधे हुए हैं। मदनिका दासी युवती है, वसन्तसेना के प्रति निष्ठावती। अतिरिक्त इसके कि वह शर्विलक से प्रेम करती है और उसकी वधू बन गई है, अन्य कोई विशेषता उसके चरित्र में ऐसी नहीं जो हमारा विशिष्ट ध्यान आकर्षित कर सके। प्रेयसी होना और पीछे वधू का घूँघट प्राप्त कर लेना—यह विशेषता ऐसी है जो भारतीय (यदि कोई राष्ट्रीय लेबेल चिपकाना हो जैसा राइडर की टिप्पणी से आवश्यक हो जाता है) कही जाएगी क्योंकि कुल वधू की गरिमा भारतीय (हिन्दू) संस्कृति में अपरिहार्य महत्त्व रखती आई है। पुन:, वसन्तसेना ने भी तो कुलस्वामिनी की ही महिमा के लिए समस्त यातना सही है, और इस प्रकार, मदनिका अपनी स्वामिनी का ही एक अत्यन्त संक्षिप्त संस्करण है। अतएव, मैत्रेय एव मदनिका मूलत भारतीय अथवा हिन्दू चरित्र हैं।

सस्थानक के प्रश्न पर थोड़ा अलग विचार करना आवश्यक है। हमने देखा है कि सस्थानक क्रूर, कपटी एव कायर है, कामुक एव हत्यारा है और मूर्ख एव दम्भी है। देशी तथा विदेशी दोनों प्रकार के विद्वानों ने उसकी विशेष महत्ता प्रदर्शित की है। विल्सन की टिप्पणी है—"तथापि, नाटक की सर्वश्रेष्ठ सृष्टि राजा का साला सस्थानक है। इतना पूर्णतया घृणास्पद चरित्र शायद साहित्य में कभी अंकित नहीं किया गया है। उसके दुर्गुण भयकर हैं, वह नितान्त निर्मम एव दुश्चेष्ट है, और तो भी, वह इतना हास्यास्पद है कि हमारा क्रोध उत्तेजित नहीं करता, ऐसे घृणित व्यक्ति पर किया गया क्रोध बेकार बर्बाद होना, और जब उसके अपराधों के उचित दड की घड़ी आती है, तब चारुदत्त के साथ हम भी यह कहने के लिए प्रवृत्त हो जाते हैं, 'इसे मुक्त करो और छोड़ दो।' वह एशिया में प्रत्येक युग में पाई जाने वाली प्रतिमा का उत्तम उदाहरण है जहाँ के राजे महाराजे आलस्य तथा दासत्व में शिक्षित हुए हैं तथा स्वार्थपूर्ण आत्मतृप्ति के अतिरिक्त अन्य किसी सिद्धान्त से प्रेम करना जिन्हें सिखाया नहीं गया है।"[१]

विल्सन की टिप्पणी पूर्णत सटीक एव स्वीकार्य हुई होती यदि उन्होंने अन्तिम वाक्य में एशिया के राजाओं-महाराजाओं पर अनाहूत प्रहार नहीं किया होता—यद्यपि उन्होंने स्पष्ट 'भारतीय' न कहकर, सम्पूर्ण एशिया महाखण्ड

१ 'The Theatre of the Hindus' (1955), पृ० ५७

का उल्लेख किया है। अर्थात् परोक्ष ढग से, विल्सन के मतानुसार, सस्थानक भारतीय चरित्र है। इस विषय मे हमारा कथन यह होगा कि भारतीय सस्कृति के परिनिष्ठित स्वरूप के साथ सस्थानक का मेल नहीं बैठता। और इस कारण यदि उसे 'टिपिकल' भारतीय नहीं कहा जाय, तो हमें कोई आपत्ति नही होगी। लेकिन, शकार की उद्भावना, जैसे अन्य चरित्रो की उद्भावना, भास के 'चारुदत्त' मे हो चुकी थी। और, भास शास्त्रीय परम्परा मे पूर्णत नही खपते हुए भी, भारतीय है और सम्भवत भरत से भिन्न किसी दूसरी लोकधर्मी नाट्य परम्परा से अनुप्राणित है। शूद्रक ने भास की परम्परा तथा कालिदास की परम्परा, दोनो का सुन्दर समन्वय किया और जीवन के यथार्थ के एक महत्त्वमय पटल का प्रभावकारी चित्रण किया। सशक्त कलाकार होने के कारण, उसने जिस चरित्र को लिया, उसीको प्रभावोत्पादन की दृष्टि से सशक्त बना दिया। अतएव, शकार से उसकी भारतीयता छीनना युक्तिसगत नही है। यह उल्लेखनीय है कि चारुदत्त को अभियोग मे फँसा कर, शकार ने मन मे अफसोस किया है कि परान्नलोभी व्यक्ति के समान व्यस्तचित्त होकर, उसने आज अपनी आत्मा को नष्ट कर दिया है—"पायसपिण्डारकेण अद्य मया आत्मैव निर्नाशित ।"[1] यह भारतीय वाणी है। करमरकर ने सम्भवत 'हिन्दू' शब्द के उल्लेख से किसी विशिष्ट ध्वनि की गन्ध पाकर, राइडर की टिप्पणी का प्रतिवाद करते हुए कहा है कि 'मृच्छ०' के समस्त चरित्र, निम्नस्तरीय भी एक ही 'हिन्दू द्रव्य' से निर्मित हुए हैं और एक ही वायुमण्डल मे श्वास ले रहे हैं यद्यपि उनके कार्य थोडा प्रकृत मार्ग से हट कर दिखाईपडते हैं।[2]

वास्तव मे, राइडर की टिप्पणी थोडी शीघ्रता मे की गई है और ऐसा लगता है उन्होने उस पर दूसरी बार विचार नही किया। जो हिन्दू होगा, वह सार्वभौम अथवा 'विश्व का नागरिक' नही होगा—ऐसी स्थापना नही की जा सकती। हिन्दू सस्कृति के मूल एव मुख्य तत्वो से अनुशासित तथा अनुप्राणित होते हुए भी, विश्व नागरिक बना जा सकता है। विश्व-नागरिक मूलत मनुष्य है। मनुष्य की क्षमताओ तथा दुर्बलताओं से युक्त, उसकी कामनाओ तथा प्रतारणाओ से विक्षुब्ध हिन्दू चरित्रो मे भी मनुष्यता की विशेषताएँ सन्निहित रहेंगी। और इस प्रकार, 'मृच्छ०' के ये चरित्र भी जो राइडर-द्वारा केवल हिन्दू मान लिये गये हैं, विश्व के नागरिक कहे जा सकते हैं। हमें केवल इतना ही देखना है कि 'मृच्छ' मे कोई चरित्र ऐसा तो नहीं जो 'सार्वभौमता' अथवा 'विश्व-नागरिकता' की भावना का विरोध करता हो।

---

१ वही, पृ० ४६६
२ 'Mrcch.' (Edited), Introduction, PP XXVIII–XIX.

जो भारतीयता का आग्रह कर, सार्वभौमिकता का विरोध करता दिखाई पड़ेगा, वह अवश्य हिन्दू होते हुए भी, विश्व नागरिक नहीं माना जा सकता। इस दृष्टि से विचार करने पर क्या चारुदत्त, क्या वसन्तसेना, क्या अधिकरणिक, क्या चेट एव विट और क्या चाण्डाल—सभी भारतीय होते हुए भी विश्व नागरिक ठहरते हैं, उसी परिमाण में जितना सस्थानक, मैत्रेय और मदनिका।

साहित्य मे सार्वभौमता अथवा विश्वनागरिकता की खोज इस दृष्टि से नहीं की जा सकती कि साहित्यकार ने अपनी जाति, जलवायु, परम्परा तथा सस्कारों से पूर्णत. असम्पृक्त रहकर, जल में कमल के समान, अपने ससार की सृष्टि की हो। बड़े से बड़ा काव्यकार अथवा नाटककार भी अपनी परम्परा तथा सामाजिक एव सांस्कृतिक माध्यम की अवहेलना नहीं कर सकता। और, जिस परिमाण मे वह इन मर्यादाओं से ऊपर उठकर, मनुष्य की अन्तर्निहित मनुष्यता को सहलाता और सवाँरता है, कुरेदता और टटोलता है, उस परिमाण मे वह सार्वभौम (कास्मोपोलिटन) बन जाता है तथा उसकी सृष्टियाँ विश्वनागरिकता की छाप से अंकित हो जाती हैं। यह सही है कि शकुन्तला-जैसी युवती तथा माधव-जैसा युवक भारतीय संस्कृति की प्रसूतियाँ हैं, लेकिन, भारतीय विशिष्टता को 'माइनस' करने (घटाने) के बाद भी बहुत कुछ बच जाता है जो विश्व-मानव की सामान्य सम्पत्ति है। और, इस दृष्टि से ऐसे चरित्र भी सार्वभौम हैं। शूद्रक ने परम्परा की लीक मे बँधी नहीं होकर, ऐसे चरित्रों की सृष्टि की है जो वैयक्तिक बन गये हैं। इस वैयक्तिकीकरण में सामान्य मनुष्यता के तत्त्व हमें मिल जाते हैं। "एक दानशील उदार व्यक्ति जिसकी शान्ति नये प्रणय के आकस्मिक अनुरोध से तनिक विच्छिन्न हो जाती है तथा एक अभागे राजकुमार के प्रति दिये गये मैत्री के आश्वासन से जो अपने प्राणों को सकटग्रस्त बना देता है, एक निम्नवर्ण की किन्तु पवित्रमना तरुणी जो सम्मानित प्रियतमा बनने के लिए सघर्ष करती तथा अपने प्रियतम का नाम लेकर मृत्यु का अभिनन्दन करने के लिए सन्नद्ध हो जाती है, एक नितान्त दुष्ट जिसकी पाशविक कामवासना कोई सीमा नहीं जानती तथा जिसके कार्य बर्बरता का उपान्त स्पर्श करने लगते हैं, एक साधारण युवती जो एक उदार-महान् पुरुष की शान्ति की कल्पना से सिहर उठती है तथा अपनी स्वामिनी के साथ छल करना नहीं चाहती यद्यपि वैसा करने से उसे उसका प्रणयी सहज ही मिल जाता—ये चरित्र हिन्दू विचारों तथा दर्शन की चर्चा कर सकते हैं और उस विशिष्ट वायुमण्डल से अनुप्राणित हो सकते हैं, अथवा वे ऐसा नहीं भी कर सकते हैं। किन्तु, वे ससार की किसी भी

मिट्टी से उत्पन्न हो सकते थे और यह केवल (भारतीय भूमि मे) जन्म लेने का सयोग है कि वे वैसी बातें करते हैं तथा वैसी छाप लिये हुए हैं। अर्थात्, यहाँ कुछ ऐसी वस्तु है जो हिन्दू होते हुए भी, सम्पूर्ण विश्व की है। हम यहाँ एक सार्वभौम सृष्टि मे (सांस ले रहे) हैं।"[१]

अतएव, 'मृच्छ०' के चरित्र भारतीय मिट्टी की उपज होते हुए भी, अन्ततोगत्वा सार्वभौम हैं।[२]

चरित्रो की सकुलता एव साकर्य मे, उनके निरूपण की सटीकता एव सजीवता मे और सबसे बढकर, उनकी मृण्मयता एव उनके सस्करण मे शूद्रक की चारित्रिक सृष्टि का अनुपम महत्त्व सन्निहित है।

---

१ Dr Bhat 'preface To Mrcch', पृ० १६६

२ यह उल्लेखनीय है कि श्यामिलक द्वारा रचित भाण 'पादताडितकम्' मे उज्जयिनी को 'सार्वभौमनगर" बताया गया है, केवल 'सावभौम' शब्द से भी उज्जयिनी का बोध कराया गया है। (दे० 'चतुर्भाणी' मोतीचन्द्र तथा वासुदेवशरण द्वारा सम्पादित, पृ० १६२–६६)

'मृच्छ०' का घटनास्थल भी उज्जयिनी है, और इसके पात्र भी 'सार्वभौम' या Cosmopolitan हों तो क्या आश्चर्य ?

(१०) शूद्रक की नाट्यप्रतिभा

(१)

शूद्रक ने संस्कृतनाट्यलेखन की परम्परा का परित्याग किया है। कालिदास ने स्वयं परम्परा का त्याग किया था और अपने नवीन प्रयोग के लिए बुधों तथा पण्डितों के परितोष की कामना की थी। तथापि, अपनी रचनाओं के द्वारा उन्होंने शिष्ट-सम्मानित नाट्य-लेखन के लिए एक मर्यादा तथा प्रतिमान भी स्थापित कर दिया। सामन्तीय वातावरण में शिष्ट सुरुचि जीवन के शृंगार पक्ष का संयम शासित चित्रण देखना चाहती थी और यह भी कि वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा अन्ततोगत्वा बाधित न होने पावे। कालिदास ने इस सम्भ्रान्त सुरुचि का आविर्भाव भी किया और परितोष भी। इस क्लासिकल परम्परा में, जैसे विषय चयन वैसे ही विषय निरूपण, दोनों दिशाओं में शास्त्रीय संयम तथा सुरुचि को विशिष्ट महत्त्व मिला। पात्र शिष्ट सामन्तीय वर्ग तक ही सीमित रहे और विदूषक जिसकी उद्भावना नाटक में ताजगी तथा हास्य विनोद की अवतारणा के लिए हुई थी, वह भी बहुत कुछ पिटी पिटाई परम्परा में बन्दी बना लिया गया। भरत के शास्त्रीय विधानों की अवहेलना की न तो आवश्यकता समझी गई और न उसको प्रोत्साहन ही मिला। गीर्वाणगिरा कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए सम्मानित माध्यम की ओर नाटककार जैसे स्वाद-परिवर्तन के लिए, प्राकृत-अपभ्रंश का प्रयोग कर लिया करते थे। पदों की संघटना में तथा अप्रस्तुतों की योजना में भी एक विशिष्ट धरातल तथा वातावरण बनाये रखा गया जिसमें शब्द संगति, पद-लालित्य तथा भाषा के एक प्रतिमानित सौष्ठव की रक्षा होती रही। इन सब अनुशासनों का द्विविध परिणाम घटित हुआ : एक ओर संस्कृत नाटक शिष्ट सहृदय समाज की भावात्मक परितुष्टि में संलीन हो गये तो दूसरी ओर समसामयिक जीवन का व्यापक व्यावहारिक यथार्थ, अपनी सतरंगी परतों के साथ, उनमें उद्घाटित नहीं हो सका। भास ने अवश्य एक भिन्न परम्परा में नाट्य रचना की, लेकिन उसे सहृदय पण्डितों की मान्यता शायद नहीं मिल सकी। शूद्रक ने शास्त्रीय चौखटे के भीतर ही 'मृच्छ०', का प्रकरण लिखा, लेकिन उस व्यापक सीमा के भीतर उसने नवीन प्रयोग किये और परम्परा का साहसपूर्ण विरोध किया। वेश्याएँ प्राचीन भारत के नागरक-समुदाय के मध्य आदर अवश्य पाती रहीं, किन्तु किसी सवर्ण, कुलीन व्यक्ति के साथ उनका पत्नीभाव से प्रतिबन्धन-कल्पना तथा अनुमोदन से अतीत

था : वारागनाएँ प्रेयसी हो सकती थी, पत्नी नही। किन्तु, शूद्रक ने अपूर्ण साहस के साथ ब्राह्मण नायक को वेश्या युवती के साथ पति-पत्नी रूप में जोड दिया। और, पुनः दूसरे ब्राह्मण शर्विलक को चोर बनाया, उसे वेश्या दासी के प्रणय मे अनुरक्त किया और फिर, उस दासी को भी उसकी 'वधू' बना दिया। सबसे बडी बात यह हुई कि उनमे राजाओं, रानियो, मुसाहबो इत्यादि के कृत्रिम प्रेम-शिथिल ससार से नाटय को निकाल कर, 'मृच्छ' मे एक सर्वथा नवीन समार की सृष्टि कर दी जिसमे लोक जीवन के 'छायादार' अञ्चलो का यथार्थ पूरे प्रकाश के साथ सजीव हो उठा और प्रेम अपने कायर एव कातर स्वरूप का निर्मोक छोड कर, सच्चे साहसपूर्ण रङ्गो मे चमक उठा। शूद्रक का यह परम्परा विद्रोह है।

(२)

शूद्रक ने प्रकरण के नामकरण मे अपनी निराली मौलिक प्रतिभा का विज्ञापन किया है। कालिदास के लिए सौन्दर्य की 'प्रभा-तरल ज्योति' पृथिवी के कलुष-कल्मष, उसकी अवसादग्रस्त श्यामिकता से उत्पन्न नही हो सकती थी। श्रेष्ठ कला अथवा कविता ऐसे मानस की आविर्भूति होती है जो लौकिक आचरण के कर्दम मे न फँस कर, दिव्यता का साक्षात्कार कर लेता है तथा पार्थिव परिवेष्टनो का भेदन कर, उनमे से कला का कचन अथवा सौन्दय की सौदामिनी उपलब्ध कर लता है—कालिदास का यही विश्वास था। और, उनका काव्यादर्श था सस्कारपूत सौवर्ण की उपलब्धि—"हेम्न सलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धि श्यामिकापि वा।"[1] शूद्रक ने जैसे इस कला की सुवण-कल्पना का विरोध किया, कालिदास की स्वण-कला को जैसे मौन चुनौती देने के लिए अपनी मृण्मयी कला का प्रकाश किया। कालिदास के नायक-नायिका स्वर्गीय तथा सामतीय पर्यावरण मे साँस लेते रहे। शकुन्तला पृथिवी पर तिरस्कृत हुई तो उसे महर्षि मारीच का स्वर्गस्थ आश्रम मिला। वसन्तसेना शायद उतनी ही पवित्र थी यद्यपि उतनी ही सरल एव भोली नही, किन्तु उसे निरन्तर तिरस्कार मिलता रहा जब तक उसने समाज की धारणाओं को बदलने के लिए अपने प्राणो की बाजी नहीं लगा दी। सस्कृत साहित्य की किस सुन्दरी को इतने गहन सकट का सामना करना पडा है? तब, शूद्रक के पात्र मिट्टी के मनुष्य थे। स्वग अथवा देवता से उनका परोक्ष सबध भी नही था। इसी कारण, कालिदास की कला का 'सुवण' (हेम) शूद्रक को आकर्षित नहीं कर सका। इसीलिए, उसे यह चिन्ता नहीं हुई कि विवेकवान् बुधो की प्रसन्नता उसे मिलेगी

---

१ डॉ० रमाशकर तिवारी 'महाकवि कालिदास', पृ० ३३५

या नहीं। इसीलिए, नायक-नायिका के नाम पर अपनी रचना का नामकरण नहीं करते हुए, उसने अपनी विनम्रता तथा अपने नवीन प्रयोग की विनीत योजना को परिभाषित करने के लिए, 'मृच्छकटिक' (मिट्टी की गाड़ी) जैसा विनयपूर्ण अभिधान स्वीकार किया। मिट्टी के पात्र और मिट्टी वाली कला, 'मानुषी वातावरण और मानुषी' शिल्प-योजना ! ऐसी अवस्था में 'मिट्टी की गाड़ी' के अतिरिक्त, अन्य कौन-सा व्यञ्जनापूर्ण अभिधान हो सकता ?

रोहसेन पड़ोसी गृहपति के लड़के की सोने की गाड़ी से खेल चुका है। जब वह गाड़ी लेकर चला गया और रोहसेन गाड़ी माँगने लगा, तब रदनिका ने मिट्टी की गाड़ी बनवा दी। और, अब वह उसी सोने की गाड़ी के लिए रोता है, मचलता है। वसन्तसेना रोहसेन के प्रति ममत्व-भाव से उमड़ पड़ती है और अपने स्वर्णाभूषणों को उतार कर, उन्हें मिट्टी की गाड़ी में रख देती है और बालक को सान्त्वना देती है—"जात ! कारय सौवर्णशकटिकाम्।" (पुत्र ! इनसे सोने की गाड़ी बनवा लो।)[१]

यही छोटी-सी घटना है जिसके प्रकाश में नाटककार ने 'मृच्छकटिक' नाम का निर्वाचन किया। अभिज्ञानशाकुन्तल' में शकुन्तला का पुत्र सिंह-शावक से खेलता था। 'मृच्छ०' में रोहसेन को मिट्टी की गाड़ी खेलने के लिए मिली है। एक देवताओं के मित्र चक्रवर्ती नरेश का पुत्र था जिसके सामने साहस, शौर्य तथा सम्मान का निश्चित भविष्य था। दूसरा दरिद्र सार्थवाह ब्राह्मण का बालक था जिसका भविष्य तिमिराच्छन्न था और जिसके लिए यज्ञोपवीत ही सबसे बड़ा धन था। उसे मिट्टी की गाड़ी से खेलना ही था। शूद्रक के समीप इस मिट्टी की गाड़ी का महत्त्व रहा। स्वतः राजा होते हुए भी, वह जानता था कि साधारण मनुष्य की नियति मिट्टी ही है, सोना नहीं। वसन्तसेना ने सोने की गाड़ी के लिए मचलते रोहसेन को देख कर कहा था—"भगवन् कृतान्त ! कमल-पत्र पर गिरे जलबिन्दु के समान तुम मनुष्यों के भाग्य से खेला करते हो !"[२] वस्तुतः मिट्टी ही मनुष्य का भाग्य है। सुवर्ण छल है, कपट है। इसी मिट्टी में से चरित्र का कमल विकसित हो सकता है। वसन्तसेना निरन्तर, जब कभी कोई अवसर मिला, सोना छोड़ती गई, यह भिन्न बात है कि सोने ने उसके भाग्य का साथ नहीं छोड़ा। और, उसका भाग्याकाश सदैव सोने के अलंकारों से चमकने के बदले धूमिल होता गया। मिट्टी की गाड़ी को उसने सोने से भर दिया कि सुवर्ण शकटिका बनवा ली जाय। किन्तु, परिणाम

१ मृच्छ०' (चौखम्बा), पृ० ३२१
२ वही, पृ० ३२०

कितना मचकर रहा ! मिट्टी और सोने का संयोग नहीं होना चाहिए था ! मिट्टी ही मनुष्य का भाग्य है, इसे वह वात्सल्य के संचार में भूल गई। शूद्रक, लेकिन, मिट्टी की गाडी का महत्त्व जानता था। इसी कारण, नाटक की मूल ध्वनि की विज्ञप्ति के लिए उसने 'मृच्छकटिक' नाम ग्रहण किया।

वसन्तसेना ने रोहसेन के बाल हठ पर पहली टिप्पणी यह की है— हाय ! हाय ! यह भी दूसरे की सम्पत्ति से जल रहा है !"[१] सोने की गाडी दूसरे की सम्पत्ति थी। रोहसेन को उससे ईर्ष्या हो रही थी और अपनी मिट्टी की गाडी से उसे सन्तोष नहीं था। मिट्टी की गाडी चारुदत्त की दरिद्रता का प्रतीक थी। सहज बाल-स्वभाव से रोहसेन सौवर्णशकटिका के लिए मचल रहा था क्योंकि उसे ज्ञान नहीं था कि वह "परसम्पत्ति" है। किन्तु, यह मचलना बुरा था, बाल-हठ था। मनुष्य को सोने की गाडी के लिए मचलना उचित नहीं। 'कूप-यन्त्रघटिका" न्याय से उन्नति-अवनति, उत्थान-पतन मनुष्य का भाग्य है। मिट्टी की गाडी सोने की गाडी में बदल सकती है, सोने की गाडी मिट्टी की गाडी में बदल जाती है। यही "भवितव्यता" है।[२] मानव-जीवन की गाडी इसी भवितव्यता के अधीन है। और, यह भवितव्यता अन्त में मनुष्य को मिट्टी की गाडी से ही खेलने के लिए, उसीमें सन्तुष्ट होने के लिए बाध्य करती है। मिट्टी की गाडी, अतएव, जीवन का केन्द्रीय सत्य है। शूद्रक भारतीय 'भवितव्यता' की इस सनातन भावना में अभिभूत था। सुतरां, इस भावना को प्रमुख भाव से अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए, उसने अपने निराले प्रकरण को 'मृच्छकटिकम्' का अभिधान दिया। अपनी सम्पूर्ण नवीनता के बावजूद, शूद्रक की शिराओं में मूलतः भारतीय संस्कृति का ही रक्त प्रवाहशील था।[३]

(३)

जैसे 'मृच्छ०' का नामकरण नाटक को परम्परा के शिष्ट सामन्तीय वातावरण से पृथक् कर, मिट्टी के जनसाधारण वातावरण में ले आता है, वैसे ही उसके सत्ताइस पात्रों में से केवल पाँच संस्कृत बोलते हैं और शेष प्राकृत। पुनः ऐसा भी होता है कि ये पात्र संस्कृत बोलते-बोलते प्राकृत बोलने लगते हैं और

---

१ "हा धिक् ! हा धिक् ! अयमपि नाम परसम्पत्त्या सन्तप्यते।" (पृ० ३२०)

२ "सलभ्यभाव भवितव्यता तथा चकार सर्वं किल शूद्रको नृपः।" (१।७)

३ हेनरी वेल्स ने नाटक के शीर्षक में धार्मिक व्यञ्जना का निर्देश करते हुए, 'जलते हुए घर' के बौद्ध रूपक का उल्लेख किया है। (दे० 'The Classical Drama of India', पृ० १५६)

प्राकृत बोलते बोलते सस्कृत बोलने लगते हैं। प्राकृत गद्य के ही लिए नहीं, अपितु पद्य के लिए भी प्रयुक्त हुई है और लगभग एक सौ पद्य विभिन्न छन्दों में प्राकृत मे रचे गये हैं।

शूद्रक की काव्य शैली सरल तथा स्वाभाविक है। इस विषय में वह भास से अधिक सामीप्य रखता है क्योंकि भास की लोक-निष्ठ परम्परा के प्रति उसकी स्वाभाविक अभिरुचि थी। कालिदास का स्निग्ध पद लालित्य एव काव्यात्मक सौष्ठव शूद्रक की प्रस्तुत रचना में वर्तमान नहीं है। उसकी शब्दावली विशद तथा विविध है। भास ने सस्कृत के पुराने तथा अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया है, लेकिन शूद्रक ने ऐसे प्रयोगो से बचने की चेष्टा की है यद्यपि उसकी प्राकृत मे ऐसे अप्रचलित प्रयोग बहुत से आये हैं, यथा—'वरडलम्बुक', 'मल्लक', 'वरटा', 'दधिसार' 'तलित', लुप्तदडक', 'गण्ड', 'सैरिभ', 'कूर', 'रूपिन्', 'महल्लक', 'कपर्दकडाकिनी', कोष्टक इत्यादि।[१] वसन्तसेना के महल के वर्णन वाले अशों को छोड कर, उसने लम्बे समासो का प्रयोग प्राय नही किया है, किन्तु, जैसा पहिनो का कथन है, इस वर्णन मे उसने जान-बूझ कर, दण्डी के द्वारा निरूपित गद्य विषयक मानदड का अनुसरण किया है जिसमे 'ओज' गुण को महत्त्व दिया गया है।[२] पद्य मे उसने समस्त पदो का बहुत कम प्रयोग किया है और जहाँ समास हैं भी, वहाँ अत्यन्त आसानी से बोधगम्य हैं। उसके वाक्य सामान्यत सरल तथा प्रत्यक्ष हैं, और जहाँ कुछ अस्पष्टता दिखाई पडती है, वहाँ उसका कारण हस्तलिखित प्रतियो मे प्राप्त प्राकृत पाठ की गडबडी है। 'मृच्छ०' के श्लोक साधारणत सरल तथा प्रवाहपूर्ण हैं यद्यपि कहीं-कहीं भद्दे समास मिल जाते हैं। कल्पना का वह लालित्य जो कालिदास के चित्रो को भव्यता के आलोक से रजित कर देता है, शूद्रक के श्लोकों मे प्राय नहीं मिलता। कुल मिला कर, उसकी रचना सीधी, शक्तिशाली तथा लक्ष्यभेदिनी है। विशद अलकार तथा जटिल पद-सघटना और कठिन श्लेष प्राय 'मृच्छ' मे नही मिलेंगे (यद्यपि अभिव्यक्ति की कसावट की कमी उसमें अवश्य है और 'च', 'हि', 'तु' तथा 'वै' जैसे अव्यय प्राय प्रयुक्त हुए हैं)। सबसे बढ कर, शूद्रक ने सुन्दर एव सगीतमय वाक्यो तथा पद्यों मे साधारण तथा लोकप्रिय लोकोक्तियों का जो निबन्धन किया है, उससे उसकी अद्भुत प्रतिभा पर सुन्दर प्रकाश पडता है।

---

१ M R Kale, 'मृच्छकटिकम्' (स०, १९६२), Introduction, पृ० ५७ ५८

२ "ओज समासभूयस्त्वमेतद्गद्यस्य जीवितम्।" ('काव्यादर्श', १।८०)

'मृच्छ०' की सरल भाषा शैली का उल्लेख ऊपर किया गया है। यहाँ पाठकों का ध्यान विशेष रूप से केन्द्रित करने के लिए मैं कतिपय उदाहरण प्रस्तुत करना चाहता हूँ। मैंने पहले कहीं कहा है कि शूद्रक ने पाणिनीय भाषा का माध्यम अङ्गीकार करते हुए भी, यथेष्ट स्वतन्त्रता बरती है क्योंकि वह संस्कृत रचनाकारों की लोकनिष्ठ परम्परा में काव्यप्रणयन कर रहा था। 'प्रणष्टा' न लिखकर 'प्रनष्टा' लिखना,[1] 'देव' के बदले 'देवता' शब्द का प्रयोग और वह भी कहीं पुँल्लिंगवत् तथा कहीं स्त्रीलिंगवत् ('देवत्व' के अर्थ में नहीं, 'देव' के अर्थ में),[2] 'बलात्कार' शब्द का प्रयोग प्राय. ठीक उसी अर्थ तथा भाव में (नारी के साथ बलात्कार) जिसमें हम आज सामान्य बोलचाल में करते हैं,[3] 'मारयति' 'मारयामि' इत्यादि का जान मारने के अर्थ में प्रयोग,[4] 'कुट्टयति'-'कुट्टयिष्यामि' का प्रयोग आज कल की बोलचाल के "लाठी से तुम्हारा सिर कूट दूंगा दण्डकाष्ठेन × × × मस्तक ते प्रहारैं कुट्टयिष्यामि" के अर्थ में,[5] तले हुए मांस के लिए "तलित मांस" का प्रयोग,[6] 'कुसुमवासित' में 'वासित' का 'सुगंधित किया हुआ' के अर्थ में प्रयोग (आज भी पढ़े-लिखे व्यक्ति नहीं, किन्तु देहाती लोग 'सुगंधित' के लिए 'सुवासित' का उपयोग करते हैं),[7] भूषणों के झनझनाने के वे लिए "झाणज्झाणन्तबहुभूषणशब्दमिश्र" में 'झाणज्झणन्त' का प्रयोग,[8] "मस्तक ते मडमडायिष्यामि" में क्रियापद 'मड़मड़ाना' का प्रयोग,[9] 'अन्विष्यति' (खोजता- खोजती है) के साथ 'अन्विष्यते' (खोजा खोजी जाती है) का प्रयोग',[10] 'आलसी' के अर्थ में 'आलस' का प्रयोग,[11] मैना के बोलने के लिए 'कुरकुरायते' का प्रयोग,[12] हवा (शीतल) लगने लिए 'लगति शीतवात." में 'लगति' का प्रयोग,[13] तेल और घी में बघारा हुआ के लिए 'व्याघारित तैलघृतेन मिश्र" में व्यापारित' का प्रयोग,[13] घुर घुर शब्द करने के लिए 'घुरघुरायमाण' का प्रयोग,[14] और 'हारितम्' का हारा हुआ के अर्थ में प्रयोग, यथा, "दशसुवर्णं द्यूते हारितम्" अथवा

---

१ 'मृच्छ०' (चौखम्बा), पृ० ५४
२ वही, पृ० ३२–३३, ६९ इत्यादि।
३. वही, पृ० ५२.
४ वही, पृ० ४५, ४७
५ वही, पृ० ६७
६ वही, ३।५१
७ वही, पृ० ८२
८ वही, पृ० ४१
९ वही, पृ० ४५
१०. वही, ३।४६.
११ वही, २४६
१२ वही, पृ० २६६
१३ वही, पृ० ३९०
१४ वही ३९२

"मया सुवर्णभाण्ड × × × × द्यूते हारितम्"[1] तथा 'तारा' का 'तारक' के लिए प्रयोग[2]—ये सभी प्रयोग इस तथ्य के विधायक हैं कि कालिदास तथा भवभूति की अभिजात वाग्धारा से पृथक्, देववाणी की एक ऐसी धारा भी प्रवाहशील थी जिसमें शास्त्रीय नियमों की कठोरता को शिथिल कर, जनसाधारण के भाव स्वतन्त्रतापूर्वक अभिव्यक्ति पाते रहे थे। शूद्रक संस्कृत प्रेमियों की उस लोक धारा का मुकुटमणि है।

'मृच्छ०' के संवादों में जो ताजगी एवं उत्फुल्लता वर्तमान है, वह संस्कृत के अन्य नाटककारों में उपलब्ध नहीं होगी। ऐसे स्थल बहुत कम मिलेंगे जहाँ कथोपकथन नीरस अथवा अस्वाभाविक बन गया है। नीचे केवल एक उदाहरण नमूने के लिए उद्धृत किया जा रहा है:—

"विट—तो मुझे क्या करना चाहिए?

शकार—मेरा प्रिय करो।

विट—अवश्य करूँगा, किन्तु दुष्कार्य छोड कर।

शकार—विद्वन्! दुष्कार्य का तो इसमें गंध भी नहीं है। वह कोई राक्षसी नहीं है।

विट—तब कहो।

शकार—वसन्तसेना को मारो।

विट—(कान मूँद कर)—यदि मैं बाला, उज्जयिनी की विभूषण एवं वेश्याओं के विरुद्ध कुलकामिनी-जैसा आचरण करने वाली इस प्रेमवती वसन्तसेना को मारता हूँ, तो परलोक-रूपी नदी को किस नाव से पार करूँगा?

शकार—मैं तुम्हें नाव दूँगा। और, दूसरी बात यह है कि इस निर्जन उद्यान में वसन्तसेना को मारते हुए तुम्हें कौन देखता है?

विट—पाप और पुण्य की साक्षी ये दिशाएं मुझ देखती हैं। और, वनदेवता, चन्द्रमा, सूर्य, धर्म, वायु, आकाश, जीवात्मा तथा यह भूमि—ये सभी मुझे देखते हैं।

शकार—अच्छा तो कपडे का व्यवधान करके इसे मारो।

विट—मूर्ख! तुम अप पतित हो गये हो।

शकार—यह वृद्ध सूअर धर्मभीरु है। अच्छा, इस कार्य के लिए स्थावरक चेट से विनय करता हूँ। पुत्रक! स्थावरक! चेट! (वसन्तसेना को मारो) मैं तुम्हें सुवर्ण का कटक (कड़ा) दूंगा।

चेट—मैं भी पहनूंगा।

---

१ वही, पृ० १३२,२५१ २. वही, पृ० २८६

शकार—तुम्हे सोने का आसन बनवा दूँगा ।
चेट—मैं भी उस पर बैठूंगा ।
शकार—मैं तुम्हें सब अवशिष्ट भोजन दे दूँगा ।
चेट—मैं उसे खा जाऊँगा ।
शकार—मैं तुम्हें सभी चेटों का प्रधान बना दूँगा ।
चेट—मैं, स्वामी, बन जाऊँगा ।
शकार—तब मेरी बात मानो ।
चेट—स्वामिन् ! मैं सब कुछ करूँगा, केवल दुष्कार्य छोड कर ।" इत्यादि इत्यादि ।[१]

शूद्रक, अतएव, अपने प्रकरण की लोकनिष्ठ एव यथार्थवादी 'स्पिरिट' को प्राय आद्योपान्त बचाने मे सफल सिद्ध हुआ है । कभी कभी मैं सोचता हूँ कि यदि भाग शूद्रक की भाषा-परम्परा सस्कृत मे चली होती, तो उसका साहित्य लोक-जीवन के अधिक समीप बन गया रहता और तब, उसका शास्त्रीय चिन्तन भी कदाचित् अन्य नवीन छवियो तथा उपपत्तियो से परिपूर्ण हो गया होता ।

शूद्रक द्वारा प्रयुक्त छन्दो के अवलोकन से जान पडता है कि लघु तथा सरल छन्द ही उसे विशेष प्रिय हैं । सबसे अधिक सख्या अनुष्टुप् की ८३ है । उसके बाद, ३९ पद्य वसन्ततिलका मे तथा ३२ शार्दूलविक्रीडित में हैं । अन्य महत्त्वपूर्ण छन्दों मे 'इन्द्रवज्रा' (२६), वशस्थ (९) तथा उपजाति (५) मिलते हैं । पुष्पिताग्रा, प्रहर्षिणी, मालिनी, विद्युन्माला, वैश्वदेवी, शिखरिणी, स्रग्धरा तथा हरिणी छन्दो के भी उदाहरण मिलते हैं । प्राकृत के छन्दों मे अधिक वैविध्य उपलब्ध होता है ''आर्या' शैली के ५३ तथा अन्य प्रकार के ४४ पद्य प्रयुक्त हुए हैं ।[२] विद्वानो-द्वारा टीकाकार पृथ्वीधर के आधार पर, शूद्रक-द्वारा प्रयुक्त प्राकृत का निर्देश किया गया है । तदनुसार, सूत्रधार, नटी, वसन्तसेना, धूता, वसन्तसेना की माता, कर्णपूरक, श्रेष्ठिकायस्थ, शोधनक, मदनिका तथा

---

१ दे० 'मृच्छ०' (चौखम्बा), पृ० ४०९–१६
—शूद्रक को इसी कुशल सवाद-कला को ध्यान में रखते, शायद, हेनरी वेल्स ने कहा है कि 'मृच्छ०'-जैसे लंबे नाटक मे नीरस स्थलों का अद्भुत अभाव है "The Little 'Clay Cart' is a long play singularly lacking in longeurs"—The Classical Drama of India' पृ० १५०

२ A. B Keith 'Sanskrit Drama' (1959), पृ० १४२ ।

रदनिका 'शौरसेनी' बोलते हैं, वीरक तथा चन्दनक 'अवन्तिका' बोलते हैं; विदूषक 'प्राच्या' बोलता है, संवाहक, स्थावरक, कुंभीलक, वर्धमानक तथा रोहसेन 'मागधी' बोलते हैं, शकार 'शकारी' बोलता है, चाण्डाल 'चाण्डाली' बोलते हैं, और जुआरी 'ढक्की' बोलते हैं। प्राचीन वैयाकरण वररुचि ने शौरसेनी, मागधी, महाराष्ट्री तथा पैशाची, इन चार प्राकृतों का ही कथन किया है। इनमें महाराष्ट्री तथा पैशाची का प्रयोग 'मृच्छ०' में नहीं हुआ है। 'अवंतिका', 'प्राच्या' इत्यादि उप भेद परवर्ती वैयाकरणों द्वारा प्रतिपादित किये गये हैं। प्रो० कीथ ने पृथ्वीधर की सात प्राकृतों को केवल दो मुख्य भेदों शौरसेनी तथा मागधी के अंतर्गत समाहृत किया है 'अवंतिका' एवं 'प्राच्या' शौरसेनी के तथा 'शकारी' एवं 'चांडाली' मागधी के अंतर्गत रखी जा सकती हैं—'ढक्की' के विषय में कोई निश्चित जानकारी मिलती नहीं।[१] संस्कृत के किसी अन्य नाटक में प्राकृत का इतना विविध तथा बहुल प्रयोग उपलब्ध नहीं है, और ऐसा अनुमान करना युक्ति संगत प्रतीत होता है कि 'नाट्यशास्त्र' में विभिन्न प्राकृतों के प्रयोग के लिए जो विधान दिया गया है,[२] उसको चरितार्थ करने के लिए ही, शूद्रक ने प्राकृत-प्रयोग की अपनी योजना कार्यान्वित की है।

(४)

संस्कृत रंगमंच की परम्पराओं का अन्य प्रकार से भी अतिक्रमण 'मृच्छ०' में हुआ है। नायक चारुदत्त प्रत्येक अंक में उपस्थित नहीं होता जो शास्त्रीय परम्परा के अनुसार आवश्यक है। निद्रा और हिंसा रंगमंच पर प्रदर्शनीय नहीं बताये गये हैं, लेकिन शूद्रक ने इन प्रतिबंधों का पालन नहीं किया है। प्रेम के विषय में भी उसका साहस प्रशंसनीय है। दुर्दिन की वर्षा में चारुदत्त तथा वसंतसेना परस्पर आलिंगन करते दिखाये गये हैं जो शास्त्रीय विधान के प्रतिकूल है। सूत्रधार अन्य क्लासिकल नाटकों में संस्कृत में ही बोलता है, किन्तु 'मृच्छ०' में वह संस्कृत में आरंभ कर, 'प्रयोजनवशात्' नटी से प्राकृत में बोलने लगता है। ये सब बातें शूद्रक को भास से मिली अवश्य, लेकिन उसने *शास्त्रीय परम्पराओं को अतिक्रान्त करने का निश्चय किया—यह स्वयं अपने* में महत्त्वपूर्ण माना जाएगा।

(५)

'प्रकरण' के विषय में भरत का विधान था कि उसका "लौकिक वृत्त" होनी

---

१ वही, पृ० १४१ ४२

२ नाट्यशास्त्र (चौखम्बा), १८।३५-४८

चाहिए। लेकिन, तोभी संस्कृत के नाटककार, लौकिक कथानक नहीं अपना कर, इतिहास तथा पुराण का आश्रय लेते थे और जहाँ लौकिक जीवन का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करने की वे चेष्टा भी करते थे, वहाँ वह राजाओं, मन्त्रियों तथा महलों की घटनाओं का ही संसार बनकर रह जाता था। भवभूति अपने प्रकरण 'मालतीमाधव' को भी अर्ध-ऐतिहासिक राजकीय पीठिका देने के प्रलोभन से अपने को रोक नहीं सके। इस काल्पनिक तथा आदर्शात्मक नाट्य परम्परा में *शूद्रक ने चारुदत्त-वसंतसेना की प्रेम-कहानी को ऐसे ढंग से* चित्रित किया कि जिससे लौकिक जीवन के यथार्थवादी वातावरण का अपघात नहीं हो सका। संस्कृत नाटकों की चमकीली पंक्ति में 'मृच्छ०' ही कदाचित् ऐसा नाटक है जिसे "उद्भावना का नाटक" (a drama of invention) कहा जा सकता है।

विषय-चयन में ही नहीं, अपितु विषय निरूपण में भी 'मृच्छ०' निराला है। भास से प्रेरणा ग्रहण कर, शूद्रक ने अपने विषय को एक ऐसी ताजगी तथा साहस के साथ व्यवस्थित किया है जिससे परम्परा-विरोध की उसकी भीतरी ललक बिलकुल सतह पर प्रकट हो जाती है। जैसा अभी कहा है, नाट्य-कला के टेकनिकल नियमों का उल्लंघन उन्मुक्त भाव से किया गया है। दूसरे अंक में आम सड़क पर जुआरियों की लड़ाई होती है; छठे तथा नवें अंकों में क्रमशः वीरक-चंदनक तथा शकार विदूषक परस्पर झगड़ पड़ते हैं और वह उग्र हिंसा का रूप ग्रहण कर लेता है, तीसरे अंक में संधिच्छेद का साहसपूर्ण व्यापार रात्रि के समय घटित होता है जहाँ मैत्रेय तथा चारुदत्त नींद में सोते दिखाये जाते हैं, आठवें अंक में एक सुन्दरी तरुणी का कंठनिपीड़न होता है और अंतिम अंक में एक निर्दोष एवं उदार व्यक्ति के प्राण-मोचन तथा एक सती-साध्वी नारी के चितारोहण के भयानक एवं कारुणिक दृश्य नियोजित होते हैं। संस्कृत रंगमंच के लिए ऐसे दृश्य प्राय अपरिचित एवं नवीन थे।

(६)

'मृच्छ०' के चरित्र भी संस्कृत नाटक के लिए निराले हैं। चारुदत्त निर्धन होते हुए भी उदार एवं शालीन है। वसंतसेना गणिका-दारिका होते हुए भी, अपने अदम्य निश्चय के फलस्वरूप कुलवधू बनती है और अपने प्रणयदेवता को भी मृत्यु-मुख से बचा लेती है। चेट स्थावरक सीधा सरल, ईमानदार तथा भगवान् से डरनेवाला नौकर है जो एक निरपराध व्यक्ति की प्राणरक्षा के लिए ऊपरी अट्टालिका से नीचे कूद कर अपने प्राणों की बाजी लगा देता है। मदनिका एक साधारण दासी है, लेकिन इतनी सच्ची एवं निष्ठाशील कि वह

अपने प्रणयी को भी कुपित करने तथा अपनी मुक्ति के एकमात्र अवसर को भी, शर्विलक द्वारा दिये जाने वाले आभूषण को लौटा कर, नष्ट करने का खतरा मोल ले लेती है। वीरक ऐसा कबडी पुलिस का अधिकारी है जो अपने कर्त्तव्यों के सम्पादन-हेतु अपने पिता को भी नही छोडता।[1] शर्विलक ब्राह्मण होते हुए भी चोर है तथा वेश्या दासी के प्रेम मे फंसा है और फिर भी, राजनीतिक क्रान्ति का नायक है। दर्दुरक गरीब जुआरी है, किन्तु उसके भीतर अत्याचार का विरोध करने का तीखापन जीवित है और वह राज्य क्रान्ति के समर्थकों की पक्ति मे सम्मिलित हो जाता है। दोनों चाण्डाल जन्म तथा वृत्ति से चाडाल हैं, लेकिन धर्मबुद्धि से अनुशासित हैं, मनुष्य के जीवन के प्रति आदर की भावना से उदबुद्ध हैं और चारुदत्त से क्षमा याचना करना भी आवश्यक समझते हैं कि वे केवल कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं। शास्त्रीय परि-भाषाओं की परिधि को लाँघ कर जीवन्त चरित्र की सृष्टि करना शूद्रक की नाटकीय प्रतिभा की विशेषता है। विदूषक मैत्रेय की सृष्टि मे यही बात लक्षित होती है वह परम्परा का पिटा पिटाया विदूषक नहीं है, अपितु अपने मित्र एव स्वामी की भलाई के लिए निरन्तर चिन्तित है तथा उसी चिन्ता में भयकर भूलें भी कर बैठता है। शकार दुष्ट, लम्पट, निर्मम, दुर्विनीत तथा हिंसालु है और अपनी आत्मा की दुर्बल ध्वनियों को शक्ति के साथ दबा लेता है। सजीव एव स्पष्ट वैयक्तिकता से समन्वित, इतने विविध रूपों वाले, सख्या मे इतने अधिक चरित्र अन्य किसी सस्कृत नाटक मे उपलब्ध नही होते।

पाश्चात्य विद्वानों ने 'मृच्छ०' के चरित्रों को यूरोपीय नाटक के चरित्रों की तुलना में परीक्षित किया है। शकार शठ (Villain) और मूर्ख (buffoon) दोनों का मिश्रण है जो पाश्चात्य नाटक का परिचित पात्र है, अभी हाल तक सैमुयल बैकेट की रचना 'Waiting for Godot' मे उसका निरूपण हुआ है। वसन्तसेना तथा चारुदत्त मूलत वे ही नायक नायिका हैं जो प्लॉटस तथा टेरेन्स के नाटकों में दिखाई पडते हैं। लेकिन, अन्य सूक्ष्म भेद-विभेद भी अवलोकित किये जा सकते हैं। इस प्रकार, चारुदत्त के चरित्र मे जो धर्म-भावना तथा दु ख-कातरता के तत्व दृष्टिगोचर होते हैं, वे हमें क्रमश-'Everyman In His Humour' तथा 'Hamlet' का स्मरण कराते हैं, और वसन्तसेना की शिष्ट-सभ्रान्त सुरुचिपूर्णता से कैल्डरन तथा रैसाइन जैसे नाट्य-कारों की नायिकाओं की याद हो जाती है। शकार का विट आज्ञापालक परिचारक से जो आत्म-सम्मान वाला विद्रोही बन जाता है, उसकी प्रतिकृतियाँ

---

१. "आर्ये च राजकार्ये पितरमपि अहं न जानामि।" (मृच्छ०, ६।१५)

यूरोप के अगणित नाटकों मे उपलब्ध होती हैं। वसन्तसेना की अविचलित मनोभाव वाली बुढ़िया माता प्राचीन यूनानी प्रहसनो मे तथा टेनेसी विलियम्स के प्रसिद्ध नाटक 'Camino Real' मे विद्यमान दिखाई पड़ती है। मैत्रेय पाश्चात्य नाट्य जगत् का सुपरिचित विदूषक (Clown) है तथा सुखान्तकी का नायक अथवा हेनरी फील्डिंग के उपन्यास का नायक बनने की सी क्षमता रखता है। संवाहक ऐसा चरित्र है जो जार्ज कैसर के किसी नाटक के वातावरण में पूर्णतया घुलमिल जाएगा। प्रणय की उत्तेजनाओं के लिए परम्परागत रूढ़ियों को तोड़ने वाला शर्विलक बर्नार्ड शा के नाटको मे उपलब्ध किसी भी सनकी (fantastic) पात्र की गोत्रावली मे बैठ सकता है। मदनिका यूरोपीय सुखान्तकी (Comedy) मे प्रकट होने वाली चतुर तथा साहसी दासी युवती है जो शेक्सपियर के 'Twelfth Night' में मैरिया बन कर, तथा मोलियर में बीसों बार, आई है। अतएव, 'मृच्छ०' के कम-से-कम ये दस पात्र तथा अन्यान्य कम महत्व वाले दस और भी पात्र ऐसा सार्वभौम आकर्षण रखते हैं कि वे ससार मे कहीं भी प्रदर्शन प्रियता प्राप्त कर सकते हैं।[१]

(७)

वस्तु विन्यास का कुशल शिल्प भी 'मृच्छ०' को अनुपम वैशिष्ट्य से विभूषित कर देता है। घटनाओं का वैविध्य और उसके साथ-साथ भावो का वैविध्य जो यहाँ गुम्फित मिलता है, वह सस्कृत नाटक के लिए नितान्त अनोखा है। घटनाएँ उत्सुकता एव विस्मय उत्तेजित करती हैं और हर्ष, आश्चर्य, करुणा, भय, हास्य प्रभृति भाव एक-दूसरे के बाद रह-रह कर उदित एव विलीन होते रहते हैं। रात को सड़क पर एक युवती बलात्कार की भावना से पीछा की जा रही है जिससे जटिल परिणाम उत्पन्न होते हैं, जुए म हारा हुआ एक जुआरी भी पीछा किया जाता है जिसके कारण सड़क पर मार-पीट हो जाती है, रात के अधकार में साहसपूर्ण सेंध की योजना कार्यान्वित की जाती है, वेश्या के प्रासाद-प्रागण मे एक चोर तथा एक सुन्दरी दासी की प्रेम-लीला दिखाई पड़ती है, एक नायिका वर्षा तथा तूफान की अवहेलना करती हुई अपने प्रणयी से मिलने के लिए अभिसार करती है, गाड़ियाँ अदल-बदल जाती हैं और पुलिस के दो अधिकारी सड़क पर कलह करते हैं, उद्यान मे एक सती सुन्दरी की निर्मम हत्या होती है; न्यायालय मे अभियोग चलता है और अन्तत एक निर्दोष व्यक्ति बड़े कारुणिक ढंग से मृत्यु के मुख मे ढकेला जाता है तथा अचानक मारे

१ Henry Wells . 'The Classical Drama of India',
पृ० १३७–३८.

जाने से बच जाता है। घटनाओं के इस सङ्कुल वैविध्य के अनुरूप भावों की बदलती अनुभूति एवं उद्वेजना का माकर्य भी पाठक तथा प्रेक्षक को, जैसे अपनी कठोर पकड़ में, बाँधे रहता है। मृत्यु का दारुण शोक तथा प्रेम के सफल मिलन का आकस्मिक आनन्द; एक लम्पट आवारे की कामुक हास्योत्पादकता तथा एक अनुभवी व्यक्ति का गम्भीर चिन्तन, विनोद, व्यंग्य तथा वाग्-वैदग्ध्य; थोथा प्रहसन तथा हार्दिक मनोरञ्जन का हर्ष, निर्दोष तथा भयावह कारुणिकता और मैत्री कृतज्ञता एवं अविचलायमान निष्ठा का गहरा हर्ष तथा विस्मय—ये सभी भाव प्रस्तुत प्रकरण की रपटीली भूमि को छोटी बड़ी कुल्याओं के रूप में अभिषिंचित कर रहे हैं। इसी अनुपम योजना से चमत्कृत होकर, डॉ० राइडर ने कहा है—"प्रहसन से विषाद तक, व्यंग्य से करुणा तक, 'मृच्छ०' की कहानी उस विशदता एवं व्यापकता के साथ सञ्चरण करती है जो सच्चे अर्थों में शेक्सपियर की कला की प्रतिस्पर्धी है।"*

(८)

शूद्रक की अन्य महत्वपूर्ण विशेषता है, 'मृच्छ०' का उत्फुल्ल यथार्थवाद। संस्कृत नाटकों का यथार्थवाद सामान्यतः इतना ही रहा है कि किसी पौराणिक कहानी को मानवीय परिवेश प्रदान कर दिया जाय अथवा राजमहल के अन्तरंग हर्म्य का परदा यदा कदा उठा दिया जाय जिससे उसके भीतरी जीवन की कतिपय झाँकियाँ मिल जायँ। इन चित्रों में कलाकार की कल्पना की लालित किरणों की स्निग्ध आभा स्पष्ट चमकती रहती है। वस्तुतः संस्कृत रंग-मंच पर विशुद्ध यथार्थ कभी प्रदर्शित ही नहीं हुआ। शूद्रक ने बड़ी सूझ एवं साहस के साथ उत्फुल्ल यथार्थ का आश्चर्य अभिनिवेश किया है। दूसरे अङ्क में जुआरियों वाला दृश्य निराला बन गया है। पासे का फेंकना तथा उसकी खनखनाहट, जुआरी को भगदड़ एवं खोज तथा उसका दंडित होना, मंदिर में उसका भाग कर छिपना, राजपथ में मनुष्य का विक्रय, आँखों में धूल झोंक देना और फिर लड़ाई झगड़ा—ये सभी तथ्य जो प्रस्तुत दृश्य में नियोजित हुए हैं, यथार्थ जीवन की निखालिस गन्ध से गमकते प्रतिभासित होते हैं। तथापि 'मृच्छ०' का यथार्थवाद निम्नस्तरीय जीवन की उन झलकों से ही समाप्त नहीं होता, वह इनसे बहुत आगे तक निकल जाता है। उसकी विविध घटनाओं एवं दृश्यों में तथा अनेक आकस्मिक कथनों में यह यथार्थवाद झाँकता दिखाई देता है। उज्जयिनी के रात्रिकालीन जीवन का चित्र जिसमें राजा के सगे सम्बन्धी तथा

* "From farce to tragedy, from satire to pathos, runs the Story, with a breadth truly Shakespearean"—Dr Ryder

प्रिय पात्र सडको तथा गलियो मे अँधेरे मे विचरण करते हैं और शृंगार सज्जित वेश्या युवती को उसी प्रकार घेरते तथा परेशान करते हैं जैसे एक सरल सीधे ब्राह्मण को; एक युवक साहसी चोर का चित्र जो ईंटों तथा उनको नापने की डोरी की चर्चा करता है, दीवाल तोड कर भीतर आने-जाने के लायक बड़ा 'भूका' (छेद) खोल देता है एक चरमराते दरवाजे को धक्का देता है, सोते हुए व्यक्तियो के चेहरो पर जलते दीपक की क्षीण रोशनी पडती हुई देखता है, पाँव रखने की आवाज से बचने के लिए जमीन पर पानी डाल देता है, और सोते व्यक्ति के हाथ से अलङ्कार ले लेता है तथा चुपके से बाहर निकल जाता है, एक बन्दी का चित्र जो कारागार से निकल कर भागता है और जिसके पैरों मे लोहे की जजीरें अभी पडी हुई हैं, ऊबड़खाबड़ सडकों पर चलने वाली गाडियों का चित्र जिनको हाँकने वाले बैलों को चिल्ला चिल्ला कर आगे बढ़ा रहे हैं; राजमार्गों पर सचरण करने वाले मौत के जुलूस का चित्र जिसमे लोगों की ठसाठस भीड जमकी हुई है तथा नगाडे बजा बजा कर चाडाल चौराहों पर घोषणा करते जा रहे हैं, लोगों के अपने सिर झुका कर चलने का चित्र तथा ऐसी नारियों का चित्र जो अपने घरों एव अट्टालिकाओं के गवाक्षो से नीचे झाँकती हैं और वह हृदय-विदारक दृश्य देख कर अश्रु-वारि की पुष्कल धाराएँ प्रवाहित करती हैं—ये समस्त चित्र जिनमे से कुछ प्रस्तुत प्रदर्शित होते हैं तथा कुछ वर्णित होते हैं, यथार्थ की प्रकृत ध्वनि से गूँजते दिखाई पडते हैं। नवें अक का अभियोग वाला दृश्य भी यथार्थवादी कहा जाएगा। इनके अतिरिक्त अन्य चित्र भी हैं जो नाटक के यथार्थ को प्रस्फुट एव समृद्ध बनाने में सहयोग देते हैं। नभ्यागना वर्षा में अपने प्रणयी से मिलने के लिए अभिसार करती हुई तो सोची जा सकती है, लेकिन वसन्तसेना का चारुदत्त के घर के दरवाजे पर पहुँच कर, पैर मे सटे कीचड को धोना तथा भीतर आकर भीगी साडी बदलना[1]—यह शूद्रक जैसा नाट्यकार ही कर सका है। कालिदास ने शिशु सर्वदमन को खिलौने से खेलता दिखाया है, किन्तु शूद्रक ने यह प्रदर्शित कर यथार्थ का रग अधिक गाढा बना दिया है कि रोहसेन मिट्टी की गाडी से खेलना इनकार कर, सोने की गाडी से खेलने के लिए मचल रहा है क्योंकि उसने पडोसी के लड़के को सोने की गाडी से खेलते देखा है—यह चित्र बाल-मनोविज्ञान की विश्वसनीयता मे सौरभमय हो उठा है। वैसे हो, किसी गृह के निर्माण का निर्देश किया जा सकता है, लेकिन, जब वर्धमानक यह कहता है कि एक लकडी की शहतीर सडक के आर-पार पडी हुई थी क्योंकि गृह निर्माण का कार्य चल रहा था

---

१ 'मृच्छ०' (चौ०), ५।३५, पृ० २९८

और उसी अवरोध के कारण सडक का आवागमन बाधित हो गया था, तब हमे यथार्थ का एक प्रस्फुट सस्पर्श मिलता है जिसकी सचाई की ओर से हम आँख नही मूद सकते। अतएव, यह स्पष्ट हो जाता है कि नाटक का वातावरण यथार्थवादी 'स्पिरिट' से ओत-प्रोत है और डॉ० भाट के अनुसार यह "वास्तविक जीवन से काटा गया एक छोटा टुकड़ा" ('a slice cut from real life') प्रतीत होता है।[१]

इस सबध मे हमारा ध्यान स्वभावत डॉ० कीथ की इस टिप्पणी की ओर आकर्षित होता है कि मृच्छ०' किसी भी अर्थ मे "जीवन की नकल" नही है।[२] ऐसा लगता है—उन्होंने अपनी राय के लिए कोई कारण नहीं दिया है—कि चारुदत्त तथा वसन्तसेना के चरित्रो मे जो आदर्शवादी पुट आ गया है और कुछ अन्य चरित्र भी अपनी यथार्थवादी भूमिका के बीच जो आदर्श रग से लिप्त हो गये हैं, उसी के कारण शायद कीथ ने यह टिप्पणी की है। यहाँ हमारी सम्मति यह है कि डॉ० भाट और डॉ० कीथ, दोनो की टिप्पणियाँ अपनी-अपनी जगह सही हैं तथा सत्य का अधिक अंश लिए हुए हैं। मुख्य चरित्रों में निष्ठा, उदारता एव साहस का जो आदर्श स्वरूप उतर आया है, उसे ही विचार का प्रमुख विषय बना लिया जाय तो मृच्छ०' जीवन की नकल सचमुच नही माना जा सकता, और इस आदर्श-तत्व को माइनस' कर दिया जाय तो जो कुछ बच जाता है, वह निश्चितरूपेण वास्तविक जीवन का एक टुकड़ा माना जाएगा। प्रस्तुत प्रकरण "सामाजिक एम कलात्मक चुनौतियो का नाटक" है[३], और चुनौतियाँ यथार्थ को स्पर्श करती हुई भी, किसी-न-किसी प्रकार, आदर्श की खनक मे सनसना उठती हैं। यही कारण है कि यह नाटक जीवन की नकल नहीं होते हुए भी वास्तविक जीवन का एक सजीव टुकड़ा है, और जीवन का एक प्रकृत टुकड़ा होते हुए भी जीवन की नकल नहीं है।

'मृच्छ०' का एक दूसरा वैशिष्ट्य उसमें प्राप्त हास परिहास की योजना है। यह परिहास तीन प्रकार का दिखाई पडता है प्रथम शब्दगत, द्वितीय, चरित्रगत और तृतीय, परिस्थितिगत। शब्दगत हास श्लेष तथा शाब्दिक वैदग्ध्य के रूप मे प्रकट होता है। सेना' तथा 'वसन' पदों को उलट कर जोड़ने के

---

१ Dr Bhat · Preface To Mrech', पृ० १३-१४

२ 'In no sense a transcript, form life"—Dr A. B Keith · 'Sanskrit Drama' (1959) पृ० १३४

३ डॉ० सुशीलकुमार दे 'History Of Sanskrit Literature' (1947), पृ० २४८

निर्देश को मैत्रेय यह समझ लेता है कि उसे अपने पैर उल्टने को कहा जा रहा है। चेट कहता है—"ननु परिवर्त्य मण"। मैत्रेय अपना शरीर बदल लेता है "कामेन परिवृत्य।" चेट कहता है—"अरे मूर्ख बटुक! पदे परिवर्तय" तब विदूषक अपने पैर बदल लेता और वही "सेना-वसन" शब्द दुहराता है—"(पादौ परिवर्त्य) सेनावसन्ते।" 'पद' शब्द के श्लेष से यहां हास उत्पन्न हो रहा है।[1] ऐसे ही, आठवें अंक मे बौद्ध श्रमण ने शकार को जब 'उपासक' कह कर सबोधित किया है, तब शकार उससे 'नाई' का अर्थ ग्रहण कर रुष्ट हो जाता है, और जब वह फिर उसे धन्यवाद देता है 'त्व धन्य त्व पुण्य", तब शकार इन शब्दों से 'चारण', 'जुआरी' तथा 'कुम्हार' का अर्थ ग्रहण कर लेता है।[2] यहाँ हास उत्पन्न करने के लिए श्लेष का सहारा लिया गया है यद्यपि ग्राम्य बोलचाल के शब्द होने से ये दूसरे अर्थ आसानी से समझ मे शायद नहीं आ सकें। कभी-कभी शब्दों की आड मे पहेली भी बुझाई गई है, यथा, 'सेना' एवं 'वसन्त' शब्दो को बताने के लिए चेट ने क्रमश ये प्रश्न पूछे हैं—"सम्पत्तिशाली नगरो की रक्षा कौन करता है" और "किस समय मे आम्र मे मजरियाँ लगती हैं?"[3] छठे अङ्क मे वीरक तथा चन्दनक ने एक दूसरे की जाति के द्योतनार्थ ऐसी ही पहेली का आश्रय लिया है।[4] शकार के कथनों मे प्राय हास्य की जो अवतारणा हो जाती है वह भी भाषा का ही खिलवाड समझी जाएगी। 'स' का वह बराबर 'श'-जैसा उच्चारण करता है। दूसरे, वह पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग का बहुत शौकीन है, उदाहरणत, अपने को वह प्रायः 'देव-पुरुष-मनुष्य" की उपाधि से अलकृत करता है। इसी प्रकार, उसने वसन्तसेना के लिए दस समानार्थक विशेषण निश्चित किये हैं।[5] तीसरे, पौराणिक पात्रों को वह गलत ढग से उद्धृत करता है; उदाहरणत वसन्तसेना को भयभीत भागती देखकर वह 'रावण के द्वारा कुन्ती' के सताये जाने का तथा 'राम से डरी हुई द्रौपदी' का कथन करता है[6] और रदनिका के केश पकड कर, 'चाणक्य' के द्वारा द्रौपदी के 'केश कर्षण' की बात करता है।[7] शकार के समस्त प्रयोग हास्य उत्पन्न करते हैं और उसकी मूर्खता को उभार मे ला देते हैं।

लेकिन, वाग्वैदग्ध्य से हास्य उत्पन्न करने मे विदूषक मैत्रेय का अधिक

---

१ 'मृच्छ०' (चौखम्बा), पृ० २७२ २ वही, पृ० ३७७–७८
३ वही, पृ० २७०–७१ ४ वही, पृ० ३५०–५१
५ वही, १।२३ ६. वही, १।२१, १।२५
७ वही, पृ० १।३९

भाग है। संस्कृत पढनी हुई स्त्री के लिए वह नवनासिकाछिद्रित गाय के 'सू-सू' शब्द करने की उपमा लाता है।[1] वेश्या को जूते मे पडी हुई कंकडी के समान बनाता है जो जूते से बाहर जल्दी नहीं निकल पाती।[2] वसन्तसेना की माता को देखकर, वह अत्यन्त निर्मम निर्लज्जपन के साथ कहता है—"अरे! इस अपवित्र पिशाचिनी का पेट कितना बडा है! क्या इसे प्रविष्ट करा कर, शिवजी के समान इस घर की द्वार-शोभा का निर्माण हुआ है!"[3] यह बताये जाने पर कि वह वृद्धा चौथिया रोग से पीडित है, मैत्रेय परिहास मे कहता है—"हे भगवन् चातुर्थिक! इसी कृपा से मेरी ओर भी दृष्टि फेरिये।"[4] वसन्तसेना के भाई को रेशमी वस्त्र तथा चमकीले आभूषणो से सज्जित एव इधर-उधर आनन्द से घूमते देख कर, उसने कहा है—"अहो! कितना तप करने से वह वसन्तसेना का भाई हुआ है।"[5] मैत्रेय का परिहास वेश्याओ तथा उनके परिजनो के विषय मे प्राय निर्मम व्यग्य का स्वरूप ग्रहण कर लेता है।[6]

चरित्रगत हास्य के अन्तर्गत मुख्यतया मैत्रेय तथा शकार आते हैं। इनके चरित्र मे ऐसी विशेषताएँ हैं जो हास उत्पन्न करती हैं। मैत्रेय विदूषक-परम्परा का प्रतिनिधि है और इसी कारण, उसके चारित्रिक गुण हासोत्पादक हैं। उसका सिर तो कुरूप है ही, उसकी डरपोकता भी परिहास का विषय बनती है। बलि चढाने के लिए वह सायकाल घर से बाहर नही जाना चाहता, किन्तु बाध्य होने पर, उसे दीपक की तथा रदनिका दासी के साथ की आवश्यकता पडती है—स्त्री भी साथ रहे तो उसका भय शमित हो जाएगा। सुस्वादु भोजन की लोलुपता के कारण, वह अपने को हँसी का पात्र बनाता है जब वह पिछले दिनों की याद कर, क्लेश की भावना से अपने को 'नगर-प्रांगण मे पागुर करते हुए साँड' से उपमित करता है। इसी स्वाद-लोलुपता से अनुप्राणित होकर, वह वसन्तसेना पर हृदय से रुष्ट एव दु:खित होता है कि उसने, अपनी सकल सम्पत्ति के बावजूद, जलपान के लिए भी उसे नही पूछा—"आर्य मैत्रेय! थोडा विश्राम कर लीजिये। पात्र से पानी तो पी लीजिए। अब मुझे उस वेश्या-दारिका

---

१ वही, पृ० १४८   २ वही, पृ० २६३
३ वही, २४४   ४ वही, पृ० २४५
५ वही, पृ० २४३.

६ दे० वसन्तसेना के भाई के ही सम्बन्ध में वह पीछे, उसी के साथ, क्या कहता है, "श्मशान की गलियों में उत्पन्न होनेवाला चपक वृक्ष"।

का मुँह कभी नहीं देखना चाहिए।"[१] मैत्रेय का हास ऊपरी या दिखावटी नहीं है। वह सचमुच जला भुना हुआ रहता है क्योंकि ब्राह्मण है, चारुदत्त की समृद्धि के दिनों में सम्मान तथा मोदक, मालपुआ इत्यादि स्वादिष्ट पदार्थों का यथेष्ट आस्वादन ले चुका है। वसन्तसेना जब चारुदत्त के घर आई है, तब मानो वह व्यंग्य-पूर्ण मनोभङ्गी मे अपने दिल के फफोले, जब भी अवसर मिलता है, निकालता है। वसन्तसेना के पूछने पर वह उत्तर देता है—"श्रीमती जी! आपके जुआरी (चारुदत्त) शुष्कवाटिका में हैं।" वसन्तसेना पूछती है—"आप लोग 'शुष्कवाटिका' किसे कहते हैं।" तब व्यंग्य पूर्ण भाव से उत्तर देता है—"श्रीमती जी! जहाँ न खाया जाता है, न पिया जाता है।"[२] वसन्तसेना ने उसे जलपान के लिए भी नहीं पूछ कर जो अनादर प्रदर्शित किया था उसी का जवाब यहाँ विदूषक देता है। वसन्तसेना भी कम चालाक नहीं, वह व्यंग्य समझ जाती है और मुस्करा देती है। इसी मनोभावना में उसने वसन्तसेना से ऐसे प्रश्न किये हैं—"ऐसे घोर अन्धकार से आच्छन्न दुर्दिन में आप यहाँ किस लिए आई हैं?"[३] और "प्रिय सखि! क्या आप इसी घर में आज सोयेंगी?"[४]

मैत्रेय के समान शकार के चरित्र में भी ऐसी विशेषताएँ हैं जो हास उत्पन्न करती हैं। अन्य नाटकीय शठों (villains) के समान वह भी कायर है और मूर्ख है। वह 'मनुष्य' अथवा 'राक्षसी' से डरता है।[५] विदूषक की मारफत चारुदत्त को कठोर धमकियाँ देने के बाद, वह तलवार को कन्धे पर रख कर, भय से अनुप्राणित हो वैसे ही भाग जाता है जैसे कुत्तों के पीछे लगने पर शृगाल भाग जाते हैं।[६] शकार का दम्भ भी उसकी कायरता के ही समान उसे परिहास का पात्र बनाता है। जब वह अपना परिचय "मेरी बहन के पति राजा पालक के साले" के रूप में देता तथा गर्व से फूल जाता है, तब हमारी हँसी रोकने से भी नहीं रुकती। शकार की निर्ममता भी परिहास उत्पन्न करती है, लेकिन वह परिहास कठोर एवं भयावह होता है। वसन्तसेना को मारने के बाद, वह अपनी बहादुरी की डींग हाँकता है और विट से अत्यन्त प्रशान्त मुद्रा में प्रस्ताव करता है—"आओ, चलें कमल से पूर्ण उस तालाब में जलक्रीड़ा करने।"[७] और अन्त में जब उसकी निर्मम योजना का पर्दा फट गया है

---

१ वही, पृ० २६०

२ "भवति! यस्मिन् न खाद्यते, न पीयते।"—वही, पृ० २९६

३ वही, पृ० २९९

४ वही, पृ० ३०७

५. वही, पृ० ९६

६ वही, १।५२

७ वही, पृ० ४३९

तथा उसी के प्राणों पर सङ्कट आ गया है तब वह वसन्तसेना से इन शब्दों में प्रार्थना करता है— "गर्भदासीपुत्रि ! प्रसीद, प्रसीद, न पुनर्मारयिष्यामि, तत् परित्रायस्व।"[1] 'हे गर्भदासीपुत्री ! प्रसन्न हो जाओ, प्रसन्न हो जाओ, अब मैं फिर तुम्हें नहीं मारूँगा, मेरी रक्षा करो"—शकार का यह विनय-पूर्ण कथन कितनी व्यंग्य-भरी हँसी उत्पन्न करता है ! मैत्रेय का हास-परिहास जैसा व्यंग्यपूर्ण होता है शकार का हास वैसा ही हास्यास्पद तथा निष्ठुरतापूर्ण होता है।

अन्य चरित्रों में दर्दुरक-द्वारा उत्पन्न हास अपने ढंग का निराला है। वस्तुतः वह विशुद्ध हास है क्योंकि उसमें न मैत्रेय का व्यंग्य है न शकार की कठोर निर्ममता। वह जुआरी आवारा है। उसकी गरीबी ने न तो उससे उसका द्यूत प्रेम ही छीना है और न उसके मन में कोई कटुता ही उत्पन्न की है। अत्यन्त हलके चित्त से तथा विनोद-पूर्ण शब्दों में वह जुए की सराहना करता है जिसने उसे धनवान् भी बनाया है और निर्धन भी—"अजी ! जुआ मनुष्य का बिना सिंहासन का राज्य है। × × × × × जुए के कारण ही मैंने धन, स्त्री तथा मित्र उपार्जित किये हैं और जुए से ही अपना सर्वनाश भी कर दिया है।"[2] इसी विचित्र मनोभङ्गी में, वह फटे, जीर्ण शीर्ण वस्त्र के साथ ममता-पूर्ण सहानुभूति भी प्रकट करता है—' इस वस्त्र के सूत छिन्न-भिन्न हो गये हैं। यह वस्त्र सैंकड़ों छिद्रों से विभूषित है। यह वस्त्र देह ढकने में समर्थ नहीं हो सकता है। अतएव, यह सम्पुट-रूप में ही सुशोभित होता है।"[3] दर्दुरक का चरित्र निम्नस्तरीय पात्रों में सबसे आकर्षक बन गया है। शर्विलक के चरित्र में भी हास का पुट है जो सन्धिच्छेद वाले प्रसङ्ग में देखा जा सकता है।

'मृच्छ०' में परिस्थितिगत हास्य की भी योजना निराली है। इसके विविध रूप सन्निविष्ट हुए हैं। पाँचवें अङ्क में शूद्रक ने एक प्रहसनपूर्ण स्थिति वहाँ उत्पन्न कर दी है जहाँ मैत्रेय तथा वसन्तसेना के चेट के बीच वह मनोरञ्जक दृश्य उपस्थित हो जाता है जिसमें मैत्रेय परिहास का पात्र बनता है। शकार तथा वसन्तसेना के बीच घटित होने वाले प्रेम के दृश्य भी प्रहसनात्मक (farcical) बन जाते हैं जिनमें शकार प्रेम का प्रदर्शन भी करता है और वसन्तसेना के प्रति हिंसात्मक आचरण भी करता है। दूसरे अङ्क का जुआरियों वाला दृश्य बड़ी मनोरञ्जक परिस्थिति उत्पन्न करता है। द्यूताध्यक्ष माथुर एक अन्य जुआरी के साथ संवाहक का पीछा करता है क्योंकि वह जुए में

---

१. वही, पृ० ५८७ २ वही, २।७-८

३ वही, २।१०

हारा हुआ सुवर्ण उन्हें लौटा नही पाया है। सवाहक उनसे बचने के लिए नाना हास्यास्पद चेष्टाएँ करता है और वे चेष्टाएँ उस समय अत्यन्त विनोदपूर्ण स्वरूप ग्रहण कर लेती हैं जब वह उलटे कदम चल कर एक समीपस्थ मंदिर मे भाग जाता है तथा उसमे रखी प्रतिमा के सामने बिल्कुल निश्चल भाव से खडा हो जाता है और माथुर उसकी देह को हिला डुला कर देखता भी है। दूसरा जुआरी उसे देख कर कहता है—"क्या काठ की मूर्ति है ?" तब माथुर उत्तर देता है—"अरे ! नही, नहीं, पत्थर की मूर्ति है।" स्थिति सवाहक के लिए तब बडी ललचाने वाली हो जाती है जब ये जुआरी मंदिर मे ही जुआ खेलने लग जाते हैं। दोनों बारी-बारी से कहते हैं—'मेरा दाँव है, मेरा दाँव, नहीं, नहीं, तुम्हारा दाँव नही, मेरा दाव है।'[1] सवाहक के लिए अब जुए का आकर्षण अरोधव्य बन जाता है। मन मे कहता है— 'मैं जानता हूँ कि सुमेरु पर्वत के शिखर से गिरने के समान जुआ अनिष्टकारी है, फिर भी, कोयल की मधुर कूक के समान 'कत्ता' शब्द मेरे मन को आकर्षित किये जा रहा है।"[2] और, सवाहक झटिति प्रतिमा का छद्मरूप छोड कर, जुआ खेलने के लिए प्रकट हो गया है।

उपर्युक्त हास्यपूर्ण दृश्य मे सवाहक का विचारहीन सीधापन एक करुणापूर्ण तत्त्व जोड देता है क्योंकि उसे माथुर की यातना सहनी पडती है। लेकिन, इसी समय दर्दुरक के प्रवेश कर आने से दृश्य बदल जाता है और हास विशद एव उत्फुल्ल बन जाता है। क्योंकि इन सभी जुआरियों मे परस्पर कुपित वाक्यो तथा प्रहारो का उन्मुक्त विनिमय होता है। इस सम्पूर्ण दृश्य का अवसान तो और भी मनोरजक बन गया है। सवाहक वसन्तसेना के घर के भीतर भाग कर शरण लेता है और वह सवाहक की करुण कहानी सुन कर, सभिक का ऋण चुकाने के लिए अपनी दासी के द्वारा स्वर्ण-ककण भेजती है। दासी बाहर निकल कर देखती है कि दोनों जुआरी दरवाजे पर सवाहक की प्रतीक्षा कर रहे हैं। और, जब वह सवाहक के ऋण के विषय मे पूछती है, तब यह सोच कर कि वह वेश्या के लिए 'ग्राहक' तलाश करने आई है, द्यूताध्यक्ष माथुर उत्तर मे कहता है—"हे कृशोदरि ! तुम कौन हो जो सुरत के समय दन्तविक्षत हुए होठों से ऐसी मनोहर वाणी निकालती हो और मनोरम कटाक्ष से ताकती हो ? हमारे पास धन नहीं है, दूसरे के पास जाओ।"[3] यहाँ परिहास कितना चटकीला बन गया है !

---

१ वही, पृ० १०२–१०८ २ वही, २।६

३ वही, २।१६, पृ० २३४

हासोत्पादक अन्य परिस्थितियाँ मदनिका-शर्विलक मिलन के प्रसग मे, सधिच्छेद वाले प्रसग मे, वीरक-चन्दनक कलह के प्रसंग में तथा न्यायालय वाले शकार-मैत्रेय की मारपीट वाले प्रसग मे चित्रित हुई है—यद्यपि अन्तिम दृश्य का परिहास मैत्रेय की कांख से आभूषण की गठरी के गिर जाने के फलस्वरूप, अत्यन्त दारुण एव दु खपूर्ण बन गया है। डॉ॰ राइडर ने शूद्रक के हास परिहास को 'अमेरिकन सौरभ' से पूर्ण बताते हुए, यह टिप्पणी की है—'(It) runs the whole gamut, from grim to farcical, from satirical to quaint Its variety and Keenness are such that King Sudraka need not fear a comparison with the greatest of Occidental writers of Comedies" अर्थात् 'यह हास परिहास भयानक से लेकर प्रहसन तक, व्यंग्यात्मक से लेकर विचित्र तक, सम्पूर्ण भाव क्षेत्र मे परिव्याप्त है। इसकी तीव्रता तथा विविधता ऐसी है कि बडे से-बडे पाश्चात्य सुखान्तकी नाट्यकारो के साथ शूद्रक की तुलना आसानी से की जा सकती है।

(१०)

'मृच्छ०' की रगमञ्चीय अभिनेयता के विषय मे भी थोडी चर्चा यहाँ आवश्यक प्रतीत होती है। घटना विन्यास के सम्बन्ध मे सामान्यतया दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं—पहली, कालक्रमात्मक (chronological) और दूसरी, कलात्मक (artistic)। कालक्रमात्मक पद्धति मे घटनाएँ उसी क्रम मे विन्यस्त होती हैं जिसमे वे, एक के बाद दूसरी, घटी रहती हैं, जबकि कलात्मक पद्धति मे कथा-प्रवाह के मध्य अथवा अन्त के किसी बिन्दु से नाटककार प्रारम्भ करता है और पिछली घटनाओं को अत्यन्त कलापूर्ण ढग से, भिन्न-भिन्न रीतियों से, उल्लिखित करता जाता है। विशाखदत्त के 'मुद्राराक्षस' में इस कलात्मक पद्धति का सुन्दर विनियोग हुआ है।[1] 'मृच्छ०' मे शूद्रक ने कालक्रमात्मक पद्धति का अनुसरण किया है—केवल एक अपवाद के साथ कि कामदेवायतन उद्यान वाली घटना की जानकारी हमें बाद में दी गई है। इस सीधी पद्धति के कारण, शूद्रक को कठिनाई का सामना करना पड़ा है क्योंकि कथानक की कतिपय घटनाएँ प्राय साथ साथ घटित होती हैं, और कतिपय पूर्वापर क्रम से घटित होने वाली घटनाएँ विभिन्न स्थलों में घटती हैं जिससे दृश्यों का आकस्मिक परिवर्तन हो जाता है। अभिनय के सम्बन्ध मे इन बातों

---

१ द्रष्टव्य डॉ॰ देवस्थली कृत 'Introduction To The Study of Mudra—Raksasa, पृ० १११ (f)

से बाधाएँ उपस्थित हुई हैं। रंगमचीय प्रदर्शन की अंकानुसारी विवेचना यहाँ उपादेय सिद्ध होगी।

पहला अंक इस अंक का प्रथम दृश्य चारुदत्त की गृहदेवों की पूजा तथा सन्ध्योपासना है और दूसरा वसन्तसेना का पीछा किया जाना है। ये एक ही सिलसिले मे घटित होते हैं, बल्कि एक दूसरे मे खिसक भी जाते हैं। इन दानो के बीच मे चारुदत्त की "समाधि" दिखा कर, चतुरता पूर्वक वसन्तसेना की भगदौड के लिए अवकाश प्रदान किया गया है। यह कल्पना की जा सकती है कि चारुदत्त और मैत्रेय दोनों मौन रहते हैं जब तक भगदौड का दृश्य अभिनीत किया जा रहा है। लेकिन, परवर्ती दृश्य के सम्बन्ध मे ऐसी कल्पना नही की जा सकती। शकार के (पीछा करने वाले) दल के लिए उस समय चुप्पी साधने की कल्पना असगत होगी जब मैत्रेय मातृदेवियो को बलि चढाने के हेतु बाहर निकलता है और इसी प्रकार, बाद को घटित होने वाले रदनिका प्रसग मे चारुदत्त को अस्वाभाविक रूप से मौनावलबन किये रहना पडेगा। इसके अतिरिक्त, दूसरी बात एक और बहुत महत्त्व की है वसन्तसेना की भगदौड का दृश्य बाहर सडक अथवा गली मे घटित होता है जब कि चारुदत्त निरतर घर के भीतर है। रदनिका के अपमान के विषय मे उसे कोई जानकारी नहीं और न यही जानकारी होगी कि मैत्रेय तथा शकार मे कैसा आवेशमय वार्तालाप हुआ। मैत्रेय तो रदनिका से अनुरोध ही करता है कि वह चारुदत्त से उस अपमान की चर्चा नहीं करे। पुन, यह स्पष्ट कहा गया है कि मैत्रेय तथा रदनिका बाहर निकलते हैं और वसन्तसेना पार्श्व-द्वार से घर के भीतर प्रवेश करती है। प्रश्न उपस्थित होता है कि ये समस्त विवरण क्योकर प्रदर्शित किये जायेंगे ? इन दृश्यो को परस्पर तोडना सभव नही है क्योकि रगमचीय टेकनीक इसकी अनुमति प्रदान नहीं करती। अतिरिक्त इसके, ये सभी दृश्य एक-दूसरे से शृखलित हैं। अतएव, या-तो पात्रों को रगमच पर भद्दे ढग से खडे हुए प्रदर्शित किया जाय और नहीं तो, बाहर की सडक तथा चारुदत्त के भीतरी *प्रागण तथा पार्श्व द्वार के बीच स्थान परिवर्तन का तथ्य प्रेक्षकों की कल्पना पर* छोड दिया जाय।

*एक दूसरा तरीका होगा, रगमच पर लकडी के बने हुए 'फ्रेम' को प्रेक्षा-*लय के साथ समकोण बनाते हुए रखकर, उसे (रगमच को) दो समानातर भागो (Compartmental division) मे बाँट देना। छोटा हिस्सा, पार्श्वद्वार के साथ दीवाल को दिखलाता हुआ, चारुदत्त का घर समझा जाएगा। और शेष रगमच सडक मान लिया जाएगा। केवल ऐसी ही रगमचीय व्यवस्था

से यह सम्पूर्ण अंक, एक क्रमिक दृश्य के समान, बिना विराम अथवा तोड के तथा बिना पर्दों को खीचे हुए, प्रदर्शित किया जा सकता है।

दूसरा अंक इस अंक का कार्य वसन्तसेना के घर से खुली सडक, मन्दिर, फिर सडक, वसन्तसेना के गृह द्वार और अन्तत फिर उसके घर के भीतर लौट आना है। इन विभिन्न दृश्यो का एक क्रम से घटित होना अथवा साथ साथ घटित होना दिखाया जाना यदि किसी प्रकार सम्भव होगा तो रगमच को उपर्युक्त रीति से दो हिस्सो मे बाँट कर ही जिनमे एक वसन्तसेना का घर तथा दूसरा सडक एव मन्दिर मान लिया जाएगा जहाँ जुआरियो वाला दृश्य प्रदर्शित होता है।

एक और तथ्य अवलोकनीय है। सवाहक का पीछा करनेवाले जुआरी वसन्तसेना के घर के द्वार पर खडे होकर, सवाहक के लौटने के लिए 'ऊपर' ताकते वर्णित किये गये हैं। वसन्तसेना की दासी भी संवाहक का ऋण लौटाने के लिए जुआरियो को देखने 'नीचे' गई है। अक के अन्त मे, सडक से होकर जाने वाले चारुदत्त के दर्शनार्थ वसन्तसेना अलिन्द पर चढ गई है। इन समस्त विवरणो से जान पडता है कि वसन्तसेना का भवन ऊपरी मञ्जिल पर अव-स्थित है। सामने वाले रगमच के बाँयें अथवा दाहिने हिस्से को चार खम्भों पर थोडा ऊँचा उठाकर, ऐसा दिखाया जा सकेगा।

तीसरा अंक इस अक का मुख्य कार्य-स्थल चारुदत्त का शयन-कक्ष है। लेकिन, इसके साथ बाहरी बरामदे की भी आवश्यकता पडेगी जहाँ वर्ध-मानक सोया है, बीच के प्रकोष्ठ की आवश्यकता होगी जहाँ कदाचित् मैत्रेय एव चारुदत्त ने सगीत से लौटने के बाद अपने पैर धोये है तथा जहाँ शर्विलक पहले-पहले प्रकट होता है, और शयन कक्ष की दीवाल की जरूरत पडेगी जिसमे शर्विलक ने कुछ ईंटें निकाली हैं। रगमच का अधिकाश भाग शयन-कक्ष का काम करेगा। बरामदा तथा बीच का प्रकोष्ठ रगमंच के एक ओर रखे जा सकते हैं। दूसरी तरफ दीवाल भी रहेगी जब तक कि उसे प्रेक्षकों की कल्पना पर नहीं छोड दिया जाय। लेकिन, बहुत से दरवाजो की भी आवश्यकता पडेगी। दीवाल मे एक दरवाजा रहेगा जिसे शर्विलक बाद को खोलता है और जिससे चर-मराहट की आवाज पैदा होती है। एक दूसरे दरवाजे की जरूरत होगी जिसमे होकर, रदनिका और धूता अन्तरग कक्ष से प्रवेश करती हैं। इस कक्ष का दरवाजा बीच मे पीछे की ओर रखा जा सकता है।

चौथा अंक • इस अक के व्यवस्थापन मे कठिनाइयाँ आती हैं। स्मरणीय यह है कि यहाँ वसन्तसेना निरन्तर रगमच पर रहती है। तब, यह उसका अपना निजी कक्ष होना चाहिए। मैत्रेय यहीं उससे मिलता है। सम्भवत यह

वही कक्ष होगा जहाँ दूसरे अंक में संवाहक वसन्तसेना से मिल चुका है। लेकिन, अब इसका दरवाजा सड़क की ओर नहीं है। उलटे, दरवाजे के भीतर आँगन में यह कक्ष स्थित जान पड़ता है। शर्विलक पहले यहीं आता और मदनिका के साथ उसका सम्पूर्ण प्रेमालाप यहीं होता है। अतः यह वही कमरा हो सकता है जो दूसरी ओर खुलता है, अथवा अच्छा होगा कि इसे दूसरा कमरा मान लिया जाय। ऐसी हालत में रंगमंच का बँटवारा आवश्यक हो जाता है क्योंकि शर्विलक तथा मदनिका का वार्तालाप वसन्तसेना एक गवाक्ष के पीछे छिप कर सुनती बताई गई है। यह प्रेमालाप, जैसा अभी कहा है, भीतरी आँगन में घटित हुआ है, अथवा इस कक्ष के समीप एक उद्यान का होना माना जा सकता है जहाँ कामदेव-मन्दिर की स्थिति रखी जा सकती है जिसमें शर्विलक मदनिका के कहने पर रुका है।

मैत्रेय के आगमन वाला दृश्य गहरी कठिनाइयाँ उत्पन्न करता है। वसन्तसेना के निजी कक्ष तथा उपवन की व्यवस्था करने के बाद, मुख्य द्वार से लेकर महल के आठ प्रकोष्ठों में से होते हुए मैत्रेय जो वसन्तसेना के पास उद्यान में पहुँचा है, उसे कैसे दिखाया जाय, वह समय कैसे व्यतीत हो? यहाँ स्पष्टतया दृश्य-व्यवस्था में व्यवधान पड़ जाता है यद्यपि कार्य के नैरन्तर्य में कोई बाधा नहीं पड़ती। लेकिन, यह बिलकुल स्पष्ट है कि वसन्तसेना के महल का पूरा मानचित्र रंगमंच पर प्रदर्शित नहीं किया जा सकता। अतएव, मैत्रेय के प्रकोष्ठ-वर्णन को समझने के लिए प्रेक्षकों को अपनी कल्पना का उपयोग करना पड़ेगा। इसी प्रकार, इस मध्यवर्ती दृश्य-काल में वसन्तसेना को या तो भद्दे ढंग से मौन रहना पड़ेगा अथवा कुछ समय के लिए वहाँ से हट जाना पड़ेगा और बाद को, उचित समय पर मैत्रेय से मिलने के लिए वह पुनः लौट आएगी।

छठाँ अंक : वसन्तसेना तथा उसकी दासी के वार्तालाप के लिए और रोहसेन-रदनिका वाले दृश्य के लिए चारुदत्त के भवन का एक कक्ष दिखलाना पड़ेगा। इस कमरे का दरवाजा भीतर की ओर रखना पड़ेगा जिससे होकर धूता प्रवेश करेगी। गाड़ियों की अदला-बदली, बाहर सड़क पर, वृक्षों की झुरमुट के समीप होती है।

अतएव, रंगमंच की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिससे बाहरी दरवाजा तथा सड़क का एक भाग और उस कक्ष का वह भाग जहाँ पहला दृश्य घटित हुआ है, दिखलाई पड़ते रहें। रंगमंच का उपर्युक्त ढंग से बँटवारा कर यह व्यवस्था की जा सकती है।

वर्धमानक की गाडी का निरीक्षण तथा वीरक-चन्दनक-कलह स्पष्ट ही सडक पर घटित होते हैं। यहाँ दृश्य-व्यवस्था में स्पष्ट व्यवधान (break) आता है। लेकिन, इसका उपाय यह हो सकता है कि चारुदत्त के घर वाला दृश्य रंगमंच पर बहुत पीछे रखा जाय और सडक वाले दृश्य को सामने आगे की तरफ रख दिया जाय जैसा प्रायः होता भी है। वसन्तसेना के गाडी पर बैठ कर चले जाने के बाद, घर वाले दृश्य पर एक पर्दा खींच दिया जाएगा। फिर भी चारुदत्त की गाडी वस्तुतः रंगमंच पर नहीं दिखलाई जा सकती। गाडियो वाला दृश्य प्रेक्षकों की कल्पना के लिए छोड देना पडेगा।

आठवाँ अंक सबसे पहले यहाँ एक तालाब दिखाना पडेगा जिसमें बौद्ध भिक्षु अपने चीवर धोता हो। इसे पिछले पर्दे के समीप रखा जा सकता है। शकार की गाडी का भग्न दीवाल के ऊपर पहुँचना भी प्रेक्षकों की कल्पना का विषय होगा।

दसवाँ अंक इस अंक में दृश्य व्यवस्था को स्वभावतः तोडना पडेगा। रंगमंच के सामने वाले भाग पर चारुदत्त की मृत्यु का पूरा जुलूस रखा जा सकता है और सबद्ध पात्र प्रति बार एक ही दिशा में कुछ कदम आगे बढते रहेंगे। चेट स्थावरक का शकार की रथ्या से नीचे कूदना अवश्य कठिनाई उत्पन्न करेगा। नाट्यशास्त्र के अनुसार, पिछला रंगमंच सामने वाले रंगमंच की अपेक्षा कुछ ऊँचा तथा छः खम्भों पर अवस्थित होता था। यहाँ एक चबूतरे अथवा मजिल की कल्पना की जा सकती है और चेट के कूदने के लिए इसका उपयोग हो सकता है। लेकिन, यह चबूतरा पिछले पर्दे के निकट रहेगा और जब इसे दिखलाया जाएगा, तब पूरा रंगमंच दिखाई पडता रहेगा। और तब, चारुदत्त की फाँसी वाले दृश्य की व्यवस्था करना कठिन हो जाएगा क्योंकि पूरा रंगमंच पहले से ही खुला रहेगा। आधुनिक पद्धति से सामने वाले रंगमंच पर ही बाईं अथवा दाहिनी तरफ चबूतरा रखा जा सकता है और पीछे वाली जगह का फाँसी के लिए उपयोग किया जा सकता है। ऐसी अवस्था में, हमारे लिए यही विकल्प होता है या तो चेट वाला दृश्य अनुमान-सापेक्ष ही छोड दिया जाय, या नहीं तो, यदि पिछला चबूतरा इसके लिए उपयुक्त हाव, तो चेट के कूदने के बाद पिछले रंगमंच पर पर्दा डाल दिया जाय। फाँसी वाले दूसरे दृश्य की व्यवस्था करने के लिए पिछले रंगमंच को हटना आवश्यक हो जाता है। अतएव, सामने वाले रंगमंच पर जुलूस का प्रदर्शन हो सकता है, चबूतरे को दिखाने के लिए थोडी देर तक पिछले रंगमंच से पर्दा हटाया जा सकता तथा पुनः गिराया जा सकता है, और अन्त में,

पर्दा फिर उठ जाएगा तथा पिछले रंगमच पर वधस्थल के पास जुलूस पहुँच जाएगा।

धूता का सती वाला दृश्य दूसरी कठिनाई उत्पन्न करता है। यहा दृश्य-व्यवस्था को तोडना ही पड जाएगा क्योंकि सम्पूर्ण रगमच पहले से ही पात्रो से भरा रहेगा। एक विकल्प यह हो सकता है कि पिछले रगमच की बिलकुल बाँई अथवा दाहिनी ओर से धूता का प्रवेश दिखलाया जाय और शेष केवल सवादो द्वारा प्रेक्षको को विज्ञप्त कर दिया जाय।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो गया होगा कि 'मृच्छ०' के रगमचीय अभिनय कि व्यवस्था कठिनाइयो से पूर्ण है। ऐसा सोचना ठीक नही होगा कि ये सभी दृश्य सचमुच खेल कर दिखाये जाते थे। प्राचीन भारतीय प्रेक्षालय पिछले और सामने वाले, दो रगमचों में विभक्त होता था। सामने वाले रगमच पर दोनो तरफ एक एक ऊँचा चबूतरा-जैसा हुआ करता था जिसे *"मत्तवारणी"* कहते थे, यह पीछे की तरफ एक दीवाल से तथा चार खमो पर टिका रहता था। पिछला रंगमच कुछ ऊँचा छः खमो पर स्थित होता था और उसमे पीछे की ओर एक पर्दा लगा रहता था जिसके पीछे 'नेपथ्य' रहता था।[१] इस प्रकार की बनावट मे सडक, घर, कक्ष तथा चबूतरे अथवा अलिन्द के प्रदर्शन की व्यवस्था हो सकती थी। लेकिन, विद्वानो ने बताया है कि प्राचीन प्रेक्षालय में पटाक्षेप की व्यवस्था नहीं थी।[२] अतएव, एक अक के बीच मे उपन्यस्त दृश्यों को अनुमानित ही किया जा सकता है। आधुनिक रगमच पर एक अक को भिन्न भिन्न दृश्यों मे बाट देना पडेगा। लेकिन, सस्कृत नाटक में अक-गत दृश्य-विभाजन की पद्धति प्रचलित नहीं थी। अतएव, विकल्प यही था कि या-तो दृश्यों का अनुमान प्रेक्षकों की कल्पना पर छोड दिया जाय, या फिर, रगमच को उपर्युक्त रीति से (Compartmental division) बाँट दिया जाय जिससे विशेषत एक अक के भीतर वाले वे दृश्य अभिनीत हो सकें जो परस्पर एक दूसरे मे खिसक जाते हैं अथवा एक ही समय में घटित होते हैं।[३]

---

१. 'नाट्यशास्त्र' का दूसरा अध्याय अवलोक्य है।

२. D R. Mankad 'Ancient Indian Theatre' (1950) पृ० २०

३. यह सम्पूर्ण प्रकरण डॉ० भाट की पुस्तक मे दिये गये "Sudraka's stage' शीर्षक अनुच्छेद से लिया गया है। दे० पृ० १४२-५१। हेनरी वेल्स ने अपनी पुस्तक 'The Classical drama of India' में इस विषय पर विचार किया है। वह अश भी देखा जा सकता है।

(११)

संस्कृत नाटक आरंभ से ही 'काव्य' (दृश्यकाव्य) माना जाता रहा है। अतएव, रंगमंचीय प्रदर्शनीयता के साथ ही, उसमें ऐसे चित्र सजाये जाते रहे हैं जो काव्यात्मक लालित्य से ओत-प्रोत हों। अपितु, सत्य यही है कि संस्कृत नाटकों में प्रदर्शनीयता के तत्त्व की स्वल्पता और काव्यात्मक लालित्य का प्रचुरता सन्निविष्ट होती गई है। 'मृच्छ०' का निरालापन इस बात में भी लक्षित है कि इसमें प्रदर्शनीय तत्त्वों का प्राचुर्य है जिसके फलस्वरूप इसकी रंगमंचीय दिलचस्पी कभी घटती नहीं प्रतीत होती। तथापि, संस्कृत नाटककारों की सम्मानित श्रेणिका से ही सबंधित होने के कारण, शूद्रक के चित्रों में भी यथेष्ट काव्यात्मक सौन्दर्य की अवतारणा हुई है।

(१) थोड़े से चुने हुए सुन्दर पदों के प्रयोग से पूर्ण वक्तव्य की अभिव्यक्ति प्रदान करने की कला में शूद्रक अतीव कुशल है। देखें, विट अभिसारिणी वसंतसेना के संपूर्ण शील का वर्णन केवल पाँच अभिधाओं में करता है —

"अपद्मा श्रीरेषा प्रहरणमनङ्गस्य ललितं,
कुलस्त्रीणां शोको मदनवरवृक्षस्य कुसुमम्।
सलीलं गच्छन्ती रतिसमयलज्जाप्रणयिनी × ××" (५।१२)

— वसंतसेना बिना कमल की लक्ष्मी है, कामदेव का ललित अस्त्र है, कुल वधुओं का शोक है मदन रूपी श्रेष्ठ वृक्ष का मनोरम फूल है, और सुरत के समय लज्जा की प्रिय सहचरी है।"

'अपद्मा लक्ष्मी' कह कर, वसंतसेना के उत्फुल्ल सौन्दर्य की, 'अनंग का ललित प्रहरण' कह कर उस सौन्दर्य की आक्रामकता की, 'कुलांगनाओं का शोक' कह कर उस रूप श्री की विवाहित पुरुषों को अपने जाल में फँसाने की अद्भुत क्षमता की, 'मदनवृक्ष का कुसुम' कहकर उस सौन्दर्य की सुकुमारता की तथा 'रतिसमयलज्जाप्रणयिनी' कह कर नव्यांगना वसंतसेना की मोहक माधुरी की अभिराम व्यंजना की गई है।

(२) मेघों के गर्जन तर्जन से भयावह रात्रि की प्रतिक्रिया अभिसारिका वसंतसेना के स्नेह स्निग्ध अन्तर्मन में क्या होती है, इस कवि ने नितान्त मोहक ढंग से यों व्यंजित किया है —

"मूढे ! निरन्तरपयोधरया मयैव
कान्तः सहाभिरमते यदि किं तवात्र।
मां गर्जितैरिति मुहुर्विनिवारयन्ती
मार्गं रुणद्धि कुपितेव निशा सपत्नी। ५।१५।

—'हे मूर्ख ! यदि मेरा कान्त (आकाश) परस्पर सटे, पुष्ट पयोधरों (बादल तथा स्तन) वाली मुझ प्रिया के साथ रमण कर रहा है, तो इससे तुम्हारा क्या प्रयोजन ?'—इस प्रकार से ताडना देकर, रात्रि अपने गर्जनों से मुझे अपने अभिसार के लिए मना करती हुई मेरा मार्ग रोकती है। जैसे 'वह मेरी कोपमयी सपत्नी हो।

'निरन्तरपयोधरया' का भाव है ऐसे पयोधर, अर्थात् स्तन (अथवा बादल) जो इतने पुष्ट एवं विकसित है कि उनके बीच मे तनिक भी अन्तर अथवा खाली जगह बच नही पाई है। वसन्तसेना को मंडराये निविड बादलों से अपने पुष्टपयोधरों की याद हो जाती है। उसे लगता है जैसे रात अपने यौवन के उफान मे आकाश-रूपी प्रियतम से रमण कर रही है और उसके अभिसार से चिढ़ कर, उसका रास्ता रोक रही है—चिढ़ने का कारण यह है कि यह नारी (वसन्तसेना) उसके रमण-प्रसग मे बाधक सिद्ध हो रही है (एक नारी कान्त के साथ रमण कर रही हो और दूसरी अपने कान्त के साथ रमण की योजना मे उस रमण-प्रसग का अवलोकन करे) और यह टीका-टिप्पणी भी कर रही है कि रात भयावनी बन गई है। नारी अपने रमण की योजना कार्यान्वित करने के लिए, दूसरी नारी के रमण-प्रसग को बाधक समझ कर उसकी प्रतिकूल-आलोचना करे—यह परम स्वाभाविक है।

पडितों ने इस पद्य की व्याख्या मे यह अर्थ ग्रहण किया है कि कवि रात्रि तथा वसन्तसेना को परस्पर 'सपत्नी' बना रहा है और यह दिखाया है कि यदि रात्रि अपने कान्त के साथ रमण कर रही है, तो वसन्तसेना को उसके लिए दुःख नही होना चाहिए क्योंकि उसका (रात्रि-रूपी प्रेमिका का) भी तो वही अधिकार है।[१] शूद्रक की टीका भी की गई है कि "It is not a happy idea to make the night Charudatta's beloved and Vasant's rival There is nothing to support such a supposition except the quibbling on निरन्तरपयोधरया।"[२] वस्तुतः "कुपितेव निशा सपत्नी" से यह अर्थ लगाना कि कवि ने निशा को वसन्तसेना की सौत बनाया है, तर्कसगत एवं उचित नहीं है। अभीष्ट अर्थ केवल इतना है कि रात जो आकाश-रूपी प्रियतम के आलिंगन पाश मे बद्ध है, वसन्तसेना के अभिसार से, जिसे वह अपने रमण प्रसग मे दखल समझती है, वैसे कुपित है जैसे वह उसकी सौत होवे—वस्तुतः सौत है नहीं, कोप उसका सौत जैसा है। रजनी का प्रियतम

१ दे० काले-द्वारा सम्पादित 'मृच्छ०', पृ० १९३, चौखंबा वाला सस्करण पृ० २९८

२ दे० काले, Notes, पृ० १०२

आकाश ही है जिसके विशद क्रोड मे वह अपने मेघ-रूपी पुष्ट स्तनों के साथ लिपटी हुई है।

(३) वर्षा की धाराओं के गिरने तथा बिजली चमकने के दृश्य का वसन्तसेना के मुख से कवि ने यों वर्णन किया है :—

"एतैरार्द्रतमालपत्रमलिनैरापीतसूर्यं नभो
वल्मीका शरताडिता इव गजा· सीदन्ति धाराहता. ।
विद्युत्काञ्चनदीपिकेव रचिता प्रासादसञ्चारिणी
ज्योत्स्ना दुर्बलभर्तृकेव वनिता प्रोत्सार्य मेघैर्हृता ॥" (५।२०)

—'सजल तमालपत्रों के तुल्य इन मेघों से सूर्य एकदम ढक गया है जैसे आकाश ने उसे पी लिया हो। वर्षा की धाराओं से विध कर, वल्मीक ऐसे पीडित हो रहे हैं जैसे बाणों की बौछार से हाथी पीडित हो जाता है। महलों की अट्टालिकाओं मे सचरण करने वाली बिजली ऐसी शोभा दे रही है मानो स्वर्ण निर्मित दीपक जगमगा रहा हो। मेघों-द्वारा बलपूर्वक हटाई जाकर, ज्योत्स्ना वैसे हर ली गई है जैसे दुर्बल पति की स्त्री दूसरों के द्वारा बलात् अपहरण कर ली जाती है।'

एक-एक चित्र अवलोक्य है। सूर्य को आकाश 'पी' गया है। सूर्य तो वैसे भी अस्त हो रहा होगा। यहाँ उसे एकदम आकाश द्वारा उदरस्थ बनाया गया है जो कवि के निरीक्षण की सटीकता का विज्ञापक है। वर्षा की धाराओं तथा बाणों मे साम्य अत्यन्त वास्तविक है, और हाथियों के बाण-वर्षा से पीडित होने के समान वल्मीकों का वृष्टिधारा से पीडित होना दिखा कर, कवि ने 'मानवीकरण' (वल्मीकों के सम्बन्ध मे) का सुन्दर उपयोग किया है। बिजली काचनदीपिका कही जा रही है, बिजली का लुक-छिप कर चमकना और कचनदीपिका का जगमगाना, दोनों दृश्यों मे कितना सादृश्य है ! ऐसे ही, ज्योत्स्ना को वनिता बताना और उसको मेघों-द्वारा बलपूर्वक वैसे अपहृत बताना जैसे दुर्बल पति की पत्नी हर ली जाती है—यह पूरी कल्पना व्यजक एव मनोरम बन गई है। ज्योत्स्ना का पति चन्द्रमा मेघों के सामने कितना दुर्बल है !

(४) बादलों मे बिजली चमकने तथा उनसे पानी की धाराओं के पृथिवी पर गिरने के दृश्य का एक अन्य चित्र यों चित्रित है :—

"एते हि विद्युद्गुणबद्धकक्षा
गजा इवान्योन्यमभिद्रवन्त ।
शक्राज्ञया वारिधरा· सधारा
गा रूप्यरज्जवेव समुद्धरन्ति ॥" (५।२१)

—'बिजली के चमकीले मार्गों से जिनकी कमर कसी हुई है, पानी की धाराएँ बरसाने वाले वैसे बादल, परस्पर झपटने वाले हाथियों के समान, मेघराज इन्द्र की आज्ञा से, मानो रजत की रज्जुओं से पृथ्वी को ऊपर उठा रहे हैं।'

चित्र की मनोरमता अवलोकनीय है। काले उमडते बादल काले मतवाले हाथी हैं, बिजली की चमकती लकीरें ऐसे शोभती हैं जैसे चमकीली रस्सियों से बादलों की कमर कसी हुई हो, हाथियों की काँख मे सोने की जजीरें लगी हैं, यह बिजली की चमकती लकीरो से भान होता है, जल की गिरती स्वच्छ धाराएँ रजत की रस्सियाँ हैं और इतनी द्रुतगति से ये धाराएँ भूमि पर गिर रही हैं कि उनका क्रम टूटता नही जिससे भान होता है कि ये चमकीली रश्मियाँ नीचे आकर पुन पृथ्वी को ऊपर खीच रही हैं। इस ऊपर खींचने की कल्पना मे यह तथ्य ध्वनित है कि पानी की धाराओ का गिरना एक क्षण के लिए भी बाधित नही होता और वे धाराएँ आकाश से कब अलग होती हैं और पृथ्वी को कब छूती हैं इसका दर्शक को प्रतिभास ही नही होता। धारासार वर्षा का इससे अधिक सटीक वर्णन क्या हो सकता है ?

(५) एक शार्दूलविक्रीडित छन्द मे वर्षावाले आकाश का जलना, हँसना युद्ध करना इत्यादि अनेक कार्यों का चित्रण नीचे उद्धृत किया जा रहा है —

'विद्युद्भिर्ज्वलतीव सविहसतीवोच्चैर्बलाकाशतै-
र्माहेन्द्रेण विवल्गतीव धनुषा धारान्तरोद्गारिणा।
विस्रष्टान्तनिनिम्वनेन रसतीवाघूर्णतो वानिलै-
र्नीलैः साद्रमिवाहिभिर्जलधरैर्धूपायतीवाम्बरम् ॥" (५।२७)

—'आकाश बिजली से जल रहा है, सैकडों बगलों की पक्तियो से हँस रहा है, इन्द्रधनुष से जल धाराओं के बाण छोडकर युद्ध कर रहा है; गडगडाहट का ध्वनि से गर्जन कर रहा है, पवन के द्वारा घूर्णन कर रहा है, और सर्पसदृश बादलो से काले धूम की राशियाँ छोड रहा है।'

इस चित्र की विशेषता यह है कि इसमे वर्षा से पूर्ण आकाश के समस्त तत्त्वों का, व्यजक कल्पनाओं के सहित, सुगठित अकन किया गया है बिजली, बगले, इन्द्रचाप, वारिधारा, वज्रघोष, पवन का घूर्णित प्रवाह तथा काले बादल, इनके अतिरिक्त और क्या बच जाता है जो वर्षापूर्ण आकाश की वस्तु हो और जिसे कवि ने छोड दिया हो ?

(६) एक चित्र में वर्षा की बिजली को ऐरावत हाथी के वक्ष पर खिची हुई सोने की चचल जजीर, पर्वत के शिखर पर आरोपित पताका तथा इन्द्र के भवन में जलती दीपिका से उपमित किया गया है।[1] एक चित्र में वारि-धाराओं को बादलो के अन्तर को इस प्रकार चीरते बताया गया है जैसे पंक की कोमल राशि को कमलनाल की सूइयाँ (पतली रेखे) छेद कर बाहर निकलती हैं[2] और दो अन्य चित्रो में उन धाराओ के लिए यह उत्प्रेक्षा की गई है कि मानो वे भूमि पर गिरती हुई इन्द्र की, मोतियो की राशियाँ हों।[3] और मानो आकाश रूपी फटे वस्त्र के झरते हुए सूत हो।[4] एक अन्य चित्र और देखिये जिसमे आकाश जँभाई लेते दिखाया गया है —

> 'विद्युज्जिह्वेनेद महेन्द्रचापोच्छ्रितायतभुजेन ।
> जलधरविवृद्धहनुना विजृम्भितमिवान्तरीक्षेण ॥" (५।५१)

—'बिजली रूपी जीभ से, इन्द्रधनुष रूपी भुजाओं से और बादल-रूपी विराट ठुड्डी से आकाश मुँह खोल कर जँभाई ले रहा है।'

मनुष्य जँभाई लेता है मुँह खोलकर तब जीभ बाहर दिखाई पड जाती है, दोनो बाँहे फैल जाती हैं और ठुड्डी भी विचित्र ढग से हिल जाती है। आकाश ने प्रस्तुत रूपक मे वही विस्मयकारी जँभाई ली है।

(७) बिजली की कौंध से डरी वसन्तसेना की निम्न उक्ति कितनी मर्मस्पर्शी है !—

> "यदि गर्जति वारिधरो गर्जतु तन्नाम निष्ठुरा: पुरुषा: ।
> अयि विद्युत् ! प्रमदाना त्वमपि च दु:ख न जानासि ॥" (५।३२)

—'हे बिजली ! यदि बादल गरजते हैं, तो गरजने दो क्योंकि पुरुष तो निर्मम होते ही हैं, लेकिन, तुम स्त्री होते हुए भी क्या कामातुर प्रमदाओ का क्लेश नही जानती ?"

कितने सरल शब्दों मे, कितनी मार्मिक एव निर्व्याज भगिमा मे बिजली से यह मधुर प्रार्थना की गई है !

(८) रात के अन्धकार तथा चन्द्रोदय के दो तीन चित्र जो उपलब्ध हैं, वे सटीक एव सुन्दर बन पडे हैं। सडक पर छाये अन्धकार का वर्णन करते हुए विट कहता है कि उसकी तेज दृष्टि इस प्रकार तिमिराच्छन्न बन गई है कि खुली होने पर भी, वह बन्द जैसी प्रतीत होती है—"उन्मीलितापि दृष्टि-

---

१ 'मृच्छ' (चौखम्बा), ५।२३ २ वही, ५।४८
३ वही, ५।४५ ४ वही, ५।४

निमीलिते वान्धकारेण ।"[१] बिलकुल सरल ढंग से कही गई यह उक्ति अन्धकार का बिलकुल सटीक स्वरूप प्रस्तुत कर देती है। आकाश के कज्जल की वर्षा करने वाला चित्र तो प्रसिद्ध ही है—"लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।"[२] अन्धकार को अवकाश देकर डूबने वाले क्षीण चन्द्रमा के लिए जलमग्न वनैले हाथी के तीव्र दाँत के अग्रभाग का उपमान नितान्त व्यंजनापूर्ण है—"जलावगाढस्य वनद्विपस्य तीक्ष्णं विषाणाग्रमिवावशिष्टम्।"[3] वैसे ही उदीयमान चन्द्रमा के लिए निम्न प्रसिद्ध श्लोक द्रष्टव्य है :—

> "उदयति हि शशाङ्कः कामिनीगण्डपाण्डु-
> ग्रंहगणपरिवारो राजमार्गप्रदीपः ।
> तिमिरनिकरमध्ये रश्मयो यस्य गौरा
> स्रुतजल इव पङ्के क्षीरधारा पतन्ति ॥" (१।५७)

—'कामिनियों की गण्डस्थली के समान उज्ज्वल, ग्रह-समूह से घिरा हुआ, राज मार्ग का प्रदीपक चन्द्रमा उदय ले रहा है जिसकी किरणें चतुर्दिक व्याप्त अन्धकार में पृथ्वी पर ऐसे गिर रही हैं मानो जलशून्य पंक में दूध की धारा गिर रही हो।'

चन्द्रमा को 'कामिनीगण्डपाण्डु' बताने में तथा उसकी धवल रश्मियों को दूध की धारा बताने में उदित होने वाले चन्द्रमा का अभिराम चित्र उतर गया है, यद्यपि कल्पना के अलङ्कृत प्रदर्शन से यह चित्र एकदम विमुक्त है।

(९) सटीक बैठने वाले उपमानों के चयन में शूद्रक की प्रतिभा निराली है। वसन्तसेना के अन्धकार में विलुप्त हो जाने के लिए एक बार उड़द के ढेर में गिरी हुई स्याही की टिकिया—"माषराशिप्रविष्टेव मसीगुटिका दृश्यमानेव"—की उपमा दी गई है[४] और दूसरी बार 'मालोपमा' की छटा यों जुटाई गई है—'वसन्तसेना तुम्हारी पकड़ में आकर भी वैसे ही विलुप्त हो गयी जैसे अंधों की दृष्टि, पीडितों की सामर्थ्य, मूर्खों की बुद्धि, आलसियों की सिद्धि, कामुकों ज्ञान तथा शत्रुओं का प्रेम झटिति विनष्ट हो जाते हैं।'"[५] आर्यक के द्वारा चन्दनक को वैवाहिक अग्नि के समान सुखकर तथा वीरक को चिता की अग्नि के समान दुःखकर बनाया गया है।[६] शर्विलक अपनी कामनाओं का वर्णन करते हुए,

---

१. वही, १।३३	२ वही, १।३४
३ वही, ३।६	४ वही, पृ० ५४
५. वही, १।४१	६ वही, ६।१६

'उल्लेखालंकार' के द्वारा इन अप्रस्तुतों की योजना कर रहा है—"छिप कर भागनेमे बिल्ली, शीघ्र भागने मे हरिण, किसी वस्तु के अपहरण मे बाज, सोये-जगे मनुष्य की पहिचान मे कुत्ता, खिसक कर भागने मे सर्प, रूप परिवर्तन मे साक्षात् माया, भाषा बदलने मे मूर्तिमती वाणी, रात के लिए दीपक, संकट के समय शृगाल, भूमि के लिए घोड़ा और जल के लिए मैं नाव हूँ।"[१] चारुदत्त पर दोषारोपण वैसे ही नहीं किया जा सकता जैसे हिमालय को उठाया नहीं जा सकता, सागर को पार नहीं किया जा सकता तथा वायु को वस्त्रादि मे बांधा नहीं जा सकता—न्यायधीश के इस कथन की उपमाएँ परम सटीक हैं।[२] वैसे ही, भाग्य अथवा दैव के द्वारा किये गये उत्थान पतन के लिए कूपयन्त्र की छोटी-छोटी बालटियो के ऊपर-नीचे आने-जाने की उपमा भी सुन्दर हुई है—"एष क्रीडति कूपयन्त्रघटिकान्यायप्रसक्तो विधि।"[3] भयभीत भागने वाली वसंतसेना को सुन्दर पूँछ वाली ग्रीष्म मयूरी से उपमित कर, कवि ने कल्पना की सुकुमारता का भी सुन्दर परिचय दिया है।[४]

कवि कल्पना का लालित्य कतिपय श्लोकों मे आकर्षक रीति से प्रस्फुट हो गया है—उदाहरणत, जहाँ शकार का विट वसंतसेना से वेश्या की समदर्शिता का कथन कर रहा है,[५] जहाँ वसंतसेना का विट उससे वेश्या के बाजार का वर्णन कर रहा है,[६] और संस्थानक का विट वसंतसेना की हत्या पर गहरे शोक के उद्गार प्रकट कर रहा है।[७]

शूद्रक ने संगीत के संसार से भी उपमा ली है, यथा—

"तालीषु तारं विटपेषु मन्द्रं शिलासु रूक्षं सलिलेषु चण्डम्।
सङ्गीतवीणा इव ताड्यमानास्तालानुसारेण पतन्ति धाराः ॥" (५।५२)

—'जैसे संगीत में वीणा भिन्न-भिन्न तालों मे बजाई जाने पर भिन्न भिन्न प्रकार की ध्वनियाँ निकालती है, वैसे ही वर्षा की धाराएँ ताल-वन मे उच्च ध्वनि से, वृक्षों पर गम्भीर ध्वनि से, पर्वतों पर कर्कश ध्वनि मे तथा जल मे प्रचण्ड ध्वनि से नीचे गिर रही हैं।'

प्रस्तुत उपमा का सौन्दर्य कवि के सूक्ष्म निरीक्षण मे निहित है। उसे

---

१ वही, ३।२०　　२ वही, ९।२०
३ वही, १०।५९　　४. वही, १।१९
५. वही, १।३२　　६ वही, ५।३६
७ वही, ८।३८

वीणा के विभिन्न स्वरो का जो ज्ञान है, उसके आलोक में उसने यहाँ वर्षा की धाराओ से भिन्न-भिन्न वस्तुओं के ऊपर गिरने से उत्पन्न होने वाली ध्वनियों का सूक्ष्म कथन किया है।

(१०) अन्य संस्कृत नाटकों की तुलना मे, नगर-जीवन से सम्बन्धित होने के कारण, 'मृच्छ०' प्रकृति के चित्रणों में दुर्बल पडता है क्योकि इसमे आकाश-यात्राएँ नहीं हैं, पर्वत नही हैं, वन अथवा सरिताएँ नहीं हैं, किन्तु अन्धकार, ज्योत्स्ना, बादल, वर्षा, उपवन तथा ग्रीष्म के उत्ताप के चित्र इसमे सन्निविष्ट हुए हैं। ये चित्र सुन्दर एव सटीक हैं। ग्रीष्म के भयकर उत्ताप का एक यथार्थवादी चित्र यह द्रष्टव्य है —

'छायासु प्रतिमुक्तशष्पकवल निद्रायते गोकुल
तृष्णार्तैश्च निपीयते वनमृगैरुष्ण पय सारसम्।
सन्तापादतिशङ्कितैर्न नगरीमार्गो नरै सेव्यते
तप्ता भूमिमपास्य च प्रवहण मन्ये क्वचित् सस्थितम्॥" (८।११)

—'गाय-बैल घास छोडकर छाया मे नींद ले रहे हैं। प्यास से व्याकुल वन्य पशु नदी का गर्म जल पी रहे हैं। ताप से भयभीत मनुष्य नगरी की सडकों पर नही चल रहे हैं। मैं समझता हूँ, तप्त भूमि को छोड कर, गाडी कहीं छाया मे ठहरी हुई है।'

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि 'मृच्छ०'मे प्रेम की ही कहानी वर्णित हुई है, तथापि इसमे रूप-सौन्दर्य के चित्रों का प्राय अभाव है। साथ ही, प्रेम-वेदना के चित्र भी उपलब्ध नही हैं। वसन्तसेना वेश्या युवती थी, समृद्ध गणिका-परिवार से सम्बन्धित थी। अतएव, उसके रूप सौन्दर्य का मादकता के चित्रणका अवकाश तथा अवसर अनेक हो सकते थे। वैसे ही, वसन्तसेना नहीं तो चारुदत्त को तो अवश्य ही अनुराग बाण से विद्ध चित्रित किया जा सकता था। लेकिन, शूद्रक ने ऐसा कुछ भी नहीं किया। पूरे नाटक में एक भी ऐसा रूप-चित्र नहीं मिलेगा जिससे वसन्तसेना की मादक यौवन-लक्ष्मी की प्रत्यक्ष अनुभूति हो सके। वसन्तसेना रात को भाग रही है, तब विट ने उसे रोकते हुए, उसके रक्त कमल के समान लाल चरणों का तथा कोमल कदली के समान पतली सुकुमार शरीर यष्टि का प्रकारान्तर से कथन किया है।[1] इसी प्रकार, उसके उन्नत उरोजो का एक चित्र चारुदत्त के निम्नोद्धृत कथन में मिल जाता है :—

---

१ 'मृच्छ०' (चौ०), १.२०

"वर्षोदकमुद्‌गिरता श्रवणान्तविलम्बिना कदम्बेन ।
एक स्तनोऽभिषिक्तो नृपसुत इव यौवराज्यस्य ॥"[१]

—'कान पर लटकते हुए कदम्ब से वर्षा की बूंदें वसन्तसेना के कुचों पर गिर रही हैं। जल से यह स्तन वैसे ही सिंचित हो गया है मानो युवराज बनाये जाने वाले राजकुमार का अभिषेक हो रहा हो।'

यहाँ स्तन को सिंहासनासीन राजकुमार बताया गया है। इस संक्षिप्त सौंदर्य-दर्शन से शृंगार पिपासुओं को कितनी परितृप्ति मिलेगी!

---

१ चारुदत्त ने एक पद्य में उसके दाँतों को चन्द्र किरणों के समान उज्ज्वल तथा अधरों को प्रवाल तुल्य कहा है—१०।१३

(११) मृच्छकटिक में लोक-चित्रण

(१)

'मृच्छ०' मे तत्कालीन जीवन एव समाज का चित्र भी अंकित हुआ है संस्कृत के अन्य नाटकों की तुलना मे, कदाचित् प्रस्तुत प्रकरण मे लोक-जीवन, सभ्यता संस्कृति तथा शासकीय व्यवस्था के कई पटलो का अधिक स्पष्ट उल्लेख उपलब्ध है। विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत यहाँ शूद्रक द्वारा उपनिबद्ध लोक-चित्र का सामान्य निर्देश किया गया है।

धार्मिक अवस्था

हिन्दू धर्म के प्राचीन तथा नवीन दोनो रूप साथ साथ मिलते हैं। वैदिक यज्ञों वेद मन्त्रों के उच्चार तथा पशु-बलि की प्रथा प्रचलित थी। चारुदत्त ने अपने परिवार के वैदिक मन्त्रों के उच्चारण तथा यज्ञादि से पवित्र होने का कथन किया है।[१] राजा पालक, 'यज्ञवाट' मे मारा गया। 'यूप' अर्थात् यज्ञ-स्तम्भ का भी उल्लेख हुआ है। वैदिक देवताओ मे इन्द्र तथा रुद्र की चर्चा आई है यद्यपि रुद्र ने शिव का रूप धारण कर लिया है और इन्द्र की पूजा ने 'इन्द्रध्वज' के प्रदर्शन का रूप ग्रहण कर लिया है।[२] नये देवता भी प्रचलन मे आ रहे थे। चन्दनक ने आर्यक की रक्षा के लिए हर, विष्णु, ब्रह्मा, रवि, चन्द्रमा तथा शुम्भ-निशुम्भ को मारने वाली देवी की मनौती की है।[३] शिव को वृषभ की सवारी करनेवाले, तथा दक्ष के यज्ञ को विध्वंस करने वाले, कार्तिकेय के पिता के रूप मे स्मरण किया गया है। षडानन कार्तिकेय सेंध लगाने वाले चोरों के देवता कहे गये हैं तथा क्रौञ्च पर्वत का छेदन करने वाले बताये गये हैं। शिव की पत्नी देवी की पूजा का संकेत मिलता है। 'सह्य-वासिनी' के रूप में दक्षिण में देवी की ही पूजा होती है। शकार अपने को 'वासुदेव' कहता है।

देव-मूर्तियों की पूजा का भी प्रचलन था। 'नगर-देवता' के प्रांगण का मैत्रेय ने उल्लेख किया है। जुआरियों वाले दृश्य में एक मन्दिर का कथन हुआ है। ऐसा लगता है देव मूर्तियां काठ अथवा पत्थर की बनाई जाती थीं। नगर में कामदेव का मन्दिर था जहाँ वसन्तसेना, शकार तथा चारुदत्त की पहली

---

१. 'मृच्छ०' (चौखम्बा), १०।१२   २. वही, १०।७
३ वही, ६।२७.

भेंट हुई थी। वसन्तसेना के भवन में भी मन्दिर होना बताया गया है। चारुदत्त ने अनेक मन्दिरों के निर्माण में सहायता पहुँचाई है। अतएव, मूर्तियों का पूजन तथा गृह देवताओं की उपासना हिंदू-जीवन का सामान्य अङ्ग हो गया है। घर की देहली अथवा नगर के चौराहे पर मातृ-देवियों तथा अन्य देवी-देवताओं को 'बलि' अथवा 'उपहार' चढ़ाने की प्रथा थी। वसन्तसेना के महल में भी दैनिक पूजा-अर्चा के लिए एक ब्राह्मण रखा गया था।

लोक-जीवन में गाय तथा ब्राह्मण को विशेष महत्त्व मिला था। ब्राह्मण पूज्य माना जाता था। रात को रदनिका का अपमान हो जाने के कारण, शकार का विट ब्राह्मण मैत्रेय के चरणों में गिर पड़ा था।[१] मनोरथों की सिद्धि के लिए ब्राह्मण की सबसे पहले पूजा आवश्यक मानी जाती थी। दुष्ट शकार ने भी स्वीकार किया था कि वह देवताओं तथा ब्राह्मणों के सामने पैदल चलेगा। अधिकरणिक ने मनु का सहारा लेते हुए कहा है कि हत्या का भी अपराधी ब्राह्मण मारा नहीं जा सकता, अपितु उसका देश से निष्कासन ही किया जा सकता है।[२] ब्राह्मण के लिए यज्ञोपवीत का अतिशय महत्त्व था यद्यपि पथभ्रष्ट ब्राह्मण (शर्विलक) चोरी इत्यादि नीच कार्यों में उसका उपयोग करने से नहीं हिचकते थे।[३] वेदों के अध्ययन का अधिकार ब्राह्मणों को ही था जब कि शूद्रादि के लिए वह पाप माना जाता था। ब्राह्मणों के लिए सन्ध्योपासना का विशिष्ट महत्त्व था। पुनर्जन्म तथा कर्म सिद्धान्त में सामान्य विश्वास था। चारुदत्त-जैसा धर्मनिष्ठ व्यक्ति ही नहीं, बल्कि विट तथा स्थावरक-जैसे लोग भी इस जन्म में बुरा कर्म करने से डरते थे क्योंकि उसका दुष्परिणाम उन्हें अगले जन्म में भोगना पड़ेगा। परलोक में स्थित पितरों के प्रति मनुष्य का कर्त्तव्य माना जाता था और उनकी तुष्टि के लिए पुत्र-जन्म का विशेष महत्त्व समझा जाता था।[४]

धर्म निष्ठा के स्वाभाविक अनुपूरक रूप में लोगों की सामान्य आस्था भाग्य में थी। चाण्डालों के हाथ की तलवार को 'काल-पुरुष' का दास कहा गया है। भाग्य के अनियन्त्रित खेल का निरूपण सम्पूर्ण नाटक में प्रतिध्वनित है। यह विश्वास भी बद्धमूल था कि उत्तम कार्यों का परिणाम अन्त में उत्तम होता है और पापी अन्ततः दण्डित होते हैं।

बौद्धधर्म भी उन्नत अवस्था में दिखाई पड़ता है। जाति, आयु अथवा सामाजिक स्तर के बिना किसी प्रतिबन्ध के, कोई भी 'भिक्षु' अथवा 'श्रमण'

---

१ वही, पृ० ७०
२ वही, ९।३९
३ वही, ३।१६
४ वही, १०।७

बन सकता था। सवाहक श्रमण बन गया था। स्त्रियाँ भी भिक्षुणी बन जाती थी। ये भिक्षु जीवन के सभी लौकिक सम्बन्धो तथा आनन्दों का परित्याग करते थे।[1] प्राय प्रत्येक नगर मे मठ अथवा विहार बने रहते थे। इन विहारों पर राजा का नियन्त्रण रहता था और उन्हें सभवत राज्य से आर्थिक प्रोत्साहन एव सहायता मिलती थी। सवाहक श्रमण आर्यक के राज्यारोहण पर देश के सम्पूर्ण विहारो का कुलपति बना दिया गया। तथापि, बौद्ध श्रमणों का दर्शन अपशकुन समझा जाता था और ऐसा जान पडता है, उन्हे जनता का सामूहिक आदर एव सम्मान प्राप्त नहीं था। भिक्षु 'धर्माक्षरों' का पाठ करते थे और स्वर्ग-प्राप्ति की कामना से अणुप्राणित रहते थे।

लोगों मे अनेक प्रकार के विश्वास प्रचलित थे। सिद्धो की भविष्यवाणी पर ही राजा पालक ने आयक को बन्धन गृह मे डाल दिया था। आखो का फडकना, कौवे का बोलना, साँप को देखना इत्यादि अपशकुन माने जाते थे।[2] चाण्डाल का कथन है कि इन्द्रध्वज का पतन, गाय का प्रसव, नक्षत्रों का पतन तथा सज्जन मनुष्य की मृत्यु नही देखनी चाहिए।[3] ज्योतिष के अनुसार, ग्रहो के मनुष्य-जीवन पर प्रभाव डालने का विश्वास प्रचलित था। अधिकरणिक ने कहा है कि प्रात काल का सूर्यग्रहण किसी महान् पुरुष की विपत्ति का सूचक है।[4] विभिन्न प्रकार के व्रतों का प्रचलन था। सूत्रधार की पत्नी ने "अभि-रूपपति" नामक व्रत किया था।

सामाजिक अवस्था

जाति-प्रथा प्रचलित थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य अन्य जातियों से श्रेष्ठ समझे जाते थे। ब्राह्मणो को विशिष्ट मान्यता थी। पर्व के अवसरों पर उन्हे भोजन कराया जाता था और दक्षिणा भी दी जाती थी। कुछ ब्राह्मण समृद्ध थे और दक्षिणा स्वीकार नहीं करते थे। धर्मशास्त्रो ने उन्हे विशिष्ट अधिकार दे रखे थे और वे सामान्यत लोक-सम्मान के भाजन माने जाते थे। किन्तु वर्ण व्यवस्था के विपरीत, ब्राह्मण भिन्न धन्धो में सलग्न हो जाते थे। चारुदत्त स्वय सार्थवाह था, और उसके पिता तथा पितामह भी समृद्ध एव प्रतिष्ठित सार्थवाह (वाणिक्, व्यापारी) थे। शर्विलक दान-दक्षिणा नहीं लेने वाले और चतुर्वेदो के ज्ञाता ब्राह्मण का पुत्र था, लेकिन वह चोरी करने लगा था जिससे जान पडता है कि जाति अथवा वर्ण की मर्यादा का अकुश ढीला पड गया था। चारुदत्त तथा शर्विलक दोनों ने वेश्या से विवाह कर लिया। इसस

१ वही, ८।१–३ — २ वही, ९।१५.
३ वही, १०।७, ४ वही, पृ० ४९७

भी प्रतीत होता है कि जाति-प्रथा के बंधन शिथिल हो गये थे। जाति के आधार पर राज्य के ऊँचे पदों से कोई व्यक्ति वंचित नहीं किया जाता था। वीरक और चन्दनक, नापित तथा चमकार होते हुए भी, उत्तरदायी पदों पर आसीन हो गये थे। अस्पृश्यता अथवा छूआ-छूत की भावना का अभाव दिखाई पड़ता है। कुछ कूएँ ऐसे थे जिनसे निकृष्ट जाति के लोग श्रेष्ठतम ब्राह्मणों के साथ साथ पानी खींच सकते थे।[१] दसवें अंक में भी जहाँ चाण्डालों का प्राधान्य है, अस्पृश्यता की कोई झलक नहीं मिलती।

वणिक अथवा वैश्य लोग विदेशों से व्यापार करते थे। माल ढोने के लिए जहाजों का प्रयोग होता था। लेकिन, मैत्रेय के एक कथन के अनुसार, व्यापारी लोगों पर जनसाधारण का विश्वास नहीं था। सुवर्णकार और कायस्थ शायद अभी तक पृथक् जातियाँ नहीं बन पाये थे। तोभी, ऐसा सामान्य विश्वास प्रकट किया गया है कि सुवर्णकार चोर होते हैं और कायस्थ न्यायालय के सर्प होते हैं।[२] चाण्डाल शूद्रवर्ग के प्रतिनिधि हैं।

अस्पृश्यता के नहीं रहने के बावजूद, सामाजिक भेद भाव बने हुए थे। चारुदत्त चाण्डाल से कोई वस्तु दान स्वरूप ग्रहण नहीं कर सकता था। स्थावरक का चेट दास है जिसे कोई स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है। अपने मालिक का अपराध छिपाने से इनकार करने पर, उसे बन्दी बनना पड़ा है और जब उसने वसन्तसेना की हत्या के सम्बन्ध में सत्य का उद्घाटन किया है, तब चांडालों को भी विश्वास नहीं होता कि दास सत्य भाषण भी करता है।[३] वसन्तसेना पवित्र तथा उत्तम विचारों की तरुणी होती हुई भी, समाज में, वेश्या दारिका होने के कारण, सम्मान का आस्पद नहीं थी।

नारियों की दो श्रेणियाँ थीं, यथा 'प्रकाशनारी' अथवा गणिका और 'अप्रकाशनारी' अथवा वधू या कुलवधू।[४] वेश्याएँ सम्पत्तिशालिनी बन जाती थीं और भव्य एवं सुसज्जित प्रासाद भी रखती थीं। वे धन से किसी के द्वारा भी उपभोग की वस्तुएँ बना ली जाती थीं। बड़े लोगों के द्वारा रमणार्थ वे निमन्त्रित भी की जाती थी। नृत्य, संगीत इत्यादि कलाओं में वे विशेष प्रवीण होती थीं। यदि वे अपनी निष्ठा के कारण किसी नागरिक से विवाहित हो जाती थीं, तो उन्हें 'कुलवधू' का गौरव प्राप्त हो जाता था। वसन्तसेना को नये राजा आर्यक ने 'कुलवधू' की उपाधि प्रदान की।[५] इससे ज्ञात पड़ता है

---

१. वही, १।३२   २ वही, पृ० २६०-६१

३. वही, पृ० ५५३   ४ वही, ३।७

५. वही, पृ० ५९८.

कि राजा किसी वेश्या को उसके पवित्र आचरण तथा अभ्यास की स्वीकृति में 'वधू' की पदवी प्रदान कर सकता था और तब, गणिका होने का उसका कलंक प्रक्षालित हुआ मान लिया जाता था।

'कुलवधू' अन्तःपुर में निवास करती थी और घर से बाहर निकलने पर मुँह पर घूँघट कर लेती थी। उसका अपना 'स्त्रीधन' होता था फिर भी, आर्थिक दृष्टि से वह पति की आश्रित रहती थी। पति ही उसके लिए आभूषण होता था और उसकी मृत्यु पर वह आग में जल कर सती बन जाना पसन्द करती थी। ऐसी नारी का सामाजिक दृष्टि से बड़ा महत्त्व था, इसी कारण, 'प्रकाशनारी' भी स्वतन्त्र जीवन या वैभव विलास त्याग कर, 'कुलवधू' बनने के लिए लालायित रहती थी।

तीसरी श्रेणी नारियों की एक और होती थी। वे 'भुजिस्या' कहलाती थीं। वे दासियाँ होती थीं और अपने स्वामी अथवा स्वामिनी की सेवा करती थीं। उनकी श्रेणी निम्नतम मानी जाती थी और वे अपनी मुक्ति का मूल्य चुका कर, स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकती थीं। मदनिका ऐसी ही युवती थी जिसे वसन्तसेना ने मुक्त कर दिया और ब्राह्मण शर्विलक ने अपनी 'वधू' बना लिया।

सामान्यतः नारी के प्रति दृष्टिकोण सम्मान का ही समझा जाएगा। वैवाहिक सम्बन्धों में जाति का कोई प्रतिबन्ध दिखाई नहीं पड़ता। नारियाँ प्रायः पतिव्रता होती थीं यद्यपि दुर्बल पुरुषों की पत्नियों का अपहरण भी हो जाता था।[१] शर्विलक ने स्त्रियों की तीव्र निन्दा की है जिसमें मनु द्वारा की गई नारी-निन्दा की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है।[२] पुरुष विवाह के अतिरिक्त भी यौन सम्बन्ध रखते थे। बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी। गणिकाओं से उत्पन्न अवैध सन्तानें 'बन्धुल' कही जाती थीं। चारुदत्त तथा शर्विलक ने 'प्रेम-विवाह' (Love marriage) किया है, किन्तु सामान्य रीति के वैध एवं धार्मिक विवाह भी होते थे जो 'वैवाहिक अग्नि' के उल्लेख से तथा वर की सजावट एवं विवाह के समय के बाजों की ध्वनियों के उल्लेख से प्रकट होता है।[3] 'प्रतिलोम' विवाह का कोई उल्लेख नाटक में उपलब्ध नहीं है। मृत्यु से सम्बन्धित रीतियों का संकेत धूना के चिता-प्रवेश की योजना से मिलता है और यह भी ज्ञात होता है कि अन्त्येष्टि में 'तिलोदक' का प्रयोग होता था।[४]

---

१ वही, ५।२०—"ज्योत्स्ना दुर्बलभर्तृकेव वनिता प्रोत्साय मेघैर्हृता।"
२. वही, ४।१२-१७ ३. वही, १०।४४
४. वही, पृ० ५९५.

सामाजिक बुराइयों में द्यूत क्रीडा की प्रथा लोकप्रिय प्रतीत होती है। जुआरियों का कोई संगठन वर्तमान था जो प्रत्येक जुआरी पर पूर्ण नियन्त्रण रखता था। उसका अध्यक्ष 'सभिक' कहलाता था और सम्भवत उसके निरीक्षण में जुए का खेल चला करता था। किसी भी हारे हुए जुआरी से उसका प्रदेय धन वसूल करने का पूर्ण अधिकार सभिक में सन्निहित रहता था। कुछ जुआरी उसका नियन्त्रण नहीं भी मानते थे। लेकिन, जुआरियों की अवस्था अच्छी नहीं थी। कभी कभी कुत्ते से कटवाये जाने तथा सिर नीचे और पैर ऊपर करके लटकाये जाने जैसी यन्त्रणाएँ उन्हें भोगनी पड़ती थी।[1] तथापि, द्यूत-क्रीडा कोई बुरा अथवा निन्द्य व्यसन नहीं मानी जाती थी। जब तक धन अथवा साधन रहते थे, कोई भी व्यक्ति जुआ खेल सकता था। चारुदत्त जैसे सम्भ्रान्त व्यक्ति को यह घोषित करने में तनिक भी संकोच नहीं हुआ कि वह धरोहर वाला आभूषण जुए में हार गया है। 'त्रेता', 'पावर', 'नर्दित' तथा 'कट' नामक जुए के दाँवों का उल्लेख मिलता है।[2] जुए की कतिपय शैलियों का पता चलता है जिन्हें लाक्षणिक नाम दिया गया था: 'गर्दभी' वह शैली थी जिसमें जुआरी गधे के समान कौड़ी से मारा जाता था और 'शक्ति' वह शैली थी जिसमें वह मन्त्र अथवा किसी सिद्धि से छोड़े गये बाण के समान मारा जाता था।[3]

दूसरी उल्लेखनीय बुराई चोरी करने की थी। चौर्य कर्म अत्यन्त विकसित प्रतीत होता है और उसने एक व्यवस्थित विधान का स्वरूप ग्रहण कर लिया था। कार्तिकेय, कनकशक्ति तथा भास्करनंदी चोरों के देवता एवं आराध्य थे। सेंध लगाने का शास्त्र ही बन गया था। शर्विलक द्वारा किये गये सन्धिच्छेद का नितान्त सूक्ष्म विवरण नाटक में प्रस्तुत किया गया है। लेकिन, चोरों की भी अपनी एक आचरण संहिता थी। जिस घर में केवल नारियाँ होती थीं, उस घर में सेंध नहीं लगाई जाती थी। अलंकृत सुकुमार नारी तथा धात्री की गोद में पड़े बालक का अपहरण नहीं होता था। ब्राह्मण के लिए सुरक्षित सुवर्ण और यज्ञ के लिए आयोजित सामग्री की चोरी नहीं की जाती थी। शर्विलक ने मदनिका को विश्वास दिलाया है कि चोरी करने में भी उसकी कर्त्तव्याकर्त्तव्य बुद्धि पूर्ण विवेक के साथ काम करती है।[4]

वेश्यालय तत्कालीन समाज की एक महत्त्वपूर्ण संस्था था। सभी वर्ग के व्यक्ति वहाँ जा सकते थे, यद्यपि धनवानों के लिए ही उसका विशेष गौरव

---

१. वही, २।१२   २ वही, २।६
३. वही, २।१   ४ वही, ४।६

एव सम्मान था। उज्जयिनी मे वसन्तसेना का भव्य प्रासाद निर्मित था जिसे देख कर मैत्रेय ने कहा था कि वह कुबेर के भवन मे आ गया है। इससे उस महल से वैभव ऐश्वर्य का ज्ञान होता है जिसका विस्तृत विवरण नाटक के चौथे अक के उत्तरार्ध मे दिया हुआ है। उद्यानो को रखने का भी शौक था। कभी-कभी समृद्धिशाली परिवार अपने निवास वाले भवन के साथ सुन्दर उपवन भी सलग्न रखते थे। वसन्तसेना के कक्ष से बिलकुल सटे उसके उद्यान का चित्रण हुआ है। उद्यानों मे तालाब अथवा सरोवर भी बने होते थे। सुन्दरियाँ झूला झूलती थी।[१]

समृद्धि के इस चित्र के अनुरूप, विभिन्न क्षेत्रों मे जीवन की व्यस्तता का पता चलता है। वाणिज्य-व्यवसाय उन्नत अवस्था मे था। दूकानें सामानों से सजी रहती थी। विदेश वस्तुओं का आयात निर्यात होता रहता था। वणिक् अपनी नवपरिणीता पत्नियों को निराश छोड कर विदेशो मे सम्पत्ति-सचय के लिये चले जाते थे। नवयुवक नये देश देखने के लिए, धन कमाने के लिए अथवा प्रशासकीय सेवा मे कोई पद प्राप्त करने के लिए अपना घर छोड कर बाहर चले जाते थे। उज्जयिनी की समृद्धि की बडी ख्याति प्रतीत होती है। एशिया के भिन्न भिन्न स्थलो से अनेक जातियाँ वहाँ आकर जीविकोपार्जन करती थीं। चन्दनक, जो स्वय दाक्षिणात्य था, खस, खत्ती, कर्णाट, बर्बर इत्यादि अनेक जातियो की भाषाएँ बोल सकता था।[२]

नगर का रात्रि जीवन बडा व्यस्त एव चहल पहल से पूर्ण प्रतीत होता है। उज्जयिनी मे बडी-बडी दूकानें, बडे-बडे पार्क तथा सार्वजनिक स्थान थे। सडकें चौडी तथा पतली थी। उन पर आवागमन के लिए बैलगाडियो की भीड लगी रहती थी। ग्रामीण गाडियों को हटा कर, धनी मानी नागरिकों की गाडियाँ आगे निकल जाती थीं। रात को रोशनी के लिए 'प्रदीपिकाएँ' प्रयोग में लाई जाती थी। सडको पर रोशनी का सार्वजनिक प्रबंध नही था। इसी कारण, चोरों का निरन्तर भय बना रहता था।[३] मैत्रेय ने रात को सडकों पर सचरण करने वाले गणिकाओं, विट-चेटो तथा राजवल्लभ पुरुषों के भय का कथन किया है।[४] अत आवारों, लम्पटों, विलासियों तथा चोरों के द्वारा सचरण के लिए रात का समय उपयुक्त समझा जाता था। शिष्ट, सम्भ्रान्त व्यक्ति रात मे नृत्य सङ्गीत इत्यादि का अभ्यास करते थे। गायक रेभिल का 'गान्धर्व' अत्यन्त प्रसिद्ध था और चारुदत्त उसका गाना सुन कर, बडी देर से

---

१ वही, पृ० २४७–४८. २ वही, पृ० ३४८
३ वही, ३।१८ ४ वही, पृ० ३४.

घर लौटा था। नाटक भी प्राय अभिनीत होते थे। धनी-मानी व्यक्ति पक्षियो को पालने मे शौक रखते थे। वसन्तसेना के महल के सातवें प्रकोष्ठ मे कबूतरो, सुग्गों, मैनाओ, कोयलों, तीतरो इत्यादि पक्षियो के सेवित-पालित होने का वर्णन आया है।[१]

आर्थिक-अवस्था

नाटक के अध्ययन से सामान्य समृद्धि का आभास होता है, यद्यपि निर्धनता तथा दुर्भिक्ष का भी उल्लेख मिलता है।[२] कृषि भारत का बडा पुराना उद्योग है; किन्तु इससे यहाँ के कृषको का जीवन सुखमय प्राय नही रहा है। जब यथा धान की लहलहाती फसलो का उल्लेख नाटक में वर्तमान है, लेकिन ऊसर भूमि मे बीजों के व्यर्थ चले जाने[३] तथा वर्षा के अभाव मे सूखते हुए धान के मेघ के आगम से लहलहा उठने[४] की उपमाओ से पता चलता है कि कृषको का जीवन चिन्ता से मुक्त नही था। वाणिज्य व्यवसाय की उन्नति का उल्लेख पहले हो चुका है। चारुदत्त ने पुष्पकरण्डक उद्यान मे उगने वाले वृक्षो को व्यापारी तथा उनमे शोभित फूलो को विक्रेय द्रव्य (पण्य) से उपमित किया है जिससे वाणिज्य की समृद्ध अवस्था का द्योतन होता है।[५] उज्जयिनी के एक मुहल्ले का नाम 'श्रेष्ठिचत्वर' था जहाँ चारुदत्त जैसे सभ्रान्त व्यवसायी निवास करते थे। उनका कोई अपना सघटन भी होता था जिसका एक प्रतिनिधि न्यायाधीश की सहायता के लिये न्यायमडप मे बैठता था और न्याय कार्य के सम्पादन मे भाग लेता था। धनसम्पन्न व्यवसायियों ने नगर की सुख वृद्धि के लिए सार्वजनिक हित के अनेक प्रशसनीय काय किये थे। सवाहक 'गृहपति' का पुत्र बताया गया है। 'गृहपति' से साधारण अर्थ 'गृहस्थ' का लिया जा सकता है। किन्तु, कतिपय विद्वानो का अनुमान है कि 'सार्थवाह' के समान 'गृहपति' भी, धनी-मानी लोगो का एक दूसरा महत्त्वपूर्ण समुदाय था और उन्हें जमीनदारों अथवा भूमिपतियो का वर्ग माना जा सकता है। दो कोटि के नौकरो का उल्लेख मिलता है, यथा, "सवृत्ति परिचारक" और "गर्भदास" या "गर्भदासी"। पहली कोटि उन नौकरों की है जो अपनी सेवाओं के लिए वेतन पाते थे और दूसरी कोटि उन दासों की है जो आजन्म अपने स्वामी की सेवा मे सलग्न रहते थे जब तक कि वसन्तसेना-जैसा कोई उदारमना व्यक्ति उन्हें नि शुल्क अथवा शुल्क लेकर मुक्ति न प्रदान कर दे। सरकारी नौकरों तथा

---

१ वही, पृ० २४१
२ वही, पृ० २६९
३. वही, पृ० ३९८
४ वही, १०।२६.
५ वही, ७।१

अधिकारियों, यथा, अधिकरणिक, लिपिक, सेनापति, पुलिस इत्यादि, के अतिरिक्त, नाई, चमार, राजगीर, बढ़ई, वास्तुकार इत्यादि का उल्लेख हुआ है। सुवर्णकारों की कारीगरी तथा धूर्तता का मैत्रय ने वैसे ही कथन किया है जैसे बनिया तथा वेश्या के धन लोभ का।[1] शिल्पियों का वर्ग भी वर्तमान था। अधिकरणिक ने 'शिल्पिवर्ग' की निपुणता का वर्णन किया है जो आभूषणों की विश्वसनीय नकल निर्मित कर देते हैं।[2]

राजनीतिक-प्राशासनिक अवस्था

नाटक के अवलोकन से ऐसा जान पड़ता है कि देश में छोटे २ राज्य थे जो साधारणतः आत्मनिर्भर होते थे। उज्जयिनी सम्भवतः एक राज्य था जिसके अन्तर्गत कुशावती का छोटा राज्य समाहित था जिसे आर्यक ने राज्यारोहण पर चारुदत्त को प्रदान कर दिया। इन राज्यों मे विजय तथा आधिपत्य-स्थापन की परस्पर स्पर्धा चलती रहती थी। दुर्बल तथा नृशंस एवं अयोग्य राजाओं के विरुद्ध क्रान्ति एवं विलव्द की योजना का सफल होना अपेक्षाकृत आसान काम था। राज्यारोहण के समय राज्याभिषेक की प्रथा प्रचलित थी. आर्यक का विधिवत् अभिषेक हुआ था।[3]

राजा की शक्तियाँ अनियन्त्रित थीं। राज्य की सर्वोच्च सत्ता का अधिकारी वही था। विधान अथवा कानून भी बना सकता था। न्याय कार्य मे भी राजा ही सर्वोच्च अधिकारी था। न्यायाधीशों की नियुक्ति तथा सेवा-मुक्ति वह कर सकता था। शकार ने, इसी कारण अधिकरणिक को राजा पालक से कह कर कार्य-मुक्त करने की धमकी दी थी।[4] न्यायाधीश का कार्य केवल अपराध निर्णय करना था, शेष अर्थात् निर्णय का कार्यान्वयन अथवा उसकी अन्तिम स्वीकृति राजा की अधिकार सीमा में आती थी। अधिकरणिक ने, इसी कारण, चारुदत्त के अभियोग मे निर्णय सुना देने के बाद मे कहा— "निर्णये वय प्रमाणम्, शेष तु राजा।" इस अनियन्त्रित शक्ति का राजा दुरुपयोग करते थे, यह भी माना जा सकता है।

नगर की रक्षा के लिए सेना होती थी। गुप्तचरों का भी दल नियुक्त रहता था। राजा इन्हीं के माध्यम से राज्य की अथवा अपनी सत्ता की सुरक्षा का प्रयास करता था। नगर के चारो ओर 'प्राकार' होता था तथा चारों तरफ चार बड़े-बड़े दरवाजे 'प्रतोलिद्वार', होते थे। 'गुल्मस्थान' का भी उल्लेख है

१ वही, पृ० २६०
२ वही, १०।३४.
३ वही, १०।४७
४. वही, ९० ४६१.
५. वही, ७।८

जहाँ प्रहरी रक्षा के लिए पहरे पर तैनात रहते थे। 'प्रधानदण्डाधिकारी' 'दुष्टोद्दण्डपालक', 'नगररक्षाधिकारी 'बलपति, तथा 'राष्ट्रिय' (पुलिस का अधीक्षक जो प्राय राजा का साला होता था)—ये पदाधिकारियों के नाम हैं जो नाटक मे आये हैं।

नगरी शासन की भी एक झलक मिल जाती है। सड़कें तथा गलियाँ बनी हुई थीं। 'राजमार्ग' तथा तथा 'चतुष्पथ' (चौराहा) का उल्लेख हुआ है। सड़कें बरसाती मौसम मे, कच्ची होने के कारण पंक तथा कीचड़ से भर जाती थीं। जनता से कर वसूल करने के लिए विशेष अधिकारियों की नियुक्ति होनी प्रतीत होती है।[१]

अभियोग वाले प्रसग मे न्यायपद्धति का पूरा चित्र उपस्थित हो गया है। न्यायालय को 'अधिकरण-मडप' कहा जाता था। उससे सबद्ध एक नौकर होता था। जिसका काम मडप की सफाई करना तथा अधिकारियों के बैठने के लिए आसनादि की व्यवस्था करना था। शायद अपराधियों को प्रविष्ट कराना तथा न्यायाधीश की आज्ञाओं का सम्प्रेषण करना भी उसका कर्तव्य था। नाटक मे शोधनक यही काम करता है। न्यायालय में भीतर प्रविष्ट होने के पहले, लोग बाहर दूर्वाचत्वर' (घास का छोटा मैदान) मे रुके रहते थे। न्यायालय के अधिकारियों की सामूहिक सज्ञा 'अधिकरणभोजक' थी। न्यायाधीश 'अधिकरणिक' कहलाता था। 'कायस्थ' लिपिक का कार्य करता था। 'श्रेष्ठिन्' के साथ 'कायस्थ' भी न्यायाधीश की अपराध निर्णय में सहायता करता था। ये लोग 'नियुक्त' (Assessors) कहलाते थे। चारुदत्त के ऊपर लगाये गये अपराध की परीक्षा करते समय अधिकरणिक ने न्यायाधीश के गुणों तथा योग्यताओं का वर्णन किया है—"न्यायाधीन होने के कारण, वादी-प्रतिवादी के मनोभावों को समझना न्यायाधीश का कठिन कार्य है। वे सत्य को छिपाते और असत्य अभियोग लिखाते हैं। पक्ष एव प्रतिपक्ष से विवर्धित दोष ही राजा के पास पहुँचते हैं। इस प्रकार, न्यायाधीश प्राय दोषी ठहराया जाता है। क्रुद्ध होकर वादी-प्रतिवादी अन्याय पूर्ण मिथ्या अभियोग उपस्थित करते हैं। सज्जन लोग भी न्यायालय मे अपने दोषों का कथन नहीं करते हैं। इस प्रकार, विचारकर्त्ता का कार्य अत्यन्त कठिन बन जाता है और उस पर दोषारोपण प्राय किया जाता है तथा उसके गुणों की सही परीक्षा नहीं की जाती है। अतएव, न्यायाधीश को धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र इत्यादि का परिज्ञान होना चाहिए। उसे वादी प्रतिवादी के कपटपूर्ण व्यवहार को समझने में

---

१ वही ७।१

चतुर होना चाहिए, वक्ता तथा क्रोध नहीं करने वाला होना चाहिए। मित्र, शत्रु, पुत्रादि स्वजनो को समान दृष्टि से देखना तथा उनके अभियोगों पर उचित, निष्पक्ष विमर्श करना न्यायाधीश का पुनीत कर्तव्य है। उसे दुबलो का पालक, शठों को दड देने वाला, धर्म बुद्धि से निर्णय करने वाला, "निर्णय कार्य के वास्तविक तत्त्वों को समझने वाला और राजा के कोप का अपनयन करने वाला होना चाहिए।"[1] अतएव न्यायाधीश का पद बडा ही सकटपूर्ण तथा सुकुमार समझा गया है।

न्याय-कार्य को 'व्यवहार' तथा कानूनी तथ्यों को 'व्यवहार-पद' कहा जाता था। लिखित रूप मे अभियोग उपस्थित किया जा सकता था और शकार तथा वीरक के उदाहरणो से जान पडता है कि न्यायाधीश के पास सीधे अभियोग प्रस्तुत किया जाना सभव था। वादी तथा प्रतिवादी को क्रमश 'कार्यार्थी' अथवा 'व्यवहारार्थी' तथा 'प्रत्यर्थी' कहा जाता था। वादी, प्रतिवादी तथा गवाहों से न्यायाधीश-द्वारा प्रश्न पूछे जाते थे तथा जिरह की जाती थी। कपट अथवा 'छल' का परित्याग कर, सत्य-भाषण कराये जाने पर बल दिया जाता था।[2] सत्य की खोज मे दो दृष्टियाँ अपनाई जाने का कथन किया गया है—प्रथम, वादी प्रतिवादी के बयानो से क्या तथ्य निकलता है और दूसरी, प्राप्त तथ्यो के परीक्षण तथा विमर्शण से न्यायाधीश स्वत सत्य को विषय में किस निष्कर्ष पर पहुँचता है।[3] जुए मे हारे हुए धन की अदायगी नही करना, स्त्री हत्या, राजनीतिक अपराध राजकीय कर्तव्यो के पालन मे किसी अधिकारी के साथ छेडखानी करना तथा किसी राजनीतिक शत्रु अथवा अपराधी की रक्षा या सहायता करना—इन अपराधो का उल्लेख मिलता है और शारीरिक यन्त्रणा से लेकर मृत्यु-दड तक के दडों का प्रचलन पाया जाता है। अपराधी कुछ निश्चित अवसरो पर मुक्त भी कर दिये जाते थे। चारुदत्त के कथनानुसार, कभी कोई साधु पुरुष धन देकर बध्य पुरुष को छुडा लेता था, कभी राजा के पुत्र-जन्म के उपलक्ष मे अपराधी छोड दिये जाते थे, कभी राज्य-परिवर्तन होने पर बध्य पुरुष मुक्त कर दिये जाते थे और कभी बधन तोड कर मतवाले हाथी के निकल भागने पर बध्य पुरुष मुक्त हो जाता था।[4] मृत्यु दड प्राप्त

---

१. वही, ९।३ ५ २ वही, ९।१८

३ "वाक्यानुसारेण अर्थानुसारेण च। यस्तावत् वाक्यानुसारेण, स खल्वर्थिप्रत्यर्थिभ्य, यस्त्वर्थानुसारेण, स चाधिकरणिकबुद्धिनिष्पाद्य।"—वही, पृ० ४६७–६८

४ वही, पृ० ५५८–५९.

अपराधी को शरीर पर चांडालों द्वारा आरा चला कर मार डालने की पद्धति थी। चारुदत्त को इसी प्रकार का मृत्यु-दंड मिला था। किन्तु, इसके विकल्प-रूप में प्राण दंड के लिए विष खिलाने, पानी में डुबो देने, यंत्र पर चढ़ा देने तथा अग्नि में झोक देने की प्रथाएँ भी प्रचलित थीं।[1]

वध्य पुरुष को अपमानित करने के लिए उसके शरीर का विचित्र शृंगार किये जाने का साक्ष्य नाटक से मिलता है। चारुदत्त के गले में करवीर पुष्प की माला पड़ी हुई थी, उसके सम्पूर्ण शरीर पर लाल चन्दन का थापा मारा गया था, तिल, तंडुल, कुंकुम आदि के लेप से सभी अंग लिप्त कर दिये गये थे और इस प्रकार, उसकी आकृति पशु-जैसी बना दी गई थी।[2] इस विचित्र वेश में वध्य व्यक्ति को सड़कों में घुमाया जाता था। नगर में पाँच घोषणा-स्थल बनाये गये थे जहाँ पहुँच कर, चांडाल नगाड़ा बजा कर, विवरण-पूर्वक वध्य पुरुष के दुष्कृत्य तथा राजाज्ञा की घोषणा करते थे।[3] कभी कभी स्वयं वध्य व्यक्ति को अपने अपराध की घोषणा करने के लिए बाध्य किया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि पहले धड़ से सिर काट कर अलग कर लिया जाता था और तब स्तंभ में धड़ लटका दी जाती थी जहाँ श्मशान-भूमि के पक्षी और पशु उसे नोचते थे। यह सम्पूर्ण अपमान तथा कठोर निर्दयता इस कारण बरती जाती थी कि अन्य लोग राजा तथा भगवान् से डरते रहें और दुष्कृत्य करने के प्रलोभन से बचें। न्यायमंडप की 'शोभा' का चारुदत्त ने जो वर्णन किया है, उससे न्याय की निर्मम भीषणता का सटीक ध्वनन हुआ है—

"जहाँ राज्यविषयक विविध चिन्ताओं में व्यस्त मंत्री जल के तुल्य हैं, जहाँ दूत गण तरंग तथा शंख के समान व्याकुल हो रहे हैं, जहाँ उपान्त में स्थित गुप्तचर नक्र तथा मकर के समान हैं, जहाँ हाथी तथा घोड़े अन्य जलचर जीवों के तुल्य हैं, जहाँ विविध वाणी बोलते हुए वादी प्रतिवादी कंक पक्षी के समान शोभित हो रहे हैं जहाँ कायस्थ सर्प के समान कुटिल वृत्ति वाले दिखाई पड़ रहे हैं और जहाँ नीति ही भग्न तट है, वह न्यायालय हिंसात्मक आचरण के द्वारा समुद्र के समान व्यवहार कर रहा है।"[4]

भोजन-परिधान-प्रसाधन

सूत्रधार के घर में 'अभिरूपपति' नामे व्रत के अवसर पर जो भोजन बना था तथा वसन्तसेना के महल में जो पकवान्न बन रहे थे, उन्हें देखने से भोग्यान्नों के विषय में एक जानकारी मिल जाती है। चावल का प्रयोग

---

१ वही, ९।४३.   २ वही १०।२, १०।५
३ वही, पृ० ५२८   ४ वही, ९।१४.

सामान्य था तथा उसे नाना प्रकार से पकाया जाता था—उदाहरणत, 'तडुल', 'भक्त' (भात), 'गुड़-ओदन' (गुड़ मिश्रित) 'कल्म-ओदन' (दही मिश्रित) 'पायस' (दूध-मिश्रित खीर) तथा 'शालियकूर' (शालि धान का उबाला चावल)। हाथियों को भी तैल मिश्रित चावल का लड्डू खिलाया जाता था। घी दही तथा दूध का भोजन बनाने में प्रयोग होता था। 'मोदक' तथा 'अपूपक' (पूआ) मिष्ठान्न थे। चपटी वस्तुओं को तलने के लिए घृत अथवा तैल का प्रयोग किया जाता था और इस सम्बन्ध में हींग, जीरा, भद्रमुस्त, बचा, सोंठ तथा मिर्च के चूर्ण ('मरीचचूर्ण') जैसे मसालों की चर्चा आई है। रक्तमूलक' (लाल मूली या गाजर) की चटनी बनाई जाती थी। शाकों तथा अचारों का प्रयोग होता था। मछली-मास सामान्य भोजन का बहुमूल्य अंग था। ब्राह्मण भी मास खाते थे।[१] मांस को सुस्वादु बनाने के लिए मसालों का उपयोग होता था और शकार ममालों के मिश्रण से स्वर को मधुर बनाने की विधि में प्रवीण था।[२] मद्यपान की प्रथा प्रचलित थी। 'सीधु', सुरा' तथा 'आसव' तीन प्रकार के मादक पेय का उल्लेख आया है।[३]

परिधान के विशेष विवरण उपलब्ध नहीं हैं। तोभी, कतिपय वस्त्रो का पता चलता है। स्त्री तथा पुरुष दोनों 'उत्तरीय' (प्रावारक) का प्रयोग करते थे। विवाहित नारियाँ 'अवगुण्ठन' (घूँघट) ओढती थी। कर्णपूरक तथा शकार के वस्त्र चमकीले-भड़कीले प्रतीत होते हैं। दर्दुरक (जुआरी) का उत्तरीय फटा हुआ था। मैत्रेय की नहाने की तौलिया ('स्नानशाटी') भी जीर्ण-शीर्ण थी जिसमे वसन्तसेना का आभूषण लपेटा हुआ था। किन्तु, चारुदत्त का प्रावारक चमेली के फूलो से वासित था। वसन्तसेना का जब पीछा किया जा रहा था, तब वह लाल रंग का रेशमी वस्त्र पहने हुई थी।[४] उसकी माता का उत्तरीय पुष्पों से अलङ्कृत था और उसके भाई का उत्तरीय रेशमी ('पट्टप्रावारक') था। शकार सिर को किसी वस्त्र से ढके प्रतीत होता है। उत्तरीय शायद सम्मान का वस्त्र समझा जाता था : किसी पर प्रसन्न होकर पुरस्कार-रूप में प्रावारक दिये जाने का यही रहस्य है। चारुदत्त ने कर्णपूरक को प्रावारक दिया था और शकार ने भी विट को वसन्तसेना की हत्या करने के लिए, सैकड़ों सूत्रों से निर्मित विशाल उत्तरीय देने का प्रलोभन दिया था—"ह्रस्वदशाविशालं प्रावारकं सूत्रशतैर्हि युक्तम्।"[५]

---

१ वही, ८।१२८   २ वही, ८।१३-१४

३. वही, ४।२९.   ४ वही, पृ० ३७

५. वही, ८।२२—डॉ० भाट ने लिखा है कि यह प्रावारक शकार वसन्तसेना

भिक्षु 'चीवर' पहनते थे। गाड़ियों को ढकने के लिए किसी वस्त्र का उप-योग होता था। वर्धमानक यही भूल गया था और इसी को लाने जाने के कारण हुई विलम्ब में गाड़ियों की अदला बदली हुई थी। वसन्तसेना की माता तैल-मिक्त जूते पहने बताई गई है।"[1]

अलंकारों में कुण्डल, नूपुर तथा मणिनिर्मित करधनी का प्रयोग वसन्तसेना जैसी समृद्ध नारियाँ करती थीं। पुरुष अंगूठी तथा कटक या कंगन धारण करते थे। वसन्तसेना के महल के छठे प्रकोष्ठ के वर्णन में वैदूर्य, प्रवाल, मौक्तिक, पुष्प-राग, इन्द्रनील, कर्केतरक, पद्मराग, मरकत इत्यादि अनेक रत्नों-जवाहरों से विविध प्रकार के भूषण बनाये जाने का उल्लेख हुआ है।[2] शृंगार के प्रसा-धनों में फूलों का उपयोग होता था। वसन्तसेना फूलों की माला रात को पहने थी।[3] उसके छठे प्रकोष्ठ में लाख, कुंकुम, कस्तूरी, चन्दनरस तथा सुगन्धित लेप के प्रयोग किये जाने का भी कथन हुआ है। कपूर के साथ पान खाने की चर्चा आई है।[4]

प्रकीर्ण प्रसंग

शिक्षा सम्बन्धी विशिष्ट उल्लेख नाटक में उपलब्ध नहीं हैं। किन्तु, ऐसा लगता है कि ब्राह्मणों को वेदों का अध्ययन करना पड़ता था। ऋग्वेद के साथ-साथ सामवेद का अध्ययन भी प्रचलित था जिसमें यज्ञों तथा कर्मकांड में सहा-यता मिलती थी। रामायण, महाभारत तथा कतिपय पुराणों का भी प्रचलन था। शकार ने निरन्तर इनके पात्रों का कथन किया है। मनुस्मृति तथा गीता का भी अध्ययन होता था। गणित तथा ज्योतिष भी पढ़े जाते थे। दो विद्याएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, हस्तिविद्या और चौर्यविद्या। शूद्रक हस्तिविद्या का पारंगत पण्डित था। चौर्य का भी शास्त्र विकसित हो गया था। सन्धिच्छेद के 'फार्मूले' बने थे और कनकशक्ति, भास्करनन्दी तथा योगाचार्य इस शास्त्र के आद्याचार्य माने जाते थे।[5] शकार के एक पूर्वोद्धृत कथन से जान पड़ता है कि चोरों की एक आचार-संहिता बन गई थी।[6] 'बल' एवं 'साहस' के अतिरिक्त 'शिक्षा बल' की भी आवश्यकता चौर्य के लिए बताई गई है। ईंटें कहाँ दीवार में तोड़ी जायँ, किस आकार की सेंध खोली जाय, इत्यादि के सम्बन्ध में विस्तृत

को फुसलाने के लिए दे रहा था, किन्तु यह कथन गलत है। (दे० भाट० की पुस्तक, पृ० २४५)

१ वही पृ० २४४.
२ वही, पृ० २३९.
३ वही, पृ० ३।२५, ४०
४ वही, पृ० २३९
५. ३।१५
६ वही, ३।१२

निर्देश चौर्यशास्त्र के ग्रन्थों में सन्निविष्ट होंगे—ऐसा जान पड़ता है।[1] सेंध फोडने के सम्बन्ध में आवश्यक 'वस्तुओं की उद्‌भावना हुई थी। 'योगरोचन' नामक एक अवलेप था जिसे शरीर पर पोत लेने से चोरों के अंगों पर शस्त्र प्रहार का कोई प्रभाव नहीं पडता था और वे पकडे भी नहीं जा सकते थे। एक प्रकार के अग्निकीट' का प्रयोग होता था जिस फेंक देने पर घर के भीतर जलते दीपक बुझ जाते थे। सबसे बढ कर कुछ ऐसे जादुई बीज होते थे, जो जमीन पर डालने से फैल जाते थे और भूगर्भ स्थित धन का विज्ञापन कर देते थे।[2] यदि एक ओर इस विवरण से यह पता चलता है कि उस समय चोरों का उत्पात अधिक बढ़ गया था, तो दूसरी ओर यह मनोरञ्जक विस्मय उत्पन्न करता है कि चोरी की भी एक स्वीकृत विद्या बन गई थी और एक वैज्ञानिक शास्त्र विकसित हो गया था। वस्तुत हमारे यहाँ कोई भी ऐसा व्यवसाय नहीं जिसका सूक्ष्म एवं विस्तृत अध्ययन नहीं किया गया हो और जिसका प्रतिपादक कोई देवता नहीं हो। सेंध लगाने वाले अपने को "स्कन्दपुत्र" कहते हैं क्योंकि कार्तिकेय उनके देवता हैं।

शूद्रक ने अन्य विद्याओं के साथ, 'वैशिकी कला' में भी निपुणता प्राप्त की थी। 'वैशिकी' शीर्षक के अन्तर्गत समस्त ललित कलाएँ तथा अभिनय, नृत्यादि समाहित किये जा सकते हैं। वसन्तसेना के लिए विट ने कहा था कि वह नाट्यशाला में जाकर (नृत्यगीतादिक) कलाओं के अभ्यास से दूसरों को ठगने में कुशल हो गई है और अपना स्वर परिवर्तन भी कर लिया है।[3] जान पडता है, अभिनय विद्या के प्रशिक्षण के लिए विधिवत् शालाएँ स्थापित थीं। सम्भव है, वेश्याओं के व्यवसाय के लिए ऐसे प्रशिक्षण का अधिक महत्त्व था। वसन्तसेना के महल के तीसरे प्रकोष्ठ में सङ्गीत के अभ्यास के लिए विशिष्ट व्यवस्था की गई थी। रेभिल नगर का एक प्रसिद्ध गायक था। चारुदत्त के घर में शर्विलक को विविध वाद्य मिले थे। ढक्का', मृदङ्ग', 'पणव' तथा 'पटह' (जो सभी ढोल हैं ?), वंश' (वंशी) 'काम्यनाल' (समय सूचित करने वाला घटा), 'वीणा' तथा 'तन्त्री' वाद्यों का नामोल्लेख मिलता है इनमें सभ्य सुसंस्कृत व्यक्तियों के समीप 'वीणा' को अत्यधिक महत्त्व मिला था। चारुदत्त ने 'वीणा' की प्रशंसा यों की है—"वीणा बिना समुद्र से निकला हुआ अपूर्व रत्न है। यह उत्कण्ठित मनुष्य के लिए मनोनुकूल मित्र है। निर्दिष्ट स्थान पर गुप्तप्रेमी के पहुँचने में विलम्ब होने पर मनबहलाव का अच्छा साधन है। वियोग में उद्विग्न मनुष्य

---

१ वही, ३।१३

२ वही, पृ० १६७, १६९

३ वही, १।४२

को धैर्य बंधाने के लिए प्रेयसी के तुल्य है और अनुरागबद्ध प्राणियों में प्रेम बढ़ाने के लिए सुखकर वस्तु है।"[1] चित्रकला का भी सम्भ्रान्त परिवारों में सम्मान रहा होगा। वसन्तसेना ने चारुदत्त का चित्र स्वतः बनाया था। 'चित्र-भित्ति' तथा 'पत्रच्छेद'[2] शब्दों के उल्लेख से प्रथम, वैसे चित्रों का बोध होता है जो दीवाल पर निर्मित होते थे तथा दूसरे, वैसे चित्रों का जो अलंकृत चित्र-रचना में पत्तियों की नानाभाव से आकृतियाँ काट कर निर्मित होते थे। वस्त्रों पर सूई की भी कारीगरी करने का आभास मिलता है। चारुदत्त तथा शकार के प्रावारकों में उनके नाम अंकित थे।

वास्तु विद्या भी, विकसित थी। मन्दिरों, धर्मशालाओं, विहारों तथा भव्य प्रासादों के उल्लेख से जान पड़ता है कि स्थापत्य, इन्जीनियरिंग तथा भास्कर्य का भी यथेष्ट विकास हुआ था। शकार के महल के द्वार के ऊपर 'बालाग्रप्रतो-लिका' (अट्टालिका) बनी हुई थी जिसमें उसने चेट स्थावरक को कैद रखा था। चारुदत्त का अपना भवन भी सुन्दर एवं प्रशस्त जान पड़ता है। उसके चारों तरफ ईंट की एक दीवाल बनी थी जिसमें एक 'पक्षद्वार' रखा गया था और जो एक ओर आम्र कुञ्ज से वेष्टित था। इस कुञ्ज तथा मुख्य भवन के बीच एक खुला मैदान था। सम्भवतः यहीं एक छोटा प्रमोद गृह ('आराम-प्रासाद'), बना था जिसके सामने एक वेदिका बनी हुई थी जहाँ कबूतरों ने अपना अड्डा बना लिया था। मुख्य भवन में प्रवेश कर भीतरी प्रांगण में पहुँचा जा सकता था जिसे 'चतुःशालक' कहते थे। चारुदत्त के भवन की अवस्था बुरी थी क्योंकि निर्धन हो जाने के कारण, वह उसकी मरम्मत इत्यादि करने में असमर्थ था। घर की दीवाल पक्की ईंटों की बनी थी और उसका एक भाग भूप का जल देते देते गीला एवं शिथिल हो गया था और चूहों ने भी उसे जर्जर बना दिया था।[3] पक्षद्वार में अगला से बन्द होने वाले बड़े बड़े किवाड़ ('महाकपाट') लगाये गये थे।[4] चारुदत्त का भवन आज-ही-जैसे किसी पुराने रईस या जमींदार का भवन मालूम पड़ता है।

वसन्तसेना का प्रासाद उस युग के वैभव ऐश्वर्य का जीवन्त प्रतीक है। उसमें ऊपर एक अट्टालिका ('अलिन्दक') बनी हुई थी जिस पर चढ़ कर, वसन्तसेना ने चेटी के साथ नीचे सड़क से जाते हुए चारुदत्त का अवलोकन

---

१ वही, ३।३   २ वही, ५।५, ५।५०

३ यह वर्णन शर्विलक के कथन के आधार पर दिया गया है। नाटक का तीसरा सन्धिच्छेद वाला अङ्क पढ़ें।

४ वही, ६।३

किया था। भवन के भीतर एक बड़ा प्रागण अथवा उद्यान था जिसके एक भाग में कामदेव का मंदिर निर्मित हुआ था। वसन्तसेना का अपना निजी कक्ष था जो भवन के ऊपरी मंजिल पर अवस्थित था और जिसमे 'गवाक्ष' (खिड़कियाँ) लगे हुए थे जिनसे वह उद्यान एवं मंदिर का देख सकती थी। शयन कक्ष कदाचित् अलग अलग बने हुए थे। मुख्य भवन मे आठ प्रकोष्ठ थे। प्रासाद का दरवाजा पानी छिड़क कर गोबर से लीपा गया था जहाँ की भूमि विविध फूलो के उपहार से चित्रित दीखती थी। दरवाजा बहुत ऊँचा था, मानो आकाश की शोभा देखने के लिए अपना मस्तक ऊँचा किये हो। उसके ऊपर मल्लिका के फूलो की विशाल माला लटक रही थी। उसमे हाथी दाँत की तोरण लगा हुआ था। चन्द्रकान्त आदि महारत्नो से जड़ित शुभसूचक पताकाएँ फहरा रही थी। तोरण बाँधने के निमित्त निर्मित स्तंभ वेदिकाओ पर हरे आम्र-पल्लवों से सज्जित, स्फटिकनिर्मित मंगल-कलश शोभा दे रहे थे। और, द्वार मे कठोर सुवर्ण के, हीरकादि वज्रो की कीलो से प्रतिबद्ध कपाट झूल रहे थे।[1] मैत्रेय इस भवन द्वार की 'सश्रीकता' (अनूप शोभा) देख कर गद्गद हो गया था—'यत् सत्य मध्यस्थस्यापि जनस्य बलाद्दृष्टिमाकारयति।'[2]

आठ प्रकोष्ठों का विस्तीर्ण वर्णन मैत्रेय ने किया है जिसमे वैभव विलास तथा ऐश्वर्य का अत्यन्त विस्मयकारी चित्र उपस्थित हो गया है। इनके अवलोकन के बाद, मैत्रेय ने यह उद्‌गार व्यक्त किया था—"मुझे सचमुच विश्वास हो गया है कि मैंने स्वर्ग, मर्त्य एवं पाताल से निर्मित त्रिभुवन यहाँ एकत्र ही देख लिया है। × × × क्या यह वेश्या का घर है अथवा कुबेर के भवन का परिच्छेद है?''[3] मैत्रेय की चकित अभ्युक्ति मे तत्कालीन वेश्यावास के चाकचक्य की विज्ञप्ति होती है।

वसन्तसेना के प्रासाद-वर्णन मे यथार्थ वास्तविकता का चित्रण है, ऐसा नहीं माना जा सकता। "कनक-कपाट" तथा अन्य बहुत से उल्लेख परम्परा एवं कल्पना से गृहीत हुए माने जाएंगे। शूद्रक ने जैसे चारुदत्त की उदारता तथा दरिद्रता का और वसन्तसेना के प्रणय की पवित्रता का समान भाव से 'आदर्शीकरण' किया है, वैसे ही गणिकाओं की समृद्धि तथा ऐश्वर्य का भी 'आदर्शीकरण' किया गया है। दरिद्रता कितनी दयनीय हो सकती है, उदारता कितनी उदार हो सकती है, प्रणय कितना पवित्र हो सकता है, और वैसे ही, गणिका का वैभव कौन-से सोपानों का स्पर्श कर सकता है—ऐसा ही आदर्शी-

---

१ वही, पृ० २२६-३० २ वही पृ० २३१

३ वही, पृ० २४७—पूरे चित्र के लिए चौथे अंक का उत्तरार्ध पढ़े।

दृश्य चित्र नाटककार द्वारा उपस्थित किया गया है। अतएव, गणिका-प्रासाद का प्रस्तुत वर्णन यथार्थ की प्रतिकृति नहीं माना जाना चाहिए, यद्यपि हमें यह मानने में कोई आपत्ति नहीं कि तत्कालीन प्रासादों की बनावट तथा साज-सज्जा इसी प्रासाद के अनुरूप होगी।[१]

---

१. वसन्तसेना के महल के वर्णन के लिए नाटक का पाँचवाँ अंक अवलोकनीय है।

डॉ॰ भाट ने 'मृच्छ॰' में उल्लिखित पशु, पक्षियों तथा पादपों की गणना कराई है। मैं यहाँ उन्हीं के अनुसार उनके नाम दे रहा हूँ :—

वृक्ष तथा फूल : चम्पक, अशोक, चूत, सहकार, जाती, कटकी, करवीर, किंशुक, नलिनी, पद्म, नीप, पलाश, पनस, रक्तगन्धा, ताली और तमाल।

पक्षी : बक, बलाक, चकोर, चक्रवाक, चाष, कंक, कपिञ्जल, कपोत, कोकिल, परभृता, परपुष्टा, लावक, मदनसारिका, मयूर, शिखंडी, पारावत, पक्षपति (गृध्र), राजहंस, सारस, शुक, श्येन तथा वायस।

कीड़े मकोड़े : अग्निकीट, भृङ्ग, अहि, भुजग, दुर्दुमनाग, पन्नग तथा सर्प।

पशु : अश्व, वाजी, बलीवर्द, दुड्डुम (खच्चर), गर्दभ-भी, गृष्टि (गाय), हस्ती, वनद्वीप, किशोरी (घोड़ी), कुक्कुर, मल्लक (कुत्ता), शूकर, श्वा, मकर, मार्जार, मेष, मीन, मृग, मूषक, सैरिभ, महिष, शाखामृग, शश, शृगाल, कोल (सियार), सूकर, सिंह, वृक तथा व्याघ्र।

—दे॰ 'Preface To Mrcch.', पृ॰ २४९–५०.

(१२) उपसंहार

(१)

शूद्रक ने परम्परा के परित्याग का साहस दिखाया है, इसे हम पहले प्रदर्शित कर चुके हैं। भास का उसके ऊपर महान् ऋण है, उसकी चर्चा भी यथा स्थान की जा चुकी है। शायद इन दोनों ही कारणों से, शूद्रक की पण्डित-परम्परा में उपेक्षा होती रही है। लेकिन, जैसा हमने ऊपर दिखाया है, अपनी सम्पूर्ण विद्रोहशीलता के बावजूद, शूद्रक भारतीय चिन्तन की मुख्य धारा से कटा हुआ नहीं समझा जा सकता। जैसे संघर्षों का हमारी मूल भावना में कोई तात्विक महत्त्व नहीं है, जैसे समस्त विसवादी स्वर अन्ततोगत्वा एक सांगीतिक सामजस्य में विलीन हो जाते हैं, जैसे हम अपने सम्पूर्ण प्रयत्नों के चरम परिणाम को भाग्याधीन मान कर, सम्पूर्ण कटुता एवं विक्षोभ विस्मरण कर जाते हैं, जैसे समस्त दुष्टता एवं दानवता से साहसपूर्ण हाथ मिलाते हुए भी, हम अन्ततः विश्व के केन्द्रीय तत्त्व 'ऋत' में अपने व्यक्तित्व का विसर्जन कर देते हैं तथा उस ऋत के शान्त एवं प्रसादपूर्ण सामंजस्य के कलकल प्रवाह में अपनी अन्तरात्मा के संगीत को भी एकतान मिला देते हैं—यही भारतीय साहित्य का व्यावर्त्तक धर्म रहा है—शूद्रक ने इस 'मिट्टी की गाड़ी' के माध्यम से अपनी "साहित्य-वधू" का वैसा ही रूप सँवारा-सजाया है। आप देखें, नाटक के अन्त में चारुदत्त क्या कहता है—

> 'लब्धा चारित्रशुद्धिश्चरणनिपतितः शत्रुरप्येष मुक्तः
> प्रोत्खातारातिमूलः प्रियसुहृदचलामार्यक शास्ति राजा।
> प्राप्ता भूयः प्रियेयं प्रियसुहृदि भवान् सङ्गतो मे वयस्यो
> लभ्यं किञ्चातिरिक्तं यदपरमधुना प्रार्थयेऽहं भवन्तम्, (१०।५८)

—'हमारे चरित्र में वसन्तसेना की हत्या का जो कलंक लगा था, वह मिट गया। मेरे चरणों में गिरा हुआ यह शत्रु (शकार) भी मारे जाने से बच गया। शत्रुओं का उच्छेद कर, प्रिय मित्र आर्यक पृथ्वी का शासन कर रहे हैं। यह प्रियतमा वसन्तसेना मुझे पुनः प्राप्त हो गयी है। मित्र शर्विलक परम प्रिय सुहृद् आर्यक से मिल गए हैं। अब इससे अधिक और क्या प्रकाम्य वस्तु हो सकती है जिसे माँगा जाय ?'

यह चारुदत्त की वाणी है जो मौत के मुँह से सौभाग्यवशात् बच पाया है

और जिसने अनन्य-साधारण उदारता के साथ दानव शकार को क्षमा कर दिया है। समस्त विपत्तियो का झझावात शान्त हो गया है, कटुताएँ तथा शत्रुताएँ स्नेह एव सद्भाव के उच्छल प्रवाह मे विलुप्त हो गई हैं, प्रियतम प्रियतमा मिल गए हैं, मित्र मित्र मिल गये हैं। आग्ल कवि मिल्टन के शब्दो मे, शूद्रक की कला अनेक भूलभुलैयो मे से सचरण करती हुई तथा विभिन्न बधनों को खोलती और सुलझाती हुई, जीवन सगीत का स्निग्ध शान्त उद्घोष कर रही है—

"The melting voice through mazes running,
Untwisting all the chains that tie
The hidden soul of harmony xxxx" (L' Allegro)

अतएव, परम्परा का विद्रोही शूद्रक मूलत भारतीय सस्कृति की प्राण-धारा के साथ एकतान 'गान्धर्व' का गान कर रहा है।

(२)

तथापि यह सत्य है कि शूद्रक को सस्कृत साहित्य के यशस्वी स्वामियो की स्पर्धा में खडा करना तनिक साहस का काम समझा जाएगा। कालिदास मे में जो सुकुमार प्रगीतात्मक सौन्दर्य दिखाई पडता है, यह शूद्रक की पहुँच के बाहर है। भवभूति मे जो भावों का उमडनशील वैभव दिखाई पडता है, वह भी शूद्रक के अधिकार की वस्तु नहीं है। बाण की कल्पना का लालित्य तथा शिल्प की समृद्धि तो शूद्रक की प्रतिभा के लिए नितान्त विदेशी द्रव्य है। पडितो का कथन है कि फिर भी, शूद्रक विशाखदत्त एव भट्टनारायण जैसे नाट्यकारों से श्रेष्ठतर है। लेकिन, सचाई यह है कि शूद्रक की प्रतिभा की जाति ही दूसरी है, उसका उपादानकारण ही भिन्न है। जीवन के जिस क्षितिज पर बैठ कर, वह उसके चित्रपट का अवलोकन करता है, वहाँ से वह कालिदास अथवा भवभूति के सौन्दर्य ससार की रमणीय छवियों के दर्शन कर ही नहीं सकता। और, यह भी उतना ही सही है कि उसकी प्रतिभा ने जीवन के रगमच पर से जिन पर्दों को हटाया है, वे कालिदास तथा भवभूति के लिए एकदम अकल्पनीय हैं। शूद्रक अपने ससार का एकमात्र स्वामी है और वहाँ कालिदास अथवा भवभूति 'द्वितीय श्रेणी के नागरिक' (Second-class Citizens) समझे जाएँगे। शूद्रक को सौन्दर्य तथा प्रेम के मादक चित्र अकित करने की फुरसत ही नहीं थी, शायद उसकी दृष्टि उधर गई ही नहीं। प्रेम को फाँसी के तख्ते पर तथा सौन्दर्य को मृत्यु के मुख मे ले जाना और तब, उनकी दूसरी परिभाषा करना उसका अभीष्ट था। अतएव,

न तो भावों की सुकुमारता का और न शिल्प के सौन्दर्य का मनन करने के लिए उसके पास अवकाश अथवा धैर्य था। कालिदास की 'सौन्दर्य-समाधि'[१] शूद्रक लगा ही नहीं सकता था। सुतरां, प्रेम तथा सौन्दर्य के नयनाभिराम एवं हृदयावर्जक चित्रों की प्रदर्शनी सजाने में वह असमर्थ रहा।

शूद्रक जहाँ महान् है वहाँ संस्कृत का कोई कवि अथवा नाटककार पहुँच ही नहीं सका है।

---

१. "चित्रगतायामस्यां कान्तिविसंवादशंकि मे हृदयम्।
सम्प्रति शिथिलसमाधि मन्ये येनेयमालिखिता ॥"
('मालविका०' २।२)

संदर्भ-साहित्य-विवरणिका

संस्कृत

१ मृच्छकटिक (निर्णय सागर प्रेस, पृथ्वीधर की टीका से समन्वित, १९२६ ई०)
२ मृच्छकटिक (चौखम्बा, १९)
३ मृच्छकटिक (सम्पादित—काले, करमरकर पराञ्जपे, नेरूरकर)
४ स्वप्नवासवदत्ता, चारुदत्त तथा प्रतिज्ञायौगन्धरायण (भास)
५ मुद्राराक्षस
६ मालतीमाधव, उत्तररामचरित (भवभूति)
७ अभिज्ञानशाकुन्तल, मालविकाग्निमित्र (कालिदास)
८ स्कन्दपुराण
९ बृहत्कथाश्लोक संग्रह ॥ ९ क—बृहत्कथामञ्जरी
१० कथासरित्सागर
११ चतुर्भाणी (सम्पादित, मद्रास, १९२२, बम्बई, १९५९)
१२. अवन्तिसुन्दरीकथा-कथासार (सम्पादित, हरिहरशास्त्री, १९५७)
१३ कादम्बरी
१४ दशकुमारचरित
१५ हर्षचरित
१६ राजतरंगिणी
१७ पञ्चतन्त्र
१८ मनुस्मृति
१९ वसुदेवहिण्डी (संघदास महत्तर—प्राकृत)
२० कुट्टनीमतम्
२१ नाट्यशास्त्र
२२ नाट्यवेदविवृति (अभिनवगुप्त)
२३. काव्यादर्श ।
२४ काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति
२५ नाट्यदर्पण (रामचन्द्र गुणचन्द्र)
२६ नाटकलक्षणरत्नकोश (सागरनन्दी)
२७ सरस्वतीकण्ठाभरण ——
२८ शृङ्गारतिलक (सं० पिशेल, निर्णयसागर प्रेस)
२९ दशरूपक
३० साहित्यदर्पण

हिन्दी

१ शूद्रक (चन्द्रबली पाडे)
२. बौद्ध-साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका (आचार्य परशुराम चतुर्वेदी)
३ सस्कृत-साहित्य का इतिहास (डॉ० वरदाचार्य, अनूदित, १९६२)
४ सस्कृत-साहित्य का इतिहास (प० बल्देव उपाध्याय)
५ सस्कृत साहित्य का इतिहास (वाचस्पति गैरोला)
६ महाकवि कालिदास (डॉ० रमाशकर तिवारी)
७ प्राकृत साहित्य का इतिहास (डॉ० जगदीश चन्द्र जैन)
८ हिन्दी-साहित्य कोश (स० डॉ धीरेन्द्र वर्मा)
९ कादम्बरी · एक अध्ययन (डॉ० अग्रवाल)
१० सस्कृत कवि दर्शन (डॉ० भोलाशकर व्यास)
११ सस्कृत-साहित्य की रूप रेखा (चन्द्रशेखर पाडेय और नानूराम व्यास)
१२ सस्कृत-साहित्य का इतिहास, दो भाग (कन्हैयालाल पोद्दार)
१३ मृच्छकटिक अथवा मिट्टी की गाडी (अनु० डॉ० रागेय राघव)

अग्रेजी

1 A D Pusalkar 'Bhas A Study' (1945)
2 G K Bhat . 'Preface To Mrcchakatika.'
3 G V. Devasthalı . 'Introduction to the Study of Mrcchakatika '
4 H H Wılson 'The theatre of the Hındus' (1955)
5 Jagırdar 'Drama ın Sanskrıt Lıterature '
6 C R Deodhar 'Charudutta'—edıted.
7 Do, 'Plays Ascrıbed to Bhas' (1927)
8 S. K Dey 'Hıstory of Sanskrıt Lıterature' (1947)
9 A. B Keıth 'Sanskrıt Drama' (1951)
1› L Shekhar 'Sanskrıt Drama Its Orıgın and Declıne' (1960)
11 A W. Ryder · 'The Lıttle Clay Cart' (Harvard Orıental Serıes, Vol 9)
12 Henry W Wells 'The Classıcal Drama of Indıa' (1963)
13 Sten Konow 'Indıan Drama '
14 G. V Devasthalı 'Introductıon to the Study of Mudraraksasa.'
15 V Smıth : 'Early Hıstory of Indıa.' (1914)

16 R G Bhandarkar 'Early History of the Dekkan' (1957)
17 K P Jaiswal 'An Imperial History of India '
18 Buddha Prakash 'Studies in Indian History and Civilisation (1962)
19 Jolly 'Tagore Law Lectures' (1883)
20 Kuppu Swami Śastri 'Triennial Catalogue Of Manuscripts In Madras Oriental Library', Vol IV
21 Kane 'History of Dharma Śastra,' Vol I
22 D R Mankad 'Ancient Indian Theatre' (1950)
23 Luders 'List of Brahmi Inscriptions,' No 1137
24 The History of Indian Literature (Weber, translated by Mann and Zachariae)
25 A New History of Sanskrit Literature (Krishna Chaitanya)
26 A History of Sanskrit Literature (Macdonnell)
27 A History of Sanskrit Literature (Keith)
28 Classical Sanskrit Literature (Keith)
29 History of Classical Sanskrit Literature (Krishnamachariar)
30 Studies in Gupta History (Aiyangar)
41 Sanskrit Drama and Dramatists (Kulkarni)
32 The Laws and Practice of Sanskrit Drama, Vol I (S N Shastri, 1961)
33 Sudras in Ancient India (R S Sharma, 1958)
34 The Dynamic Brahmin (B N Nair, 1959)
35 Remarks on Similes in Sanskrit Literature (J Gonda, 1949)
36 Studies in Indology, Vol II (Mirashi, 1961)
37 Ancient Indian Erotics and Erotic Literature (S K. De, 1959)
38 Prologue to Canterbury Tales (Chaucer)
39 Dramas of Shakespeare
40 L' Allegro (Milton)

अंग्रेजी पत्रिकाएँ

1 Bhandarkar Commemoration Volume (1917)
2 Journal of Royal Asiatic Society (1945)

3 Proceedings and Transactions of the First Oriental Conference Vol II (1922)
4 Sukthankar Memorial Edition, Vol II, Analecta
5 Proceedings of Second Oriental Conference (1923)
6 *Journal of the University of Bombay, Vol XVI, Part IV, Nos 31, 32*
7 Poona Orientalist, Vol XIV
8 Journal of American Oriental Society, Vol XXVII, (1907)
9. Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland (1923)

लेखक की अन्य कृतियाँ

१ 'महाकवि कालिदास' (देवपुरस्कार से समादृत)

२ 'काव्य-चिन्ता' (उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत)

३ 'प्रयोगवादी काव्यधारा' (उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत)

४ 'दिनकर की उर्वशी : एक अनुशीलन'

५ 'सूर का शृंगार-वर्णन'

६ 'कामायनी का नवमूल्यांकन' (यन्त्रस्थ)

७ 'बिहारी का सतसई सौन्दर्य' (यन्त्रस्थ)

८ 'चिन्तन और चर्वणा' (यन्त्रस्थ)